आर.एन.आई., भारत सरकार / 1272856 / यू.पी.एच.आई.एन.–46478; दिनांक: 09.06.2015
आई.एस.एस.एन. : 2322-0708
ई.आई.एस.एस.एन. : 2350-0123

अनुसंधान (विज्ञान शोध पत्रिका)

खण्ड 3, अंक 1

क्रियेटिव कॉमन्स(सी.सी.) एट्रीब्यूशन 4.0 इंटरनैशनल लाइसेंस के अंतर्गत
हिन्दी में प्रकाशित ओपेन एक्सेस, पियर रिव्यूड, वार्षिक, अंतर्राष्ट्रीय विज्ञान शोध पत्रिका

वर्ष 2015

INDEXED IN DOAJ

बी0 एस0 एन0 वी0 विज्ञान परिषद
बप्पा श्री नारायण वोकेशनल स्नातकोत्तर महाविद्यालय(के0के0वी0)
नैक प्रत्यायित "बी" संस्था
(लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ)
स्टेशन रोड, चारबाग, लखनऊ–226001, उ0प्र0, भारत
www.bsnvpgcollege.in/vp

बप्पा श्री नारायण वोकेशनल स्नातकोत्तर महाविद्यालय(के0के0वी0)

(लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ)

स्टेशन रोड, चारबाग, लखनऊ-226001, उ0प्र0, भारत

नैक प्रत्यायित "बी" संस्था

बी0 एस0 एन0 वी0 विज्ञान परिषद

www.bsnvpgcollege.in/vp

संवैधानिक संरचना

मुख्य संरक्षक	श्री आर0 के0 शुक्ल, मंत्री / प्रबंधक, बी.एस.एन.वी. पी.जी. कॉलेज, लखनऊ
संरक्षक	प्राचार्य(पदेन)
अध्यक्ष	डॉ0 सुधीश चन्द्र, एसोसिएट प्रोफेसर, प्राणि विज्ञान विभाग
उपाध्यक्ष	डॉ0 संजय शुक्ल, एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, भूगर्भ विज्ञान विभाग
उपाध्यक्ष	डॉ0 के0 के0 बाजपेई, एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, गणित विभाग
सचिव	डॉ0 दीपक कुमार श्रीवास्तव, एसोसिएट प्रोफेसर, गणित विभाग
संयुक्त सचिव	डॉ0 वीना पी0 स्वामी, असिस्टेंट प्रोफेसर, प्राणि विज्ञान विभाग

संस्थापक मंडल

श्री बृजेन्द्र सिंह(प्राणि विज्ञान)
डॉ0 सुधीश चन्द्र(प्राणि विज्ञान)
डॉ0 संजीव शुक्ल(प्राणि विज्ञान)
डॉ0 संजय शुक्ल(भूगर्भ विज्ञान)
डॉ0 यू0एस0 अवस्थी(वनस्पति विज्ञान)
डॉ0 के0 के0 बाजपेई(गणित)
श्री राम कुमार तिवारी(भौतिक विज्ञान)
डॉ0 ए0 पी0 वर्मा(वनस्पति विज्ञान)
डॉ0 दीपक कुमार श्रीवास्तव(गणित)
डॉ0 वीना पी0 स्वामी(प्राणि विज्ञान)
श्री राजेश राम(रसायन विज्ञान)

संपादक-मंडल

प्रधान संपादक

डॉ0 सुधीश चन्द्र
एसोसिएट प्रोफेसर, प्राणि विज्ञान विभाग एवं प्राचार्य
बी0 एस0 एन0 वी0 पी0 जी0 कॉलेज, लखनऊ
sudhish1953@gmail.com

संपादक

डॉ0 दीपक कुमार श्रीवास्तव
एसोसिएट प्रोफेसर, गणित विभाग
बी0 एस0 एन0 वी0 पी0 जी0 कॉलेज, लखनऊ
dksflow@hotmail.com

सह-संपादक

डॉ0 संजीव शुक्ल
एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, प्राणि विज्ञान विभाग
बी0 एस0 एन0 वी0 पी0 जी0 कॉलेज, लखनऊ
sanjiveshukla@gmail.com

डॉ0 संजय शुक्ल
एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, भू-विज्ञान विभाग
बी0 एस0 एन0 वी0 पी0 जी0 कॉलेज, लखनऊ
drsanjaygeo@gmail.com

डॉ0 यू0 एस0 अवस्थी
असिस्टेंट प्रोफेसर, वनस्पति विज्ञान विभाग
बी0 एस0 एन0 वी0 पी0 जी0 कॉलेज, लखनऊ

डॉ0 अर्चना राजन
एसोसिएट प्रोफेसर, वनस्पति विज्ञान विभाग
राजकीय स्नाo महाo, हरख, बाराबंकी
rajanarchana2512@gmail.com

डॉ0 ऋचा शुक्ला
एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
प्राणि विज्ञान विभाग
नवयुग कन्या महाविद्यालय, लखनऊ
sanjiveshukla@gmail.com

डॉ0 सुधीर मेहरोत्रा
एसोसिएट प्रोफेसर, जैव रसायन विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ
sudhirankush@yahoo.com

डॉ0 ज्योति काला
एसोसिएट प्रोफेसर, अंग्रेजी विभाग
बी0 एस0 एन0 वी0 पी0 जी0 कॉलेज, लखनऊ
jyotikala2010@gmail.com

श्री राम कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर, भौतिक विज्ञान विभाग
बी0 एस0 एन0 वी0 पी0 जी0 कॉलेज, लखनऊ
rktshri@yahoo.co.in

डॉ0 वीना पी0 स्वामी
असिस्टेंट प्रोफेसर, प्राणि विज्ञान विभाग
बी0 एस0 एन0 वी0 पी0 जी0 कॉलेज, लखनऊ

श्री राजेश राम
असिस्टेंट प्रोफेसर, रसायन विज्ञान विभाग
बी0 एस0 एन0 वी0 पी0 जी0 कॉलेज, लखनऊ
rajesh_ram_2006@yahoo.co.in

डॉ0 अल्का मिश्रा
असिस्टेंट प्रोफेसर,
गणित एवं खगोलशास्त्र विभाग,
लखनऊ वि0 वि0, लखनऊ-226007

इं0 मनोज कुमार वार्ष्णेय
वरिष्ठ प्रवक्ता एवं अध्यक्ष
सिविल इंजीनियरिंग डी0एन0 पॉलीटेक्निक,
परतापुर, मेरठ-250103
manojvarshney17@rediffmail.com

डॉ0 आलोक मिश्र
एसोसिएट प्रोफेसर, वनस्पति विज्ञान विभाग
जे0 एन0 पी0जी0 कॉलेज, लखनऊ-226001
alok.1953.m@gmail.com

डॉ0 रेनू सिंह
वैज्ञानिक, पर्यावरण विज्ञान एवं जलवायु-समुत्थानशील कृषि
केन्द्र, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली
renu_icar@yahoo.com

सलाहकार-मंडल

प्रमुख सलाहकार

श्री टी० एन० मिश्र
अध्यक्ष, बी० एस० एन० वी० इंस्टीट्यूट, लखनऊ

अंतर्राष्ट्रीय सलाहकार मंडल

प्रो० एच० एम० श्रीवास्तव(कनाडा)
प्रो० हेराल्ड रामकिशन(वेस्टइंडीज)
डॉ० तनवीर आलम(सउदी अरब)
डॉ० मनमोहन देव शर्मा(यू० एस० ए०)
डॉ० वृंदा अग्रवाल(यू० एस० ए०)
डॉ० अनूप अग्रवाल(यू० एस० ए०)
प्रो० संजय कुमार श्रीवास्तव(यू० एस० ए०)
प्रो० प्रीति बाजपेई(यू० ए० ई०)
प्रो० एम० जी० प्रसाद(यू० एस० ए०)
डॉ० पंकज कुमार तिवारी(कनाडा)

राष्ट्रीय सलाहकार मंडल

प्रो० भूमित्र देव(लखनऊ)
प्रो० एच० आर० सिंह(इलाहाबाद)
प्रो० पी० के० जैन(दिल्ली)
प्रो० आर० सी० श्रीवास्तव(गोरखपुर)
प्रो० ए० के० चोपड़ा(हरिद्वार)
प्रो० ए० के० शर्मा(लखनऊ)
प्रो० वाई० के० शर्मा(लखनऊ)
प्रो० सुनील दत्त(लखनऊ)
प्रो० एस० पी० त्रिवेदी(लखनऊ)
प्रो० पीयूष चन्द्रा(कानपुर)
प्रो० आनंद कुमार श्रीवास्तव(लखनऊ)
प्रो० एस० के० कुलश्रेष्ठ(चण्डीगढ़)
प्रो० बी० एस० तिवारी(चण्डीगढ़)
प्रो० आर० एस० टण्डन(सुल्तानपुर)

प्रो० मधु त्रिपाठी(लखनऊ)
डॉ० एस० सी० मिश्र(लखनऊ)
डॉ० बी० के० द्विवेदी(लखनऊ)
डॉ० एस० सी० शुक्ल(लखनऊ)
प्रो० कृष्ण बिहारी पाण्डेय(सतना)
प्रो० यतीश अग्रवाल(दिल्ली)
डॉ० प्रदीप कुमार श्रीवास्तव(लखनऊ)
डॉ० शंकर लाल(कानपुर)
डॉ० उपेन्द्र नन्दन शुक्ल(लखनऊ)
प्रो० प्रदीप कु० प्रजापति(जामनगर)
प्रो० कैलाश डी० सिंह(लखनऊ)
डॉ० कृष्ण दत्त(लखनऊ)
डॉ० संतोष कुमार पाण्डेय(नोयडा)
डॉ० योगेन्द्र कुमार श्रीवास्तव(भोपाल)

सम्पादकीय

मातृभाषा में चिंतन मौलिक विचारों एवं अनुसंधानों का सर्वोत्तम जनक है, यह बात शोध जगत के अंतर्राष्ट्रीय परिदृष्य पर स्वयंसिद्ध है। हिन्दी विश्व की सर्वाधिक जनसंख्या द्वारा बोली जाने वाली सशक्त भाषा है जिसमें विचारों एवं नये शब्दों को आत्मसात करने की अद्भुत क्षमता है। संस्कृत जैसी सुगठित, व्याकरण संपन्न एवं वैज्ञानिकता पूर्ण भाषा से जन्म लेने के कारण यह गुण हिन्दी में स्वयमेव समाहित हैं। शोध कार्यों का लाभ जनसामान्य तक पहुँच सके इस दिशा में हिन्दी का अत्यधिक योगदान हो सकता है। इस विचार को मूर्त रूप देने के लिए **"अनुसंधान(विज्ञान शोध पत्रिका)"** का प्रकाशन वर्ष 2013 में प्रारम्भ किया गया था ताकि शोध कार्यों एवं वैज्ञानिक उपलब्धियों का सीधा लाभ सरलतम भाषा में छात्रों एवं जनसामान्य तक पहुँचाया जा सके। हिन्दी में विज्ञान लेखन को अभी तक दुरूह ही माना जाता रहा है, परन्तु संपादक मंडल शोधार्थियों एवं विद्वान अध्यापकों के प्रति आभार व्यक्त करता है जो कि निरन्तर पत्रिका परिवार में जुडकर अपना योगदान कर रहे हैं।

किसी नये कार्य का सृजन चुनौती पूर्ण अवश्य होता है परन्तु उससे भी कठिन कार्य उसका विकास एवं परिष्करण कर जनोपयोगी बनाना है। अब आवश्यकता है इस **"शोध पत्रिका"** के गुणात्मक विकास की जो कि शोधार्थियों, शिक्षकों एवं समीक्षकों के बिना संभव नहीं है। वर्ष 2015 में **"अनुसंधान(विज्ञान शोध पत्रिका)"** शीर्षक को द रजिस्ट्रार ऑफ न्यूजपेपर्स फॉर इण्डिया, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, द्वारा पंजीकृत किया गया है। इसके साथ ही विज्ञान परिषद की वेबसाइट के निर्माण का कार्य भी प्रगति पर है जिससे कि आगामी वर्ष से शोध पत्र एवं आलेख ऑनलाइन जमा करने का मार्ग प्रशस्त होगा। शोध पत्रिका का देश–विदेश के प्रमुख डाटा–बेसों में इंडेक्सिंग कराने का कार्य भी प्रगति पर है। संपादक मंडल के सदस्यों का प्रयास है कि पत्रिका **"प्रभाव गणना कारक(इम्पैक्ट फैक्टर)"** जगत में प्रवेश कर, अन्य स्थापित वैज्ञानिक शोध पत्रिकाओं की भांति अग्रिम पंक्ति में खड़ी हो सके व आपके अमूल्य शोधों एवं विचारों को अंतर्राष्ट्रीय फलक पर स्थापित कर सके। इसी मंगल कामना के साथ **"अनुसंधान(विज्ञान शोध पत्रिका)"** का खण्ड–3, अंक–1, वर्ष–2015, शोधार्थियों, विद्यार्थियों, शिक्षकों व विचारकों के हाथों में समर्पित किया जा रहा है।

डॉ0 सुधीश चन्द्र
प्रधान संपादक
"अनुसंधान(विज्ञान शोध पत्रिका)"

आर.एन.आई., भारत सरकार / 1272856 / यू.पी.एच.आई.एन.–46478; दिनांक 09.06.2015

स्थापना वर्ष–2013

आई०एस०एस०एन०(प्रि०) 2322–0708
आई०एस०एस०एन०(ऑनलाइन) 2350–0123

अनुसंधान(विज्ञान शोध पत्रिका)

क्रियेटिव कॉमन्स(सी.सी.) एट्रीब्यूशन 4.0 इंटरनेशनल लाइसेंस के अन्तर्गत
खण्ड–03, अंक–01 हिन्दी में प्रकाशित ओपेन एक्सेस, पियर रिव्यूड, वार्षिक, अंतर्राष्ट्रीय विज्ञान शोध पत्रिका वर्ष–2015

मुख्य आवरण पृष्ठ
संवैधानिक संरचना एवं संस्थापक मंडल(मुख्य अंतः आवरण पृष्ठ)
सम्पादक मंडल
सलाहकार मंडल
सम्पादकीय लेख

अनुक्रमणिका

भाग / वर्ग	क्र०सं०	शीर्षक व लेखक	पृ०सं०
1 शोध पत्र	1.1	डॉडगढ़ रावली वन्यजीव अभयारण्यः गत शताब्दी में बाघों की उपस्थिति के सम्बंध में कुछ ऐतिहासिक तथ्य सतीश कुमार शर्मा	1 – 5
	1.2	पिथौरागढ़ जनपद, उत्तराखण्ड के खनिज निक्षेप आर० ए० सिंह	6 – 10
	1.3	भारत में हरित क्रान्ति के पूर्व एवं पश्चात् कृषि उत्पादकता का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रीति पन्त	11 – 19
	1.4	ऑर्गेनोफॉस्फोरस तथा ऑर्गेनोसिलिकॉन एडहेसिव का तुलनात्मक अध्ययन देवेन्द्र कुमार	20 – 24
	1.5	पारा तथा कुछ अन्य धातु आयनों के साथ लिगेण्ड डाइइथिलीन ट्राइएमीन पेण्टाएसिटिक एसिड(डीटीपीए) के भिन्न हिनाभिकीय(हेट्रोबाइन्यूक्लियर कॉम्प्लेक्सेज) का बनना तथा उनके स्थायित्व स्थिरांकों की गणना गोविन्द कृष्ण मिश्र	25 – 27
	1.6	आफ़रन हमरस्टेड डिल्ली का वैद्युत रसायनिक अध्ययन पी०के० पाठक, साधना श्रीवास्तव, मुहम्मद अयूब अन्सारी एवं रमेश कुमार प्रजापति	28 – 33
	1.7	जन्मोपरान्त गर्भपातः 'जीवन का अधिकार' की नैतिकता का वैज्ञानिक विश्लेषण ज्योति कक्वा	34 – 38
	1.8	एन्जाइमों की भौतिक एवं रासायनिक अभिक्रियाओं में धातु आयनों की भूमिका–एक अध्ययन विजय शंकर	39 – 42
	1.9	विभिन्न सांस्कृतिक समूहों के वृद्ध व्यक्तियों के एकाकीपन का अध्ययन दिनेश कुमार	43 – 45
	1.10	मृदुजलीय कैटफिश हेटरोप्न्यूस्टिस फासिलिस(ब्लॉक) के रक्त यूरिया स्तर पर निराहारता का प्रभाव सुधीश चन्द्र	46 – 49
2 तकनीकी लेख व समीक्षा आलेख	2.1	मध्य एशिया में होलोसीन के दौरान आर्द्रता विकास–एक समीक्षा रणधीर सिंह, विनीता कर्त्याल एवं विंध्याचल पाण्डेय	50 – 53
	2.2	क्षय रोगः एक वैश्विक चुनौती और भारत के लिये गम्भीर समस्या मोहित कुमार तिवारी, प्रतिभा गुप्ता तथा आइजेक विलियम	54 – 57
	2.3	प्रकृति के दो प्रमुख औषधीय प्रदेयः अलसी और तुलसी पल्लवी दीक्षित	58 – 60
	2.4	व्यायाम एवं प्रशिक्षण के दौरान खिलाड़ी के हृदय परिसंचरण तंत्र पर	61 – 66

		रक्त परिसंचरण की विशेष भूमिका–एक अध्ययन रेनू मौर्या	
	2.5	यज्ञों की वैज्ञानिकता–एक समीक्षा मीरा वाणी	67 – 72
	2.6	कैंसर रोगियों में योग की भूमिका–एक अध्ययन तृप्ति मिश्रा, शिप्रा शुक्ला, अंजलि वर्मा, विभा सिंह एवं महेश चाल	73 – 76
	2.7	रामानुजन की लगातार भिन्नों का एक परिचय रमा जैन	77 – 82
	2.8	समाजशास्त्र–समाज के विज्ञान के रूप में विजय कुमार	83 – 87
	2.9	क्लाउड कम्प्यूटिंग एक वैज्ञानिक समीक्षा राकेश कुमार सिंह एवं रंजन सिंह	88 – 94
	2.10	सरस्वती नदी का पुर्नप्रामाणीकरण : सार्थक प्रयास का एक तकनीकी अध्ययन अलका शर्मा	95 – 98
	2.11	मुगलकालीन कृषिगत तकनीकी विशिष्टता वन्दना कलहंस	99 – 105
	2.12	अंग प्रत्यारोपण अर्चना रानी	106 – 107
	2.13	आँवला–स्वास्थ्य लाभ के लिए कार्यात्मक भोजन के रूप में आयुर्वेदिक औषधि प्रमोद कुमार सिंह, देवेन्द्र सिंह, संजीव कुमार ओझा, आर.सी. चैनवाल एवं श्रीकृष्ण तिवारी	108 – 112
3 वैज्ञानिक लेख	3.1	जैव रसायनिक तकनीक से जैवभार आधारित ईंधन रेनू सिंह, रेनू पांडे एवं मोनिका श्रीवास्तव	113 – 116
	3.2	ध्वनि प्रदूषण उदय शंकर अवस्थी	117 – 118
	3.3	संस्कृत: एक सम्पूर्ण विज्ञान कुलदीपक शुक्ल	119 – 120
	3.4	मानव में लैंगिक व्यवधान–वास्तविक या मनोवैज्ञानिक एस0 सी0 शुक्ल	121 – 125
	3.5	प्लास्टिक ए0 के0 चतुर्वेदी	126 – 129
	3.6	सिलिकोसिस–धूल में मौजूद सिलिका के कारण होने वाला व्यवसाय जनित रोग सचिन नरवडिया	130 – 131
	3.7	औषधीय पौधों की पौध सामग्री एवं रोपण तकनीकी से लाभ राकेश कुमार उपाध्याय, जे0 आर0 बहल एवं एस0 के0 तिवारी	132 – 135
	3.8	फीलड्स पदक: संक्षिप्त परिचय सत्य देव वर्मा	136 – 137
	3.9	कर्क रोग(कैंसर) सुधीर मैहरोत्रा एवं स्मिता मिश्रा	138 – 140
	3.10	सेहत और स्वास्थ्य के लिये सब्जियाँ खाइये रश्मि गुप्ता	141 – 145
	3.11	अक्षौहिणी सेना, महाभारत का युद्ध, चतुर्युग और मूलांक 09 के आभासी अन्तर्सम्बन्ध महेन्द्र पारीक	146 – 147
	3.12	प्राचीन भारत का विश्वकोश 'अर्थशास्त्र' अनुराधा विनायक	148 – 149
	3.13	ऐलन ट्यूरिंग व उनका विज्ञान के क्षेत्र में योगदान सौम्या अवस्थी, एवं प्रीति बाजपेयी	150 – 152
	3.14	वायु का काला जहर डी0 के0 अवस्थी एवं सरिता चौहान	153 – 155
	3.15	भारत में कृषि जैव–विविधता में क्षति नीरजा मिश्रा	156 – 158

	3.16	यूरोपीय सान्त्विक क्रान्ति नीलिमा गुप्ता	159 – 161
	3.17	भूगर्भ जल संरक्षण दीप्ति सिंह	162 – 164
	3.18	अध्यापक शिक्षा में संचार माध्यमों की प्रासंगिकता धर्मेन्द्र प्रताप सिंह	165 – 166
	3.19	भूकम्प के प्रभाव–झटके और भूमि का फटना राजीव कुमार सिंह	167 – 168
	3.20	इच्छामृत्यु, भारत में वर्तमान विधिक स्थिति प्रशान्त मिश्र	169 – 170
	3.21	दुर्खीम का समाजशास्त्रीय पद्धतिशास्त्र वन्दना	171 – 172
	3.22	संकटग्रस्त सोस–शारीरिक विशेषताएं एवं व्यवहार अरविन्द सिंह	173 – 177
	3.23	बारामासी–नवीन कृषि पद्धति से संवरता भविष्य अर्चना राजन एवं धर्मवीर	178 – 183
	3.24	मौसम: प्राकृतिक या कृत्रिम प्रेक्षा राजन एवं कौशल कुमार बाजपेई	184 – 187
	3.25	प्रिंट मीडिया का व्यवसायीकरण और जनहित विजय प्रकाश उपाध्याय	188 – 189
	3.26	पायथागोरियन ट्रिप्लेट्स प्रीति बाजपेई	190 – 192
	3.27	विटामिन 'जीवन सत्व' उषारानी सिंह	193 – 195
	3.28	संवेदनशील डाटा के संरक्षण में डाटा खनन का महत्व शालिनी लाम्बा, श्वेता सिन्हा, विजय कुमार पाण्डे	196 – 197
	3.29	किशोरावस्था की संवेगात्मक समस्यायें दीप्ति खरे	198 – 200
	3.30	वेब सुरक्षा शालिनी लाम्बा, रिंकू रहेजा एवं सौरभ पति	201 – 202
	3.31	वैश्विक तपन की बढ़ती गर्माहट अरविन्द कुमार तिवारी	203 – 204
	3.32	उच्च शिक्षा में डाटा माइनिंग श्वेता सिन्हा, शालिनी लाम्बा	205 – 207
	3.33	आधुनिक युग में गणित का प्रसार भानु प्रताप सिंह	208 – 209
	3.34	सरकारी/निजी सहसम्पर्क द्वारा ग्रामीण विकास डॉ0 कलाम का पुरा मॉडल एवं उसका चिन्तन गुंजन पाण्डेय	210 – 213
	3.35	प्रकृति के प्रति आदर का भाव रखें प्रेमचन्द श्रीवास्तव	214 – 215
	3.36	भूमि उर्वरता की मूल रूप में निरूपण सूक्ष्म जीवों का योगदान लल्लन प्रसाद	216 – 218
	3.37	मधुमेह प्रबन्धन में आयुर्वेद एवं परंपरागत औषधि की भूमिका सन्तोष कुमार सिंह	219 – 222
	3.38	भारतीय संस्कृति का बदलता स्वरूप और पर्यावरण प्रदूषण ब्रजेश सिंह, वर्षा रानी एवं संतोष कुमार सिंह	223 – 225
4 विविध	4.1	विज्ञान समाचार–नवीन जानकारी दीपक कोहली	226 – 231
	4.2	ड्रोन–तकनीकी में एक नया आयाम अमित कुमार श्रीवास्तव, रिंकू रहेजा, विजय कुमार पाण्डे	232 – 233
	4.3	रेडियो वार्ता–आकाशवाणी, लखनऊ, शीर्षक– 'हिन्दी में विज्ञान पत्रकारिता' वार्ताकार– दीपक कुमार श्रीवास्तव	234 – 235

	44	नोबेल पुरस्कार विजेता विद्वान–वर्ष 2016 दिव्यांश श्रीवास्तव	236 – 238

विज्ञान परिषद नियमावली, आजीवन सदस्यता प्रारूप एवं आजीवन संस्था/पुस्तकालय सदस्यता प्रारूप
विज्ञापन आलोक प्रकाशन एवं प्रकाशन केन्द्र(अंत अंतः आवरण पृष्ठ)
नोबेल पुरस्कार विजेताओं के फोटोग्राफ्स(अंत आवरण पृष्ठ)

टॉड़गढ़–रावली वन्यजीव अभयारण्यः गत शताब्दी में बाघों की उपस्थिति से सम्बन्धित कुछ ऐतिहासिक तथ्य

सतीश कुमार शर्मा
सहायक वन संरक्षक, वन्यजीव अभयारण्य जयसमन्द
जयसमन्द पोस्ट, जिला– उदयपुर, पिन–313905, राजस्थान, भारत
sksharma56@gmail.com

प्राप्त तिथि–24.03.2015, स्वीकृत तिथि–13.04.2015

सार

टॉड़गढ़–रावली अभयारण्य कभी बाघों के लिए प्रसिद्ध रहा है। यहाँ पर वर्ष 1955 तक बाघ का शिकार होने के स्पष्ट प्रमाण उपलब्ध हैं। लेकिन इस अभयारण्य में अब बाघ नहीं दिखते हैं। सम्भवतः यहाँ बाघ 1965 से 1975 के बीच विलुप्त हुए हैं।

बीज शब्द– टॉड़गढ़–रावली अभयारण्य, गत शताब्दी, ऐतिहासिक तथ्य।

Todgarh-Raoli wildlife sanctuary: Some historical facts about the presence of tigers during last century

Satish Kumar Sharma
Assistant Conservator of Forests, Wildlife Sanctuary Jaisamand,
Jaisamand Post, Udaipur District, Pin-313905, Rajasthan, India
sksharma56@gmail.com

Abstract

Once Todgarh-Raoli sanctuary was famous for the tigers. Authentic evidences are available for tiger hunting in this area till 1955, but now a days tigers are not visible in this sanctuary. Probably tigers has exterminated from this area between 1965 to 1975.

Key words- Todgarh-Raoli wildlife sanctuary, past century, historical facts.

1.प्रस्तावना

राजस्थान सरकार द्वारा दिनांक 28 दिसम्बर, 1983 को अजमेर, पाली एवं राजसमन्द जिलों के मिलन स्थल पर वन्यजीव बहुल 463.03 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र को टॉड़गढ़–रावली अभयारण्य के रूप में स्थापित करने की विधिवत घोषणा की गयी (शर्मा, 2006; घोष, 2007; सकरवाल एवं वर्मा, 2008)। यह अभयारण्य मध्य अरावली क्षेत्र का महत्वपूर्ण अभयारण्य है जिसके दक्षिण दिशा में प्रसिद्ध कुम्भलगढ़ अभयारण्य स्थित है। दोनों अभयारण्यों के बीच में एक दर्रा है जिससे होकर दिवेर–कोट सड़क मार्ग गुजरता है। प्रसिद्ध इतिहासकार कर्नल जेम्स टॉड़ का निवास स्थान "टॉड़गढ" यहाँ होने के कारण इस अभयारण्य का नामकरण उनके सम्मान में टॉड़गढ़–रावली रखा गया। रावली एक नजदीकी गाँव का नाम है। इस अभयारण्य में खामली घाट रेलवे स्टेशन से गोरम घाट एवं फुलाद रेलवे स्टेशन तक की वर्षा कालीन रेल सवारी अद्भुत होती है। गोरम घाट रेलवे स्टेशन के आस–पास का क्षेत्र जैव विविधता की दृष्टि से धनी ही नहीं अपितु अत्यन्त रमणीक स्थल (जैसे दूधालेश्वर, काबरदाता, जोग मंडी आदि) भी है (शर्मा, 2008, 2011)। वर्षा ऋतु में गोरम घाट रेलवे स्टेशन के चारों ओर ऊँचे हरे–भरे पहाड़ों का दृश्य देखने लायक होता है (फोटो 1 एवं 2)। इन स्थानों पर भालू (अख्तर, 2008), तेंदुआ, जंगली बिल्ली, लकड़बग्घा, कॉमन सिवेट, भारतीय छोटी सिवेट, लंगूर, चौसिंगा, जंगली मुर्गे (शर्मा, 2008) आदि देखने को मिलते हैं।

2.अध्ययन क्षेत्र एवं अध्ययन काल

टॉड़गढ़–रावली अभयारण्य के समस्त क्षेत्र को कुल 3 क्षेत्रों – रावली, जोजावर तथा भीम में बांटा गया है। रावली क्षेत्र में ब्रिटिशकाल का एक वन विश्रामगृह है जिसमें तत्कालीन समय का हाथों द्वारा रस्सा खींच कर चलने वाला पंखा दर्शनीय है।

ब्रिटिशकाल में प्रायः यहाँ अंग्रेज अधिकारी एवं आस–पास के रजवाड़ों–ठिकानों के ठिकानेदार व ओहदेदार शिकार हेतु आया करते थे। आगन्तुकों को यहाँ एक रजिस्टर में 8 कॉलमों में अपना विवरण देना होता था। कॉलमों में आगन्तुक का अपना नाम एवं पता, आगमन की तारीख व समय, प्रस्थान की तिथि व समय तथा 'रिमार्क' अन्तर्गत अन्य विविध जानकारी दर्ज करनी होती थी। टॉडगढ़–रावली वन विश्राम गृह में लावारिस हालत में तत्कालीन समय संधारित होने वाले इस रजिस्टर के 11 पृष्ठ जीर्ण–शीर्ण हालत में वनकर्मियों को पुराने स्टोर मे मिले। लेखक को जब इस ऐतिहासिक दस्तावेज का वर्ष 2003 में पता चला तो तत्कालीन उप मुख्य वन्यजीव प्रतिपालक, श्री राहुल भटनागर के ध्यान में लाकर इन पृष्ठों को लेमिनेट कर संरक्षित किया गया।

इन पृष्ठों में 11 दिसम्बर 1932 से लेकर 24 जून 1955 तक कुल 22 साल, 6 माह एवं 15 दिन की अवधि की अनेक महत्वपूर्ण बातें दर्ज हैं। रजिस्टर में दर्ज तिथि से स्पष्ट है इसमें देश की आजादी से लगभग 14–15 वर्ष पूर्व तथा आजादी के लगभग 8 वर्ष बाद तक टॉडगढ़–रावली अभयारण्य की वन एवं वन्यप्राणियों संबंधी स्थितियों की महत्वपूर्ण, स्पष्ट एवं पुख्ता जानकारी दर्ज है। यह दस्तावेज अभयारण्य क्षेत्र में गत शताब्दी(20 वीं शताब्दी) में बाघों की उपस्थिति के बारे में कई महत्वपूर्ण सूचनाएं प्रदान करता है।

3.अध्ययन विधि

इस रजिस्टर में तत्कालीन समय आगन्तुकों द्वारा किये गये शिकार का विवरण भी "रिमार्क" कॉलम में दर्ज है जो उस समय टॉडगढ़–रावली के वनों में विद्यमान वन्यप्राणियों की झलक प्रस्तुत करते हैं। पंजिका में दर्ज शिकार किये प्राणियों सम्बन्धी विभिन्न जानकारी यथा शिकार तिथि, प्रजाति, संख्या, शिकार स्थल, शिकार की विधि आदि का विश्लेषण किया गया। तत्कालीन स्थिति को एक आधार रेखा मानकर आज की स्थिति का तुलनात्मक आंकलन इस दस्तावेज से सहज ही किया जा सकता है।

4.परिणाम एवं विवेचना

रावली क्षेत्र में मिले ऐतिहासिक रजिस्टर के पृष्ठों में, आगन्तुकों द्वारा वन क्षेत्रों में उनके द्वारा किये गये शिकार संबंधी दर्ज तथ्यों का अध्ययन किया गया। दिनांक 11.12.1932 से 25.12.1945 तक रजिस्टर में कोई शिकार विवरण दर्ज नहीं है, केवल आगन्तुकों के आगमन, प्रस्थान एवं रुकने की सूचना ही दर्ज है। रजिस्टर में दर्ज शिकार के रिकॉर्ड निम्न हैं :

सारिणी 1: टॉडगढ़–रावली अभयारण्य के कुछ शिकार रिकॉर्ड

क्र. सं.	आगन्तुक का नाम	आगन्तुक की ठहराव अवधि	शिकार किये प्राणी का विवरण		विशेष विवरण
			प्रजाति	संख्या	
1	श्री शंभू सिह एवं पार्टी	3.1.1946 से 8.1.1946	मगर *Crocodilus palustris*	2	बघमाल वन खण्ड में शिकार की कमी होना दर्ज है
2	श्री केशव सेन खारवा	3.7.1947 से 4.7.1947	तेन्दुआ *Panthera pardus*	1	
3	श्री केशव सेन खारवा	26.5.1948* से 2.6.1948	बाघ *Panthera tigris*	1	.470 H.V. से बाघ मारा
4	श्री गणपतसिंह एवं श्री केशव सेन खारवा	17.1.1949** से 3.2.1949	बाघ *Panthera tigris*	1	राजकीय वन में शिकार किया
			जरख *Hyaena hyaena*	1	राजकीय वन में शिकार किया
			तेन्दुआ *Panthera pardus*	1	राजकीय वन क्षेत्र के बाहर शिकार किया
			बतख एवं टील Ducks & Teal	92	आसन तालाब में शिकार किया
			गीज़ Geese	2	आसन तालाब में शिकार किया

			मगर *Crocodilus palustris*	1	आसान तालाब में शिकार किया
5	श्री केशव सेन खारवा	1.3.1951 से 5.3.1951	स्लदग यानी शियागोश *Caracal caracal*	1	सातूखेडा वन खण्ड में शिकार किया
			मुर्गे Fowl	कुछ मारे	संख्या अंकित नहीं है
6	श्री नरेन्द्र सिंह (ब्यावर)	29.10.1952 से 2.10.1952	मुर्गे Fowl	कुछ मारे	संख्या अंकित नहीं है
7	श्री केशव सेन खारवा	4.6.1953 से 5.6.1953	तेन्दुआ *Panthera pardus*	1	
8	श्री केशव सेन खारवा	2.7.1953 से 5.7.1953	बाघ *Panthera tigris*	2	दोनों को एक शॉट में मार गिराया
	श्री गणपत सिंह खारवा एवं श्री केशव सेन खारवा	8.7.1953 से 11.7.1953	तेन्दुआ *Panthera pardus*	1	
9	श्री गणपत सिंह खारवा, श्री केशव सेन खारवा, एवं सुश्री जय कुमारी खारवा	22.12.1953 से 12.1.1954	तेन्दुआ *Panthera pardus*	1	एक बाघ बच गया (Missed a tiger)
			सांभर *Cervus unicolor*	1	श्री सेन द्वारा शिकार किया गया।
			तेन्दुआ *Panthera pardus*	1	जय कुमारी ने दिनांक 7.1.1954 को 9 वर्ष 2 दिन की आयु में अपना पहला शिकार किया
10	श्री केशव सेन खारवा	11.9.1954 प्रातः 10.00 बजे से दिनांक 11.9.1954 अपराह्न 3.00 बजे	बाघ *Panthera tigris*	1	टाड़गढ़ वन खण्ड में 470 H.V. से एक शॉट में शिकार किया। खूँटी लम्बाई (Peg length) 9'8"
11	श्री केशव सेन खारवा	7.1.1955	बाघ *Panthera tigris*	1	सातूखेडा वन खण्ड में शिकार किया गया।

* अनुसंधान(विज्ञान शोध पत्रिका) के खण्ड 2 (1) पेज 12 पर बाघ मारने की तिथि 24.5.1948 को 26.05.1948 पढ़ा जावे जो सही तिथि है। यही तिथि यहाँ अंकित की गयी है।

** अनुसंधान(विज्ञान शोध पत्रिका) के खण्ड 2 (1) पेज 12 पर बाघ मारने की तिथि 15.1.1949 को 17.1.1949 पढ़ा जावे जो सही तिथि है। यही तिथि यहाँ अंकित की गयी है।

सारणी 1 में दर्ज शिकार रिकार्डों का अवलोकन करने पर निम्न महत्वपूर्ण तथ्य उभर कर आते हैं:–

(अ) दक्षिण अरावली में जहाँ आजादी के बाद तक के कुछ वर्षों में यह प्रजाति विद्यमान थी, आज बाघ देखने को नहीं मिलते। टॉडगढ़–रावली में 1955 तक बाघ होने का निश्चयात्मक रेकार्ड है। चूँकि पंजिका के 1955 में आगे के पेज उपलब्ध नहीं हैं अतः 1955 के बाद की स्थिति के पुख्ता प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। सम्भवतः बाघ आगे भी कुछ वर्षों तक विद्यमान रहे होंगे।

(ब) सभी मौसम शिकार की दृष्टि से समान नहीं हैं। राजस्थान में गर्मी की ऋतु में धूप, सूखा, पानी की कमी आदि के कारण मौसम अच्छा नही माना जाता। वर्षा में तत्कालीन समय नदी–नालों में पानी आने से आवागमन बाधित होता था क्योंकि उस समय कच्चे मार्ग ही उपलब्ध थे तथा पुल व पुलियों की उपस्थिति बहुत कम थी। वर्षा में मक्खी, मच्छर व अन्य कीट–पतंगे भी बहुत हो जाते थे। सर्दी में धूप कम रहती है। प्यास भी ज्यादा नहीं लगती तथा दिनभर मचान पर आसानी से बैठा जा सकता है। अतः सर्दी को शिकार हेतु अच्छा मौसम माना जाता था। मौसम के हिसाब से शिकार की स्थिति निम्न रही :

सारणी 2: विभिन्न मौसमों में शिकार की स्थिति

गर्मी (मार्च से जून) में किये शिकार	वर्षा (जुलाई से अक्टूबर) में किये शिकार	सर्दी (नवम्बर से फरवरी) में किये शिकार
बाघ–1 शियागोश–1 तेंदुआ–1	तेंदुआ–2 बाघ– 3	मगर– 3 बाघ– 2 सांभर– 1 जरख– 1 तेंदुआ– 3 गीज– 2 बतख एवं टील – 92 मुर्गे– (संख्या अंकित नहीं)

सारणी 2 से स्पष्ट है कि वैसे तो सालभर शिकार होता था लेकिन सर्दी में खास शिकार सीजन होता था। सर्दी में मौसम अच्छा रहने से दिन भर वन भ्रमण सहज रहता था। आधुनिक हथियार के रूप में बंदूके आ जाने से .470 का उपयोग शिकार हेतु किया गया। सर्दी में मगर पानी के बाहर धूप सेवन करते हैं अतः आसानी से दिखते हैं। जलीय आवासों में भी देशान्तर गमन कर आने वाले पक्षियों के कारण पक्षी शिकार सहज होता है। बाघ एवं तेंदुओं व अन्य प्राणियों के सर्दी में गहरे रंग की "सर्दी की फर" आ जाती है अतः गहरे रंगों की चमडी से सुन्दर ट्रॉफी बनवाई जा सकती थी। अंग्रेजों के आगमन से पहले ट्रॉफी बनाकर निवास में रखने की कोई प्रथा नहीं थी क्योंकि ट्रॉफी मुर्दा स्वरूप है एवं मुर्दे को घर में रखना भारतीय संस्कृति में अच्छा नहीं माना जाता था। लेकिन अंग्रेजों के आगमन के बाद उनकी देखा–देखी स्थानीय रजवाड़ों में भी ट्राफी रखने का चलन प्रारम्भ हुआ तथा सुन्दर ट्रॉफी प्राप्त करने के लिए सर्दी में शिकार का चलन बढ़ा (श्री रजा एच. तहसीन, पूर्व मानद वन्यजीव प्रतिपालक, निजी वार्तालाप, 2012)।

(स) पक्षियों में जलीय पक्षी एवं मुर्गे, शाकाहारी स्तनधारियों में सांभर(*Cervus unicolor*) एवं मांसाहारियों में बाघ(*Panthera tigris*), तेन्दुआ(*Panthera pardus*) शियागोश(*Caracal caracal*) एवं जरख(*Hyeana hyeana*) का शिकार किया गया। जंगली मुर्गे की दो प्रजातियाँ उजाडी कूकडा(Grey Jungle fowl *Gallus sonneratii*) तथा झापटा (Red Spurfowl *Galloperdix spadicea*) दक्षिण राजस्थान में पाई जाती है। दोनों प्रजातियाँ उत्तरी गुजरात के साबरकांठा व बनासकांठा जिलों के वनों से लेकर दक्षिण राजस्थान में टॉडगढ़–रावली तक पायी जाती हैं। टॉडगढ़–रावली अभयारण्य के भीलबेरी क्षेत्र में इन मुर्गों को सहजता से बोलते सुना जा सकता है एवं विचरण करते भी देखा जा सकता है।

(द) वर्तनान वन्यप्राणी गणनाओं का अध्ययन करने पर पता चलता है कि अब क्षेत्र में बाघ समाप्त हो चुका है। शियागोश भी काफी कम दिखाई देते हैं। मगर की संख्या में भी कमी आई है।

5.निष्कर्ष

इस पुराने दस्तावेज के अध्ययन से स्पष्ट हुआ है कि गत 50 वर्षो में बाघ जैसी प्रजातियाँ टॉडगढ़ रावली अभयारण्य में समाप्त हुई हैं। टॉड़गढ़–रावली अभयारण्य में 1955 तक बाघ उपस्थित होने के पुख्ता प्रमाण उपलब्ध हैं। इस अभयारण्य में बाघ 1965 से 1975 के बीच समाप्त हुआ है (डॉ0 रजा तहसीन, निजी वार्तालाप, 2012)। शियागोश एवं मगर की संख्या सिर्फ टॉड़गढ़–रावली अभयारण्य में ही कम नहीं हुई है बल्कि कमोबेश यह स्थिति अन्य अभयारण्यों में भी है। चूंकि टॉड़गढ़–रावली अभयारण्य की निरन्तरता कुम्भलगढ़ अभयारण्य से है एवं कुम्भलगढ़ अभयारण्य की निरन्तरता खोखरिया की नाल होकर गोगुन्दा एवं ओगणा रेंजों के वनों से होती हुई फुलवारी की नाल अभयारण्य तक है (शर्मा 2014)। फुलवारी की नाल अभयारण्य की निरन्तरता उत्तरी गुजरात में पोलोवन, आंतर सुम्बा आश्रम क्षेत्र के वन एवं ज्ञानगढ़ क्षेत्र के वनों तक है। इन वनों की गुजरात के बालाराम–अंबाजी एवं जस्सोर अभयारण्यों में भी निरन्तरता है। इस प्रकार गुजरात से लेकर मध्य राजस्थान तक अरावली क्षेत्र के वनों में निरन्तरता है जिनमें कभी बाघों का आवास था एवं आवश्यकता पड़ने पर एक दूसरे क्षेत्रों में स्थानांतरण होता था (डॉ0 रजा तहसीन, निजी वार्तालाप, 2012)। भविष्य में कुम्भलगढ़–टॉडगढ़–रावली अभयारण्य संकुल में पुनः बाघ को आबाद किया जा सकता है क्योंकि गुणात्मक रूप से अच्छा आवास यहाँ अभी भी उपलब्ध है। लेकिन इस आवास में एक कमी है, यहाँ खाद्य श्रृंखलाएं टूटी हुई स्थिति में हैं। यानि प्रे–बेस बढ़ा कर ही बाघ को पुनः आबाद करने की तरफ सोचा जा सकता है।

संदर्भ

1. अख्तर, एन0(2008) स्लॉथ बीयर इन राजस्थान, सम्पादकः अशोक वर्मा;"कंजर्विंग बायोडायवर्सिटी ऑफ राजस्थान में", मु0पृ0 262–266।
2. घोष, ए0(2007) "विरासत"। वन विभाग, राजस्थान।
3. सकरवाल, एस0 के0 एवं वर्मा, अ0(2008) प्रोटेक्टेड एरिया ऑफ राजस्थान, सम्पादकः अशोक वर्मा; "कंजर्विंग बायोडायवर्सिटी ऑफ राजस्थान" में, मु0पृ0 16–30।
4. शर्मा, एस0 के0(2006) वन्यजीव प्रबंध, हिमांशु पब्लिकेशन्स, उदयपुर, नई दिल्ली।
5. शर्मा, एस0 के0(2008) पेनिन्सुलर एण्ड वेस्टर्न घाट्स फ्लोरल एण्ड फौनल एलीमेन्ट्स इन राजस्थान, सम्पादकः अशोक वर्मा; "कंजर्विंग बायोडायवर्सिटी ऑफ राजस्थान" में, मु0पृ0 10–15।
6. शर्मा, एस0 के0(2011) ऑर्किड्स ऑफ डेजर्ट एण्ड सेमी–ऐरिड बायोज्योग्राफिकल जोन्स ऑफ इंडिया। हिमांशु पब्लिकेशन्स, उदयपुर, नई दिल्ली।
7. शर्मा, एस0 के0(2014) दक्षिणी राजस्थान के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में बाघ से सम्बंधित कुछ तथ्य, अनुसंधान(विज्ञान शोध पत्रिका), खण्ड–2, अंक–1, मु0पृ0 9–17।

फोटो.1 : टॉडगढ–रावली अभयारण्य में स्थित गोरमघाट रेल्वे स्टेशन का एक दृश्य

फोटो.2 : अभयारण्य के जैव विविधता बहुल एवं रमणीक स्थल दूधालेश्वर के वन क्षेत्र की एक झलक

पिथौरागढ़ जनपद, उत्तराखण्ड के खनिज निक्षेप

आर0 ए0 सिंह
एसोसिएट प्रोफेसर, भूविज्ञान विभाग
एल0 एस0 एम0 राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पिथौरागढ़–262502, उत्तराखण्ड, भारत
singhdr.ramautar@yahoo.com

प्राप्त तिथि–01.04.2015, स्वीकृत तिथि–05.05.2015

सार

पिथौरागढ़ जनपद(29.40°–30.30° उत्तर एवं 80°–81° पूर्व) हिमालयी भाग में 7090 वर्ग किमी0 में फैला हुआ है। इस जनपद में निम्न, उच्च एवं टेथिस हिमालय की शैलें विद्यमान हैं। यहाँ पर निम्न हिमालय शैलों का विवर्तनिक क्रम रौतगड़ा शैल समूह, देवबन–मंधाली शैल समूह, बेरीनाग शैल समूह एवं मुन्स्यारी शैल समूह है। पिथौरागढ़ धातु एवं अधातु खनिजों के लिए जाना जाता है। वर्तमान में मैग्नेसाइट, टैल्क, चूनापत्थर और डोलोमाइट लाभप्रद खनन के लिए प्रचुर मात्रा में उपस्थित है। इस शोध पत्र में पिथौरागढ़ जनपद के धातु एवं अधातु खनिजों के अनुमानित/प्रमाणित संचित निक्षेप, उत्पत्ति एवं वितरण का विस्तृत वर्णन किया गया है।

बीज शब्द– खनिज, धातु, अधातु, निक्षेप, पिथौरागढ़, हिमालय।

Mineral deposits of Pithoragarh district, Uttarakhand

R. A. Singh
Associate Professor, Department of Geology
L.S.M. Government P.G. College, Pithoragarh, Uttarakhand, India
singhdr.ramautar@yahoo.com

Abstract

Pithoragarh district(29.4^0-30.3^0 N and 80^0-81^0 E) covers an area of 7090 km^2 and incorporates the entire Himalayan part. In Pithoragarh district of Uttarakhand Himalaya, Lesser, Higher and Tethys Himalayan rocks are present. In the Lesser Himalayan rocks of Pithoragarh district the tectonic succession is Rautgara Formation, Deoban–Mandhali Formation, Berinag Formation and Munsiyari Formation. Pithoragarh is well known for metallic and non-metallic mineral occurrences. At present, magnesite, talc, limestone and dolomite are available in sufficiently large quantities for profitably extraction. In this research paper, estimated/confirmed reserve deposits, genesis and distribution of metal/nonmetal mineral have been described in detail of Pithoragarh district, Uttarakhand.

Key words- Mineral, metal, nonmetal, deposit, Pithoragarh, Himalaya.

प्रस्तावना– हिमालय(संस्कृत के शब्द बर्फ का स्थान) को विश्व के सबसे ऊँची पर्वतों में से एक माना जाता है जहाँ पर जटिल भौमिकीय प्रक्रियाएं घटित हुई हैं। हिमालय क्षेत्र जो सिंधु–गंगा मैदान(Indo-Gangetic Plane) के उत्तर में पड़ता है तथा भारतीय प्लेट का उत्तरी किनारा(सीमा) है एवं इंडस–सांगपो सीवन(Indus-Tsangpo Suture) के अनुदिश उत्तर में तिब्बत प्लेट से सटा हुआ है। यह पर्वत दो महाद्वीपीय विवर्तनिक प्लेटों के टक्कर के फलस्वरूप विकसित हुआ है। यह उत्तर आद्यमहाकल्प(Late Archaean) से सामकालीन(Holocene) तक के शैलों से बना है। स्थलाकृतिक रूप से इस पर्वत में कई विशेषता हैं, यथा सबसे ऊँचा उच्चावच(Highest Relief) 8848 मीटर माउंट एवरेस्ट, 01 सेमी0 प्रति वर्ष के दर से नंगा पर्वत के पास ऊपर उठना, कुछ बड़ी नदियों का उद्गम स्थल और ध्रुवीय क्षेत्रों को छोड़कर सबसे अधिक हिमनद।

हिमालय को दक्षिण से उत्तर की ओर चार बृहत् विवर्तनिक क्षेत्रों यथा उप–हिमालय, निम्न हिमालय, उच्च हिमालय और टेथिस हिमालय में विभक्त किया गया है(गैंसर, 1964)। कई विद्वानों(पावेल एवं कोनाघन, 1973; बेसे एवं अन्य, 1984; रिकाऊ, 1994) ने हिमालय के विभिन्न अवस्थाओं के उद्भव को प्लेट विवर्तनिक सिद्धान्त के आधार पर व्याख्या की है।

चित्र– 1: उत्तराखण्ड के नक्शे में पिथौरागढ़ जनपद की स्थिति।

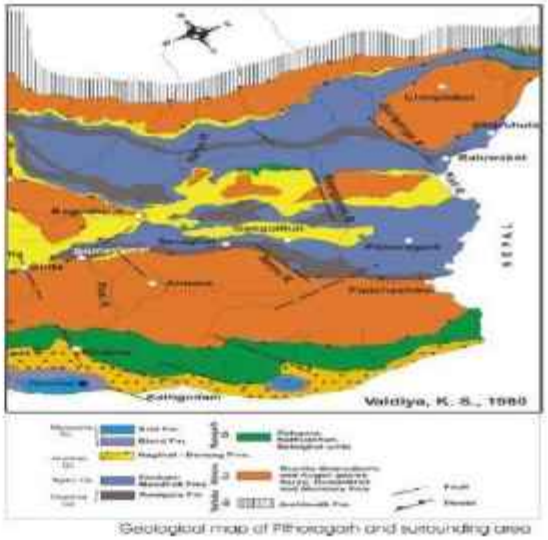

चित्र– 2: पिथौरागढ़ और आस पास के क्षेत्र का भौमिकीय नक्शा

पिथौरागढ़ जनपद(29.40°–30.30° उत्तर एवं 80°–81° पूर्व) हिमालयी भाग में 7090 वर्ग किमी० में फैला हुआ है। इसकी सीमाएं उत्तर में चीन(तिब्बत) तथा पूर्व में नेपाल देश है। चम्पावत जनपद इसके दक्षिण में तथा अल्मोड़ा, बागेश्वर एवं चमोली जनपद इसके पश्चिम में अवस्थित है(**चित्र– 1**)। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार पिथौरागढ़ जनपद की जनसंख्या 483439 है।

पिथौरागढ़ जनपद में निम्न, उच्च एवं टेथिस हिमालय की शैलें विद्यमान हैं। यहाँ पर निम्न हिमालय शैलों का विवर्तनिक क्रम रौतगड़ा शैल समूह, देवबन–मंधाली शैल समूह, बेरीनाग शैल समूह एवं मुन्स्यारी शैल समूह है (**चित्र– 2**)। पिथौरागढ़ शहर सोर स्लेट पर बसा हुआ है। सोर स्लेट भूरा, धूसर, बैंगनी, नीललोहित एवं काले रंग का है। स्लेट में स्लेटी विदलन अच्छी तरह विकसित है। कहीं–कहीं पर मृण्मय/डोलोमाइटी चूनापत्थर पतले पट्टियों के रूप में पाया जाता है। सोर स्लेट में मैफिक डाइक कई स्थानों पर मिलता है।

पिथौरागढ़ धातु एवं अधातु खनिजों के लिए जाना जाता है। मैग्नेसाइट, टैल्क, चूनापत्थर और डोलोमाइट को छोड़कर और खनिज वर्तमान में लाभप्रद खनन के लिए प्रचुर मात्रा में उपस्थित नहीं है। इस जनपद में पहले चन्द शासन काल में राजा पृथ्वी चन्द के द्वारा अठिगांव क्षेत्र में खनन के प्रति ध्यान दिया गया। पिथौरागढ़ क्षेत्र का विधिवत खनिज सर्वेक्षण ब्रिटिश शासन काल में 1815 में शुरू कर दिया गया था तथा उस समय बाड़ाबीसी क्षेत्र के सीराखान क्षेत्र से प्राप्त तांबा के नमूने को परखने के लिए कलकत्ता भेजा गया। 1817 में ए0 लैडला बाड़ाबीसी और गंगोली क्षेत्रों का सर्वप्रथम खनिजीय सर्वेक्षण किया। वर्तमान में मैग्नेसाइट और टैल्क का खनन कई क्षेत्रों में किया जा रहा है तथा बहुधात्विक सर्वेक्षण अस्कोट क्रिस्टलाइन में चल रहा है।

मैग्नेसाइट– मैग्नेसाइट के क्रिस्टलीय प्रकार सफेद धूसर, हल्का भूरा और इस्पात धूसर रंग का है तथा डोलोमाइट और डोलोमाइटी चूनापत्थर, सेरिसाइट शिष्ट और टैल्क शिष्ट के साथ मसूराकार(Lenticular) पिण्ड के रूप में पाया जाता है। मैग्नेसाइट की उत्पत्ति कार्बोनेट अवसादों के लगभग समकालीन प्रसंघाती प्रतिस्थापन (Penecontemporaneous diagenetic replacement) से सम्बन्धित है(वाल्दिया, 1980)। मैग्नेसाइट निक्षेप सरयू घाटी में सेराघाट के पास 4 किमी० से अधिक गोल से खोली तथा खोली से अमतल के क्षेत्र में, पिथौरागढ़ के पास चण्डाक से बिसाबजेड़, देवलथल और कनालीछीना, फदयाली, बोराआगर, सेरी इत्यादि स्थानों पर पाया जाता है(कुमार, 2005)। शैवाल स्तम्भी संरचना भी मैग्नेसाइट पिण्ड में मिलते हैं। पिथौरागढ़ जनपद के मैगनेसाइट का अनुमानित संचित निक्षेप(Estimated reserve deposit) और कोटि(Quality) तालिका– 1 में दिया गया है।

तालिका– 1
पिथौरागढ जनपद के मैग्नेसाइट की अनुमानित संचित निक्षेप एवं कोटि(दलेला, 1989)

क्षेत्र	अनुमानित निचित निक्षेप (m.t.)	MgO%	CaO%	SiO_2%	टिप्पणी
थल क्षेत्र					
गोल–खोली	4.173+3.34 (20% बहिष्करण के साथ)	31.7–39.77	1.16–5.59	11.89–21.00	2.87 m.t. 30 मी0 गहराई तक प्रमाणित
खोली–अमथल	3.74 – ग्रेड– I; 26.51 – ग्रेड– II; 22.40 – निम्न ग्रेड	43.63 38.41–42.76 34.15–37.28	2.0 0.86–3.28 1.98–7.66	1.13 5.3–6.35 4.59–26.69	अतिरिक्त अविभेदित निचित 2.11 m.t. सम्पूर्ण निचित– 54.76 m.t.
पिथौरागढ़					
चण्डाक	5.7	39.68–43.54	1.12–4.88	2.48–4.56	Fe_2O_3- 1.70%
तड़ीगांव	10	42.56–45.0	0.9–4.42	0.64–4.24	Fe_2O_3- 2.3–3.43%; Al_2O_3- 0.29–0.45%
देवलथल					
बुंगाछीना–अता–रामकोट–देवलथल	38.06	38.0–43.5	5.0 से कम	5.0 से कम	11.39 m.t. ब्लाक A एवं B में MgO 43.5% से अधिक
सतगढ़	0.322	41.44–44.64	1.0–2.27	2.5–7.2	सूचित निचित
कनालीछीना					
डुंगरी	1.05	30–42	1.6–5.34	2.5–26.96	अनुमानित निचित
सरौन–सिरोला	0.39	42–43	1.2–1.8	3.8–5.6	अनुमानित निचित

चूनापत्थर एवं संगमरमर– पिथौरागढ़ में चूनापत्थर प्रचुर मात्रा में पाया जाता है और इसका व्यापारिक खनन बहुत ही लाभप्रद होगा। स्थानीय रूप से चूनापत्थर संगमरमर के पॉकेट एवं संस्तर में परिवर्तित हुआ है। गंगोलीहाट का चूनापत्थर निक्षेप चौनाला के पास है तथा इसका विस्तार पिथौरागढ़ के 'काल्क क्षेत्र' में 29°35'30":80°05' से 29°37':80°03' तक 30–200 मीटर चौड़े और 13.5 किमी0 लम्बाई में है (कुमार, 2005)। चूनापत्थर की कोटि एवं श्रेणी तालिका– 2 में दिया हुआ है।

तालिका– 2
पिथौरागढ़ जनपद के चूनापत्थर की कोटि एवं श्रेणी (दलेला, 1987)

क्षेत्र	श्रेणी	CaO%	MgO%	SiO_2%	आकलित निचित (m.t.)	टिप्पणी
1. गंगोलीहाट चूनापत्थर	सीमेंट	42–49	1–2	13.7–18.9	90.0	15 m.t. प्रनाणित
2. नौलारा						
अ. रामगंगा के पश्चिम	सीमेंट	45	3.2	11.5	3.0	
ब. रामगंगा के पूर्व	सीमेंट	45.04–52.25	0.95–4.22	4.59–14	3.3	
स. जौलजीबी–धारचूला	सीमेंट	44.39–51.60	2.68–4.95	1.85–11.39	0.59	

डोलोमाइट– पिथौरागढ़ जनपद में देवबन(गंगोलीहाट) संघ में डोलोमाइट मिलता है और समुद्री जल में विलीन मैग्नेशियन के द्वारा कार्बोनेट अवसाद के सहअवसादी प्रसंघाती प्रतिस्थापन(Synsedimentary diagenetic replacement) से बना हुआ है(वाल्दिया, 1980)। डोलोमाइट की कोटि एवं श्रेणी तालिका– 3 में दिया गया है।

तालिका– 3
पिथौरागढ़ जनपद के डोलोमाइट की कोटि एवं श्रेणी (दलेला, 1987)

क्षेत्र	श्रेणी	CaO%	MgO%	SiO_2%	आकलित निचित (m.t.)
1. तेजम काल्क क्षेत्र					
अ. जौलजीबी–धारचूला	ब्लास्ट फर्नेस	28.68–30.03	18.5–20.4	1.4–6.9	3.5
ब. तेजम– मदकोट	ब्लास्ट फर्नेस	23.70–32.70	15.65–23.47	0.03–3.84	27
2. अ. पीपलकोट काल्क क्षेत्र	स्टील मेल्टिंग शाप	29.61–31.17	20.34–22.24	0.43–3.77	8
ब. गोहना ताल	स्टील मेल्टिंग शाप	29.0	21.58	1.21	ग्राह प्रतिचयन (Grab Sample)

फॉस्फोराइट– फॉस्फेटी संस्तर रामगंगा घाटी में बिसाबजेड़ के पास से लगभग 15 किमी0 पूर्व में मढ़गांव, तड़ीगांव, चण्डाक, धारी, डुंगरा और बास्ते से देवपाला तक है। नदी के आरपार यह जरमाल तथा और आगे गंगोली क्षेत्र तक मिलता है(सिंह, 1969)। यही संस्तर वलन के कारण गुरंगदेश(रतवाली, टट्रोटा, छाड़ा, हलपाटी) में विद्यमान है। कनालीछीना के पास देवलथल और डुंगरी–पाली के निकट स्ट्रोमेटोलाइट सदस्य भी फ़ॉस्फेटी है(वाल्दिया, 1980)। गंगोलीहाट डोलोमाइट जिसमें अभिलाक्षणिक रूप से प्रचुर और विस्तृत शैवाल स्ट्रोमेटोलाइट विकसित है बहुत कम फ़ॉस्फेटी है(वाल्दिया, 1972)।

सेलखड़ी(Soapstone)/टैल्क (Talc)– टैल्क मैग्नेसाइट के बीच में शिराओं में, मसूराकार(लेंटिल), पॉकेट रूप में और मैग्नेसाइट के साथ अन्तरासंस्तरित रूप में मिलता है। यह प्रायः कार्बोनेट अनुक्रम, मैग्नेसाइट और अल्पसिलिक शेल(Basic rock) के साथ मिलता है और सिलिकामय(Sliceous) डोलोमाइट और मैग्नेसाइट जो विभिन्न आकार के लेंस एवं पट्टियों में मिलता है के परिवर्तन के कारण बना हुआ माना जाता है। पिथौरागढ़ जनपद में टैल्क बोरा आगर, दलयाली, मसौली, रईआगर, देवलथल, क्वीटी, निओलीगांव, तवाघाट क्षेत्रों में है जहाँ डाइरेक्टोरेट ऑफ जीओलॉजी एण्ड माइनिंग, उत्तर प्रदेश ने 10.78 मिलियन टन खनन करने योग्य निचित निक्षेप का आंकलन किया है(कुमार, 2005)। देवलथल का टैल्क उच्च गुणवत्ता वाला है और यह उपयोगी कान्तिवर्द्धक(Cosmetic) है।

तांबा– कनालीछीना के पूर्व दुन्दू घाटी और चण्डाक में पाइराइट एवं कैल्कोपाइराइट पतले शिलाओं में मिलता है। देवलथल क्षेत्र में मैग्नेसाइट और डोलोमाइट में बिभंगों एवं सर्पण(Slip) तलों के अनुदिश प्रकीर्णन (Disseminations) के रूप में विद्यमान है। रामगंगा के आरपार राइआगर में पाइराइट एवं कैल्कोपाइराइट की पुरातन खानें अवस्थित हैं। बोरा आगर में खनिजीभूत क्षेत्र तुसरानी और डोल के बीच मैग्नेसाइट–टैल्क सम्मुच्चय में उपस्थित है। यहाँ पर कैल्कोपाइराइट प्रकीर्ण चप्पों(Scattered patches) एवं शिलाओं के रूप में मिलता है और इसके कण प्रायः ऊर्ध्वजनित कोवेलाइट एवं कैल्कोसाइट के द्वारा घिरा होता है(वाल्दिया, 1980)। तांबा अस्कोट क्षेत्र के अस्कोट क्रिस्टलाइन में भी विद्यमान है।

लेड– गैलेना(Galena), डोलोमाइट और मैग्नेसाइट में तांबा सल्फाइड के साथ रई(डसोली क्षेत्र), रई आगर और बाजिबिया, गंगोलीहाट के उत्तर, चण्डाक, भैंसखेत(गोरी घाटी), भेरीधुरा (अस्कोट–सानदेव) में पाया जाता है।

जस्ता– अस्कोट क्रिस्टलाइन के खनिजीभूत क्षेत्र में 3.95 प्रतिशत जस्ते की उपलब्धता का तांबा, लेड, सोना और चांदी के साथ उल्लेख किया गया है।

सोना और चांदी– सोना अरकोट क्षेत्र में आधार धातुओं के साथ रफटिक शिलाओं में मिलता है। यहाँ खनिजीभवन बहुधात्विक है और अभिनति के पूर्वी संवृति(Eastern closure) के पास सीमित है। इस खनिजीभूत क्षेत्र में चांदी, लेड अथवा

लेड–जस्ता के साथ सम्बद्ध है। खनिजीभूत क्षेत्र में सोना 1–13.2 पी.पी.एम. तथा चांदी 100–200 पी.पी.एम. पाया जाता है(कुमार, 2005)।

पाइराइट और गंधक– मंधाली (सोर) शैल समूह के काले कार्बनयुक्त स्लेट में कई क्षेत्रों में पाइराइट प्रकीर्णन और गंधक पपड़ी के रूप में पाया जाता है। ये सहअवसादी, अभिवर्धी(Acretionary) और संग्रथित (Concretionary) उत्पाद हैं। पाइराइट प्रकीर्णन गोरी के अनुदिश मदकोट और सिरतोला के बीच में तथा गार्जिया के पास मुनस्यारी के दक्षिण पूर्व में तंत्र और धामी गांव क्षेत्र, तेजम के पास रामगंगा–जाखला में दृष्टिगोचर होता है।

ग्रेफाइट– मुनस्यारी शैल समूह के पेलाइट(Pelite)/पंकाश्म(Mudstone) के मूल कार्बोनेटी पदार्थों के कायान्तरण के द्वारा स्थानीय रूप से ग्रेफाइट में परिवर्तित हो गया है। ग्रेफाइट के पॉकेट मुनस्यारी के पास, गार्जोली, पलसिमा और पलोन में दृष्टिगोचर होते हैं।

छाजन स्लेट(Roofing Slate), फर्शी पत्थर (Paving Stones) और सड़क पत्थर (Road Stone)– सोर स्लेट अक्सर काले रंग का है और छत पदार्थ के लिए बहुत ही अच्छा है। सोर स्लेट को फ़र्शी पत्थर के रूप में भी प्रयोग में लाया जाता है। इसका मुख्य निक्षेप कनालीछीना तथा पिथौरागढ़ के निकट चमाली और छेड़ा के पास है। पटियामय सैरिसाइट बेरीनाग क्वार्ट्जाइट को भी छाजन स्लेट के रूप में प्रयोग में लाया जाता है। क्वार्ट्जाइट, चूनापत्थर/डोलोमाइट/डोलोमाइटी चूनापत्थर और डाइक को तोड़कर विभिन्न आकार की गिट्टी तैयार कर सड़क पत्थर के लिए इस्तेमाल किया जाता है। इनके निक्षेप पिथौरागढ़ जनपद में कई स्थानों पर पाया जाता है।

शिलाजीत– पिथौरागढ़ जनपद में शिलाजीत गंगोलीहाट(देवबन) के डोलोमाइट और चूनापत्थर के खड़ी कगार पर पपड़ी के रूप में मिलता है।

संदर्भः

1. बेसे, जे., कौर्टिलाट, वी., रोज़ी, जे. पी., वेस्टफल, एम. एवं झाउ, वाई. एक्स.(1984) पैलियोमैग्नेटिक एस्टिमेट्स ऑफ क्रस्टल शार्टेनिंग इन द हिमालयन थ्रस्ट्स ऐण्ड ज़ांग्बो सूचर. नेचर, खण्ड–311, मु0पृ0 621–626।
2. दलेला, आई. के.(1987) लाइमस्टोन ऐण्ड डोलोमाइट डिपाजिट्स आफ यू.पी. (संकलन). डाइरेक्टोरेट आफ जिओलाजी ऐण्ड माइनिंग, यू.पी. (अमुद्रित)।
3. दलेला, आई. के.(1989) मैगनेसाइट डिपाजिट्स आफ उत्तर प्रदेश (संकलन). डाइरेक्टोरेट आफ जिओलाजी ऐण्ड माइनिंग, यू.पी. (अमुद्रित)।
4. गैंसर, ए.(1964) जिओलाजी आफ द हिमालयाज. इण्टरसाइंस पब्लिशर, लंदन, 289 पृष्ठ।
5. कुमार, जी.(2005) जिओलाजी आफ उत्तर प्रदेश एण्ड उत्तरांचल. जिओलाजीकल सोसाइटी आफ इंडिया, बैंगलोर, 383 पृष्ठ।
6. पावेल, सी. एमसीए. एवं कोनाघन, पी. जे.(1973) प्लेट टेक्टानिक्स एण्ड द हिमालयाज. अर्थ ऐण्ड प्लानेटरी साइंस लेटर, खण्ड–20, मु0पृ0 1–12।
7. रिकाउ, एल. इ.(1994) टेथिस रिकंस्ट्रक्शनः प्लेट्स, कांटीनेंटल फ्रैगमेंट्स ऐण्ड देयर बाउंडरीज सिंस 260 Ma फ्राम सेंट्रल अमेरिका टू साउथ–इस्टर्न एशिया, जिओडिना. एक्टा., खण्ड–7, अंक–4, मु0पृ0 169–218।
8. सिंह, आर.(1969) ए ब्रिफ नोट आन द अकरेंस ऐण्ड पेट्रोलाजिक करेक्टर्स आफ फास्फेटिक राक्स इन पिथौरागढ़ डिस्ट्रिक्ट. यू.पी. जर्नल माइन्स मेटल्स ऐण्ड फ्यूएल्स, खण्ड–6, मु0पृ0 73–74।
9. वाल्दिया, के. एस.(1968) ओरिजीन आफ द मैग्नेसाइट डिपाजिट्स आफ सदर्न पिथौरागढ़, कुमांयू हिमालया, इकोनामिक जिओलाजी, खण्ड–63, मु0पृ0 924–934।
10. वाल्दिया, के. एस.(1972) ओरिजीन आफ फास्फोराइट ऑफ द लेट प्रीकैम्ब्रियन गंगोलीहाट डोलोमाइट ऑफ पिथौरागढ़, कुमाँयू हिमालया, इंडिया. सेडिमेंटोलॉजी, खण्ड–19, मु0पृ0 115–128।
11. वाल्दिया, के. एस.(1980) जिओलॉजी आफ कुमाँयू लेसर हिमालया, वाडिया इंस्टीच्यूट आफ हिमालयन जिओलॉजी, 291 पृष्ठ।

भारत में हरित क्रान्ति के पूर्व एवं पश्चात् कृषि उत्पादकता का विश्लेषणात्मक अध्ययन

प्रीति पन्त
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, वाणिज्य विभाग
बी0एस0एन0वी0 पी0जी0 कॉलेज, लखनऊ–226001, उ0प्र0, भारत
preeteepant@gmail.com

प्राप्त तिथि–14.05.2015, स्वीकृत तिथि–07.06.2015

सार

"हरित क्रान्ति ने मनुष्य के भुखमरी एवं वंचना के विरूद्ध युद्ध में अस्थायी सफलता प्राप्त की है। इसने मनुष्य को सांस लेने हेतु स्थान प्रदान किया है।" –डॉ० नॉरमन ई० बॉरलाग(नोबेल भाषण, दिसम्बर 11, 1970)

1943 के बंगाल भुखमरी की भयावह स्मृतियों के पश्चात् खाद्य सुरक्षा भारत के नीति निर्धारिकों के लिये प्रमुख मुद्दा बन गया। एक राष्ट्र जो हरित क्रान्ति से पूर्व अनेक बार भुखमरी एवं भीषण खाद्य अपर्याप्तता से ग्रस्त था, वो आज खाद्य आधिक्यता से परिपूर्ण है। हरित क्रान्ति ने भारतीय कृषि को आकर्षक एवं जीवन शैली को जीवन निर्वाहक के स्थान पर व्यापारिक आयाम प्रदान दिया है। भारत में आज आधुनिक कृषि प्रौद्योगिकी एवं तकनीकी, और भौतिक एवं जैविक विज्ञान पर निर्भर है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय 51 मिलियन टन के खाद्य उत्पादन से आज हम अवर्णनीय प्रगति करते हुए 257 मिलियन टन के खाद्य उत्पादन पर हैं। भारत आज विश्व के 15 अग्रणीय कृषि उत्पादक निर्यातकों में से एक है। यह शोधपत्र भारत में हरित क्रान्ति युग से पूर्व एवं पश्चात् कृषि उत्पादकता का समीक्षात्मक एवं विश्लेषणात्मक मूल्यांकन करने का एक प्रयास है। किसी भी अन्य वस्तु की भांति हरित क्रान्ति भी दोषमुक्त नहीं है। भारत में हरित क्रान्ति की विफलताओं एवं चुनौतियाँ और उन्हें दूर करने के उपायों को भी दर्शाने का प्रयास किया गया है।

बीज शब्द– खाद्य सुरक्षा, हरित क्रान्ति, कृषि उत्पादकता, भुखमरी, उच्च उत्पादकता बीज (एच.वाई.वी.)।

An analytical study of agricultural productivity in India in pre & post Green revolution era

Preeti Pant
Assistant Professor, Deptt. of Commerce
B.S.N.V.P.G. College, Lucknow-226001, U.P., India
preeteepant@gmail.com

Abstract

"The green revolution has won a temporary success in man's war against hunger & deprivation; it has given man a breathing space." -Dr. Norman E. Borlaug (Nobel Lecture, December 11, 1970)

After haunted memories of Bengal Famine in 1943, food security has become a paramount item for India's policymakers. A nation which was frequently plagued by famines & chronic food shortage before green revolution today faces surplus. Green Revolution has made the Indian agriculture attractive & a way of life by becoming commercial instead of subsistence. Modern agriculture in India is now dependent on engineering & technology & on the physical & biological sciences. From a food grain production around 51 million tons at the time of independence, we now have a spectacular progress of production of more than 257 million tons of food grain. India is now among the 15 leading exporters of agricultural products in the world.

This paper is an attempt to evaluate critically & analytically the agricultural productivity in India in pre & post Green Revolution era. Like any other thing Green Revolution too is not free from defects. An attempt has also been made to highlight the failures & challenges of Green Revolution in India alongwith the suggestive measures.

Key Words- Food Security, Green Revolution, Agricultural Productivity, High Yielding Variety (HYV)

प्रस्तावना

"कहीं भी होने वाली खाद्य असुरक्षा, सर्वव्यापी शान्ति के लिये खतरा है।"

भारत सदैव से अकाल एवं सूखे का देश रहा है। भारत में ग्यारवहीं से सत्रहवीं शताब्दी के मध्य 14 अभिलेखित अकाल हुए है। अंतिम प्रमुख अकाल भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति से ठीक चार वर्ष पूर्व 1943 में बंगाल में हुआ, जिसके उपरान्त 1966 में बिहार का अकाल एवं 1970–73 में महाराष्ट्र, 1979–80 में पं0 बंगाल, 2013 में महाराष्ट्र में सूखा पड़ा। भारत को स्वतन्त्रता तब प्राप्त हुई जब कृषि अपने सबसे खराब दौर से गुजर रही थी। अतः यह स्वाभाविक है कि खाद्य सुरक्षा स्वतन्त्र भारत के कार्यसूची में प्रमुख मुद्दा बन गया। खाद्य सुरक्षा से अभिप्राय समस्त व्यक्तियों की हर समय पर्याप्त, सुरक्षित, एवं पौष्टिक आहार के प्रति भौतिक एवं आर्थिक पहुंच से हैं जिसके माध्यम से वे एक सक्रिय एवं स्वस्थ जीवन निर्वाह के लिए अपनी आहार सम्बन्धी आवश्यकताओं एवं खाद्य प्राथमिकताओं को पूरा कर सकें(वर्ल्ड फूड सम्मिट, 1996)। खाद्य सुरक्षा के तीन स्तम्भ है–खाद्यान्न की भौतिक उपलब्धता, खाद्यान्न के प्रति सामाजिक एवं आर्थिक पहुंच, एवं खाद्य उपभोग।

खाद्य सुरक्षा के प्रति जागरूकता एवं खतरे ने जहाँ एक ओर 70 के दशक के मध्य में हरित क्रान्ति का जन्म, स्वपर्याप्तता की उपलब्धि एवं खाद्य आधिक्यता प्रदान की वहीं दूसरी ओर सरकार ने व्यापारियों द्वारा स्वंय के लाभार्जन के लिए खाद्य संचय पर रोक लगाने के लिये अधिनियमों द्वारा नकेल लगाने का प्रयास किया। इस प्रकार भारतीय कृषि परम्परागत जीवन निर्वाहक क्रिया से परिवर्तित होकर आधुनिक बहु–आयामीय उद्यम बन गयीं। पूर्ण खाद्य सुरक्षा प्राप्त करने के लिये सरकार ने हरित क्रान्ति की तकनीकियों का तीव्रता से प्रसार किया। सौभाग्यवश, आज के भारत मे इस प्रकार की खाद्य असुरक्षा नहीं है। 1967–68 से 1977–78 के मध्य हरित क्रान्ति के तीव्रतम प्रसार ने भारत को एक खाद्य अपर्याप्य राष्ट्र से विश्व के प्रमुख कृषि राष्ट्रो में स्थान प्रदान करवाया। भारत उन कुछ राष्ट्रों मे से एं एक हैं जहाँ हरित क्रान्ति सबसे अधिक सफल रही है। भारत में हरित क्रान्ति की सफलतम यात्रा के कुछ तथ्य इस प्रकार है–

- भारत विश्व के 15 अग्रणीय कृषि उत्पाद निर्यातकों में से एक है। कुछ विशिष्ट उत्पादों जैसे तिलहन, चावल(विशेषकर बासमती चावल), कपास इत्यादि में भारत की निर्यातक क्षमता प्रशंसनीय है।
- भारत का कृषि निर्यात सम्पूर्ण विश्व के व्यापार का 2.6 प्रतिशत है (डब्ल्यू.टी.ओ. 2012)। कृषि सकल घरेलू उत्पाद के प्रतिशत के रूप में कृषि निर्यात 2008–09 में 9.10 प्रतिशत से 2012–13 में 14.10 प्रतिशत हो गये है।
- भारत के कृषि एवं सहायक क्षेत्रों ने सकल घरेलू उत्पाद में 2009–10, 2010–11, 2011–12, 2012–13 एवं 2013–14 में क्रमशः 14.6 प्रतिशत, 14.56 प्रतिशत, 14.4 प्रतिशत, 13.9 प्रतिशत एवं 13.9 प्रतिशत का योगदान दिया है।
- कुल खेतिहर क्षेत्रफल 198.9 निलियन हेक्टेयर हैं। भारत में कृषि घनत्व 140.5 प्रतिशत है।
- भारत के कृषि उत्पाद निर्यातों में 2011–12 से 2012–13 के मध्य 24 प्रतिशत की बढ़त हुई है।
- कुल निर्यातों में कृषि उत्पाद निर्यात का प्रतिशत 2011–12 में 12.8 प्रतिशत से बढ़कर 2012–13 में 13.1 प्रतिशत हो गया है।
- प्रति व्यक्ति प्रतिदिन खाद्यान्न उपलब्धता 1951 में 349.9 ग्राम से बढ़कर 2011 मे 462.9 ग्राम हो गई है।

औद्योगिक क्षेत्र में हुई अभूतपूर्व प्रगति के बाद भी कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था का प्रमुख अंग हैं। भारतीय कृषि नवीन युग में अनेक क्षेत्रों में विविधिकृत हो गई है जैसे– बागवानी, फूलबानी, मत्स्यपालन, मधुमक्खी पालन इत्यादि।

भारत में कृषि का स्थान एवं महत्ता– भारतीय कृषि सफलता की एक कहानी है। भारत आज कृषि रूपान्तारण के अष्टम चरण में है। भारतीय कृषि के विभिन्न चरणों में विभाजन को लेकर मतैक्य नहीं है। विभिन्न अध्ययनों में विभाजन एवं चरणों की समय सीमा में परिवर्तन है। भारतीय कृषि की संक्षिप्त प्रगति यात्रा इस प्रकार है–

सारणी 1: भारतीय कृषि के विभिन्न चरण

चरण	लक्षण
I:ब्रिटिश काल से पूर्व (1600 पूर्व)	कृषि मात्र एक आर्थिक क्रिया नहीं थी। यह एक परम्परा थी। कृषि सहायक के रूप में पशुपालन भी मुख्य कार्यों में से एक था।
II:ब्रिटिश काल (1600–1947)	कृषि कभी भी पुनः जीवन शैली एवं परम्परा का हिस्सा नहीं बन पायी। कृषि मात्र एक आर्थिक क्रिया बन गई। आधुनिकृत कृषि जीवन साधन के स्थान पर प्रगति साधन बन गयी। ब्रिटिश शासकों के राजस्व का स्त्रोत।
III:स्वतन्त्रता प्राप्ति चरण (1947–1950)	भारतीय कृषि का सबसे बुरा दौर, भयानक अकाल, निम्नतम उत्पादकता, कृषकों की अति ऋणग्रस्तता, विभाजन के कारण भू–स्वामियों एवं भू–श्रमिकों की बिगड़ती स्थिति।
IV:नियोजन काल (1950–1951 से 1967–68)	मोटे अनाज(ज्वार, बाजरा, रागी, मक्का) का भूमि प्रति इकाई बढ़ता उत्पादन(शोध एवं विस्तार सेवाओं का विस्तार)।
V:हरित क्रान्ति का प्रारम्भिक काल (1968–69 से 1985–86)	कृषि, शोध, विकास एवं अन्य सहायक सेवाओं के माध्यम से गेहूँ एवं चावल के उत्पादन में वृद्धि।
VI:विस्तृत प्रचार काल (1986–1987 से 1996–97)	आधुनिक तकनीकियों शोध, विकास, शिक्षा व जागरूकता, सिंचाई में विनियोग, इन्फ्रास्ट्रचर, गोदाम, बाजार इत्यादि का विकास।
VII:सुधार के पश्चात् (1997–98 से 2005–06)	रसायनों व श्रम के प्रयोग से उत्पादकता में निरन्तर वृद्धि(परन्तु वृद्धि दर के विकास में कमी), मक्का, कपास, गन्ना, तिलहन के क्षेत्रों में वृद्धि।
VIII:पुनर्वापसी काल (2006–07 से आज तक)	कृषि व्यवसायीकरण फसल के पैटर्न में विविधिकरण, फलों, सब्जियों, फूलों की खेती पर जोर, निर्यातों में वृद्धि।

भारत में ब्रिटिश शासन आने से पूर्व, कृषि जीवन–शैली का परम्परागत अभिन्न अंग थी। पशुपालन निवासियों की प्रमुख सहायक क्रिया थी। कृषि स्वतन्त्र एवं जीवन–निर्वाहक प्रकृति की थी। कृषक स्वतन्त्र थे एवं ग्रामीण समुदाय अपनी आवश्यकताओं के लिए काफी हद तक स्वनिर्भरता रखते थे। जब अंग्रेज 17वीं शताब्दी में भारत आए, उन्होंने कृषि का प्रयोग भारतीयों पर नियंत्रण प्राप्त करने के लिए एवं उनसे राजस्व वसूलने के लिए किया। स्वतन्त्र कृषक राजस्व प्राप्ति एवं इंग्लैण्ड की औद्योगिक क्रान्ति की गति बढ़ाने का साधन मात्र रह गये। भारतीय कृषि ने प्रथम विश्व युद्ध से पूर्व, जब बाजार समस्त खाद्यान्नों के लिए अनुकूल था, में अभूतपूर्व प्रगति की। कृषि उत्पादकता जनसंख्या वृद्धि दर से अधिक हो गयी एवं कृषि निर्यात बढ़ने पर भी प्रतिदिन प्रति व्यक्ति खाद्य उपलब्धता 540 ग्राम पहुंच गयी। यह समय ब्रिटिश काल में भारतीय कृषि का सर्वोत्तम काल था। प्रथम विश्व युद्ध, 1930 की वैश्विक मंदी, एवं द्वितीय विश्व युद्ध ने निर्यात बाजार का संकुचन कर दिया। बंगाल के अकाल ने स्थिति को और अधिक भयावह बना दिया और खाद्य उपलब्धता घटकर 417 ग्राम प्रतिदिन प्रति व्यक्ति हो गयी। इस प्रकार भारतीय कृषि में वैश्विक उच्चावचनों के कारण उतार–चढ़ाव आते रहें। अर्थशास्त्र विजयी हुआ और जीवन हार गया।

इस काल के दौरान भारत के पक्ष में मात्र एक अनुकूल घटना घटित हुई और वह थी लम्बे काल से आकांक्षित स्वतन्त्रता, परन्तु स्वतन्त्र भारत अनेक आर्थिक समस्याओं से जूझ रहा था(जैसे–बंगाल अकाल के पश्चात् के प्रभाव, निम्न कृषि उत्पादकता, अत्यन्त निम्न प्रति व्यक्ति खाद्य उपलब्धता, ग्रामीण ऋणग्रस्तता, और बढ़ती हुई भूहीन श्रमिकों की संख्या)। विभाजन का दंश झेल रहे भारत के लिए राजनैतिक एवं सामाजिक परिस्थितियां और भी खराब हो गई। रोजगार अवसरों की अत्यन्त कमी के लिए तीव्र औद्योगिकरण आवश्यक था। इसके अतिरिक्त कृषि की उद्योगों के प्रति सकारात्मक प्रतिक्रिया भी आवश्यक थी। अतः कृषि की स्थिति को सुधारने के लिए शीघ्रतम प्रयास आवश्यक थे। नियोजन काल के दौरान भारतीय सरकार ने खाद्य सुरक्षा के लिए प्रयास किए। प्रथम पंचवर्षीय योजना के दौरान 14.9 प्रतिशत कृषि के आबंटित बजट धनराशि इस संदर्भ में अग्रणीय पहल थी। इसके अतिरिक्त सिंचित क्षेत्रों का बढ़ना एवं अन्य भूमि सुधार उपायों के माध्यम से कृषि उत्पादकता में वृद्धि हुई। परन्तु अनुकूल उत्पादन होने के बाद भी सम्भावनायें वास्तविकता में रूपान्तरित नहीं हुई। 60 के दशक के प्रारम्भ में नीति निर्धारक ऐसी कृषि तकनीकियों की खोज में थे जो ये रूपान्तरण कर सकें। 60 के दशक के मध्य तक यह तकनीकी "चमत्कारी बीजों" के रूप में सामने आयी, जो कि मैक्सिको में सफल हो चुकी थी। इस प्रकार भारतीय कृषि में हरित क्रान्ति के आगमन की पृष्ठभूमि तैयार हुई। यह क्रान्ति एच.वाई.वी. बीज, रसायन, कीटनाशकों एवं भू–मशीनीकरण पर आधारित थी। इस क्रान्ति ने भारतीय कृषि की कला को परिवर्तित कर दिया(सारिणी–2)।

सारिणी–2 भारतीय कृषि कला में परिवर्तन

घटक	1950 में	आज
1. बीज	कृषक खाद्य उत्पादन का निश्चित भाग बीज के रूप मे प्रयुक्त करते थे	एच.वाई.वी. बीजों का प्रयोग
2. भूपोषक आवश्यकता	एफ.वाई.एम. एवं कॉमपोस्ट द्वारा	उर्वरक+ एफ.वाई.एम.+जैविक उर्वरक
3. कीटनाशक	डी.डी.टी. का विस्तृत प्रयोग	इन्टीग्रेटेड पेस्ट मैनेजमेन्ट का प्रयोग
4.पर्यावर्णीय जागरूकता	रसायनों का अनावश्यक एवं अन्यायपूर्ण प्रयोग	मृदा आवश्यकताओं के अनुसार उर्वरकों का प्रयोग
5. सूचना तन्त्र	कृषकों को कृषि की आधुनिक कलाओं का ज्ञान न होना	सूचना तकनीकी का विस्तृत प्रयोग
6. कृषि सहयोगी सेवायें	सरकार पर निर्भरता	निजी क्षेत्रों का बढ़ता महत्व
7. श्रमिक	घर के सदस्यों का प्रयोग	किराये का श्रम
8. मशीनों का प्रयोग	अत्यन्त निम्न प्रयोग	कृषि मशीनीकरण का प्रमुत्व
9. उत्पादन	पण्य आधिक्यता का कम होना	अधिकतम पण्य आधिक्यता
10. उद्देश्य	पारिवारिक आवश्यकताओं की पूर्ति	अत्यधिक लाभार्जन
11. दृष्टिकोण	जीवन निर्वाहक	व्यापारिक

अत्यधिक खर्चीली तकनीकी होने के कारण हरित क्रान्ति को वृहद् क्षेत्र में फैलाना सम्भव नहीं था। परन्तु यह बात विचारणीय नहीं थी। सबसे आवश्यक कार्य आधिक्य पूर्ण क्षेत्रों में प्रगति को और अधिक बढाना था, जिससे कि औद्योगिक क्षेत्रों का भी विकास किया जा सके। निरन्तर बढ़ती कृषि उत्पादकता ने भारतीय अर्थव्यवस्था को स्थायित्व प्रदान किया। जैसे–जैसे इन चमत्कारिक तकनीकियों का विस्तृत प्रसार हुआ न केवल कृषि अपितु सहायक क्षेत्रों का भी विकास हुआ(सारिणी–3)।

सारणी –3–भारतीय अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में 1950–51 से 2010–11 तक सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि दर (प्रतिशत/ वर्ष) की प्रवृत्ति (1999–00 के मूल्यों पर)

चरण	समस्त क्षेत्र	कृषि एवं सहायक क्षेत्र	कृषि	गैर कृषि
हरित क्रान्ति से पूर्व	3.71	2.00	1.97	5.42
हरित क्रान्ति काल	3.72	2.38	2.83	4.62
विस्तृत प्रचार काल	5.52	3.57	3.58	6.40
सुधार के पश्चात	6.01	2.08	2.04	7.23
पुर्नवापसी काल	8.24	2.62	2.55	9.47

स्त्रोत–एचटीटीपीः//एमओएसपीआईएनआईसीइन/एमओएसपीआईऋन्यू/अपलोड/एसबाईबी2015/सीएच–8एग्रीकल्चर/एग्रीकल्चर राइटअप.पी.डी.एफ

हरित क्रान्ति तकनीकियों के विस्तृत प्रसार का चरण भारतीय कृषि का श्रेष्ठ चरण है जिसमें भारत के कृषि क्षेत्र के सकल घरेलू उत्पाद में कुल 3.5 प्रतिशत का योगदान दिया। 1997–98 से इस वृद्धि दर का घटना प्रारम्भ हुआ जो कि 2005–06 तक दृष्टिगोचर रहा। यह कमी कृषि क्षेत्र के संसाधनों को अन्य क्षेत्रों में विस्थापित करने के कारण हुई है। इसके बाद भी सुधार काल के समय कृषि क्षेत्र ने पुनः वृद्धि दर प्राप्त करने का प्रयास किया।

भारत में हरित क्रान्ति

'हरित क्रान्ति का अर्थ वरीयता प्राप्त विश्व के सम्पन्न राष्ट्रों के निवासियों एवं भूले हुए विश्व के विकासशील राष्ट्रों के निवासियों के लिए पूर्णतया भिन्न है।" –डॉ. नॉरमान बॉरलाग

'हरित क्रान्ति' इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग डॉ. विलियम गैड ने किया था। परन्तु जिस व्यक्ति ने इस शब्द को एक शाब्दिक अर्थ प्रदान किया वह डॉ. नॉरमन बॉरलाग हैं। उन्हें विश्व में 'हरित क्रान्ति के जनक' के रूप में जाना जाता है। हरित क्रान्ति से अभिप्राय शोध एवं विकास, तकनीकी स्थान्तरण, एच.वाई.वी. बीजों के प्रयोग, सिंचाई सुविधाओं के विस्तार, प्रबंधकीय तकनीकियों के आधुनिकीकरण, एवं कृषकों को हाइब्रिड बीजों, सिन्थेटिक उर्वरकों व कीटनाशकों के वितरण की पहल की

श्रृंखला से है। यह श्रृंखला 40 के दशक से 60 के दशक के अन्त तक प्रभावी हुई जिसके माध्यम से विश्व के विशेषकर विकासशील राष्ट्रों की कृषि उत्पादकता में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। इन तकनीकियों का सर्वप्रथम प्रयोग मैक्सिकों में रोग प्रतिरोधक उच्च प्रजनन क्षमता के हाइब्रिड बीजों को बनाकर किया गया। इस कारण मैक्सिको में गेहूं के उत्पादन में आशातीत वृद्धि हुई। 60 के प्रारम्भ के अकाल एवं तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या के दबाव ने भारत सरकार को बॉरलाग को आमंत्रित करने के लिए विवश किया। एम.एस. स्वामीनाथन, जिनके सुझावों पर यह आमंत्रण प्रेषित हुआ, को 'भारत में हरित क्रान्ति के जनक' के रूप में जाना जाता है। बॉरलाग समूह ने भारत में आई. आर. 8 नाम के चावल की बौनी प्रजाति को निर्मित किया, जिससे कि आज भारत विश्व के प्रमुख चावल निर्यातको में से है। गेहूं के एच.वाई.वी. बीजों जैसे– के 68, मैक्सिकन प्रजाति (लर्मा, रोजो, सोनारा–64, कल्याण एवं पी.यी. 18) एवं चावल के बीजों की विभिन्न प्रजातियों (टी.एन.–1, टिनिन–3 इत्यादि) का प्रयोग भी उल्लेखनीय है। 60 के दशक के मध्य से 80 के दशक के मध्य तक हरित क्रान्ति उत्तर पश्चिम राज्यों(पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उ0प्र0) से लेकर दक्षिण भारतीय राज्यों तक फैल गयी। 80 के दशक के प्रारम्भ से ही इस तकनीकी का प्रयोग मध्य भारत एवं पूर्वी राज्यों में भी मन्दगति से होने लगा। भारत सरकार ने हरित क्रान्ति के लिए विभिन्न पहल की। यह सारे घटक अकेले कार्य नहीं कर सकते हैं। हरित क्रान्ति तकनीकियों की सफलता निम्नलिखित समस्त घटकों के उपयुक्त मिश्रण पर निर्भर करती है–

- ज्वार, बाजरा, मक्के विशेषकर चावल एवं गेंहू के एच.वाई.वी. बीजों के प्रयोग ने कृषि उत्पादकता को पर्याप्त तेजी प्रदान की। यह बीज उर्वरकों के प्रति अधिक सक्रिय, दोहरी फसल में सहायक, अल्प परिपक्वता काल व छोटे तने की फसल (जो उर्वरकों के बोझ को आसानी से संभाल सकते थे एवं हवा से होने वाले खतरों से सुरक्षित थे) की विशेषताओं से परिपूर्ण थे। इसके अतिरिक्त इनकी पत्तियों का वृहद् क्षेत्रफल इन्हें फोटोसिन्थेसिस की क्रिया में भी अधिक सहायता प्रदान करता है। भारतीय बीज कार्यक्रम के अन्तर्गत बीजों की तीन किस्में है:–प्रजनक बीज, आधार बीज एवं प्रमाणित बीज। 2005–06 से 2012–13 के मध्य प्रजनक बीज, आधार बीज एवं प्रमाणित बीज के उत्पादन में क्रमशः 61.51 प्रतिशत, 116.18 प्रतिशत एवं 133.86 प्रतिशत की वृद्धि हुई। इसके अतिरिक्त प्राकृतिक आपदाओं से संरक्षण के लिए 2. 27 लाख क्विंटल का बीज बैंक भी रखा गया है।
- भारतीय मानसून अत्यधिक अनिश्चित, अनियमित एवं मौसम आधारित है। एच.वाई.वी. बीजों को सिंचाई एवं उर्वरकों की अधिक मात्रा की आवश्यकता होती है। अतः सिंचाई साधनों के लिये पम्प सेट, ट्यूब वेल, ड्रिप सिंचाई, रेनफेड एरिया डेवलप्मेन्ट, वाटरशेड डेवलप्मेन्ट फन्ड इत्यादि को प्रोत्साहित किया गया। कृत्रिम मानसून, डैम परियोजनाओ द्वारा जल रोकने जैसे उपाय भी उल्लेखनीय है। भारत में खाद्यान्नों का कुल सिंचित क्षेत्र 1970–71 में मात्र 24.1 प्रतिशत था जो अब बढ़कर 48.3 प्रतिशत हो गया है।
- उर्वरकों की आवश्यकताओं को मृदा की गुणवत्ता एवं आवश्यकताओं, एवं नाइट्रोजन, फास्फेट व पोटाश की उपलब्धता के आधार पर निर्धारित किया गया। 2000–01 से 2012–13 में यूरिया, डी अमोनियम फॉस्फेट, म्यूरियट ऑफ पोटाश, मिश्रित उर्वरक एवं एन.पी.के. के उपभोग में क्रमशः 56.37 प्रतिशत, 55.57 प्रतिशत, 20.89 प्रतिशत, 57.47 प्रतिशत एवं 52.89 प्रतिशत की वृद्धि हुई है।
- उर्वरकों के अत्यधिक प्रयोग के कारण सरकार ने मृदा संरक्षण के लिए विभिन्न प्रयोगशालायें बनवायी। वर्तमान में 1206 मृदा परिक्षण प्रयोगशालायें है जिनकी वार्षिक विश्लेषण क्षमता 128.31 लाख नमूनों की है।
- हरित क्रान्ति को और प्रभावी बनाने के लिये उच्च क्षमता, विश्वसनीय और कम ऊर्जा उपभोग करने वाले उपकरणों एवं मशीनों की आवश्यकता अनुभव हुई। कृषि मशीनीकरण से न केवल उत्पादकता बढ़ी अपितु मानवीय श्रम एवं लागत मूल्य में भी कमी आयी। 2004–05 से 2012–13 के मध्य ट्रैक्टर एवं पॉवर टिलर्स के विक्रय में क्रमशः 11.23 प्रतिशत व 43 प्रतिशत की वृद्धि हुई।
- शोध एवं विकास हरित क्रान्ति के आधारभूत तत्व है। 2007–08 के दौरान 7235 बीजों के नमूने राष्ट्रीय बीज शोध एवं प्रशिक्षण केन्द्र द्वारा लिये गये, जिनमें 2012–13 में 146.14 प्रतिशत की वृद्धि हुई।
- वित्तीय आवश्यकताओं एवं जोखिम से सुरक्षा के लिये सरकार ने ऋण एवं बीमा की सुविधायें भी प्रदान की है। राष्ट्रीय फसल बीमा कार्यक्रम के दौरान 2012–13 में 319.86 लाख कृषकों का बीमा कराया गया।
- सिंचाई साधनों के लिये ऊर्जा स्त्रोतों की महत्ता को ध्यान में रखते हुए ग्रामीण विद्युतीकरण पर जोर दिया जा रहा है। कृषि द्वारा 1950–51 में मात्र 3.9 प्रतिशत ऊर्जा उपभोग किया जा रहा था जो 2009–10 मे बढ़कर 20.98 प्रतिशत हो गया। इसके अतिरिक्त ग्रामीण इन्फ्रास्ट्रकचर(सड़क व यातायात) की भी सुविधाओं को उच्चीकृत किया जा रहा है।
- स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत सरकार ने अनेक भू–सुधारों(मध्यस्थों का उन्मूलन, काश्तकारों के लिए स्वामित्व की व्यवस्था, भू–धारण की सुरक्षा, भूमि की अधिकतम सीमा का निर्धारण इत्यादि) को लागू किया। जमींदारी, महोतवारी, व रैयतवाड़ी के उन्मूलन ने एक स्थायी, समान एवं पुर्नगठित काश्तकारी तन्त्र का निर्माण किया।
- छोटे, अनउपजाऊ व छितरे हुए भू–खण्डो को एकत्रित करके सरकार ने चकबन्दी की व्यवस्था प्रारम्भ की।
- अनेक प्रकार के पौध संरक्षण तरीके(कीटनाशकों का प्रयोग, रेगिस्तान में लोकुस्ट नियन्त्रण इत्यादि) का भी प्रयोग हुआ। 2012–13 में 7.65 लाख हेक्टेयर भूमि पर पैस्ट नियंत्रण सर्वे किया गया। अब तक कुल 736.01 हजार हेक्टेयर की भूमि का संरक्षण किया गया है।

इसके अतिरिक्त गहन कृषि जिला कार्यक्रम, बहुफसली कार्यक्रम इत्यादि को भी लागू किया गया।

भारत में कृषि उत्पादकता का विश्लेषण

भारतीय कृषि ने हरित क्रान्ति के आगमन के पश्चात् सफलता के नये सोपानों को प्राप्त किया है। हरित क्रान्ति के पूर्व व पश्चात् कृषि उत्पादकता के विश्लेषण के लिए शोधकर्ता ने 1950–51 से लेकर 2012–13 तक 63 वर्षों की कृषि उत्पादकता के आंकड़ों का प्रयोग किया है(सारिणी–4)।

सारणी–4: भारत में खाद्य उत्पादकता (1950 से 2013–14)

वर्ष	क्षेत्रफल	उत्पादन	उत्पादकता	वर्ष	क्षेत्रफल	उत्पादन	उत्पादकता
1950.51	97.32	50.82	0.522	1982–83	125.09	129.52	1.035
1951.52	96.96	51.99	0.536	1983–84	131.16	152.37	1.162
1952.53	102.09	59.20	0.580	1984–85	126.67	145.54	1.149
1953.54	109.07	69.82	0.640	1985–86	128.03	150.44	1.175
1954.55	107.86	68.03	0.631	1986–87	127.20	143.42	1.128
1955.56	110.56	66.85	0.605	1987–88	119.69	140.35	1.173
1956.57	111.14	69.86	0.629	1988–89	127.67	169.92	1.331
1957.58	109.48	64.31	0.587	1989–90	126.77	171.04	1.349
1958.59	114.76	77.14	0.672	1990–91	127.84	176.39	1.380
1959.60	115.82	76.67	0.662	1991–.92	121.87	168.38	1.382
1960.61	115.58	82.02	0.710	1992–93	123.15	179.48	1.457
1961.62	117.23	82.71	0.706	1993–94	122.76	184.26	1.501
1962.63	117.84	80.15	0.680	1994–95	123.71	191.50	1.548
1963.64	117.42	80.64	0.687	1995–96	121.01	180.42	1.491
1964.65	118.11	89.36	0.757	1996–97	123.58	199.43	1.614
1965.66	115.10	72.35	0.629	1997–98	123.85	193.12	1.559
1966.67	115.30	74.23	0.644	1998–99	125.16	203.61	1.627
1967.68	121.42	95.05	0.783	1999–2000	123.11	209.80	1.704
1968.69	120.43	94.01	0.781	2000–01	121.05	196.81	1.626
1969.70	123.57	99.50	0.805	2001–02	122.77	212.85	1.34
1970.71	124.32	108.42	0.872	2002–03	113.87	174.78	1.535
1971.72	122.62	105.17	0.858	2003–04	123.45	213.19	1.727
1972.73	119.28	97.03	0.813	2004–05	120.08	198.36	1.652
1973.74	126.54	104.67	0.827	2005–06	121.60	208.59	1.715
1974.75	121.08	99.83	0.824	2006–07	123.70	217.28	1.757
1975.76	128.18	121.03	0.944	2007–08	124.06	230.78	1.860
1976.77	124.35	111.17	0.894	2008–09	122.83	234.47	1.909
1977.78	127.52	126.41	0.991	2009–10	121.12	218.11	1.801
1978.79	129.01	131.90	1.022	2010–11	126.67	244.49	1.930
1979.80	125.21	109.70	0.876	2011–12	124.76	259.32	2.079
1980.81	126.67	129.59	1.023	2012–13	120.78	257.13	2.129
1981.82	129.14	133.30	1.032				

स्त्रोत–कृषि मंत्रालय, भारत सरकार। **नोट**–क्षेत्रफल (मिलियन हेक्टेयर), उत्पादन (मिलियन टन), उत्पादकता (टन/ हेक्टेयर)
स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् 1950–51 में उत्पादकता 0.522 टन प्रति हेक्टेयर थी जो 1967–68 में हरित क्रान्ति के आगमन तक 20.49 प्रतिशत बढ़कर 0.629 टन हेक्टेयर हो गयी। हरित क्रान्ति के प्रारम्भिक प्रसार के दौरान 1968–69 से 1985–86 तक यह उत्पादकता 50 प्रतिशत बढ़कर 1.175 टन प्रति हेक्टयर हो गयी। इसके पश्चात् व्यापक प्रसार के चरण में मात्र अगले 10 वर्षों में कृषि उत्पादकता में 43 प्रतिशत की बढ़त हुई जो अत्यन्त सराहनीय है। इसके बाद अगले 9 वर्ष हरित

क्रान्ति युग के सबसे खराब वर्ष थे जिसके दौरान उत्पादकता में मात्र 10 प्रतिशत की बढ़त हुई। उत्पादकता की वृद्धि दर में यह कमी कृषि संसाधनों के अन्य क्षेत्रों में प्रतिस्थापन के कारण थी। 2006–07 से 2012–13 के मध्य कृषि क्षेत्र ने पुनर्वापसी करते हुए 21.17 प्रतिशत की उत्पादकता वृद्धि प्राप्त की है।

चित्र–1: भारतीय कृषि के विभिन्न चरणो के दौरान खाद्य उत्पादकता

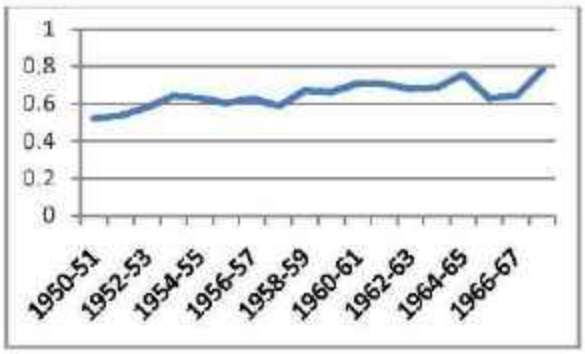

(अ) नियोजन काल(1950–51 से 1967–68) में खाद्य उत्पादकता।

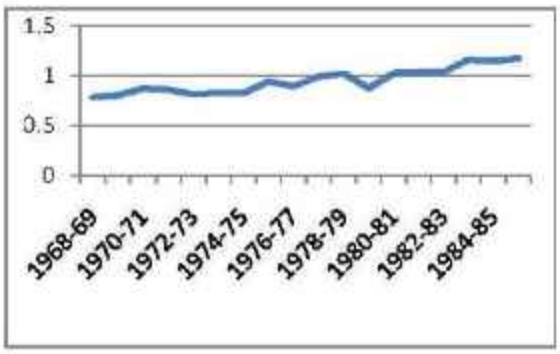

(ब) हरित क्रान्ति काल(1968–69 से 1984–85) में खाद्य उत्पादकता।

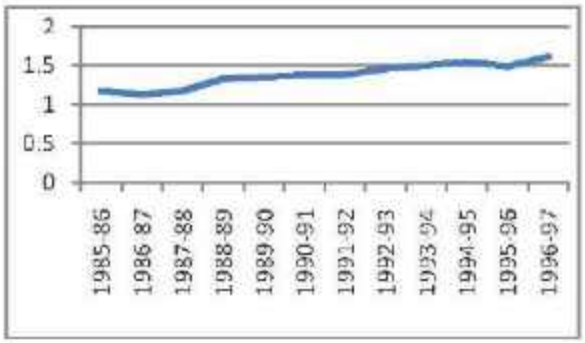

(स) विस्तृत प्रचार काल(1985–86 से 1996–97) तक में खाद्य उत्पादकता।

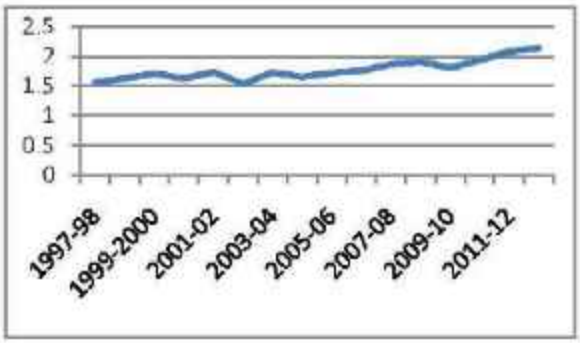

(द) सुधार के पश्चात व पुर्नवापसी काल(1997–98 से 2012–13) तक में खाद्य उत्पादकता।

हरित क्रान्ति युग के दौरान विभिन्न प्रकार के फसलों की उत्पादकता का भी विश्लेषण किया गया है(सारिणी–5)। नियोजन काल से हरित क्रान्ति आगमन तक सबसे अधिक उत्पादकता गेहूँ की फसल में 47 प्रतिशत की थी। हरित क्रान्ति के प्रारम्भिक दौर में भी गेहूँ की उत्पादकता में 75 प्रतिशत की बढ़त उल्लेखनीय थी। व्यापक प्रसार के दौर मे मोटे अनाज में सबसे अधिक 59 प्रतिशत की बढ़त हुई। आर्थिक सुधार के पश्चात् समस्त फसलों की उत्पादकता वृद्धि दर में कमी आयी जिसमें सबसे अधिक 34 प्रतिशत गेहूँ की उत्पादकता वृद्धि दर में कमी आयी। पुनर्वापसी के दौरान सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन दालों का रहा जिसकी उत्पादकता वृद्धि दर में 23 प्रतिशत की बढ़त हुई।

सारणी–5: भारतीय कृषि के विभिन्न चरणो के दौरान विभिन्न खाद्यान्नों की उत्पादकता वृद्धि दर

वर्ष	चावल		गेंहू		मोटा अनाज		दलहन	
	उत्पादन	वृद्धि दर	उत्पादन	वृद्धि दर	उत्पादन	वृद्धि दर	उत्पादन	वृद्धि दर
1953–54	902	14.41	750	47.07	506	20.16	489	9.20
1967–68	1032		1103		608		534	
1968–69	1076	44.24	1169	75.02	545	21.83	490	11.63
1985–86	1552		2046		664		547	

1986–.87	1471	27.94	1916	38.82	675	58.81	506	25.49
1996–97	1882		2679		1072		635	
1997–98	1900	10.63	2485	5.39	986	18.86	567	5.47
2005–06	2102		2619		1172		598	
2006–07	2131	15.53	2708	15.10	1182	38.80	612	28.92
2012–13	2462		3117		1617		789	

स्त्रोत–कृषि मंत्रालय, भारत सरकार।
नोट–उत्पादकता (किग्रा/हेक्टेयर), उत्पादकता वृद्धि दर (प्रतिशत)।

भारत में हरित क्रान्ति सीमायें व चुनौतियाँ

- हरित क्रान्ति "माल्थस के जनसंख्या सिद्धान्त" के आधार पर समीक्षित की जा सकती है। इस सिद्धान्त के अनुसार कृषि उत्पादकता बढ़ तो रही है परन्तु जनसंख्या वृद्धि की दर से कम जिससे की आत्म पर्याप्तता की स्थिति प्राप्त नहीं की जा सकती है। भारत के कृषि क्षेत्र का उत्पादन भी अकसर मांग से कम हो जाता है। इसीलिए भारत अभी पूर्ण व स्थायी आत्म पर्याप्तता प्राप्त नहीं कर सका है।
- सिंचाई की विभिन्न तकनीकियों के बाद भी, भारतीय कृषि आज भी मानसून पर निर्भर है। 1979 व 1987 में खराब मानसून के कारण पड़े सूखे ने हरित क्रान्ति के दीर्घ कालीन उपयोगिता पर प्रश्न चिहन लगा दियाा है।
- जलवायु परिवर्तन एवं मौसमी घटनायें आज भी भारतीय कृषि को अत्यन्त प्रभावित करती हैं। भारत में पश्चिमी विक्षोभ व अल नीनो प्रभाव होते रहते हैं। एक अध्ययन के अनुसार लगभग 48 प्रतिशत अल नीनो प्रभाव सूखे को जन्म देते हैं।
- एस.वाई.वी. बीजों के सीमित खाद्यान्नों में प्रयोग ने अर्न्तखाद्यान्न असंतुलन उत्पन्न किया।
- भारत के समस्त क्षेत्रों में हरित क्रान्ति के एक समान प्रयोग व परिणाम न होने के कारण अन्तर्क्षेत्रीय असंतुलन भी उत्पन्न हुए हैं। हरित क्रान्ति के सफलतम परिणाम पंजाब व हरियाणा में प्राप्त हुए। पं0 बंगाल में भी उल्लेखनीय परिणाम थे परन्तु अन्य राज्यों में परिणाम संतोषजनक नहीं थे।
- हरित क्रान्ति ने भारतीय कृषि का व्यवसायीकरण कर दिया। कृषि से जुडे हुए परम्परागत मूल्य एवं संस्कृति विलुप्त हो गए हैं। इसके अतिरिक्त अति उत्पादन के दोष भी उत्पन्न हुए हैं।
- हानिकारक उर्वरकों (यूरिया) व कीटनाशकों (डी.डी.टी, लिन्डेन, सल्फेट इत्यादि) ने पर्यावरण को दूषित कियाा है एवं कृषि श्रमिकों के स्वास्थ्य को प्रभावित किया है। इसका प्रभाव जैव विविधता(पक्षी व मनुष्य मित्र कीट) पर भी पड़ा है।
- पम्पसेट व टयूब वेल के अत्यधिक प्रयोग ने भूमिगत जल के प्राकृतिक संसाधन को भी प्रभावित किया है। भूमिगत जल का स्तर 30–40 फीट से 300–400 फीट तक पहुंच गया है।
- अत्यधिक कृषि मशीनीकरण ने न केवल मानवीय श्रम को स्थानान्तरित किया है(ग्रामीण बेरोजगारी व पलायन का कारण) अपितु जैव विविधता व ग्रीन हाउस गैसों पर भी नकारात्मक प्रभाव ड़ाला है।
- कृषकों के पास साख व वित्त की कमी।
- हरित क्रान्ति वर्षा जल संरक्षण में भी असफल रहा है।
- एच.वाई.वी. बीजों, उर्वरकों, व मशीनों की निर्धन कृषकों तक पहुंच न होने के कारण कृषक समुदाय में असमानता बढ़ गई है। अनेक निर्धन कृषकों में इस कारण ऋणग्रस्तता भी दृष्टिगोचर हुई है।
- शोध व विकास के निष्कर्षो का उचित प्रसार न होना।

सुझाव व उपाय

- जैविक कृषि, जैविक व पर्यावरण परक तकनीकियों का प्रयोग।
- वर्षा जल संरक्षण, एवं मृदा गुणवत्ता व नमी को बनाए रखने के प्रयासों को बड़े स्तर पर करना।
- ऐसी विकसित तकनीकों का प्रयोग करना जो न केवल लागत कम करें अपितु प्राकृतिक वातावरण को भी हानि न पहुंचायें।
- हरित क्रान्ति का समस्त खाद्यान्नों व समस्त क्षेत्रों में प्रयोग।
- भूमि प्रयोग सर्वे, सक्षम प्रबन्ध तकनीकियां, व प्राकृतिक संसाधनों का वहनीय प्रयोग।
- शोध व विकास के निष्कर्षो को कृषकों तक पहुँचाना(विशेषकर निर्धन कृषकों तक)।
- सूखे क्षेत्रों में सिंचाई की नयी तकनीकियों का प्रचार एवं डेवलप्मेन्ट प्रोग्राम व ड्राट प्रोन एरिया प्रोग्राम चलाना। कम समय में अधिक उत्पादकता प्रदान करने वाले खाद्यान्नों की किस्मों को सूखा प्रोन क्षेत्रों(जैसे महाराष्ट्र, उत्तरी कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश, ओडिशा, गुजरात व राजस्थान) में लगाना।

- कृषकों को संगठित साख/वित्त क्षेत्र से जोड़ना एवं उनकी पहुंच व भागीदारी को सुनिश्चित करना।
- सहकारी एवं सामूहिक कृषि को प्रोत्साहन व वृहद स्तर पर कृषकों के लिए शिक्षा, जागरूकता, एवं प्रशिक्षण अभियान चलाना।
- न्यूट्रीश्नल मैनेजमेन्ट को प्रोत्साहित करना।
- कृषि के अतिरिक्त अन्य सहायक क्षेत्रों को भी हरित क्रान्ति से जोड़ना।

इसके अतिरिक्त एक ऐसी संस्थागत व्यवस्था होनी चाहिए जिससे कृषको को सभी आवश्यक कृषि इनपुट आवश्यकतानुसार, कम कीमतों पर, व समयानुसार प्राप्त हो सकें। उपरोक्त समस्त सुझावों के प्रयोग करके भारत न केवल खाद्य आत्मपर्याप्त बनेगा अपितु कृषि उत्पाद निर्यातों में भी अपनी पैठ बनाने में सफल होगा।

निष्कर्ष

सम्पूर्ण अध्ययन व विश्लेषण के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि भारत को पूर्ण खाद्य सुरक्षा व खाद्य आत्मपर्याप्तता प्राप्त करने के लिये कृषि के और अधिक आधुनिकीकरण व विविधकरण करने की आवश्यकता है। भारतीय कृषि में व्यापारिक फसलों के विविधिकरण, वर्षाजल संरक्षण, एग्रो प्रोसेसिंग उद्योगों को प्रोत्साहन, वन संरक्षण, बेकार पड़ी भूमि के प्रयोग व निर्यात संवर्द्धन के साथ–2 एक ओर उत्पादकता क्रान्ति की आवश्यकता है। भारत के तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्री नरेन्द्र मोदी ने भी भारत के पूर्वी राज्यों में हरित क्रान्ति की दूसरी पारी को लाने के लिए अपनी प्रतिबद्धता सुनिश्चित की है। हरित क्रान्ति ने हमें यह सीख भी प्रदान की है कि तकनीकों के प्रयोग के माध्यम से शीघ्रातिशीघ्र उत्पादकता तो बढ़ायी जा सकती है परन्तु इस वृद्धि को दीर्घ काल तक सुनिश्चित करने के लिए उपयुक्त संस्थागत एवं सार्वजनिक नीतियों का क्रियान्वयन अति आवश्यक है। इसके अतिरिक्त भारतीय कृषि की सफलता का अन्य सहायक क्षेत्रों(फूलबानी, बागवानी, मत्स्यपालन, सेरीकल्चर, पशुपालन, दुग्धपालन, मुर्गीपालन इत्यादि) में भी दृष्टिगत होना आवश्यक है।

सन्दर्भ

1. आर.बी.आई, भारत सरकार(2011) "सांख्यकीय डायरी" , पृ0सं0 57–77।
2. नियोजन आयोग, भारत सरकार(2011) "डाटा फॉर यूज ऑफ डेप्यूटी चेयरमैन, प्लानिंग कमीशन" , पृ0सं0 17–20।
3. आई.आई.एफ.सी.ओ., नई दिल्ली(2004) "एग्रीकल्चरल स्टैटिस्टिक्स एट ए ग्लांस" पृ0सं0 34–45।
4. महादेवन, रेणुका(2003) "प्रोडक्टिविटी ग्रोथ इन इण्डियन एग्रीकल्चरलः द रोल ऑफ ग्लोब्लाइजेशन एण्ड इकोनोमिक रिफार्म", एशिया–पेसोफिक डेवलपमेन्ट जर्नल, खण्ड–10, अंक–2, मु0पृ 57–72।
5. नियोजन आयोग, भारत सरकार(2002) "रिपोर्ट ऑफ कमेटी ऑन इण्डिया विजन 2020", पृ0सं0 30–35।
6. गुलाटी, अशोक(2009) "इमरजिंग ट्रेन्ड्स इन इण्डियन एग्रीकल्चरः वॉट कैन वी लर्न फ्राम दीज", एग्रीकल्चर इकोनोमिक्स रिसर्च रिव्यू, खण्ड–22, मु0पृ0 171–184।
7. कृषि मंत्रालय, भारत सरकार(2012–13) "स्टेट ऑफ इण्डियन एग्रीकल्चर" पृ0सं0 72–80।
8. कृषि मंत्रालय, भारत सरकार, विभिन्न वार्षिक रिपोर्ट।
9. निनन के0(1993) "द ग्रीन रिवोल्यूशन, ड्राईलैण्ड एग्रीकल्चर एण्ड सस्टेनेबिलिटिः इनसाइट फ्रॉम इण्डिया", इकोनोमिक एण्ड पौलिटिकल वीकली, खण्ड–28, मु0पृ0 ए2–ए7।
10. सिंह, राजवीर; साही, एस0 के0; मिश्रा, डी0 जे0 एवं मिश्रा, यू0के0(2013) "इमरजिंग ट्रेन्ड्स इन इण्डियन एग्रीकल्चरः ए रिव्यू", रिसर्च जर्नल ऑफ रिसेन्ट साइन्सेस, खण्ड–2, मु0पृ0 36–38।
11. टेन्गले, लौरा(1987) "बियोन्ड द ग्रीन रिवोल्यूशन, बायोसांइस, खण्ड–37, अमेरिकन इन्स्टीट्यूट ऑफ बायोलोजिकल साइन्सेस", मु0पृ0 176–180।
12. कोहली, एल0 एन0(2013) "इण्डियन इकोनोमिक प्राब्लम्स्", लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पब्लिकेशनस् पृ0सं0–184–287।
13. दत्त व सुन्दरम्, "इण्डियन इकोनोमी", एस. चांद पब्लिकेशनस्, पृ0सं0 472–534।
14. मिश्रा, जे0पी0, "इण्डियन इकोनॉमिक स्ट्रक्चर", साहित्य भवन, पृ0सं0 28–47।
15. राजाराम के0(1999)[संकलित], "इण्डियन इकोनोमी एण्ड जियोग्राफी ऑफ इण्डिया", स्पेक्ट्रम इण्डिया, पृ0सं0 181–314।

ऑरगैनोफॉस्फोरस तथा ऑरगैनोसिलिकॉन एडहेसिव का तुलनात्मक अध्ययन

देवेन्द्र कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर, रसायन विज्ञान विभाग
बी0एस0एन0वी0 पी0जी0 कॉलेज, लखनऊ–226001, उ0प्र0, भारत
drdgupta65@gmail.com

प्राप्त तिथि 14.03.2015, स्वीकृत तिथि 16.04.2015

सार

चिपकाने वाले पदार्थ(एडहेसिव) एक वस्तु को दूसरे वस्तु से चिपकाने का कार्य करता है। पुराने समय से गोंद का उपयोग चिपकाने वाले पदार्थ के रूप मे किया जा रहा है। आजकल नये कृत्रिम एडहेसिव का विकास किया जा रहा है तथा प्राकृतिक एडहेसिव को और अच्छा बनाने का प्रयास जारी है। नये बनाये गये कुछ संश्लेषित एडहेसिव के तुलनात्मक अध्ययन का विवरण दिया जा रहा है।

बीज शब्द–एडहेसिव, गोंद, संश्लेषित एडहेसिव, प्राकृतिक एडहेसिव।

Comparative study of Organophosphorous and Organosilicon adhesives

Devendra Kumar
Assistant Professor, Chemistry Department
B.S.N.V. P.G. College, Lucknow-226001, U.P., India
drdgupta65@gmail.com

Abstract

An adhesive can be defined as a material that causes one body to stick or adhere to another. From ancient times the gums has been used as adhesives. The efforts have led to the development of the synthetic adhesives and to the improvement of those occuring naturally. A brief comparative study of some synthesized adhesives are given.

Keywords– Adhesives, gums, synthetic adhesives, natural adhesives.

प्रस्तावना

हमारे औद्योगिक समाज के लिये एडहेसिव बहुत ही आवश्यक है। C-O-P तथा Si-O-P बंध वाले एडहेसिव पदार्थ का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। बहुत से एडहेसिव जिसमें सिलिकॉन, फॉस्फोरस होते हैं, का अध्ययन किया जा चुका है।[1-3] सिलिकॉन एडहेसिव रसायनिक रूप से निष्क्रिय होने के साथ–साथ, पराबैंगनी किरणों तथा ओजोन का प्रतिरोध करते हैं। एडहेसिव(चिपकने) में भौतिक तथा रासायनिक दोने बल कार्य करते हैं। एक यौगिक को अच्छा एडहेसिव होने के लिये उसमें अच्छा ससंजक बल तथा एडहेसिव बल होना चाहिये। पॉलीटेट्राफ्लोरोईथीलीन(पीटीएफई) में ससंजक बल अधिक होता है परन्तु फ्लोरोकार्बन समूह के कारण इसमें एडहेसिव बल नहीं होता इसलिये इसमें एडहेसिव गुण नहीं होता। एडहेसिव यौगिक जिन्हें फिनॉल तथा फॉस्फोरस हैलाइड से बनाया गया है, वे थर्मोसेटिंग एडहेसिव का कार्य करते हैं।[4]

फॉस्फोरस ऑक्सी हैलाइड तथा फिनॉल/बिसफिनॉल से प्राप्त एडहेसिव (C-O-Pएडहेसिव[5])

क्र.सं.	अभिकारक (मोलर अनुपात)	क्यूरिंग समय[(a)] उपचार समय (मिनट में)	एडहेसिव शक्ति शियर[(b)] टूट जाना (कि.ग्रा./इंच[2])	एडहेसिव शक्ति पील[(c)] छिलना (कि.ग्रा./सेमी)	एडहेसिव शक्ति फिल्म टफनेस[(c)] आवरण कठोरता (ग्राम्स)
1.	बिसफिनॉल–ए+$POCl_3$ (1:1)	60	24	0.3	200
2.	बिसफिनॉल–ए+$POCl_3$ (1:2)	60	13	0.2	500
3.	रिसार्सिनोल + $POCl_3$ (1:1)	60	19	–	100
4.	रिसार्सिनोल +$POCl_3$ (1:2)	60	08	0.2	200

(अ) क्यूरिंग तापक्रम = 75^0सेल्सियस
(ब) ड्यूरालुमिन के ऊपर
(स) स्टेनलेस स्टील के ऊपर

अभिक्रियाऐं–

1.

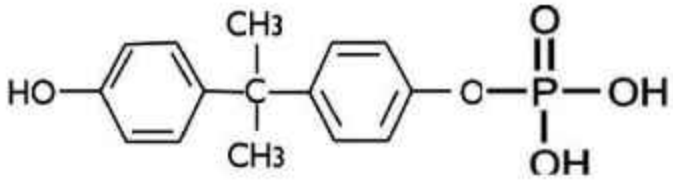

2.

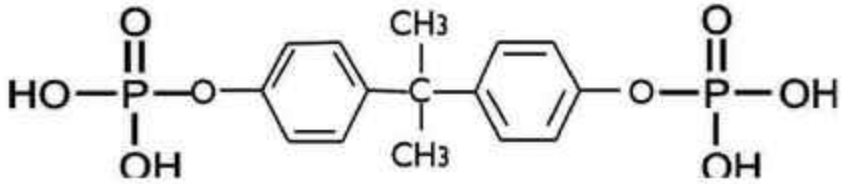

3.

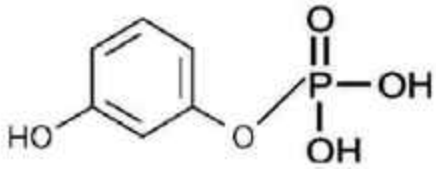

4.

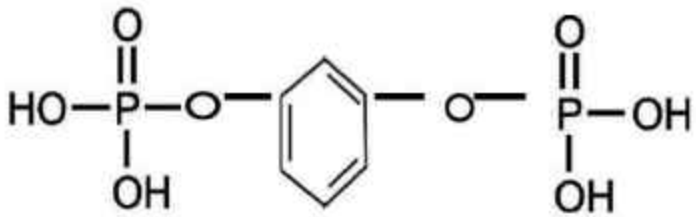

फॉस्फोरस ऑक्सी हैलाइड तथा एल्कोक्सीसिलेन से प्राप्त एडहेसिव **(Si-O-P** एडहेसिव)[6]

क्रमांक	अभिकारक (मोलर अनुपात)	क्यूरिंग समय[अ] उपचार समय (मिनट में)	एडेसिव शक्ति शियर[ब] टूट जाना (कि.ग्रा./इंच^2)	एडेसिव शक्ति पील[स] छिलना (कि.ग्रा./सेमी)	एडेसिव शक्ति फिल्म टफनेस[स] आवरण कठोरता (ग्राम्स)
1.	टेट्राइथोक्सीसिलेन $POCl_3$ (1:1)	60	20	2/10	500
2.	टेट्राइथोक्सीसिलेन $POCl_3$ (1:2)	60	82	2/10	500

(अ) क्यूरिंग तापक्रम = 75^0 सेल्सियस
(ब) ड्यूरालुमिन के ऊपर
(स) स्टेनलेस स्टील के ऊपर

अभिक्रियाओं से प्राप्त उत्पाद–

1.

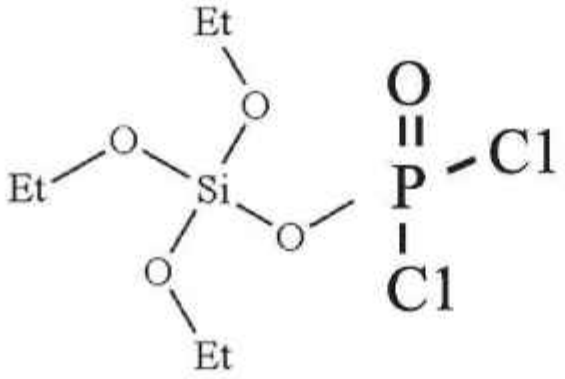

2.

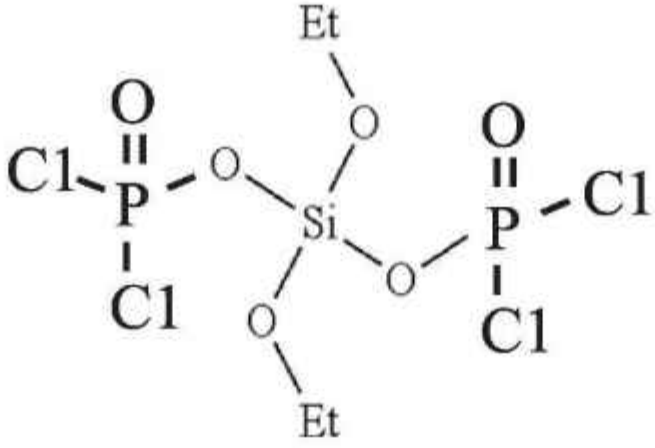

प्रायोगिक विवरण– फॉस्फोरस आक्सीहैलाइड, बिसफिनॉल, फिनॉल, एल्कोक्सीसिलेन जल अपघटित होने वाले यौगिक हैं इसलिये प्रयुक्त उपकरण मे रक्षक नलिकायें जिसमे निर्जल कैल्शियम क्लोराइड भरा हुआ था, प्रयोग में लिया गया।

एडहेसिव शक्तियों का मापन– शियर शक्तियों के मापन के लिये ड्यूरालुमिन का पैनल(पट्टी) 244मि0मी0X25 मि0मी0X4मि0मी0 का तथा पील शक्ति के लिये 180मि0मी0X10मि0मी0X0.25मि0मी0 आकार का पैनल प्रयोग में लाया गया। फिल्म टफनेस के लिये स्टेनलेस स्टील की पट्टी 152मि0मी0X50मि0मी0X1.5मि0मी0 को प्रयोग में लाया गया।

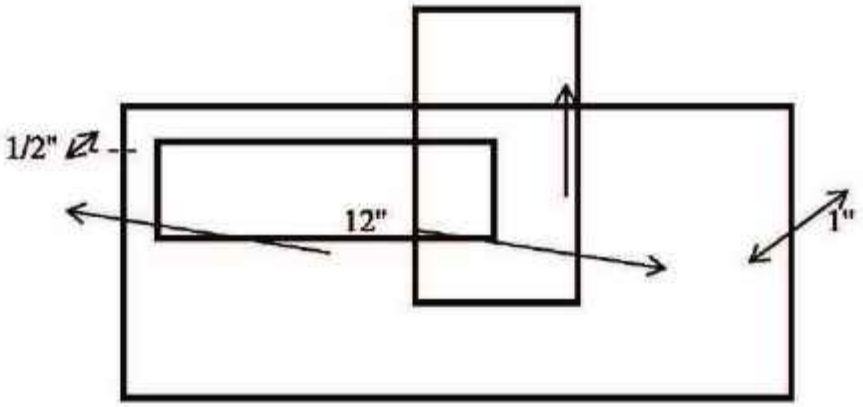

पील शक्ति के निर्धारण के लिए जोड़

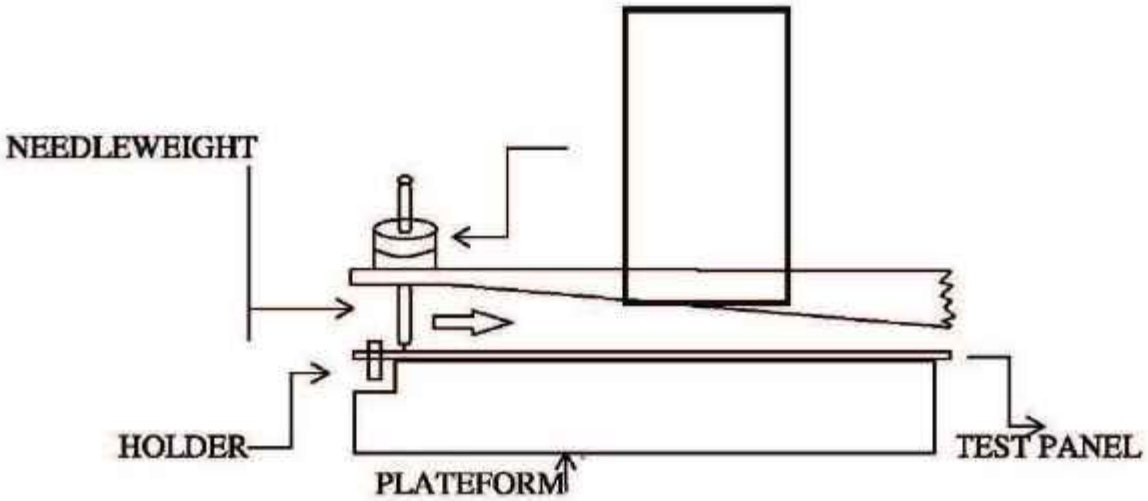

आवरण कठोरता का निर्धारण

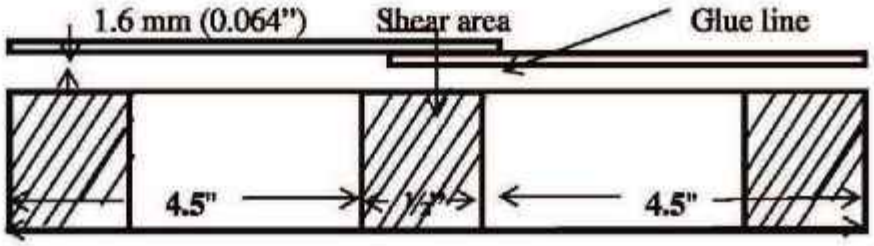

11.5"

शियर शक्ति के निर्धारण के लिए जोड़

निष्कर्ष– शियर, पील तथा आवरण कठोरता एडेसिव शक्तियाँ कई बलों से प्रभावित होती है। उच्च शियर शक्ति का कारण लन्दन बल है।[7] Si-O-P बंध वाले एडेसिव यौगिक की शियर शक्ति, C-O-P बंध वाले एडेसिव यौगिक से बेहतर हैं। फॉस्फोरस ऑक्सीहैलाइड की मात्रा C-O-P बंध वाले एडहेसिव यौगिक में बढ़ाने से उनकी शियर शक्ति कम होती है, जबकि Si-O-P बंध यौगिकों में शियर शक्ति बढ़ती है।

आभार– लेखक बी0एस0एन0वी0पी0जी0 कॉलेज के प्राचार्य डॉ0 सुधीश चन्द्र, रसायन विज्ञान के अध्यक्ष डॉ0 एन0 के0 अवस्थी तथा अनुसंधान(विज्ञान शोध पत्रिका) के संपादक डॉ0 दीपक कुमार श्रीवास्तव का आभारी है, जिन्होंने शोध पत्र प्रस्तुत करने में मदद की।

संदर्भ

1. बजंत, वी.0; चालोवस्की, वी0 एवं राठोअस्की(1965) ज0 ऑरगैनोसिलिकॉन कम्पाउन्ड, एकेडेमिक प्रेस, न्यूयॉर्क एवं लन्दन।
2. रोजोलापोफ, जी0 एन0 एवं मेयर, ल0(1973) ऑर्गेनिक फॉस्फोरस कम्पाउंड, संस्करण–6।
3. नारायन, आर0 पी0 एवं कुमार डी0(1992) इ0 ज0, एडहेसन एवं एडहेसिव, खण्ड–12, अंक–4, मु0पृ0 271–274।
4. ग्रिगोरी, ब्रेसन; जूलियन, जुमिल एवं मार्टिन, इ0(2012) इन्टरनै0 ज0 एडहेसन एवं एडहेसिव, खण्ड–35, मु0पृ0 27–35।
5. नारायन, आर0 पी0 एवं कुमार, डी0(1992) इन्टरनै0 ज0 एडहेसन एवं एडहेसिव, खण्ड–12, अंक–4, मु0पृ0 271–274।
6. नारायन, आर0 पी0 एवं कुमार, डी0(1993) इन्टरनै0 ज0 एडहेसन एवं एडहेसिव, खण्ड–13, अंक–3, मु0पृ0 189–192।
7. सरकार, ए0(1979) ज0 इन्ड0 केम0 सो0, खण्ड–56, मु0पृ0 1159–1160।

पारा तथा कुछ अन्य धातु आयनों के साथ लिगैण्ड डाइइथिलीन ट्राइएमीन पेण्टाएसिटिक एसिड(डीटीपीए) के मिन्न द्विनामिकीय(हीट्रोबाइन्यूक्लियर कॉम्प्लेक्सेज) का बनना तथा उनके स्थायित्व स्थिरांकों की गणना

गोविन्द कृष्ण मिश्र
असिस्टेंट प्रोफेसर, रसायन विज्ञान विभाग
बी0एस0एन0वी0 पी0जी0 कॉलेज, लखनऊ–226001, उ0प्र0, भारत
gkmishra73@gmail.com

प्राप्त तिथि–28.07.2015, स्वीकृत तिथि–13.08.2015

सार

इस शोध पत्र में लिगैण्ड डाइइथिलीन ट्राइएमीन पेण्टाएसिटिक एसिड(डीटीपीए) के Cu^{II}-Hg^{II}, Zn^{II}-Hg^{II} तथा Cd^{II}-Hg^{II} धातु आयनों के साथ इसके MHgDTPA प्रकार (जहाँ M=Cu^{II},Zn^{II},Cd^{II}) के भिन्नद्विनाभिकीय काम्प्लेक्सों(हीट्रोबाइन्यूक्लियर कॉम्प्लेक्सेज) का बनना तथा उनके पूर्ण स्थायित्व स्थिरांकों($\log\beta$)की गणना की विस्तृत व्याख्या की गयी है।

बीज शब्द– हीट्रोबाइन्यूक्लियर कॉम्प्लेक्सेज, स्थायित्व स्थिरांक।

Formation and stability of heterobinuclear complexes of diethylene triamine pentaacetic acid (DTPA) with mercury and some other metal ions

Govind Krishna Misra
Assistant Professor, Deptt. Of Chemistry
B.S.N.V. P.G. College, Lucknow-226001, U.P., India
gkmishra73@gmail.com

Abstract

Equilibrium studies on heterobinuclear complexes of the ligand diethylenetriaminepenta acetic acid (DTPA) with Cu^{II}-Hg^{II}, Zn^{II}-Hg^{II} and Cd^{II}-Hg^{II} have been carried out pH-metrically at 25^0 C and at constant ionic strength, I=0.1 M ($NaNO_3$). The overall stability constants ($\log\beta$) have been evaluated and heterobinuclear complex species of the type MHgDTPA have been detected.

Key words- Heterobinuclear complexes, stability constants.

प्रस्तावना

पॉलीएमीन पॉलीकार्बोक्सिलिक एसिडों की स्थिर एवं जल में घुलनशील कॉम्प्लेक्स बनाने की क्षमता के कारण ये जैवरसायनिक रूप से अत्यंत महत्वपूर्ण हैं तथा इनकी उपयोगिता की आवश्यकता इस दिशा में शोध को महत्वपूर्ण बनाती है।[1] इसी क्रम में इथिलीन डाईएमीन टेट्राएसिटिक एसिड(ईडीटीए) लिगैण्ड की विष धातुओं के जैविक प्रजातियों से निष्कासित करने में केन्द्रीय भूमिका रही है तथा इसी प्रकार के अन्य पदार्थों के विकास में शोध अध्ययन अति महत्वपूर्ण हो जाता है। उदाहरण स्वरूप डाईइथिलीन ट्राइएमीन पेण्टाएसिटिक एसिड(डीटीपीए) तथा ट्राईइथिलीन टेट्रामीन हेक्साएसिटिक एसिड(टीटीएचए) जैसे लिगैण्ड का प्रभावी उपयोग विष धातुओं से प्रभावित जीवों से विषाक्तता समाप्त करने में किया जा सकता है[2,3]। अतः ऐसे कॉम्प्लेक्स/जटिलों का विकास करना तथा जीवों पर इनके प्रभाव को समझना इस शोध को अत्यंत महत्व प्रदान करता है। प्रस्तुत शोध पत्र में डीटीपीए के Cu^{II}-Hg^{II}, Zn^{II}-Hg^{II}, Cd^{II}-Hg^{II} धातु युग्मों के साथ द्विभिन्ननाभिकीय जटिलों हीट्रोबाइन्यूक्लियर कॉम्प्लेक्सेज का जलीय विलयन में बनना तथा उनके स्थायित्व स्थिरांकों की गणना की विस्तृत व्याख्या करता है।

परिणाम एवं चर्चा

लिगैण्ड डाईइथिलीन ट्राईएमीन पेण्टाएसिटिक एसिड(डीटीपीए) एक ऑक्टाडेण्टेट लिगैण्ड है जो Hg,Cu, Zn, तथा Cd के साथ जलीय विलयन में बाइनेरी कॉम्प्लेक्स बनाता है। प्राप्त जटिलों में HgDTPA कॉम्प्लेक्स की स्थिरता सर्वाधिक होती है तथा यह न्यूनतम 2.5 pH पर भी स्थिर होता है। न्यूनतम pH का यह मान प्राप्त करने के लिए अभिक्रिया मिश्रण में अम्ल की समुचित मात्रा मिलाते हैं।

इस अभिक्रिया मिश्रण में क्षार मिलाते हुए जब इसके pH मान में वृद्धि करते हैं तो HgDTPA कॉम्प्लेक्स के असंयुक्त कार्बोक्सिल समूह के विच्छेदनीय प्रोटान निम्न साम्य के अनुसार विस्थापित होते हैं।

$$[H_3Hg^{II}DTPA] + OH^- \longleftrightarrow [H_2Hg^{II}DTPA]^- + H_2O$$
$$[H_2Hg^{II}DTPA]^- + OH^- \longleftrightarrow [HHg^{II}DTPA]^{2-} + H_2O$$
$$[HHg^{II}DTPA]^{2-} + OH^- \longleftrightarrow [Hg^{II}DTPA]^{3-} + H_2O$$

अतः इस प्रकार से pH बढ़ाने पर प्राप्त पूर्णतया डिप्रोटोनेटेड लिगैण्ड $[Hg^{II}DTPA]^{3-}$ दूसरी धातु के साथ सहयुक्त होने के लिए सर्वाधिक उपलब्ध होता है तथा दूसरी धातु(M) के साथ सहयुक्त होकर एक द्विभिन्ननाभिकीय जटिल (हीट्रोबाइन्यूक्लियर कॉम्प्लेक्सेज MHgDTPA) का निर्माण निम्न प्रकार से होता है।

$$[Hg^{II}DTPA]^{3-} + M^{a+} \longleftrightarrow [MHg^{II}DTPA]^{a-3}$$

HgDTPA में Hg^{II} के चारों तरफ चतुष्फलकीय व्यवस्थापन अपेक्षित होता है जो कि Hg^{II} आयन के लिए सर्वाधिक उपयुक्त व्यवस्था होती है। HgDTPA में Hg^{II} का आबन्ध दो एमीनो नाइट्रोजन तथा दो कार्बोक्सिल समूहों से चतुष्फलकीय संयोजन अपेक्षित होता है परन्तु लिगैण्ड डीटीपीए चूँकि अष्टदन्तीय(ऑक्टाडेन्टेट) होता है अतः Hg^{II} से संयुक्त होने पर भी इसके पास चार संयोजनीय स्थान उपलब्ध होते हैं जो कि दूसरी धातु से सहयुक्त होकर द्विभिन्ननाभिकीय जटिल/काम्प्लेक्स (हीट्रोबाइन्यूक्लियर कॉम्प्लेक्सेज) का निर्माण सम्भव बनाते हैं जिसकी साम्य अभिक्रिया निम्नवत है।

$$[Hg^{II}DTPA]^{3-} + Cu^{2+} \longleftrightarrow [Cu^{II}Hg^{II}DTPA]^-$$
$$[Hg^{II}DTPA]^{3-} + Zn^{2+} \longleftrightarrow [Zn^{II}Hg^{II}DTPA]^-$$
$$[Hg^{II}DTPA]^{3-} + Cd^{2+} \longleftrightarrow [Cd^{II}Hg^{II}DTPA]^-$$

इस प्रकार प्राप्त उपरोक्त द्विभिन्ननाभिकीय जटिलों/काम्प्लेक्सों के पूर्ण स्थिरता स्थिरांकों ($\log\beta$) की गणना इस प्रयोग में की गयी है जिनके मान निम्न तालिका में दिये गये हैं।

तालिका –1

जलीय विलयन में $[M^{a+}Hg^{II}DTPA]^{a-3}$ द्विभिन्ननाभिकीय जटिलों/काम्प्लेक्सों के पूर्ण स्थिरता स्थिरांक ($\log\beta$)।
I=0.1 M $NaNO_3$ and Temp.=25°C

जटिल स्पेसीज	$\log\beta$
$Cu^{II}Hg^{II}DTPA$	29.97
$Zn^{II}Hg^{II}DTPA$	26.20
$Cd^{II}Hg^{II}DTPA$	25.98

(Limit of error ± 0.02 in log scale)

प्रयोगात्मक विश्लेषण

इस प्रयोग में प्रयुक्त सभी अभिकर्मक ए0आर0 स्तर के थे जिनका विलयन CO_2 मुक्त आसवित जल में बनाया गया। धातुओं का विलयन उनके नाइट्रेट लवणों द्वारा बनाये गये जो ईडीटीए अनुमापन से प्रमाणित किये गए थे। pH का मापन 25° C पर सेन्चुरी Cp 901 S pH– meter द्वारा किया गया। भिन्न–भिन्न धातुओं के लिये भिन्न अभिक्रिया मिश्रण बनाये गये जिसमें मिश्रण का आयतन 50.0 ml. आयनिक सान्द्रता 0.1 M($NaNO_3$) मुक्त अम्ल की सान्द्रता 0.02 M(HNO_3), धातु आयनों तथा लिगैण्ड की सान्द्रता 0.001 M रखी गयी। M : Hg : DTPA का अनुपात 1 : 1 : 1 रखा

गया। इस प्रकार प्राप्त अभिक्रिया मिश्रणों को एक–एक कर अलग–अलग 0.1 M NaOH विलयन[5] से अनुमापित किया गया। वर्तमान प्रयोगात्मक अवस्था में प्रयुक्त जल का आयनिक प्रोडक्ट(Kw) तथा हाइड्रोजन आयन का ऐक्टिविटी कोफिसिएन्ट स्थापित लेख से लिया गया है।[6]

संदर्भ

1. बिहारी, जे0 आर0; गुप्ता, एस0; श्रीवास्तव, एस0 तथा श्रीवास्तव, आर0 सी0(1993) इण्डि0 हेल्थ, खण्ड–31, पृ0 29।
2. जेकिन्स, बी0 जी0 एवं लाफर, आर0 बी0(1988) इन्ऑर्ग0 केम0, खण्ड–27, पृ0 4730। एमी, एस0 एवं बोत्रा, एम0(1990) इन्ऑर्ग0 केम0 एक्टा, खण्ड–177, पृ0 101। वाटसन, डी0(1994) ज0 एलॉएज कंपा0, खण्ड–14, पृ0 207।
3. मिश्रा, जी0 के0; कृष्णा, वी0 एवं दुबे, के0 पी0(1999) प्रोसी0 नैश0 एकेड0 साइंस, इण्डिया, सेक्शन ए, खण्ड–69, पृ0 19।
4. कॉटन, एफ0 ए0 एवं विल्किन्सन, जी0(1988) एडवांस्ड इनऑर्गेनिक केमिस्ट्री, वाइली, न्यूयॉर्क।
5. स्वारेनबैच, जी0 एवं बिडरमैन, डब्ल्यू(1948) हेल्व0 केम0 एक्टा, खण्ड–31, पृ0 331।
6. वूलियम, ई0 एम0; हरकोट, डी0 जी0 एवं हेपलर, आई0 जी0(1970) ज0 फिजि0 केम0, खण्ड– 70, पृ0 3908।

आयरन टंगस्टेट झिल्ली का वैद्युत रासायनिक अध्ययन

पी0के0 पाठक[1], साधना श्रीवास्तव[1], मुहम्मद अयूब अन्सारी[2] एवं रमेश कुमार प्रजापति[3]
[1]रसायन विज्ञान विभाग, राजकीय एस0एल0पी0 महाविद्यालय, मुरार, ग्वालियर–474006, म0प्र0, भारत
[2]रसायन विज्ञान विभाग, बिपिन बिहारी महाविद्यालय, झाँसी–284001, उ0प्र0, भारत
[3]रसायन विज्ञान विभाग, दिगम्बर जैन कॉलेज, बड़ौत, बागपत–250611, उ0प्र0, भारत
ayub67@rediffmail.com; rameshkrpr@yahoo.com

प्राप्त तिथि–26.05.2015, स्वीकृत तिथि–20.06.2015

सार

इस अध्ययन में विभिन्न सान्द्रता वाले पोटेशियम, सोडियम एवं अमोनियम नाइटेट विलयन में भीगी हुई चर्म पत्र आधारित आयरन टंगस्टेट की चालकता का मापन विभिन्न तापक्रमों पर किया गया है। $\Delta H^{\#}$ $\Delta F^{\#}$, Ea, $\Delta S^{\#}$ आदि विभिन्न ऊष्मागतिक नानकों को व्युत्पन्न करने हेतु परिशुद्ध प्रतिक्रिया दर सिद्धान्त अपनाया गया है। यह देखा गया है कि संक्रीयण ऊर्जा भेदन प्रजाति के स्थल पर निर्भर करती है, तथा विद्युत अपघट्य विलयन की सांद्रता के बढ़ने के साथ कम होती है। इससे निष्कर्ष निकला कि झिल्ली कम आवेशित है एवं जब आयनिक प्रजातियां झिल्ली से व्यापन कर रही हों तो वह स्वयं के जलयोजन कोश को अतिनिम्न आंशिक रूप से परिधृत करती हैं। $\Delta s^{\#}$ के ऋणात्मक मान दर्शाते हैं कि आयनों का आंशिक स्थिरीकरण, संभवतः झिल्ली कंकाल के स्थाई आवेशित समूह की, आयनिक अंतःक्रिया एवं अंतरकाशीय पारगमन के कारण है।

बीज शब्द– आयनिक चालकता, उष्मागतिक मानक, आयरन टंगस्टेट झिल्ली।

Electrochemical studies on Iron Tungstate membrane

P. K. Pathak[1], Sadhna Shrivastava[1], M.A. Ansari[2] and R.K. Prajapati[3]
[1]Department of Chemistry, Govt. S.L.P. College, Morar, Gwalior-474006, M.P., India
[2]Department of Chemistry, Bipin Bihari College, Jhansi-284001, U.P., India
[3]Departmentof Chemistry, Digambar Jain College, Baraut, Baghpat-250611, U.P., India
ayub67@rediffmail.com; rameshkrpr@yahoo.com

Abstract

In current study, the conductance's of parchment supported iron tungstate membrane bathed in potassium, sodium and ammonium nitrate solutions of different concentrations have been measured at different temperatures. Absolute reaction rate theory has been applied to derive various thermodynamic parameters, $\Delta H^{\#}$, $\Delta F^{\#}$ Ea and $\Delta S^{\#}$. The activation energies are found to depend on the site of penetration in a species which decrease with the increase in the concentration of the bathing solutions. It is concluded that the membrane is weakly charged and ionic species retain their hydration shell at least partially, while diffusing through the membrane pores. The values of $\Delta s^{\#}$ are negative indicating that partial immobilization of ions takes place probably due to the interstitial permeation and ionic interaction with the fixed charge groups of the membrane skeleton.

Keywords- Ionic conductance, thermodynamic parameters, iron tungstate membrane.

प्रस्तावना

अकार्बनिक अवक्षेपित कृत्रिम झिल्ली उच्च तापमान तथा आक्रामक प्रतिकूल वातावरण में भी उचित ढंग से प्रयुक्त होने की वजह से औद्योगिक अनुप्रयोगों के लिये बहुत महत्व की है[1]। आयन विनिमय क्रिया के मूलभूत उपयोग डोनान झिल्ली संतुलन पर आधारित हैं। यह विभिन्न पर्यावरणीय समस्याओं के समाधान जैसे मूल्यवान आयनों की पुनः प्राप्ति एवं संवर्धन, अपशिष्ट जल[2] से अवांछनीय आयनों के निष्कासन आदि में बहुत महत्वपूर्ण है। इस शोध पत्र में हमने चर्म पत्र आधारित आयरन टंगस्टेट झिल्ली द्वारा आयन परिवहन की प्रक्रिया का पता लगाने हेतु विभिन्न तापमानों पर झिल्ली के प्रवाहकत्व आंकड़ों में परिशुद्ध प्रतिक्रिया दर सिद्धांत का वर्णन किया है।

सामग्री एवं विधियाँ

आयरन टंगस्टेट की झिल्ली चर्म पत्र(अमूल ग्रुप ऑफ कम्पनीज, मुम्बई, भारत) फेरस अमोनियम सल्फेट एवं सोडियम टंगस्टेट के 0.2एम जलीय विलयन के उपयोग से अंसारी एवं सहकर्मियों[3] द्वारा सुझाई गई विधि द्वारा आयरन टंगस्टेट झिल्ली बनाई गई। झिल्ली को दो विद्युत अपघट्य सेलों के बीच सील बंद[4] कर दिया जाता है। झिल्ली को लगाने के पहले अर्ध सेलों को विद्युत अपघट्य विलयन(KNO_3, $NaNO_3$ or NH_4NO_3) से भर दिया गया एवं सतह तरल को बिना हटाए विलयन को स्वच्छ पारे से बदल दिया जाता है। यदि झिल्ली एवं विलयन के बीच कोई हवा का बुलबुला रह जाता है तो उसे भी हटा दिया गया, ताकि एक समान परिणाम मिल सकें। विद्युत प्रवाहित करने हेतु प्लैटिनम इलैक्ट्रोड का प्रयोग किया गया।[10] हर्ट्ज आवृति पर प्रत्यक्ष मान चालकता मीटर 303(सिस्ट्रोनिक्स) द्वारा झिल्ली प्रवाहकत्व को नापा गया। सभी मापन 25°C, 30°C, 35°C, 40°C, 45°C, 50°C (±0.1°C) पर किए गए। विद्युत अपघट्य विलयन, प्रयोगात्मक अभिकर्मक एवं विआयनीकृत जल द्वारा तैयार किए गए।

परिणाम एवं विवेचना

विभिन्न सांद्रता वाले पोटेशियम, सोडियम एवं अमोनियम नाइट्रेट विलयन में भीगी हुई, आयरन टंगस्टेट झिल्ली के विभिन्न तापक्रमों पर मापे गए प्रवाहकत्व को तालिका–1 में दर्शाया गया है एवं पोटेशियम नाइट्रेट के विशिष्ट आंकड़े चित्र–1 में दर्शाए गए हैं। यह आंकड़े दर्शाते हैं कि विद्युत अपघट्य की सांद्रता बढ़ने के साथ विशिष्ट प्रवाहकत्व बढ़ता है एवं अधिकतम प्रतिबंधक मान तक पहुंच जाता है। यह विभिन्न क्षारीय नाइट्रेट एवं नाईलोन झिल्ली की, इजिमा एवं उनके साथियों[5] की खोज का समर्थन करता है। समान परिस्थिति में क्षारीय धातु आयन के, झिल्ली प्रवाहकत्व का क्रम $K^+ > Na^+ > NH_4^+$ है, जो कि इनकी आयनिक त्रिज्या के समान है। अनेक जांचकर्ताओं[6–10] द्वारा कुछ मानव निर्मित झिल्लियों पर किए गए प्रयोगों में एक सा व्यवहार पाया गया है। यह क्रम दर्शाता है कि व्यापन प्रक्रिया में आयन का आकार एक महत्वपूर्ण कारक है। झिल्ली से पारगमन करती हुई जलीय प्रजाति के संबंध में झिल्ली–सारंध्रता उपर्लिखित क्रम को निर्धारित करती प्रतीत होती है। यद्यपि जलयोजित विद्युत अपघट्य का आकार निश्चित तौर पर ज्ञात नहीं है, लेकिन कुछ विद्युत अपघट्य के साथ जुड़े जल के अणुओं के आंकड़े[11,12] ज्ञात हैं। चित्र–2 में झिल्ली में विभिन्न विद्युत अपघट्य(नाइट्रेट) के विशिष्ट प्रवाहकत्व एवं धनायन के जलयोजन की अतिरिक्त ऊर्जा को रेखाचित्र में दर्शाया गया है[13]। यह देखा गया कि जलयोजन ऊर्जा के बढ़ने के साथ विशिष्ट प्रवाहकत्व कम हो जाता है, अर्थात जल योजन के कारण आकार में बढ़ोत्तरी होती है। यह इस तथ्य को इंगित करता है कि विद्युत अपघट्य, छिद्र या आयाम मार्ग से, इस तरह विसरित होते हैं कि, झिल्ली में प्रवेश कर सकें। भेदन करती हुई विद्युत अपघट्य के, जल योजन की स्थिति को, गतिशील अवस्था में, इस तरह से विचारित किया जा सकता है, कि अधिक तापक्रमों पर दिए गए विद्युत अपघट्य का अधिकांश भाग बोल्ट्समेन वितरण के अनुसार $f = e^{-\Delta Ea/RT}$ (यहाँ R गैस नियतांक है)। प्रतिमोल अधिशेष ऊर्जा (ΔE) रखें। इन परिस्थितियों में ऐसी आयनिक प्रजातियां जिन्होंने पर्याप्त जल योजन की मात्रा को खो दिया है, अतः आकार में झिल्ली–रंध्र से छोटी है, झिल्ली में प्रवेश करेगी। यदि झिल्ली के आकार एवं संरचना में कोई अपरिवर्तनीय परिवर्तन नहीं है तो तापक्रमों के बढ़ने के साथ प्रवाहकत्व बढ़ेगा। चित्र 3 में लघु गणक्य प्रवाहकत्व एवं 1/T के मध्य रेखागत ग्राम दर्शाते हैं कि झिल्ली में इस तरह का कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। इस ग्राफ का ढाल आरहीनियस समीकरण के लिए आवश्यक संक्रियण ऊर्जा के मान को दर्शाता है। तालिका 2 से पता चलता है कि विद्युत अपघट्य विलयन की सांद्रता बढ़ने के साथ ही संक्रियण ऊर्जा कम हो जाती है। विभिन्न विद्युत अपघट्य के लिए निश्चित सांद्रता पर संक्रियण ऊर्जा का क्रम $E_aK^+ > E_aN_a^+ > E_aNH_4^+$ है जो कि क्षारीय धातु, धनायन की क्रिस्टेलोग्राफिक त्रिज्या के क्रम के समान है। जब कोई भेदक, किसी कम जल की मात्रा वाले बहुलक पदार्थ में चालन करता है तो उसकी गति बहुलक की खण्डीय गतिशीलता पर निर्भर करती है। विद्युत अपघट्य की व्याप्तित इस बात पर निर्भर करती है कि खण्ड, भेदक प्रजाति को समायोजित करने हेतु एक बड़ा छिद्र[14] बना दे। इस तरह की प्रणाली में संक्रियण ऊर्जा भेदक प्रजाति के आकार पर निर्भर करती है, अर्थात संक्रियण ऊर्जा भेदक के आकार के आधार पर बढ़ती है। यदि, यह हमारी प्रणाली का मामला है, तो क्षारीय धातु आयनों के प्रकार पर, सक्रियण ऊर्जा की निर्भरता को, आयनिक क्रिस्टलोग्राफिक त्रिज्या द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। जो कि समान प्रणाली में किए गए व्याप्तिता मापन से प्राप्त निष्कर्ष[1,15] के समान है।

ऊष्मागतिक मानक $\Delta H^{\#}$, $\Delta S^{\#}$ एवं $\Delta F^{\#}$ परम अभिक्रिया दर सिद्धांत के प्रयोग द्वारा पता किए गए। आयरिंग[15,17] के अनुसार

$$\pi = \frac{RT}{Nh} e^{-\Delta H^{\#}/RT} e^{\Delta S^{\#}/R} \quad (1)$$

यहां h प्लैंक नियतांक, R गैस नियतांक, N एवोगेड्रो संख्या एवं T परम तापमान है। $\Delta F^{\#}$ आयनों के व्यापन की मुक्त संक्रियण ऊर्जा है, जिसे गिब्स हेल्मोट्ज समीकरण (2) के अनुसार दर्शाया गया है।

$$\Delta F^{\#} = \Delta H^{\#} - T\Delta S^{\#} \quad (2)$$

$\Delta H^{\#}$ निम्न समीकरण के अनुसार आरहीनियस सक्रीयण ऊर्जा Ea से संबंधित है।

$$Ea = \Delta H^{\#} + RT \quad (3)$$

लघु गणक्य प्रवाहकत्व एवं 1/T के मध्य का ग्राफ रेखीय है। इस ग्राफ की रेखा का कटाव एवं ढाल $\Delta H^{\#}$ एवं $\Delta S^{\#}$ की गणनायें देता है। इससे जांचे जा रहे निकाय की प्रयुक्त प्रणाली में, समीकरण–1 की प्रायोज्यता की सत्यता का पता चलता है। इससे व्युत्पन्न $\Delta H^{\#}$ एवं $\Delta S^{\#}$ के आंकड़ों का उपयोग समीकरण (2) एवं (3) द्वारा $\Delta F^{\#}$ एवं Ea के मानों का पता लगाने हेतु किया गया। इसके परिणाम इंगित करते हैं कि विद्युत अपघट्य भेदन $\Delta S^{\#}$ के ऋणात्मक मानों को उत्पन्न करते हैं। यह गणनायें डिल्ली में आयनों के आंशिक निसंचालन के लिए उत्तरदायी हो सकती हैं, जो कि मुख्यतः डिल्ली के स्थिर आवेश ग्रुप के साथ अंतरकाशीय भेदन एवं आयनिक अंतःक्रिया के कारण होता है।

आभार– लेखक आवश्यक अनुसंधान सुविधायें प्रदान करने के लिए महाविद्यालय के प्राचार्य के आभारी हैं।

तालिका–1
आयरन टंगस्टेट झिल्ली के आर पार 1:1 विभिन्न विद्युत अपघट्य की सान्द्रता एवं तापक्रम पर विशिष्ट चालकताओं ($m\ \Omega^{-1}\ cm^{-1}$) के प्रयोगात्मक मान

विद्युत अपघट्य सान्द्रता (मोल. डेसीमी. $^{-3}$)	तापक्रम ($\pm 0.1^{0}C$)					
	25	30	35	40	45	50
KNO_3						
0.1	10.12	12.12	13.12	16.12	20.10	24.12
0.01	9.25	11.25	13.10	15.98	19.25	23.75
0.001	8.95	10.91	12.25	14.25	18.25	22.25
0.0001	7.15	9.25	11.18	13.10	17.12	21.17
$NaNO_3$						
0.1	8.28	10.12	10.12	12.12	13.10	14.20
0.01	6.88	7.45	9.12	9.14	9.55	9.60
0.001	6.21	5.10	5.25	6.25	7.10	8.10
0.0001	3.15	3.10	3.12	4.12	4.50	4.30
NH_4NO_3						
0.1	4.90	6.30	6.85	8.85	9.10	9.12
0.01	4.60	6.15	6.12	5.91	7.85	6.30
0.001	2.59	2.80	4.10	4.55	4.59	6.10
0.0001	2.05	2.80	3.12	4.20	4.22	5.11

तालिका–2
आयरन टंगस्टेट झिल्ली के सम्पर्क में 1:1 विद्युत अपघट्य विलयन की विभिन्न सान्द्रताओं के लिये उष्मागतिक मानक

विद्युत अपघट्य सान्द्रता (मोल. डेसीमी.$^{-3}$)	कारक			
	Ea (किलो जूल मोल$^{-1}$)	$\Delta H^{\neq}$ (किलो जूल मोल$^{-1}$)	$\Delta F^{\neq}$ (किलो जूल मोल$^{-1}$)	$\Delta S^{\neq}$ (जूल डिग्री मोल$^{-1}$)
$NaNO_3$				
0.1	11.00	8.90	75.10	223.00
0.01	12.10	9.20	85.10	-235.80
0.001	16.00	12.10	95.50	-236.90
0.0001	23.10	17.30	91.00	-238.90
KNO_3				
0.1	11.20	6.120	75.00	-227.00
0.01	14.20	6.90	76.50	-228.90
0.001	16.50	12.90	82.00	-229.00
0.0001	19.10	14.10	84.10	-237.90
NH_4NO_3				
0.1	10.10	7.10	75.10	-229.80
0.01	13.10	7.20	76.20	-226.70
0.001	15.00	13.00	79.30	-237.10
0.0001	18.90	9.20	81.20	-238.20

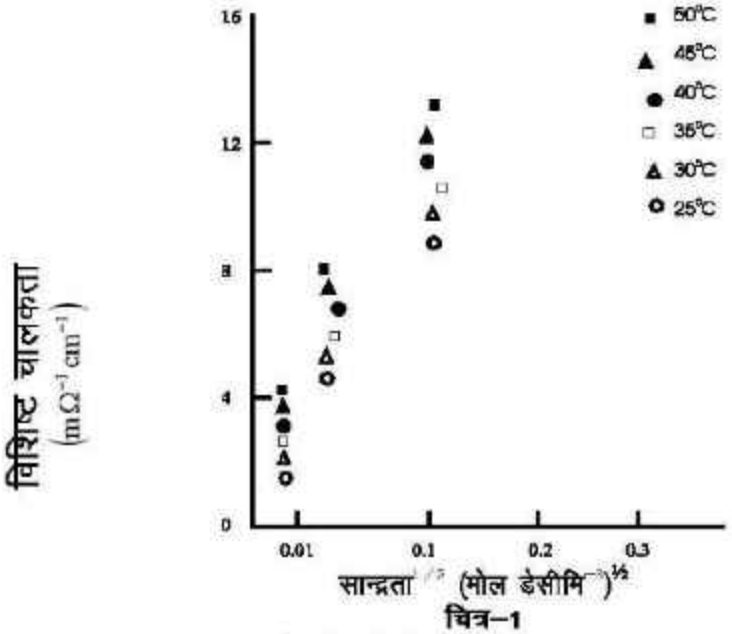

चित्र–1
आयरन टंगस्टेट झिल्ली के लिए KNO_3 की विभिन्न तापक्रम पर विशिष्ट चालकता एवं सान्द्रता के मध्य आरेख

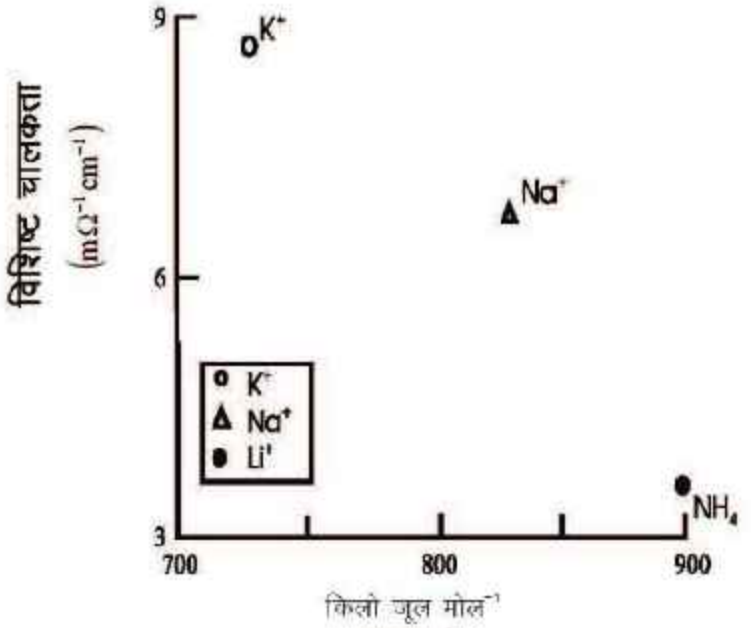

चित्र– 2

आयरन टंगस्टेट झिल्ली के आर पार 25°C पर विभिन्न 1:1 विद्युत अपघट्य की विशिष्ट चालकता एवं जलयोजन की मुक्त ऊर्जा के मध्य आरेख

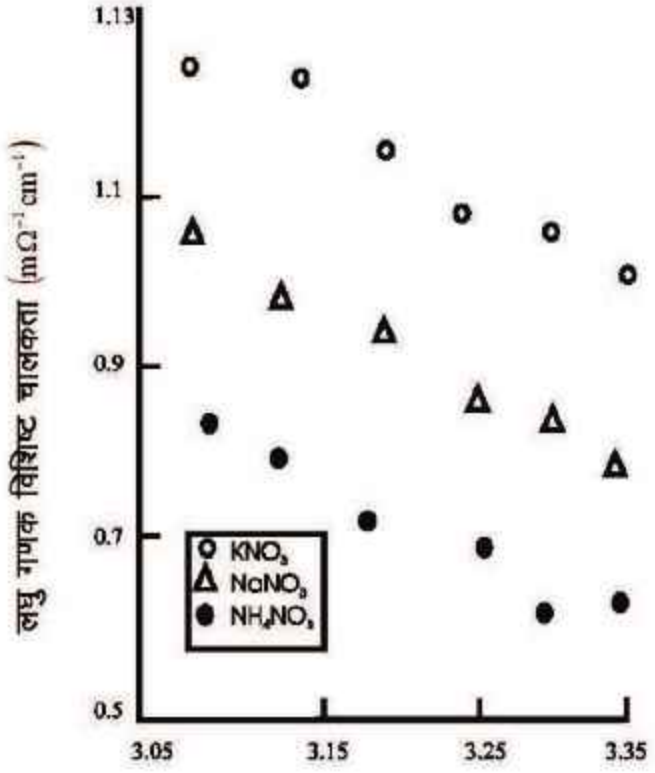

चित्र –3

विशिष्ट चालकता के आरहीनियस वक्र

सन्दर्भ

1. कनाटजीडिस, एम0 जी0 एवं वू, सी0 जी0(1989) जर्नल आफ अमेरिकन केमिकल सोसाइटी, खण्ड–111, मु0पृ0 4139–4141।
2. नवी, एस0 ए0; नौशाद, एम0 एवं इनामुद्दीन, रफीउद्दीन(2007) जर्नल ऑफ हजार्ड मेटेरियल, खण्ड–142, पृ0 404।
3. अन्सारी, एम0 ए0; कुमार, मनोज; गुप्ता, अशोक; श्रीवास्तव, प्रीती एवं कुशवाहा आर0 एस0(2005) इण्डियन काउन्सिल ऑफ कैमिस्ट, खण्ड–22, पृ0 2331।
4. कुशवाहा, आर0 एस0 एवं अन्सारी, एम0 ए0(2008) प्रोग्रेसिव रिसर्च, खण्ड–3, अंक–1, मु0पृ0 73–75।
5. इजिमा, टी0 एवं ओवारा, टी0(1978) के0 जे0 कोलाईड इन्टरफेस साइन्स, खण्ड–63, पृ0 421।
6. खांन, एम0 एम0 ए0 एवं इनामुद्दीन, रफीउद्दीन(2012) मेटेरियल साइन्स एण्ड इंजीनियरिंग, सी–32, मु0पृ0 1210–1217।
7. खांन, एम0 एम0 ए0, इनामुद्दीन, रफीउद्दीन(2013) मेटेरियल साइन्स एण्ड इंजीनियरिंग., सी–33, मु0पृ0 2360–2366।
8. अन्सारी एम0 ए0; कुमार मनोज; सिंह एन0; दादौरिया के0 एस0; कुशवाहा आर0 एस0 एवं अयूब, एस0(2012) एडवान्स एप्लाईड साइन्स रिसर्च, खण्ड–3, अंक–1, मु0पृ0 251–260।
9. पाठक, पी0 के0; प्रजापति, आर0 के0; दादौरिया, के0 एस0 एवं अन्सारी, एम0 ए0(2013) अनुसंधान(विज्ञान शोध पत्रिका), खण्ड–1, अंक–1, मु0पृ 17–25।
10. ओनवाउडी, डी0 सी0; तनवीर, अर्फिन एवं स्ट्रडोन सी0 ए0(2014) इलैक्ट्रो केमिका0 एक्टा, खण्ड–116, मु0पृ0 217–223।
11. हारन्ड, एस0 एस0(1958) द फिजिकल कैमिस्ट्री ऑफ इलैक्ट्रोलाईट सोलूशन, तीसरा संस्करण, रेनहॉल्ड, न्यूयार्क, पृ0 525।
12. मार्कुस, वाई(1969) आयन एक्सचेंज एण्ड सोलवेन्ट एक्ट्रेक्शन ऑफ मेटल काम्पलेक्सस, इन्टरसाइन्स, न्यूयॉर्क, पृ0 13।
13. क्यूमिन्स, सी0 ए0(1968) डिफ्यूजन इन पॉलीमर्स, एकेडमिक प्रेस, लन्दन, चेप्टर–4।
14. सिद्दीकी, एफ0 ए0 एवं बेग, एम0 एन0(1978) केनेडियन जर्नल ऑफ केमिस्ट्री, खण्ड–56 पृ0 2206।
15. ज्वलेन्सकी बी0 जे0; आयरिंग, एच0 एवं रीज, सी0 ई0(1949) जर्नल ऑफ फिजिकल केमिस्ट्री, खण्ड–53, पृ0 1426।
16. ग्लासटन, एस0 एवं लैडलर के0 जे0(1941) द थ्योरी ऑफ रेट प्रोसेसेज, मेकग्रॉ हिल, न्यूयार्क, पृ0 525–544।
17. बेरर, आर0 एम0 एवं रीज, एल0 वी0 सी0(1961) जर्नल ऑफ फिजिकल केमिस्ट्री सॉलिड्स, खण्ड–21, पृ0 12।

जन्मोपरान्त गर्भपातः 'जीवन का अधिकार' की नैतिकता का वैज्ञानिक विश्लेषण

ज्योति काला
एसोसिएट प्रोफेसर, अंग्रेजी विभाग
बी0एस0एन0वी0 पी0जी0 कॉलेज, लखनऊ–226001, उ0प्र0, भारत
jyotikala2010@gmail.com

प्राप्त तिथि–31.07.2015, स्वीकृत तिथि–15.08.2015

सार

वैज्ञानिक दर्शन के अनुसार भ्रूण तथा नवजात 'अ–व्यक्ति' होते हैं। दोनो ही नैतिक रूप से वास्तविक व्यक्ति न होकर संम्भावित व्यक्ति होते हैं। अतैव वास्तविक व्यक्तियों यथा माता–पिता, परिवार, समाज आदि के हितों को ध्यान में रखते हुए जिन–जिन परिस्थितियों में गर्भपात की अनुमति है वहाँ जन्मोपरान्त गर्भपात की अनुमति भी दी जानी चाहिए। प्रस्तुत शोध पत्र में नवजात के 'जीवन के अधिकार' के नैतिक प्रश्न का वैज्ञानिक शोध के आधार पर विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है।

बीज शब्द– वास्तविक व्यक्ति, संभावित व्यक्ति, अंतर्विरोधी सम्बन्ध, प्रजनन स्वायत्तता, इच्छा मृत्यु।

After – birth abortion: a scientific analysis of the ethics of 'Right to Live'

Jyoti Kala
Associate Professor, Deptt. of English
B.S.N.V. Post Graduate College, Lucknow-226001, U.P., India
jyotikala2010@gmail.com

Abstract

Many scientists propound the philosophy of 'After-birth abortion' on the logic that the interests of actual persons are more important than that of the embryos and infants, the potential persons. This paper is an attempt to suggest an appropriate solution to the complex situation of decision of killing of new born after birth from the point of view of the related scientific researchers.

Keywords- Actual person, potential person, antagonistic relationship, reproductive autonomy, euthanasia

प्रस्तावना

मानव जीवन अमूल्य है और मानव–जीवन की गरिमा भी। 10 दिसम्बर, 1948 को यूनाइटेड नेशन्स की जनरल असेम्बली ने मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा को स्वीकृत किया। जिसके अनुसार प्रत्येक मानव को जीवित रहने का अधिकार उसके जन्म में निहित है। इस अधिकार का कानून द्वारा पालन होना चाहिए। किसी भी व्यक्ति के जीने के अधिकार को अचानक नहीं छीना जा सकता। सभी को जीवन का अधिकार, स्वतंत्रता तथा सुरक्षा का अधिकार प्राप्त है और आधारभूत न्याय व्यवस्था के अतिरिक्त किसी भी हाल में उससे उसके जीवन के अधिकार को छीना नहीं जा सकता।[1] इसी नैतिक दृष्टिकोण के आधार पर अरूणा शानबाग 42 वर्ष तक निष्क्रियता की स्थिति(वेजिटेटिव स्टेट, कोमा जैसी स्थिति जिसमें आँखे खुली रहती हैं) में अस्पताल के बिस्तर पर पड़ी रहीं और अन्त में न्यूमोनिया की बीमारी ने उनकी इहलीला समाप्त की। पेशे से नर्स होने के नाते अस्पताल की सभी नर्सों की उनके दुःखद जीवन के प्रति सहानुभूति रही और उन सब ने मिलकर अरूणा की भरपूर सेवा की। परिणामतः अन्तिम समय तक उनके शरीर पर कोई 'बेडसोर'(घाव) नहीं था। यदि अरूणा शानबाग एक नर्स न होती तो घटित दुर्घटना के बावजूद इन 42 वर्षों के अन्तराल की कल्पना करना अत्यन्त कठिन है और एक जटिल प्रश्न उठता है कि क्या विषम परिस्थितियों में इच्छामृत्यु(यूथेनेसिया, कष्ट से निवृत्ति दिलाने के लिए मृत्यु का चयन) अथवा चिकित्सक की सहायता से आत्महत्या(फिजीशियन असिस्टेड स्युसाइड) जैसे विकल्पों का प्रयोग किया जाना चाहिए। अरूणा

शानवाग स्वयं कोई निर्णय लेने की स्थिति में नहीं थी। फिर किसे अधिकार प्राप्त था उनके 'जीवन के अधिकार' के विषय में निर्णय करने का? ऐसी जटिल परिस्थितियों में विभिन्न आयामों पर विचार किया जा सकता है और स्वयं सम्बन्धित व्यक्ति की राय भी महत्व रखती है। परन्तु गर्भस्थ एवं नवजात शिशु के सन्दर्भ में जो स्वयं कोई निर्णय लेने में अक्षम तथा असहाय हैं, जीवन के अधिकार अथवा जीवन–समाप्ति के प्रश्न का निर्णय करना दुष्कर है। साधारणतः यही प्रतीत होता है कि 'जीवन का अधिकार' सर्वोपरि है और इसे किसी भी हाल में छीना नहीं जा सकता। प्रस्तुत शोध पत्र में 'जन्मोपरान्त गर्भपात', जो संवैधानिक दृष्टिकोण से पूर्णतः निषिद्ध है, का वैज्ञानिक शोध परिणामों के आधार पर विश्लेषण करके इस जटिल प्रश्न का संभावित उत्तर प्राप्त करने का प्रयास किया गया है।

वास्तविक तथा संभावित व्यक्ति

29 फरवरी 2012 को स्टीफन एडम्स ने 'जर्नल आफ मेडिकल एथिक्स' में अल्बर्टो ग्लुबिलिनि एवं फ्रांसेस्का मिनर्वा द्वारा लिखित लेख 'आफ्टर बर्थ एबार्शन: ह्वाई शुड द बेबी लिव?' के सन्दर्भ में समाचार प्रकाशित किया कि विशेषज्ञ द्वय की राय में 'जन्मोपरान्त हत्या'(आफ्टर बर्थ किलिंग) तथा गर्भपात में कोई विभेद नहीं है तथा यदि नवजात में कोई विकार हो तो माता पिता को अपने जन्में शिशु के जीवन को समाप्त करने का अधिकार होना चाहिए। ग्लुबिलिनि एवं मिनर्वा के अनुसार नैतिक रूप से नवजात शिशु की स्थिति वही होती है जो कि गर्भाशय में भ्रूण की क्योंकि दोनों ही किसी व्यक्ति को प्राप्त जीवन का अधिकार' की नैतिक परिधि में नहीं आते। नवजात 'वास्तविक व्यक्ति'(एक्चुअल पर्सन) होने के बजाय 'संभावित व्यक्ति'(पोटेन्शियल पर्सन) होते हैं। उनके अनुसार व्यक्ति हम उस प्राणी को मानते हैं जो अपने जीवन को आधारभूत न्यूनतम मूल्य प्रदान कर सके और जीवन से वंचित किये जाने पर उस प्राणी को उस न्यूनतम मूल्य की हानि का अहसास हो। किसी नवजात शिशु का जीवन समाप्त किये जाने पर उस नवजात को किसी भी प्रकार की हानि की अनुभूति नहीं होती। अतः उन सभी परिस्थितियों में जहाँ गर्भपात की अनुमति है, नवजात शिशु का जीवन समाप्त करने की, अर्थात 'जन्मोपरान्त गर्भपात' की अनुमति भी दी जानी चाहिए भले ही वह शिशु स्वस्थ क्यों न हों।[2] (लेखक द्वय को लेख प्रकाशन के समय से ही मृत्यु की धमकियाँ मिल रही हैं।)

नवजात को आसान मृत्यु का दर्शन

कई दार्शनिकों ने 'यूथेनेसिया इन इन्फैन्ट्स' का विचार प्रस्तावित किया है। चिकित्सा प्रोफेशनल्स भी उन दिशा निर्देशों के निर्धारण की आवश्यकता पर बल देते हैं जहाँ गंभीर विकारों की स्थिति में बच्चों के लिए जीवन जीना असहनीय पीड़ा का कारण बन जाने की स्थिति में जन्मोपरान्त गर्भपात को स्वयं बच्चे के हित में माना जा सकता है। जैसे कि नीदरलैण्ड का ग्रोनिन्जेन प्रोटोकॉल(2002) गंभीर लाइलाज बीमारियों से ग्रसित नवजात के जीवन को समाप्त किये जाने की बात करता है यदि चिकित्सा विशेषज्ञ तथा माता–पिता बच्चे के लिए असहनीय पीड़ा की स्थिति पाते है।[3]

गर्भपात तथा जन्मोपरान्त गर्भपात की तुलना

अधिकांशतः भ्रूण में विकार होने अथवा स्त्री के मानसिक स्वास्थ्य में बाधक होने की दशा को गर्भपात का वाजिब आधार माना जाता है। परन्तु एक गम्भीर दार्शनिक प्रश्न तब उत्पन्न होता है जब किसी प्रकार के विकार का ज्ञान शिशु के जन्म लेने के बाद हो अथवा जन्म के समय परिस्थितियां बदल गई हों जैसे जन्म के समय स्त्री ने अपना साथी खो दिया हो और वह शिशु का दायित्व वहन करने में असमर्थ हो। ऐसी परिस्थितियों में वैज्ञानिकों की राय है कि उन सभी परिस्थितियों में जहां गर्भपात की अनुमति है, जन्मोपरान्त भी नवजात का जीवन समाप्त करने की अनुमति दी जानी चाहिए। उदाहरणार्थ–'पेरिनेटल एस्फिक्सिया' –जिसमें मस्तिष्क को गंभीर क्षति होने के कारण शिशु को मानसिक तथा शारीरिक असमन्जस का कष्ट होने की स्थिति में कोई स्त्री गर्भपात की प्रार्थना कर सकती है। परन्तु जन्मपूर्व आनुवांशिक आधार पर भले ही विकारों की संभावना हो परन्तु उसका ज्ञान हो पाना हमेशा संभव नहीं होता। कई बार स्वस्थ माता–पिता के युग्मक में परिवर्तन के कारण भी विकार उत्पन्न हो सकते हैं। जैसे–टी0सी0एस0(ट्रैचर–कॉलिन्स सिन्ड्रोम) की स्थिति में। 10,000 में से किसी एक को टी0सी0एस0 की परेशानी होती है जिसमें चेहरे में कुरूपता एवं सम्बन्धित शारीरिक अक्षमताओं जैसे कष्ट होते हैं। विशेषतः प्राणघातक श्वसन तंत्र सम्बंधी विकार उत्पन्न होने का अंदेशा होता है। साधारणतः टी0सी0एस0 से प्रभावित व्यक्ति मानसिक रूप से अस्वस्थ नहीं होते और अपनी विकृति के प्रति जागरूक होते हैं। यदि जन्मपूर्व युग्मक परीक्षण में ज्ञात हो जाये कि होने वाला बच्चा टी0सी0एस0 से प्रभावित है तो बहुत से माता–पिता गर्भपात को उचित समझेंगे। टी0सी0एस0 हेतु परीक्षण काफी महंगा होता है तथा इसके परिणाम प्राप्त होने में कई सप्ताह लग जाते हैं। अतैव यह परीक्षण साधारणतः नहीं किये जाते यदि टी0सी0एस0 का पारिवारिक इतिहास न हो। परन्तु कभी–कभी स्वस्थ माता पिता के युग्मकों में परिवर्तन होने के कारण बिना परीक्षण के व्याधि–ग्रसित शिशु का जन्म होने की स्थिति में जन्मोपरान्त नवजात का जीवन समाप्त किया जाये या नहीं, यह जटिल प्रश्न उत्पन्न होता है न केवल टी0सी0एस0 जैसी गंभीर व्याधि अपरीक्षित रह जाती है बल्कि बहुत बार साधारण जन्मजात(कॉमन कान्जेनाइटल) बीमारियां भी परीक्षण में पता नहीं लग पाती। 2005 से 2009 के बीच यूरोपीय देशों में पाया

गया कि सिर्फ 64 प्रतिशत डोउन्स सिन्ड्रोम के केस ही जन्मपूर्व परीक्षणों में पता लगाये जा सके हैं। इस प्रतिशत से ज्ञात होता है कि अध्ययन किये गये सिर्फ यूरोपीय क्षेत्र में ही लगभग 1700 नवजात डाउन्स सिन्ड्रोम से पीड़ित पाये गये जिनके बारे में माता–पिता को उनके जन्म से पूर्व ज्ञान नहीं हो पाया था।[4] एक बार जब ऐसा बच्चा जन्म ले लेता है तो माता–पिता के पास उसको पालने के सिवा और कोई रास्ता नहीं रह जाता जबकि यदि जन्मपूर्व इसका ज्ञान हो जाता तो निश्चित ही वह ऐसे बच्चे को जन्म न देने का निर्णय लेते। इस आधार पर कुछ वैज्ञानिकों का विचार है क्योंकि भ्रूण तथा नवजात दोनों ही नैतिक रूप से वास्तविक व्यक्ति न होकर भविष्य के संभावित व्यक्ति हैं और वर्तमान स्थिति में नैतिक रूप से महत्वहीन हैं, अतः जन्मोपरान्त गर्भपात अर्थात जन्म होने के बाद नवजात शिशु का जीवन समाप्त कर देने की आज्ञा दी जानी चाहिए।

जीवन के अधिकार की वैज्ञानिक पृष्ठभूमि

यूं तो गर्भधारण के साथ ही एक नये जीवन की आशा जन्म ले लेती है और सकारात्मक परिस्थितियों में नवजात का आगमन स्वागत योग्य होता है। परन्तु वैज्ञानिकों की राय में न केवल गर्भधारण के प्रारम्भिक सप्ताहों में अपितु नवजात के जन्म के उपरान्त भी शिशु की स्थिति 'अ–व्यक्ति' की होती है। यूनाइटेड किंगडम में 90 प्रतिशत गर्भपात गर्भावस्था के 12 सप्ताह के अन्दर किये जाते हैं। वैज्ञानिक दृष्टि से कोई संशय नहीं है कि इस अवधि में भ्रूण में किसी भी प्रकार की चेतनता का विकास नही होता है। गर्भधारण के 3–4 सप्ताह तक भ्रूण का मस्तिष्क एक खोखली नली के रूप में होता है जिसके भीतर न्यूरॉन विभाजित होते रहते हैं। 4 से 8 सप्ताह के बीच न्यूरल टिशू /ऊतक विकसित होकर मस्तिष्क के अग्रमस्तिष्क, पश्चमस्तिष्क तथा मेरूदण्ड (फोरब्रेन, हाईन्डब्रेन और स्पाइनल कार्ड) आदि बनाने के लिए विभाजित हो जाते हैं। आठवें सप्ताह से पहचाने जाने योग्य मुखाकृति दिखनी प्रारम्भ हो जाती है और सेरेब्रल कॉरटेक्स दो स्पष्ट अर्द्धगोलों में विभाजित हो जाता है। यद्यपि 12 सप्ताह के बाद भ्रूण एक मानवाकृति की भाँति दिखने लगता है लेकिन चेतनता की जागरूकता हेतु उत्तरदायी न्यूरल सर्किट अभी तक विकसित नहीं होते। जैसे–जैसे भ्रूण के मस्तिष्क की संरचना जटिल होती जाती है और उसका मस्तिष्क एक व्यस्क मस्तिष्क के समान प्रतीत होने लगता है, भ्रूण की वातावरण को अनुभव करने तथा प्रतिक्रिया करने की क्षमता विकसित होने लगती है। अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि 16 वें हफ्ते से भ्रूण कम आवृत्ति की ध्वनि पर प्रतिक्रिया करने लगता है और 19 वें हफ्ते तक दर्द महसूस होने पर हाथ अथवा पैर समेटने जैसी संकुचन व विमुखता की प्रतिक्रिया देने लगता है। देखने वाले को यह प्रतिक्रिया काफी हद तक चेतनता के जागरण का आरम्भ प्रतीत हो सकते हैं। जबकि इन आरम्भिक सप्ताहों में इस प्रकार के इन्द्रियबोध को चेतनता में परिवर्तित करने वाले तंत्रिका मार्गों (न्यूरल पाथवेज) का विकास होना बाकी होता है। जिसका तात्पर्य है कि यह गतिविधियां अनैच्छिक सजगता(रिफ्लेक्सेज) मात्र हैं जो कि विकसित हो रहे मस्तिष्क स्तम्भ(ब्रेन स्टेम) तथा मेरूदण्ड के नियन्त्रण में होती है। पीड़ा को अनुभव करने के लिए आवश्यक मस्तिष्क संरचायें 29–30 सप्ताह तक विकसित नहीं होती हालांकि ध्वनि का बोध संसाधन(कान्सियस प्रोसेसिंग) 26 वें सप्ताह से सम्भव हो जाता है। भ्रूण के मस्तिष्क में वयस्क मस्तिष्क के समान सभी संरचनायें विकसित हो जाने पर भी वैज्ञानिक भ्रूण मस्तिष्क की चेतनता के विषय में सावधानी बरतते हैं इसके दो मुख्य कारण हैं प्रथम कम मात्रा में ऑक्सीजन की उपस्थिति तथा द्वितीय–प्लासेंटा से नींद उत्प्रेरक रसायनों द्वारा लगातार बांध, जो भ्रूण का जन्म होने तक उसे बेहोशी की अवस्था में बनाये रखते हैं।[5] जन्मोपरान्त गर्भपात के समर्थक दलील देते हैं कि नैतिक रूप से नवजात की स्थिति भ्रूण की नैतिक स्थिति के समान ही होती है। क्योंकि दोनों में ही उन गुणों का अभाव होता है जो किसी व्यक्ति को जीवन का अधिकार प्रदान करने के लिए आवश्यक होते हैं। अर्थात् कोई व्यक्ति कम से कम उस स्थिति में होना चाहिए कि उन विभिन्न परिस्थितियों का मूल्यांकन कर सके जिन्हें वह प्राप्त कर सकता है यदि उसे हानि न पहुँचाई जाये और यह स्थिति उसके मानसिक विकास के स्तर पर निर्भर करती है।[6] बमुश्किल कोई नवजात अपने जीवन का उद्देश्य निर्धारण कर उसे मूल्य प्रदान कर सकता है। अतः वैज्ञानिकों के अनुसार जन्मोपरान्त गर्भपात की स्वीकृति दी जानी चाहिए।

प्रजनन स्वायत्ता तथा अन्तर्विरोधी सम्बन्ध

माननवीय दृष्टिकोण से यदि भ्रूण और नवजात पीड़ा का अनुभव कर सकते हैं तो उनका नैतिक अधिकार है कि उन्हें कष्ट न दिया जाये। परन्तु दार्शनिक, वैज्ञानिक तथा प्रजनन स्वायत्तता के समर्थक वास्तविक व्यक्ति(स्त्री) के हितों को संभावित व्यक्ति(भ्रूण एवं नवजात) के हितों से ऊपर मानते हैं। बहुत बार एक स्त्री तथा उसके अजन्में शिशु के बीच अन्तर्विरोधी सम्बंध(एन्टागॉनिस्टिक रिलेशनशिप) की समस्या उत्पन्न हो जाती है। सविता हलप्पनवर की मृत्यु की पृष्ठभूमि में अजन्में बच्चे का जीवन का अधिकार तथा स्त्री की अपने जीवन व शरीर की स्वायत्तता के अधिकार के बीच अन्तर्विरोध जैसा प्रश्न विचारणीय हो गया है। बारबरा ह्यूसन एक वकील के नजरिये से कहती हैं कि स्त्री की स्वायत्तता को प्रधानता दी जानी चाहिए। यूनाइटेड स्टेट्स तथा आयरलैण्ड का कानून भ्रूण के अधिकारों को ज्यादा महत्व देता है। 'इन्टरनेशनल कोवेनैन्ट ऑन सिविल एण्ड पॉलिटिकल राइट्स'(1966) के आर्टिकिल 6 के अनुसार– राज्य प्रत्येक बच्चे के 'जीवन का अधिकार' को नैसर्गिक अधिकार मानता है तथा सर्वाधिक रूप से बच्चे के जीवन की रक्षा तथा विकास पर बल देता है।[7] इसी क्रम में एन फ्यूरेडी के विचारानुसार मुद्दा यह नहीं है कि कब भ्रूण जीवन का सम्मान पाने का हकदार हो जाता है, बल्कि यह है कि

जिसे स्वयं यह ज्ञात नहीं है कि वह जीवित है भी या नहीं, उसके जीवन को उस स्त्री, जो उसे धारण कर रही है, के जीवन के मूल्य और सम्मान की तुलना में कितना सम्मान और मूल्य देना चाहिए।[8] फ्यूरेडी के अनुसार भ्रूण के अधिकारों की चर्चा करते समय लोग स्त्रियों के जीवन की गम्भीर वास्तविकताओं को दरकिनार कर देते हैं तथा स्त्री को जन्म देने का साधनमात्र समझकर उसके शरीर तथा प्रजनन की स्वायत्ता पर आघात करते हैं।स्वयं बारबरा ह्यूसन प्रश्न उठाती हैं कि यदि कोई गर्भवती स्त्री गर्भधारण नहीं करना चाहती है तो उसे क्यों रोका जाये? विज्ञान की दृष्टि से अन्य स्तनधारियों के समान ही मानव भी प्रजनन करता है और जन्म होने की प्रक्रिया विकास(इवाल्यूशन) का परिणाम है। जैव वैज्ञानिक रूप से भ्रूण एक अतिक्रमणकारी जीव के समान होता है, और यदि सम्पूरक तन्त्र का जटिल तंत्र(कॉम्प्लेक्स सिस्टम आफ कम्पन्सेटिंग मैकेनिज्म) न हो तो स्त्री का शरीर उसे वैसे ही नकार देगा जैसे किसी प्रत्यारोपित अंग को गर्भधारण एवं प्रसव जीवन की महत्वपूर्ण घटनायें हैं जिनका स्त्री के जीवन पर गम्भीर प्रभाव पड़ सकता है। सामाजिक रूप से शिशु का पालन करने वाली स्त्री को नियोक्ता नौकरी देने से कतराते हैं। क्योंकि अवांछित भ्रूण अतिक्रमणकारी जीव के अनुरूप होता है, भले ही वह संगावित व्यक्ति ही क्यों न हो, स्त्री को उसे जीवन प्रदान करने की प्रक्रिया से स्वयं को मुक्त रखने तथा अपने हित में गर्भपात कराने का अधिकार प्राप्त होना चाहिए। नैतिक रूप से भी किसी स्त्री को प्रजनन का साधन मात्र के रूप में माना जाना आपत्तिजनक है।[9] जिस समाज में स्त्री तनावग्रस्त व असुरक्षित हो वहाँ निःसंदेह गर्भवती माँ की मानसिक स्थिति का प्रभाव गर्भस्थ भ्रूण पर पड़ता है। "प्री एण्ड प्रोस्टनेटल हॉलिस्टिक हेल्थ केयर' के प्रशिक्षक जेम्स गुडिएट मानते हैं कि गर्भवती स्त्री के विचारों का सम्बंध अजन्मे शिशु से रहता है और जो कुछ भी गर्भवती स्त्री अनुभव या विचार करती है वह न्यूरोहारमोन के द्वारा अजन्मे बच्चे तक संचारित होता है।[10] डॉ0 दीपक चोपड़ा 'मैजिकल बिगनिन्स, इन्चान्टेड लाइव्स' में स्पष्ट रूप से लिखते हैं कि गर्भावस्था पर किये गये शोध से स्पष्ट है कि जब एक गभर्वती माँ तनावग्रस्त, भयनीत अथवा बेचैन होती है तो उसके रक्त में संचारित 'स्ट्रेस हारमोन' प्लासेन्टा के जरिये गर्भस्थ शिशु तक पहुँचते हैं। अनेकों अध्ययनों से स्पष्ट निर्धारित हो चुका है कि गर्भवती माँ के शरीर में प्रभावित रसायन गर्भ तक स्थानान्तरित होते हैं तथा गर्भस्थ को प्रभावित करते हैं।[11] कोशिका जीव वैज्ञानिक एवं नयूरोसाइंन्टिस्ट ब्रूस लिप्टन कहते हैं कि तनावग्रस्त माँ के हारमोन प्लासेन्टा से पार होकर भ्रूण के रक्त संचारण को परिवर्तित कर देता है जिसका प्रभाव विकसित हो रहे शिशु के शारीरिक संगठन पर पड़ता है।[12] अतः राज्य एवं समाज द्वारा स्त्री को जन्म देने पर मजबूर नहीं किया जाना चाहिए तथा गर्भपात की अनुमति मिलनी चाहिए। वैज्ञानिकों के अनुसार उन सभी परिस्थितियों में जहाँ गर्भपात की अनुमति होती है जन्मोपरान्त गर्भपात की अनुमति भी होनी चाहिए क्योंकि भ्रूण एवं नवजात 'अ–व्यक्ति' होते हैं।

एक पक्ष यह भी है कि अ–व्यक्ति(भ्रूण एवं नवजात) को वास्तविक व्यक्ति जैसे माँ के दृष्टिकोण से नैतिक मूल्य प्रदान किया जा सकता है परन्तु इस व्यक्तिपरक(सब्जेक्टिव) दृष्टिकोण को वैज्ञानिक अस्वीकार करते हैं। उनके अनुसार कल्पना कीजिए यदि किसी स्त्री के गर्भ में जुड़वा भ्रूण पल रहे हों जो आनुवांशिक विकार से ग्रसित हों। यदि स्त्री को विकल्प दिया जाये कि वह किसी एक भ्रूण का प्रयोग दूसरे का उपचार विकसित करने के लिए कर ले और वह स्वीकार करती है तो वह प्रथम भ्रूण को 'भविष्य की संतान' तथा दूसरे को सिर्फ 'भविष्य की संतान' के उपचार का साधन मात्र मानती है। परन्तु ऐसी स्थिति यदि जन्मोंपरान्त उत्पन्न हो जाये तो निर्णय करना मुश्किल है भले ही नवजात परिवार के लिए बोझ क्यों न बन जाये। वैज्ञानिकों के अनुसार क्षति होना तब होता है जब सम्बन्धित जीव किसी उस हानि का अनुभव कर सकें। क्योंकि भ्रूण एवं नवजात हानि का अनुभव करने में सक्षम नहीं है अतः गर्भपात के समान ही जन्मोंपरान्त गर्भपात भी नवजात के लिए कोई हानि नहीं है। जबकि ऐसे बच्चों को पालने की स्थिति में परिवार, समाज एवं राज्य पर असहनीय भार पड़ सकता है।

जन्मोपरान्त गर्भपात का विश्लेषण

यद्यपि यह घोषित करना कि गम्भीर परिस्थितियों में जब नवजात का जीवन जीना उसके अपने हित में न हो जन्मोपरान्त गर्भपात का विकल्प उचित प्रतीत हो सकता है तथापि व्याधियों के साथ जीवन जीना उपयोगी है या नहीं यह तर्क का विषय है जबकि यही स्थिति गर्भपात के लिय पर्याप्त आधार हो सकती है। विश्वविख्यात भौतिक शास्त्री स्टीफन हाकिन्स जो मोटर डिस्आर्डर के कारण चलने फिरने में असमर्थ हैं, निर्णय करते हैं कि वह अभी विश्व समाज को और योगदान दे सकते हैं तथा अपने पूर्वनिर्धारित 'फिजीशियन असिस्टेड स्युसाइड' के विचार को फिलहाल स्थगति कर देते हैं। यह तथ्य है कि डाउन्स सिंड्रोम वाले बच्चों के जीवन को आशापूर्ण दृष्टि से देखने के बावजूद उनके सम्भावित जीवन की तुलना सामान्य बच्चे के जीवन से नहीं की जा सकती।[13] परन्तु वास्तविकता यह भी है कि डाउन्स सिंड्रोम तथा अन्य गम्भीर विकार से ग्रसित लोग अक्सर प्रसन्नचित्त पाये गये है।[14] इ0जे0 इमान्युल, ई0आर0डेनिन्यल्स, डी0आई0 फेयरप्लाह तथा बी0आर0 क्लैरिज ने 155 ऑन्कोलाजी मरीजों, 355 ऑन्कोलाजिस्ट तथा 193 जनसदस्यों से यूथेनेसिया तथा फिजीशियन असिस्टेड स्युसाइड पर साक्षात्कार किया। लगभग दो तिहाई मरीजों एवं जनसदस्यों ने असहनीय दर्द से पीड़ित मरीजों के लिए इच्छामृत्यु एवं चिकित्सक की सहायता से आत्महत्या को स्वीकृति दी। परन्तु जब मरीजों और जनसदस्यों को 'परिवार पर बोझ', 'अर्थहीन जीवन' जैसे शब्दचित्र दिखाकर राय ली गई तो उन्होंने वैकल्पिक आसान मृत्यु को सबसे कम स्वीकृति दी। शब्द चित्र देखें बिना ऑन्कोलॉजिस्ट ने निरन्तर दर्द झेल रहे मरीजों के लिए नैतिक रूप से वैकल्पिक मृत्यु को स्वीकारा। परन्तु इसके विपरित वास्तविक दर्द सह रहे मरीजों में इच्छामृत्यु अथवा चिकित्सक द्वारा आसान मृत्यु के प्रति अस्वीकृति का नजरिया

दिखा। जबकि एक चौथाई मरीजों ने इस प्रकार जीवन का अन्त करने के विषय पर बातचीत की और करीब 12 प्रतिशत ने गम्भीरता पूर्वक चिकित्सक से विषय पर विचार किया। उल्लेखनीय है कि अवसाद अथवा मानसिक दबाव से ग्रसित मरीजों ने गम्भीरतापूर्वक इस बारे में बात की। पीड़ा सह रहे ऑनकोलॉजी मरीजों ने आसान मृत्यु की ओर रूझान नहीं दिलाया जबकि ऑनकोलॉजी के साथ अवसाद से ग्रसित रोगियों ने आत्महत्या करने में सहायता की प्रार्थना की। साक्षात्कार से निष्कर्ष निकला कि अवसाद ग्रसित मरीजों का पहले अवसाद का उपचार करने के पश्चात् उनसे इच्छामृत्यु के विकल्प पर विचार लेने चाहिए। आधे से अधिक ऑन्कोलॉजिस्ट को आसान मृत्यु प्रदान करने के लिए प्रार्थना मिल चुकी थी और सात में से एक आन्कोलाजिस्ट ने आसान मृत्यु प्रदान भी की थी।[15]

विदित है कि जीवन का अन्त करने का निर्णय काफी कठिन है और विभिन्न परिस्थितियों में एक ही प्रश्न का उत्तर विभिन्न व्यक्तियों के लिए अलग–अलग होता है और बहुत बार स्वयं कष्टग्रस्त व्यक्ति अपने जीवन के अधिकार को खोना नहीं चाहता।

निष्कर्ष

नवजात शिशु में कुछ सीमा तक आत्मजागरूकता एवं प्रत्याशा होती है। जन्म के आखिरी हफ्ते से पहले न्यूरल पाथवेज बन जाने के बाद गर्भस्थ शिशु अल्पविकसित याददाश्त बना सकता है जैसे जन्मोपरान्त वह मां की आवाज, गर्भानुकूल गंध के प्रति रूझान (नवजात एम्नियाटिक फ्ल्यूड के प्रति रूचि दिखाते हैं) आदि दिखा सकते हैं तथापि वह वास्तविक व्यक्ति न होकर केवल संभावित व्यक्ति होते हैं। उनके सम्भावित भविष्य की कल्पना कतिपय हमारे अपने मस्तिष्क की उपज होती है जिसके वास्तविक जीवन में निष्पादित होने की सम्भावना होती है। न सिर्फ नवजात के उद्देश्य बल्कि उससे सम्बंधित माता–पिता, भाई–बहन, समाज व राज्य के हित का भी प्रश्न है जिनके भली भाँति पूर्व निर्धारित उद्देश्य अवांछित संतान के कारण प्रभावित हो सकते हैं। अतः सम्बंधित वास्तविक लोगों के अधिकारों तथा हितों का ध्यान जन्मोंपरान्त गर्भपात का निर्णय लेते समय रखना आवश्यक है। वैज्ञानिक दर्शन के अनुसार संविधान द्वारा स्त्री की स्वायत्तता तथा परिवार, समाज व राज्य के हित में जन्मोंपरान्त गर्भपात विषयक उचित कानून निर्माण की आवश्यकता है।

सन्दर्भ

1. मानव अधिकारों की विश्व व्यापी घोषणा, https:en.wikipedia.org/wiki/Rightto_life. अनुच्छेद 1 व 3।
2.www.telegraph.co.uk/news/health/news/9113394/killing-babies-no-different-from-abortion-experts-say.html.
3. वर्हगेन, ई0 एवं साउर, पी0(2005) द ग्रोनिन्जेन प्रोटोकाल–यूथेनेसिया इन सिदियर्ली इल न्यूबोर्न्स, एन0 इंग्लिश ज0 मेडि0, खण्ड–10, मु0पृ0 959–962।
4. कुह्से, एच0 एवं सिंगर, पी0(1985) शुड द बेबी लिव? द प्राबलम आफ हैण्डीकैप्ड इन्फैंट्स. आक्सफोर्ड: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1985, 143।
5. यूरोपियन सर्विलान्स आफ कान्जेनाइटल एनामलीज, यूरोकैट डाटाबेस. http://www.eurocat-network.eu/ प्रीनेटल स्त्रीनिंग एण्ड डायग्नासिस /प्रीनेटल डिक्टेशन रेट्स।
6. टूले, एम0(1972) एबार्शन एण्ड इन्फैन्टीसाइड, फिला0 पब्लिक एफ0, खण्ड–1, मु0पृ0 37–65।
7. www.cirp.org/library/ehics/UN-covenant/
8. फ्यूरेडी, ए0(2000) वीमन वर्सेस बेबीजः कमण्ट एण्ड एनालिसिस. द गार्डीयन 2000, फरवरी 22।
9. बारबरा, ह्यूसन(2001), रिप्रोडक्टिव आटोनामी एण्ड द इथिक्स आफ एबार्शन, ज0 ऑफ मेडि0 इथिक्स, खण्ड–27, अंक–2, मु0पृ0 10.14।
10. जेम्स गुडिएट, प्रि एण्ड पोस्टनेटल होलिस्टिक हेल्थ केयर कोच, www.theepochtimes.com/n3/blog/a-mothers-emotions-affect-her-unborn-child/
11. तदैव
12. तदैव
13. सन्दर्भ संख्या –3
14. एल्डर्सन, पी0(2001) डाउन्स सिन्ड्रोम : कॉस्ट, क्वालिटी एण्ड द वैल्यू ऑफ लाइफ, सोसा0 साइं0 मेडि0, खण्ड–5, मु0पृ0 627–638।
15. www.sciencedirect.com/science/article/pii80140673696916219/ द लैन्सेट, यूथेनेसिया एण्ड फिजीशियन असिस्टेड स्युसाइड : एटीट्यूड्स एण्ड एक्सपेरिमेन्ट्स आफ ऑन्कोलाजी पेशेन्ट्स, ऑन्कोलाजिस्ट्स, एण्ड द पब्लिक।

एन्जाइमों की भौतिक एवं रासायनिक अभिक्रियाओं में धातु आयनों की भूमिका–एक अध्ययन

विजय शंकर
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, रसायन विज्ञान विभाग
बी0एस0एन0वी0 पी0 जी0 कॉलेज लखनऊ–226001, उ0प्र0, भारत
rao.vijay55@gmail.com

प्राप्त तिथि–31.07.2015, स्वीकृत तिथि–08.09.2015

सार

धातु आयनों Ca^{2+}, Co^{2+}, Mg^{2+} Mn^{2+}, Mo^{2+}, Na^{+}, K^{+}, Fe^{3+}, Zn^{2+} आदि जो पी0 एच और स्थायित्व पर निर्भर करते हैं। एन्जाइमों की भौतिक एवं रासायनिक अभिक्रियाओं में यह भाग लेकर एन्जाइम को सक्रिय बनाते है। कुछ एन्जाइमों की पूर्ण सक्रियता के लिए धातु आयन आवश्यक है। आर्सिनेज के लिए Co^{2+}, Mn^{2+} अथवा अन्य द्विसंयोजक धातु आयनों की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार फास्फोग्लूकोम्यूटेस को अपनी पूर्ण सक्रियता के लिए Mg^{2+} Mn^{2+} अथवा Co^{2+} आयनों की आवश्यकता होती है। एन्जाइम की सक्रियता से उर्जा उत्पादन तथा उर्जा उपभोग प्रक्रमों में संतुलित सम्बन्ध बना रहता है जिससे जीवन का अस्तित्व भी बना रहता है।

बीज शब्द– धातु आयन, सक्रियता, एन्जाइम, स्थायित्व।

Role of metal ions in physical and chemical reactions of enzymes-A study

Vijay Shankar
Assistant Professor, Department of Chemistry
B.S.N.V. P.G. College Lucknow-226001, U.P. India
rao.vijay55@gmail.com

Abstract

Metal ions such as Ca^{2+}, Co^{2+}, Mg^{2+} Mn^{2+}, Mo^{2+}, Na^{+}, K^{+}, Fe^{3+}, and Zn^{2+} etc are depending on the pH and stability. It makes activation of enzymes due to participation in physical and chemical reaction. It is mandatory for complete activation of some enzymes. For Arsenage, Co^{2+}, Mn^{2+} or bivalent metal ions are required, Similarly for complete activation of Phosphoglucomutase Mg^{2+} Mn^{2+} or Co^{2+} ions are required. From activation of enzymes the equilibrium system between production and consumption of energy remain maintained that supports the existence of life.

Key Word- Metal ions, activation, enzymes, stability.

प्रस्तावना– जीव पदार्थ में जीवन के अस्तित्व के लिए इस प्रकार की क्रियाविधि को भौतिक रूप से सर्वाधिक आवश्यकता होती है कि खाद्य पदार्थों के ऑक्सीकरण जैसी रासायनिक प्रतिक्रियाओं से उत्पन्न स्वतंत्र ऊर्जा, ऊष्मा के रूप में नष्ट होने की बजाय ऐसी अभिक्रियाओं एवं प्रक्रमों के लिए उपलब्ध रहे जिनमें इसकी आवश्यकता हो। उदाहरणतः जीव संश्लेशाणात्मक क्रियाएँ, जो प्रजनन एवं बुद्धिरत नव–जीवपदार्थ के निर्माण के लिए आवश्यक हैं, अवशोषण एवं स्त्राव में परासरणी कार्य गति अथवा संचालन के लिये यांत्रिक कार्य, विशेष रूप से उच्च जीवों में, कुछ अन्य विशेष प्रक्रम जैसे जुगनुओं में जीव–संदीप्ति अथवा विद्युत–सर्पमीन में विद्युत निर्माण प्रक्रमों में ऊर्जा की आवश्यकता होती है। जीव पदार्थ में अनेक ऐसे अस्थायी पदार्थ होते हैं जो निरन्तर भंग होते रहते हैं और तदनन्तर संश्लेषण द्वारा पुनः बनते रहते हैं जिससे जीव विकास को सामान्य अवस्था में बने रहने के लिए आवश्यक ऊर्जा की निरन्तर पूर्ति होती रहे। इसी चक्रीय प्रक्रम पर ये जीव पदार्थ निर्भर करते हैं। सामान्यतः स्थायी पदार्थ जैसे प्रोटीन भी अन्तः कोशिकीय अवस्थाओं में स्वलयनी एन्जाइमों की उपस्थिति में विच्छेदित होते हैं, क्योंकि इन पदार्थों के पुनर्निर्माण में ऊर्जा की आवश्यकता होती है। यदि ऊर्जा पूर्ति में अवरोध आता है तो स्थायी परन्तु

आवश्यक पदार्थों के भंग होते रहने से तथा अपचयी एन्जाइमी प्रक्रमों की प्रधानता से सम्पूर्ण निकाय क्षीण होता रहता है और इस प्रकार कोशिका का स्वलयन हो जाता है। जब यह प्रक्रम पर्याप्त रूप से आगे बढ़ जाता है तो यह अनुक्रमणीय हो जाता है क्योंकि संश्लेषण प्रतिक्रियाएँ आवश्यक उत्प्रेरकों के अभाव में पुनः स्थापित नहीं हो सकतीं। वस्तुतः इसी को ही कोशिका की मृत्यु कहा जा सकता है। अतः एक विशेष एन्जाइम निकाय द्वारा ही ऊर्जा–उत्पादन तथा ऊर्जा–उपभोग प्रक्रमों में संतुलित संबंध बना रहता है जिससे जीवन का अस्तित्व भी बना रहता है।[1-3]

उत्प्रेरक– एन्जाइमों में भी इन अकार्बनिक उत्प्रेरकों के कई समान अभिलक्षण होते हैं। उत्प्रेरित अभिक्रियाओं का एक मुख्य अभिलक्षण यह है कि उत्प्रेरक की मात्रा तथा स्थानान्तरित आधारी की मात्रा में कोई स्टोक्योमीट्रिक सम्बन्ध नहीं होता है किसी उत्प्रेरक की दक्षता इस प्रकार दर्शायी जा सकती है 'इकाई समय में प्रतिग्राम–अणुक उत्प्रेरक द्वारा स्थानान्तरित आधारी के ग्राम अणुकों की संख्या'। एन्जाइमों की उत्प्रेरण दक्षता अत्यधिक होती है, इसका इसी प्रेक्षण से अनुमान लगाया जा सकता है कि एक विशुद्ध इन्जाइम, आधारी के 10,000 से 1,000,000 ग्राम अणु प्रति मिनट एन्जाइम के प्रति ग्राम अणु की दर से रूपान्तरण का उत्प्रेरण कर सकता है। उत्प्रेरण में एक अन्य मुख्य अभिमुखता यह भी है कि उत्प्रेरित अभिक्रियाएँ दिश्ट प्रकृति की होती है। कार्बनिक रसायन के क्षेत्र में यह सामान्यतः पाया जाता है कि सामान्यतः अभिक्रियाएँ उच्च तापक्रम अथवा दबाव पर की जाती हैं और इच्छित पदार्थ, अन्य उत्पादकों के मिश्रण के साथ प्राप्त होता है। उत्प्रेरित क्रियाएँ व्यापक रूप से अधिकतर एकसमान रूप से होती हैं अर्थात् उत्पाद की प्राप्त मात्रा अधिक होती है और यही एन्जाइमी अभिक्रियाओं में भी होता है। उत्प्रेरकों के कुछ प्रारूपिक गुणों का, जो एन्जाइमों में भी होते है, यहाँ पर उल्लेख करना आवश्यक है। बहुधा यह पाया गया है कि उत्प्रेरित क्रिया की गति, उत्प्रेरक की सान्द्रता के अनुक्रमानुपाती होती है और एन्जाइमों के संदर्भ में भी यह लगभग सार्वत्रिक है। अधिकांश एन्जाइम द्वारा प्रेरित अभिक्रियाएँ एन्जाइम की पूर्ण अनुपस्थिति में उल्लेखनीय गति से नहीं होती। एन्जाइमों सहित, उत्प्रेरकों का एक अभिलाक्षणिक गुण यह भी है कि वह किसी अभिक्रिया को अग्र एवं उत्क्रम दोनों दिशाओं में समान रूप से उत्प्रेरित करते हैं। इसको निम्न प्रकार से समझाया जा सकता है। कोई रसायनिक अभिक्रिया $A+B \rightleftharpoons C+D$, जो एक सरलतम क्रिया–विधि से होती है, अग्रदिषा में अभिक्रिया की गति V_1 A एवं B की सान्द्रताओं के अनुक्रमानुपाती होती है।

अतः $V_1=K$, [A] [B] उत्क्रम अभिक्रिया के लिए $V_2=K_2$, [C] [D] जब कि K_1 तथा K_2 प्रत्येक के गति स्थिरांक है। साम्यावास्था पर $V_1=V_2$ अतः $K_1[A][B]= K_2[C][D]$ अथवा $K= \frac{K_1}{K_2} = \frac{[C][D]}{[A][B]}$, K, इस अभिक्रिया के लिये साम्य स्थिरांक है। अभिक्रिया की गति की शुद्ध दिशा प्रत्येक क्रियाकारक की प्रारम्भिक सान्द्रता तथा स्थिरांक के मान से निर्धारित होती है। अब एक उत्प्रेरक जो अल्प सान्द्रताओं में है और सम्पूर्ण क्रिया में प्रयुक्त नहीं होता, साम्य स्थिरांक पर कोई प्रभाव नहीं रख सकता। यदि उत्प्रेरक के योग से V_1 का मान किसी गुणक द्वारा बढ़ता है तो K_1 का मान भी उसी गुणक से बढ़ना चाहिये। यदि K_1 के मान में वृद्धि होती है तो K को स्थिर रखने के लिये K_2 के मान में भी उसी गुणक से वृद्धि होनी चाहिये इसलिए प्रायः उत्प्रेरक का प्रभाव K_1 एवं K_2 तथा V_1एवं V_2 दोनों ही पर समान होता है। जीवों में तापक्रम परिवर्तन से उपापचयी अभिक्रियाओं की गति पर कोई प्रभाव नहीं होता क्योंकि उच्च तापक्रम पर जीवन का अस्तित्व ही समाप्त हो सकता है। अतः जीव–तापक्रम पर ही प्रक्रम में तीव्रता लाने के लिए उत्प्रेरित अभिक्रिया आवश्यक है। इसके विपरीत, यदि जैविक अभिक्रियाएँ बिना उत्प्रेरण के होती हैं, तो उनकी गति को नियंत्रित नहीं किया जा सकता। यदि जीव में मुख्य अभिक्रियाओं की गति अनियंत्रित हो जाती है तो सम्पूर्ण कार्य प्रणाली अवरूद्ध हो जाती है जिससे जीव की मृत्यु हो सकती है।

भौतिक एवं रसायनिक प्रकृति– प्रोटीन के सामान्य गुणों की विस्तृत विवेचना करना यहाँ पर असम्भव है किन्तु कुछ मुख्य अभिलक्षण उल्लेखनीय हैं। प्रोटीन अणु की संरचनात्मक इकाई में कई सौ या कई हजार ऐमीनो अम्ल इकाइयों के परस्पर संधनन से बनी एक लम्बी श्रृंखला होती है जिसको बहुपेप्टाइड कहते हैं। इस श्रृंखला में अभिलाक्षणिक CO-NH- बन्ध होते हैं जिन्हें पेप्टाइड–बन्ध कहा जाता है। प्राकृतिक प्रोटीन में जो पेप्टाइड श्रृंखलाएँ होती हैं उनमें ऐमीनो अम्ल इकाइयाँ संघनित होती हैं। जिसका सामान्य सूत्र है $H_2N\text{-}\underset{\displaystyle R}{\underset{|}{CH}}\text{-}COOH$ इसमें R विभिन्न प्रकार के गुणों को प्रदर्शित करता है।

सामान्यतः एक ही प्रोटीन अणु में कई विभिन्न ऐमीनों अम्ल हो सकते हैं और यह अनिवार्यतः L-संरूपण में ही होते हैं। प्रोटीन अणु में विभिन्न घटक ऐमीनों अम्लों की प्रकृति एवं अनुपात, प्रोटीन के जल–अपघटन(अम्ल अथवा क्षार के साथ उबाल कर) द्वारा ज्ञात किये जा सकते हैं। प्रोटीन अणु की पेप्टाइड श्रृंखला में ऐमीनो अम्लों के व्यवस्था–क्रम को ज्ञात करने की दिशा में पर्याप्त विकास हुआ है और श्रृंखला–संरक्षण के विषय में भी अध्ययन किये गये हैं। एन्जाइमों के अन्य अभिलाक्षणिक गुण उनके आवेश–प्रकृति के कारण होते हैं क्योंकि एन्जाइमी क्रिया पर pH मान परिवर्तन का तीव्र प्रभाव होता है अतः विशुद्ध एन्जाइमों के विलगन से पूर्व ही यह समझा गया कि एन्जाइम जल–अपघट्य हैं और अम्ल तथा क्षार दोनों से लवण बनाने के

कारण वह उभय–धर्मी की भाँति व्यवहार करते हैं। प्रोटीन में कई धनात्मक एवं ऋणात्मक आवेश होते हैं जो अणु में कार्बाक्सिल (-COOH), ऐमीनों ($-NH_2$) तथा अन्य गुणों के कारण होते हैं। पेप्टाइड–श्रृंखला में दो छोर होते हैं, एक छोर पर स्वतन्त्र कार्बाक्सिल समूह तथा दूसरे छोर पर एक स्वतन्त्र ऐमीनो समूह होता है। इनके अतिरिक्त पार्श्वश्रृंखलाओं में भी –COOH, $-NH_2$ तथा अन्य आयनीय समूह होते हैं। उदाहरण ऐमीनों अम्ल, ग्लुटामिक अम्ल

में दो कार्बाक्सिल समूह होते हैं जिनमें से एक पेप्टाइड–बन्ध में प्रयुक्त हो जाता है और दूसरा स्वतन्त्र होता है। इसी प्रकार ऐमीनो अम्ल

लाइसीन में भी एक ऐमीनो समूह पेप्टाइड में निर्माण में प्रयुक्त होता है और दूसरा ऐमीनो समूह स्वतन्त्र रहता है। पूर्णतः उदासीन विलयनों मे, जो सामान्यतः शारीरिक परिस्थितियों में होते हैं अधिकांशतः यह गुण आयनीकृत अवस्था में होते हैं जिसके कारण प्रोटीन अणुओं में अनेक स्थानों पर धनात्मक तथा ऋणात्मक आवेश रहते हैं। यही आवेश प्रोटीन विलयन में मिलाये नये अन्य आयनों को सम्बद्ध कर लेते हैं, और इसी समबद्धता से एन्जाइम क्रिया संम्बधित है। अतः एन्जाइमों की क्रियाशीलता पर pH का प्रभाव होता है जो विभिन्न आवेषित समूह से घनिष्ठ रूप से सम्बंधित है। उपयुक्त परिस्थितियों में वे आयनीय समूह आयनीकृत होकर –COO तथा $-NH_3$ आयन देते हैं जिससे सम्पूर्ण अणु उभयाविष्ट आयन (Zwitter Ion) के रूप में रहते हैं।

$$-COOH + H_2O \rightleftharpoons -COO^- + H_2O^+$$
$$-NH_2 + H_2O \rightleftharpoons NH_3 + OH^-$$

विलयन में, इस प्रकार के आयनीकरण के फलस्वरूप वैद्युत–क्षेत्र में प्रोटीन का अभिगमन होता है। इस प्रक्रम को वैद्युत कण–संचालन (इलेक्ट्रोफोरेसिस) कहा जाता है। पर्याप्त रूप से अम्लीय विलयन में (निम्न pH मान पर) प्रोटीन के कार्बाक्सिल समूह अवियोजित COOH अवस्था में होते है जब कि ऐमीनो समूह आवेशित $-NH_3$ रूप में रहते है, अतः प्रोटीन अणु में शुद्ध धनावेश होता है और विभव लगाने पर ऋणाग्र की ओर अभिगमन करता है। इसके विपरीत उच्च pH मान आयनों की अधिकता में प्रोटीन अणु के कार्बाक्सिल एवं ऐमीनो समूह क्रमशः –COO एवं $-NH_2$ रूप में होंगे अतः अणु पर शुद्ध ऋृणवेश होगा और यह धनाग्र की ओर अभिगमन करेगा। किसी मध्यवर्ती pH मान पर धनात्मक तथा ऋणात्मक समूह बराबर होगे तब अणु पर कोई शुद्ध आवेश नहीं होगा और वैद्युत क्षेत्र में कोई संचालन नहीं होगा उस pH मान पर जब कोई अभिगमन नहीं होता तो समविभव बिन्दु कहलाता है और यह प्रोटीन का एक अभिलाक्षणिक गुण है।

विस्तृत अध्ययनों से यह ज्ञात हुआ है कि कुछ एन्जाइम साधारण प्रोटीन होते हैं, अर्थात यह विशुद्ध एन्जाइम होते है, पाचन तन्त्रों के एन्जाइम पेप्सिन तथा ट्रिप्सन इसी प्रकार के एन्जाइम है। इनके अतिरिक्त अन्य एन्जाइमों में प्रोटीन के साथ–साथ अ–प्रोटीन भाग भी होता है अतः ये संयुग्मित प्रोटीन होते हैं। इस प्रकार के एन्जाइमों में प्रोटीन भाग को एपोएन्जाइम एवं अ–प्रोटीन भाग को प्रॉस्थेटिक समूह कहते हैं। वह सम्पूर्ण एन्जाइम, जिसमें कि एपोएन्जाइम तथा प्रॉस्थेटिक समूह दोनों ही होते हैं होलोएन्जाइम कहलाता है कुछ दशाओं में प्रास्थेटिक समूह एपोएन्जाइम से सरलता से पृथक हो जाता है, तब यह सह–एन्जाइम कहलाता है। उदाहरणतः एक एन्जाइम लैक्टेट डिहाइड्रोजिनेस जो लैक्टिक अम्ल को उपचयन द्वारा पायरूविक अम्ल में परिवर्तित करता है, शीघ्रता से वियोजित होकर अपना एपोएन्जाइम भाग तथा अ–प्रोटीन भाग, जो सह–एन्जाइम–I कहलाता है, देता है। अन्य कुछ एन्जाइमों में केवल प्रोटीन और एक धातु होते है। उदाहरणतः कुछ एन्जाइम, कॉपर–प्रोटीन जैसे एस्कार्बिक अम्ल

ऑक्सिडेस इसमें कॉपर प्रोटीन से दृढ़तापूर्वक बन्धित होता है और प्रोटीन से सरलापूर्वक पृथक नहीं होता है। कई अन्य एन्जाइमों के लिए धातु–आयनों की आवश्यकता होती है जो इस एन्जाइम को सक्रिय बनाते हैं। यदि ये आयन निष्कासित कर दिए जाय तो एन्जाइम की क्रियाशीलता समाप्त हो जाती है। इस प्रकार ये आयन सह–एन्जाइम नहीं वरन् सक्रियकारक कहलाते हैं। ये आयन आधारी से संयोग करके धातु–आधारी संकर बनाते हैं जो कि एन्जाइम–प्रोटीन से क्रिया करता है। उदाहरणतः अर्जिनेस कुछ फॉस्फेटेस तथा पेप्टाइडेस इस प्रकार के एन्जाइम है जिनमें सक्रियता के लिये धातु–आयनों की आवश्यकता होती है। Ca, Co, Cu, Mg, Mo, Na, K तथा Zn आयन एन्जाइमी प्रक्रियाओं में भाग लेते है[1] उपरोक्त उदाहरणों में प्रॉस्थेटिक समूह अपोहन(Dialysis) द्वारा एपोएन्जाइम से पृथक किया जा सकता है जिसमें प्रॉस्थेटिक समूह झिल्लिका से शीघ्रता से निकल जाते हैं जब कि एपोएन्जाइम झिल्लिका को नहीं पार कर पाते। अन्य कुछ एन्जाइम इस प्रकार के होते हैं जिनमें प्रॉस्थेटिक समूह, एपोएन्जाइम द्वारा दृढ़ता से संलग्न रहता है जो आयोहन आदि द्वारा पृथक नहीं किया जा सकता है। उदाहरणतः लाल–भूरा एन्जाइम केटेलेस (Catalase) जिसमें प्रॉस्थेटिक समूह हिमैटिन एपोएन्जाइम से दृढ़तापूर्वक जुड़ा होता है। यह एन्जाइम अम्लीय माध्यम से वियोजित होकर रंगहीन प्रोटीन(एपोएन्जाइम) तथा फेरीप्रोटोपोरफिन प्रॉस्थेटिक समूह देता है।

सक्रिय कारक एवं रक्षक– एन्जाइमों की पूर्ण सक्रियता के लिये धातु आयन आवश्यक है। आर्जिनेस के लिये Co^{++}, Mn^{++} अथवा अन्य द्विसंयोजक धातु आयनों की आवश्यकता होती है इसी प्रकार फास्फो ग्लूकोम्यूटेस को अपनी पूर्ण सक्रियता के लिये Mg^{++} Mn^{++} अथवा Co^{++} आयनों की आवश्यकता होती है।[2] पैंक्रिआज का लाइपेस(Pancreatic Lipase) पित्त लवणों(Bile Salts) कैल्सियम ओलियेट एवं ऐल्बुमिन(Albumin) द्वारा सक्रिय होता है यह अविशिष्ट सक्रियकारक पदार्थो की अनुपस्थित में भी पर्याप्त सक्रिय रहती है। पैंक्रिआज एवं लार (Salivary) एमाइलेजों के लिये क्लोराइड आयन की आवश्यकता होती है, ब्रोमाइड तथा आयोडाइड आयन कम प्रभावकारी होते हैं। बरसिन[3] तथा अन्य कार्यकर्ताओं ने बतलाया कि कुछ एन्जाइम, जिनमें सल्फहाइड्रिल समूह देता है, शीघ्रता से उपचित हो जाते हैं, उनको सक्रियता के लिये अपचायकों की आवश्यकता होती है। ऐसे भी अनेक एन्जाइम पाये गये हैं जिनमें विभिन्न बाह्य पदार्थों के मिलाने से उनकी क्रियाशील में वृद्धि हो जाती है। पहले यह बतलाया गया था कि यह क्रियाशीलता में वृद्धिवर्धक अथवा ऑक्सो प्रभाव के आधार पर होती है। इस सक्रियता वृद्धि की व्याख्या इस प्रकार भी की जा सकती है कि सम्भवतः एन्जाइम से किसी विष जो मिलाये पदार्थ से अधिक बन्धुता रखता हो, के निष्कासन से उस एन्जाइम की क्रियाशीलता बढ़ जाती है। उदाहरण के लिये, यूरिएस–अभिक्रिया मिश्रण में रक्त–सीरम प्रोटीन, एमीनो अम्ल, गोंद, HCN, H_2S एवं अन्य कई पदार्थों के मिलने से यूरिएस की सक्रियता में वृद्धि हो जाती है। समनर एवं हैन्ड[4,5] ने इस सक्रियकरण का कारण बतलाया कि एन्जाइम विलयन बनाने में प्रयुक्त आसवित जल में भारी धातुओं की सूक्ष्म मात्राएँ विद्यमान थी जिनके कारण एन्जाइम का विषाक्तन हुआ होगा। जब काँच के उपकरण द्वारा पुनः आसवित जल प्रयोग किया गया तो रक्त–सीरम आदि के मिलाने का कोई प्रभाव नहीं पाया गया।

यूरिएस में स्वतन्त्र 'SH' समूह पाया गया है,[6] यदि यूरिएस को आयोडीन की आवश्यक न्यूनतम मात्रा से उपचयित कर दिया जाता है तो यह निष्क्रिय एवं जल में अविलेय हो जाता है। तुरन्त ही हाइड्रोजन सल्फाइड की सूक्ष्म मात्रा के मिलाने से अधिकांश यूरिएस पुनः विलेय हो जाता है और सक्रियता भी पुनः आ जाती है। पिलेगर एवं सहयोगियों[7] ने दर्शाया कि क्रिस्टलीय यूरिएस का मन्द उपचयन करने पर अनुत्क्रमणीय निष्क्रियण हो जाता है जबकि पराबैंगनी प्रकाश से किरणन(Irradiate) करने पर यूरिएस का अनुत्क्रमणीय निष्क्रियण हो जाता है। प्रेंकिअस एमाइलेस का ग्लूटाथायोन द्वारा सक्रियण सम्भवतः भारी धातुओं के निष्कासन के कारण होता है। जैसा कि ऊपर बताया गया है कि एन्जाइमों को निष्क्रियण से रक्षित करने के लिये कुछ पदार्थ मिलाये जाते हैं जो विषों से क्रिया करके एन्जाइमों के विषाक्तन को रोकते हैं, अतः ये पदार्थ रक्षक कहलाते हैं।

निष्कर्ष– एन्जाइमों की निष्क्रियता से शरीर की उपापचयी क्रियाओं पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। वैज्ञानिक मतों के अनुसार एन्जाइम की निष्क्रियता को दूर करने में धातु आयन अत्यन्त प्रभावकारी सिद्ध होते हैं। इसके अनुकरण से जीवन को बचाया जा सकता है।

सन्दर्भ

1. प्रफाइजर, जे0(1954) एन्जाइम्स द फिजिक्स एण्ड केमिस्ट्री आफ लाइफ, साइनन एंड सुस्टर, न्युयार्क, मु0पृ0 171–175।
2. हारो, वी0 एवं नाजुर, ए0(1958) टेस्ट बुक ऑफ बायोकेमिस्ट्री, सौन्डर्स, फिलाडेल्फिया, मु0पृ0 109।
3. वेनेट, टी0 पी0 एवं फ्रेडेन, ई0(1969) माडर्न टॉपिक्स इन बायो केमिस्ट्री, मैकमिलन, लंदन, मु0पृ0 43–45।
4. होलम, जे0(1968) एलीमेन्टस ऑफ जनरल एन्ड बायोलाजिकल केमिस्ट्री, सेकेण्ड एडीसन, वाइली, न्यूयार्क, मु0पृ0 377।
5. कोरी, जी0 टी0 एवं अन्य(1938) जे0 बायलो0 केम0, खण्ड–124, मु0पृ0 543।
6. बरसिन, टी0(1955) एरजेव एन्जाइम फोर्स, खण्ड–4, मु0पृ0 68।
7. यूलर, एच0 वान एवं अन्य(1937) फिजियोलॉजिकल केम0, मु0पृ0 227।
8. मार्टिनेक, आर0(1969) प्रैक्टिकल क्लिनिकल एन्जाइमोलॉजी जे0 अमे0 मेड0 टेक0, खण्ड–31, मु0पृ0 162।9. समनर, जे0वी0 तथा पोलेण्ड, एल0ओ0(1933) प्रोक साक एक्सपेटल बायोल0 मेड0, खण्ड–30, मु0 पृ0 553।
10. पिलेमर, एल0 एवं अन्य(1936) जे0 बायोल0 केम0, खण्ड–123, मु0पृ0 365।

विभिन्न सांस्कृतिक समूहों के वृद्ध व्यक्तियों के एकाकीपन का अध्ययन

दिनेश कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर, मनोविज्ञान विभाग
पी०बी० पी०जी० कॉलेज, प्रतापगढ़ सिटी, प्रतापगढ़–230143, उ०प्र०, भारत
dineshpbpg13@gmail.com

प्राप्त तिथि 31.07.2015, स्वीकृत तिथि 10.09.2015

सार

वर्तमान अध्ययन में संस्कृति और आयु का प्रभाव वृद्ध व्यक्तियों के एकाकीपन में पाया गया। 40 वृद्ध व्यक्तियों को दो आयु समूहों में लिया गया जिनमें 60–65 और 75–80 वर्ष की आयु का चयन दो बड़े सांस्कृतिक समूह हिन्दू 20 प्रयोज्य और मुस्लिम 20 प्रयोज्य लिये गये। अतः प्रत्येक उपचार में 10 प्रयोज्य को लिया गया। प्रो० एस०एन० राय और डॉ० एस० पी० पाण्डे, मेरठ विश्वविद्यालय, मेरठ द्वारा निर्मित एकाकीपन मापनी(एम.यू.एल.एस.) का प्रयोग प्रत्येक प्रयोज्य पर वैयक्तिक किया गया। प्राप्त आंकड़ों पर टू वे एनोवा का प्रयोग किया गया। परिणाम में आयु परिवर्त्य का सार्थक प्रभाव एकाकीपन के प्राप्तांकों में पाया गया। 75–80 आयु के व्यक्तियों के 60–65 वर्ष आयु के व्यक्तियों से अधिक एकाकीपन की भावना को प्रदर्शित करते हैं। संस्कृति का प्रभाव भी मुख्य रूप से निकल कर आता है। मुस्लिम वृद्ध व्यक्तियों की तुलना में हिन्दू वृद्ध व्यक्ति एकाकीपन का अधिक अनुभव करते हैं। अतः उम्र एवं संस्कृति में अन्तःक्रिया असफल है। अतः एफ वैल्यू सार्थक है।

बीज शब्द– सांस्कृतिक समूह, वृद्ध व्यक्ति, एकाकीपन।

Loneliness among elderly persons of different cultural groups

Dinesh Kumar
Assistant Professor, Department of Psychology
P.B. P.G. College, Pratapgarh City, Pratapgarh-230143, U.P., India
dineshpbpg13@gmail.com

Abstract

The present study was conducted to find out the effect of culture and age on loneliness of elderly person. Forty elderly people representing two age group e.g. 60-65 year and 75-80 year were selected from two major cultural groups. e.g. Hindu(20 Subjects) and Muslim (20 Subjects). Thus each treatment consisted of 10 subjects loneliness scale developed by Prof. Rai and Dr Pandey and known as Meerut University loneliness Scale(MULS) was applied on each subject in individual session. The obtained data were analyzed by using two way ANOVA techniques. The results revealed the fact that age variable significantly influence loneliness score. The subjects higher in age i.e. 75-80 years of age demonstrated more feeling of loneliness in comparison to elderly persons of 60-65 years of age. Effect of culture was also found to be significant. Hindu elderly persons suffered more from feeling of loneliness in comparison of Muslim elderly persons irrespective of the age variable. The integration between age and culture failed in producing significant F Value.

Key words- Cultural group, old people, loneliness.

प्रस्तावना– आधुनिक युग में एकाकीपन समाज की एक महत्वपूर्ण ज्वलन्त सामाजिक समस्या है। यह समस्या न केवल व्यक्ति को बल्कि समाज को भी प्रभावित करती है। एकाकीपन एक जटिल उपागम है। समाज मनोवैज्ञानिकों ने अपने

अध्ययनों द्वारा यह इंगित किया है कि एकाकीपन प्रत्येक आयु, संस्कृति, वर्ग तथा देश के व्यक्ति में पाया जाता है। सुलीवान(1953) ने बताया कि एकाकीपन का उदय पूर्व किशोरावस्था में हो जाता है और यह वही अवस्था है जब व्यक्ति के अन्दर समीपता की आवश्यकता का विकास होता है।
एकाकीपन व्यक्तिगत विशेषता होने के साथ–साथ, परिस्थितियों से भी प्रभावित होता है। इसलिए व्यक्ति के जीवन में एकाकीपन की अनुभूति कभी न कभी अवश्य होती है। एकाकीपन का अध्ययन निरीक्षणों द्वारा किया जा सकता है। यह एक व्यक्तिगत अनुभव है, जो बाहरी घटनाओं पर निर्भर करता है।

रॉबर्ट येइज(1953) ने एकाकीपन के दो प्रकार बताये हैं–

1. सामाजिक एकाकीपन– जिसकी उत्पत्ति सामाजिक नेट–वर्क की कमी से उत्पन्न होती है। जैसे किसी के पास अच्छे दोस्त या साथी नहीं है जिससे वह अपनी रूचि या प्रतिक्रियाओं को बांट सके तो ऐसे व्यक्ति में उत्पन्न एकाकीयता, सामाजिक एकाकीपन कहलाता है।

2. संवेगात्मक एकाकीपन– इसका प्रमुख कारण किसी व्यक्ति में अन्य व्यक्ति के साथ प्रगाढ़ भावात्मक लगाव की कमी से है। इसलिए संवेगिक एकाकीपन किसी व्यक्ति के दूसरे से सामाजिक सम्बन्धों की गुणवत्ता पर निर्भर करता है जबकि सामाजिक एकाकीपन मात्रात्मक सम्बन्धों पर निर्भर करता है।

पाश्चात्य देशों में एकाकीपन के कारणों तथा उसको प्रभावित करने वाले तत्वों का विस्तार से अध्ययन किया गया है। लेकिन भारत वर्ष में ऐसे अध्ययनों की कमी है। भारत एक ऐसा देश है जिनमें अनेक संस्कृति के लोग जैसे हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, जैन, बौद्ध तथा अन्य एक साथ रहते हैं। चूंकि एकाकीपन एक सामंजस्य समस्या है, इसलिए यह समस्या उठती है कि क्या भिन्न–भिन्न संस्कृति के लोगों के एकाकीपन में अन्तर पाया जायेगा। इसी सन्दर्भ में यह भी महत्वपूर्ण है कि पाश्चात्य जगत में किये गये अध्ययनों ने इंगित किया है कि एकाकीपन किसी भी आयु में हो सकता है। लेकिन भारत वर्ष में परिवार एक महत्वपूर्ण संस्था है जो व्यक्ति को हर तरह से सुरक्षा प्रदान करती है। इसलिए इस अध्ययन का विषय है कि क्या समाज के लोगों में एकाकीपन पर आयु का प्रभाव पड़ता है। अतः इस वर्तमान अध्ययन को इसी परिप्रेक्ष्य में सम्पन्न किया गया है।

विधि

समस्या– प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य एकाकीपन पर आयु और विभिन्न संस्कृतियों के पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन करना।

परिकल्पना–

1. एकाकीपन पर आयु का कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता है।
2. एकाकीपन पर संस्कृति विभिन्नता का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।
3. आयु तथा संस्कृति के चरों के मध्य अन्तःक्रिया में सार्थक प्रभाव नहीं पाया जायेगा।

अभिकल्प– वर्तमान अध्ययन में 2x2 द्विकारक अभिकल्प समूह का प्रयोग किया गया है। जिसमें प्रथम चर आयु के दो स्तर वृद्ध तथा अतिवृद्ध और संस्कृति के दो प्रकार हिन्दू और मुसलमान लिये गये है।

चर– स्वतंत्र चर–आयु(वृद्ध, अतिवृद्ध), आश्रित चर– एकाकीपन

प्रतिदर्श– यह अध्ययन कुल 40 पुरूषों पर सम्पन्न किया गया। जिसमें 20 व्यक्ति 60–65 वर्ष के तथा 20 व्यक्ति 75–80 वर्ष के थे। प्रत्येक आयु वर्ग में 10 हिन्दूओं और 10 मुसलमानों को सम्मिलित किया गया है।

सामग्री– एकाकीपन की मात्र के मापन के लिए एम.यू.एल.एस. का प्रयोग किया। जो राय और पाण्डे द्वारा बनाया गया स्केल है।

विश्वसनीयता– एम.यू.एल.एस. की विश्वसनीयता गुणांक +0.83 पाया गया है।

वैधता– इसकी वैधता 0.78 पायी गयी।

प्रशासन प्रक्रिया– सर्वप्रथम हमनें विषयी को आरामपूर्वक बैठाया, तथा उसमें सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध स्थापित किया। फिर उनसे कहा कि मैं जो आपको प्रपत्र दे रहा हूँ। इसमें कुछ कथन दिये हुए हैं जिनका अनुभव कम अथवा अधिक मात्रा में सभी व्यक्ति करते हैं। आप इसको ध्यानपूर्वक पढ़ें तथा सोच विचार कर यह उत्तर दें कि प्रत्येक कथन का अनुभव आप कितनी मात्रा में करते हैं। उत्तर देने के लिए चार विकल्प हैं– प्राय, कभी–कभी, शायद कभी, और कभी नहीं। जो कथन आपको उचित लगता है उस कोष्ठक में सही का निशान लगा दें।

प्राप्तांक– एम.यू.एल. स्केल में कुल 25 कथन है इनमें 13 कथन विपरीत दिशाओं में हैं तथा 12 कथन अनुकूल दिशाओं में हैं, इसमें विपरीत दिशाओं में 1,2,3,4 नम्बर दिये तथा अनुकूल दिशाओं में 4,3,2,1 नम्बर दिये। इस प्रक्रिया द्वारा सभी 40 प्रयोज्यों के एकाकीपन प्राप्तांक को ज्ञात किया गया।

परिणाम– अध्ययन से प्राप्त प्राप्ताकों के सांख्यकीय विश्लेषण में दू वे एनोवा का प्रयोग किया गया। प्राप्त परिणाम निम्न तालिका में दर्शाया गया है–

प्रसरण के स्रोत Source of Variance	वर्गों का योग SS	df	M.S.	F. Ratio
अ (आयु)	46.225	1	46.225	4.40
ब (संस्कृति)	180.625	1	180.625	17.35
अ x ब	0.625	1	0.625	0.06
त्रुटि	374.900	36	10.41	
योग	602.375	39		

F.95 (1,36) = 4.11, F.99 (1,36) = 7.39

प्रस्तुत शोध पत्र में पाया गया कि एकाकीपन की मात्रा पर आयु और संस्कृति का सार्थक प्रभाव पड़ता है। आयु का प्रभाव 0.05 स्तर पर सार्थक पाया गया तथा संस्कृति का प्रभाव 0.01 स्तर पर सार्थक पाया गया। जबकि अन्तःक्रिया के मध्य सार्थक अन्तर नहीं पाया गया। हिन्दुओं के एकाकीपन का मध्यमान 77.2 तथा मुसलमानों के एकाकीपन का मध्यमान 75.05 पाया गया। वृद्ध व्यक्तियों के एकाकीपन का मध्यमान 74 तथा अतिवृद्ध व्यक्तियों के एकाकीपन का मध्यमान 78.25 पाया गया। हिन्दुओं में मुसलमानों की अपेक्षा ज्यादा एकाकीपन पाये जाने का सम्भावित कारण यह है कि मुसलमानों का परिवार हिन्दुओं की अपेक्षा बड़ा होता है। प्रस्तुत अध्ययन में यह भी पाया गया कि जितनी व्यक्ति की आयु बढ़ती जाती है उतना ही वह एकाकीपन का अनुभव करता है।

सन्दर्भ

1. ब्लूज(1973) ओल्ड ऐज इन चेन्जिंग सोसायटी, न्यूयार्क, न्यू व्यू पैटर्न।
2. टूनस्टाल जे0(1967) ओल्ड एण्ड एलोन, न्यूयार्क, हयूमनटीज प्रेस।
3. वान, वीज एवं लेवन, एच0 डी0 (1956), ओन लोनेस साइकेट्री, मु0पृ0 37–43।
4. विलियम, ई0 जी0(1983) एडोलसेन्ट लोनलीनैस, एडोलसेन्स, खण्ड–18, पृ0 69।
5. यूड एल0 ए0(1986) लोनलीनेस, इन आर0 हैरी(ई0डी0) द सोशल कन्सट्रक्शन ऑफ इमोसन्स, मु0पृ0 184–209, न्यूयार्क।

मृदुजलीय कैटफिश *हेट्रोप्न्यूस्टिस फासिलिस* (सिंघी) के रक्त यूरिया स्तर पर निराहारता का प्रभाव

सुधीश चन्द्र
एसोसिएट प्रोफेसर, परास्नातक प्राणि विज्ञान विभाग
बी0एस0एन0वी0 पी0जी0 कॉलेज, लखनऊ–226001, उ0प्र0, भारत
sudhish1953@gmail.com

प्राप्त तिथि: 31.07.2015, स्वीकृत तिथि: 15.09.2015

सार

मृदुजलीय मीन *हेटरोप्न्यूस्टिस फासिलिस* (सिंघी) में निराहारता के फलस्वरूप, शारीरिक उपापचय के प्रमुख जैव रसायनिक द्योतक रक्त यूरिया स्तर पर घटित प्रभाव का अध्ययन किया गया। निराहारता के प्रथम मास से ही रक्त यूरिया स्तर में क्षरण(11.63%) प्रदर्शित हुआ जो निरन्तर बढ़ते निराहारता काल के सापेक्ष चौथे मास के अन्त तक 64.19% इंगित हुआ। सिंघी मीन में यह परिवर्तन निराहारता के कारण सतत् घटते उपापचय क्रियाओं से संबंधित थे, जो प्रायः जलीय वातावरण में चक्रीय परिवर्तनों के कारण घटित होती हैं।

बीज शब्द– मीन, उपापचय, निराहारता, वातावरण, रक्त यूरिया।

Impact of starvation on blood urea level of freshwater catfish *Heteropneustes fossilis*

Sudhish Chandra
Associate Professor, P.G. Department of Zoology
B.S.N.V. P.G. College, Lucknow-226001, U.P., India
sudhish1953@gmail.com

Abstract

Studies were made to observe impact of starvation on blood urea levels, a potent biochemical indicator of body metabolism, of freshwater catfish *H. fossilis*. The level started decreasing from the initial month(11.63%) and declined sharply up to 64.19% after four months, gradually with increasing starvation period. The alterations were correlated with declining metabolic rate of the fish following starvation, a situation often prevails in aquatic environment due to cyclic changes.

Key words- Fish, metabolism, starvation, environment.

1 प्रस्तावना– विभिन्न ऋतुओं के चिरपरिचित जलीय वातावरण, जहाँ नित्यप्रति प्राकृतिक, भौतिक, रासायनिक व जैविक उच्चावचन घटित होते रहते हैं, मछलियाँ अपने व्यवहार, शारीरिक वृद्धि, उपापचय क्रियाओं व प्रतिरोधक क्षमता में व्यापक परिवर्तन प्रदर्शित करती हैं। वातावरणीय क्षोभ अस्थीय मीनों में प्रायः प्रभावी व प्रतिपूर्तिकारक स्थिति उत्पन्न करते हैं। वर्ष के अल्पाधिक अवधि में वातावरण जनित प्रतिकूल परिस्थितियोंवश बुभुक्षण की स्थिति भी अनिवार्य रूप से मछलियों को अंगीकृत करना पड़ता है, जिससे उनके शारीरिक उपापचय क्रियाओं पर निश्चित प्रभाव पड़ता है(क्रीच व सरफटी, 1965; जोशी, 1974; चन्द्र, 1980, 2009)। ऐसे अपवर्तकों का जलीय वातावरण में आहार की उपलब्धता, गुणवत्ता व मात्रा पर संज्ञानीय प्रभाव निर्विवाद है। उपरोक्त परिस्थितियों में मछलियों को अनुकूलन हेतु व्यापक आन्तरिक परिवर्तनों से सज्ज होना आवश्यक हो जाता है, जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव उनके विभिन्न रक्त घटकों में स्वाभाविक रूप से दृष्टिगोचर होता है (जोशी, 1980; चन्द्र, 1982; ग्रैमपर्ल, 1994; शफी, 2000; नेगी व मलिक, 2004)। प्रस्तुत लेख में इस क्षेत्र की एक महत्वपूर्ण, उच्चपोषणज गुणता एवं ओषधीय गुणों से युक्त बहुमूल्य खाद्यमीन *हेट्रोप्न्यूस्टिस फासिलिस* (सिंघी) में निराहारता के फलस्वरूप रक्त यूरिया स्तर पर घटित प्रभाव का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

2. प्रयुक्त सामग्री व विधियाँ– मत्स्यपालकों की सहायता से लखनऊ व समीपस्थ प्राकृतिक जलाशयों से मछलियाँ एकत्रित कर, प्रयोगशाला में लाने व जलगृह में अनुकूलन, टंडन एवं चन्द्र(1979) द्वारा पूर्व वर्णित विधि अनुसार सम्पन्न किया गया। तत्पश्चात् लगभग समभार की स्वस्थ मछलियों का चयन कर 2 प्रतिशत पोटेशियम परमैन्नेट विलयन में स्नानोपरांत "अध्ययन" व "नियंत्रण" जलगृहों में अलग–अलग रखा गया। नियंत्रण जलगृह की मछलियों को समयानुसार भेड़ का यकृत व जीवित केचुयें के सूक्ष्म टुकड़े, घोघियों व जलीय कीटों का आहार नियमित रूप से उपलब्ध कराया जाता रहा, जबकि "अध्ययन" जलगृह की मछलियों को निरन्तर निराहार रखा गया। दोनों ही जलगृहों का जल दिवसीय अन्तराल पर परिवर्तित किया जाता रहा तथा मछलियों के व्यवहार पर दृष्टि रखी गई। प्रत्येक माह के अन्त में नियन्त्रण तथा प्रयोग अध्ययन जल गृहों से मछलियाँ निकालकर, प्रत्येक को रोयेंदार मुलायम तौलिये से सुखाकर, पुच्छदंड काटकर स्वच्छ व शुष्क रक्त स्कंदन रोधी पदार्थयुक्त शीशी में बहता रक्त एकत्रित कर अध्ययन काल तक फ्रिज में रखा गया। प्रत्येक मछली का भार लेकर, तथा विच्छेदन कर किसी संभावित आंतरिक परजीवी संक्रमण का भी अवलोकन किया गया। नैटेल्सन(1957) द्वारा प्रतिपादित जीवरसायनिक विधि द्वारा, स्पेकाल स्पेक्ट्रोफोटोमीटर की सहायता से सभी नमूनों में रक्त यूरिया स्तर का आंकलन किया गया।

3. परिणाम– "प्रयोग" तथा "नियंत्रण" जलगृहों की सिंघी मछलियों में प्रयोगानुसार प्राप्त रक्त यूरिया स्तर सारिणी–1 में दर्शाया गया है। अध्ययन अवधि में निराहारता के कारण एच0 फासिलिस मीन के रक्त यूरिया स्तर में सतत व निरन्तर क्षरण प्रदर्शित हुआ। निराहारता के प्रथम मासोपरान्त नियंत्रण की अपेक्षा प्रयोगरत मीन के रक्त यूरिया स्तर में 11.83 प्रतिशत की न्यूनता पाई गई, जो द्वितीय मास में बढ़कर 30.23 प्रतिशत थी। मीन के रक्त यूरिया स्तर पर प्रभावी क्षरण तृतीय व चतुर्थ माह के अन्त में सुस्पष्ट था जो क्रमशः 51.16 प्रतिशत व 64.19 प्रतिशत इंगित हुआ। चतुर्थ माह के अन्त तक केवल तीन मछलियाँ ही जीवित रह सकीं। स्पष्ट है कि निराहारता का सर्वाधिक प्रभाव तीसरे व चौथे मास में रहा, जो सांख्यिकीय दृष्टि से उल्लेखनीय(पी0 < 0.05) है। इस अवधि में मछलियाँ क्षीण, गतिहीन, व अधिकांशतः जलगृह के एक स्थान पर एकत्रित रहती थीं।

सारिणी–1
निराहारता के कारण सिंघी मछली में विभिन्न स्थितियों पर रक्त यूरिया स्तर

निराहारता की स्थिति	प्रेक्षण संख्या	रक्त यूरिया स्तर(मि0ग्रा0 / 100 एम0एल0) माध्य ± मानक विचलन(परास)
नियंत्रण (भार परास– 170–200 ग्राम)	20	4.30 ± 1.22(3.60–6.00)
एक माह	4	3.80 ± 0.86(3.00–4.66)
दो माह	4	3.00 ± 0.52(2.40–3.70)
तीन माह	4	2.10 ± 0.54(1.60–2.60)
चार माह	3	1.54 ± 0.40(1.14–1.60)

4. विवेचना– मछलियाँ प्रायः परिस्थितिजन्य बुभुक्षण की स्थिति में दीर्घकाल तक बिना आहार के भी जीवन निर्वाह में सक्षम हैं(स्मॉलवुड, 1966; बोटियस व बोटियस, 1967; विलकिन्स, 1967), तथापि निराहारता की स्थिति में अतिजीविता की दर(सरवायवल रेट) विभिन्न मीन प्रजातियों में अलग–अलग होती है(लव, 1970)। आहार के माध्यम से शरीर में मेटाबोलाइट्स की आपूर्ति न हो पाने की स्थिति में शारीरिक उपापचय क्रियाएं अव्यवस्थित हो जाती है, फलस्वरूप विभिन्न जैविक प्रक्रियाओं का प्रभावित होना स्वाभाविक है। आहाराभाव की ऐसी ही परिस्थितियों में अनेकानेक मछलियों के विभिन्न अंगों व रक्त के जैव रासायनिक अवयवों में प्रभावी उच्चावचन अंकित किये गये हैं(लव, 1958; सीवर्ट आदि, 1964; कुलीकोवा, 1966; नोडा, 1967; टंडन व चन्द्र, 1979; चन्द्र, 2002)।

निराहारता की स्थिति में सामान्य शारीरिक कार्यप्रणाली संचालन के लिए आवश्यक ऊर्जा हेतु मछलियाँ प्रायः संचित कार्बनिक ऊर्जाश्रोतों का प्रारम्भिक उपयोग करती हैं, जो उनके विभिन्न रक्त अवयवों के बढ़ते या घटते स्तर से स्पष्ट है(पारकर व वैनस्टोन, 1966; वेलास व सरफटी, 1967; जोशी, 1974; चन्द्र, 1982, 2002)। निराहारता काल में सतत वृद्धि के सादृश सिंघी मीन के शारीरिक भार, क्षीणता व रक्त यूरिया स्तर में क्रमशः उत्तरोत्तर क्षय उपरोक्त वैज्ञानिकों द्वारा अंकित प्रेक्षण के अनुरूप है। अध्ययन अवधि के अन्तिम माह में कुछ मछलियों में कशेरुक दण्डीय विकृति भी अवलोकित हुई, जो सम्भवतः समस्थैतिकता समन्वयन हेतु अकार्बनिक शारीरिक तत्वों के शनैः क्षरण से सहसम्बन्धित प्रतीत होती है। विलेन्यूव आदि(2005) एवं केसरवानी आदि(2007) ने भी व्याक्षिप्त वातावरणीय प्रबल स्थिति में मछलियों में विभिन्न शारीरिक विकृतियां इंगित की हैं।

स्पष्ट है, ऋतुजनित परिवर्तित जलीय वातावरण में भोजन अनुपलब्धता की स्थिति में मछलियां जीवन निर्वहनार्थ स्वयं के अनुकूलन में सक्षम है, परन्तु जलाशयों में उत्तरोत्तर बढ़ता अप्राकृतिक प्रदूषण, पारिस्थितिकी की गुणवत्ता को व्यापक रूप से अपक्षीण कर निरन्तर बुभुक्षुण की स्थिति उत्पन्न कर रहा है, जिसका निश्चित प्रभाव मत्स्य जीवन उनके पालन व उत्पादन पर पड़ना स्वाभाविक है। अस्तु इनका निदान अपेक्षित है।

संदर्भ

1. बोटियस, आई0 एवं बोटियस, जे0(1967) स्टडीज ऑन यूरोपियन ईल एन्युलाः एक्सपेरिमेंटल इंडक्शन ऑफ द मेल सेक्सुअल सायकल, इट्स रिलेशन टू टेम्परेचर एण्ड अदर फैक्टर, मेड0 डैम0 फिस्क हावन्डर्स, खण्ड–4, मु0पृ0 339–405।
2. चन्द्र, एस0(1980) इफेक्ट ऑफ स्टार्वेशन ऑन सीरम कोलेस्ट्रॉल लेवल ऑफ मरेल चन्ना पंक्टेटस, कान0 यूनि0 रिसर्च जर्नल, खण्ड–1, मु0पृ0 23–26।
3. चन्द्र, एस0(1982) इफेक्ट ऑफ स्टार्वेशन ऑन सीरम एसिड फॉस्फेटेज लेवेल ऑफ फ्रेशवाटर कैटफिश क्लैरियस बट्रेकस, एक्सपेरियेन्सिया, खण्ड–38, मु0पृ0 827–828।
4. चन्द्र, एस0(2002) इफेक्ट ऑफ स्टार्वेशन ऑन सीरम कोलेस्ट्रॉल एण्ड टोटल सीरम प्रोटीन लेवल ऑफ द कैटफिश हेटरोप्न्यूस्टीस फासिलिस, हिमा0 ज0 एनवा0 जूलॉजी, खण्ड–16, मु0पृ0 227–230।
5. चन्द्र, एस0(2009) इंपैक्ट ऑफ चेजिंग इकोफिजियोलॉजिकल कन्डीशन्स इन ब्लड यूरिया लेवल ऑफ फ्रेशवाटर फिश वैलेगो अट्टू, ज0 एप्ला0 व नेचुरल साइंस, खण्ड–1, मु0पृ0 47–49।
6. क्रीच, वाई0 एवं सरफैटी, ए0(1965) प्रोटियोलिसिस इन कॉमन कॉर्प(सीप्रिनस कॉर्पियो) इन द कोर्स ऑफ स्टार्वेशन इंपार्टेन्स एण्ड लोकेलाइजेशन, सी0आर0सीन0सोस0बायो0, खण्ड–150, मु0पृ0 483–486।
7. ग्रैमपर्ल, ए0 के0; विजयन, एम0 एम0 एवं बोटिलियर, आर0 जी0(1994) एक्सपेरिमेंटल कंट्रोल ऑफ स्ट्रेस हारमोन लेवेल इन फिशेज– टेक्नीक्स एण्ड एप्लीकेशन, रिव्यू फिश बायो0 फिश, खण्ड–4, मु0पृ0 215–255।
8. जोशी, बी0 डी0(1974) इफेक्ट ऑफ स्टार्वेशन ऑन कैट फिश क्लैरियस बट्रेकस, एक्सपेरियेन्सिया, खण्ड– 30, मु0पृ0 372–373।
9. जोशी, बी0 डी0(1980) इफेक्ट ऑफ स्टार्वेशन ऑन सम बायोकेमिकल कम्पाउंड्स ऑफ लिवर एण्ड ओवरी ऑफ फ्रेशवाटर फिश हेटरोप्न्यूस्टिस फॉसिलिस, साइंस व कल्चर, खण्ड–46, मु0पृ0 112–114।
10. केसरवानी, डी0; वर्मा, आर0 एस0; शुक्ल, एस0 एवं शर्मा, यू0 डी0(2007) कैडमियम इन्ड्यूज्ड स्केलिटल डिफार्मिटीज इन फ्रेशवाटर कैटफिश हेटरोप्नयूस्टिस फासिलिस, एन्वायरमेंट इकोलॉजी, खण्ड–25, मु0पृ0 348–351।
11. कुलीकोवा, एन0 ए0(1966) एक्टिविटी ऑफ ब्लड एण्ड ट्रान्सएमिनेजेस ड्यूरिंग मस्कुलर एक्टिविटी ऑफ वैरियस ड्यूरेशन, यूकेर0 बायो0 ज0, खण्ड–38, मु0पृ0 247–251।
12. लव, आर0 एम0(1958) स्टडीज ऑन द नॉर्थ सी काडः III इफेक्ट ऑफ स्टार्वेशन, ज0 साइंस फूड एग्री0, खण्ड–9, मु0पृ0 195–198।
13. लव, आर0 एम0(1970) "केमिकल बायलोजी ऑफ फिशेज", एकेडेमिक प्रेस, लंदन।
14. नैटेल्सन, एस0(1957) "माइक्रोटेक्नीक्स इन क्लीनिकल केमिस्ट्री फॉर द रुटीन लैबोरेटरी", सी0सी0 थॉमस, स्प्रिंगर।

15. नेगी, के0 एस0 एवं मलिक, डी0 एस0(2004) फूड एण्ड फीडिंग बिहेवियर ऑफ महासीर टार पुटीटोरा इन गंगा रिवर, एक्वाकल्ट, खण्ड–5, मु0पृ0 59–64।
16. नोडा, एच0(1967) स्टडीज ऑन वैरियस फॉस्फेटेजेस ऑफ फिशेजः IV वैरियेशंस इन फोर फॉस्फेटेजेस एक्टिविटी ड्यूरिंग फास्टिंग ऑफ रेनबो ट्राउट साल्मो इरीडियस, जा0 फैस0 फिश प्रीफ0 यूनि0 टी माई सू, खण्ड–7, मु0पृ0 65–71।
17. नोडा, एच0(1968) स्टडीज ऑन वैरियस फॉस्फेटेज ऑफ रेनबो ट्राउट, साल्मो इरीडियस, जा0 फैस0 फिश प्रीफ0 यूनि0 टी माई सू, खण्ड–8, मु0पृ0 73–80।
18. पारकर, आर0 आर0 एवं वानस्टोन, डब्ल्यू0 ई0(1966) चेंजेज इन केमिकल कम्पोजीशन ऑफ सेन्ट्रल ब्रिटिश कोलम्बिया पिंक साल्मन ड्यूरिंग अर्ली सी लाइफ, जा0 फिश0 रिसर्च बोर्ड, कनाडा, खण्ड–23, मु0पृ0 1353–1384।
19. सीबर्ट, जी0; शीमिट, ए0 एवं बाटके, आई0(1964) इन्जाइम ऑफ द एमिनो एसिड मेटाबोलिज्म इन काड मस्कुलेचर, आर्चीव फिश0 विज0, खण्ड–15, मु0पृ0 223–244।
20. शफी, एस0 एम0(2002) "मॉडर्न इक्थियोलॉजी" इन्टर इण्डिया पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
21. स्मालवुड, डब्ल्यू0 एम0(1966) ट्वेंटी मंथ्स ऑफ स्टार्वेशन इन एमिया काल्वा, बाय0 माट0 बायलो0 लैब वुड होल, खण्ड–31, मु0पृ0 453–464।
22. टंडन, आर0 एस0 एवं चन्द्र, एस0(1979) इकोफिजियोलॉजी ऑफ फिशेजः इफेक्ट ऑफ स्टार्वेशन ऑन ब्लड यूरिया लेवल्स ऑफ फ्रेशवाटर कैटफिश क्लैरियस बट्रेकस, जेड0 टीरफिजियाल0 टियर फिटर मिटेल0, खण्ड–41, मु0पृ0 310–313।
23. वेलास, ई0 एवं सरफेटी, ए0(1967) यूरिया एक्सक्रीसन इन कार्प सिप्रिनस कार्पियो, आर्की0 साइंस, फिजियोलॉजी, खण्ड–21, मु0पृ0 185–192।
24. विलेन्यूब, डी0 एल0; कर्टिस, एल0 आर0; जेनकिंस, जे0 जे0; वारनर, के0 ई0; टिल्टन, एफ0; केन्ट, एम0 एल0(2006) एनवायरमेंटल स्ट्रेस एण्ड स्केलिटल डीफार्मिटीज इन फिश फ्राम विलामेटे रिवर ऑर्गन, एनवायरमेंट0 साइंस टेक्नो0, खण्ड–39, मु0पृ0 3495–3506।
25. विलकिन्स, एन0 पी0(1967) स्टार्वेशन ऑफ द हेरिंग क्लूपिया हैरेन्गासः सरवाइवल एण्ड सम बायोकेमिकल चेंजेज, कम्परे0 बायोके0 फिजियो0, खण्ड–23, मु0पृ0 503–518।

मध्य एशिया में होलोसीन के दौरान आर्द्रता विकास–एक समीक्षा

रणधीर सिंह[1], बिनीता फर्त्याल[1] एवं बिंध्याचल पाण्डेय[2]
[1]बीरबल साहनी पुरावनस्पति विज्ञान संस्थान
53–विश्वविद्यालय मार्ग, लखनऊ–226007, उ0प्र0, भारत
[2]काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी–221005, उ0प्र0, भारत
randheer.singh@gmail.com, binitaphartiyal@gmail.com , drbpandey@yahoo.co.in

प्राप्त तिथि–10.04.2015, स्वीकृत तिथि–20.05.2015

सार

होलोसीन काल के आर्द्रता इतिहास पर प्रकाशित साहित्य के निष्कर्षों पर आधारित[1,2] सामान्य समीक्षा प्रस्तुत की गयी है। सभी अध्ययन भारतीय मानसून प्रभावित क्षेत्र में पूर्व होलोसीन के दौरान उच्च प्रभावी आर्द्रता दर्शाते हैं, जो कि होलोसीन इष्टतम जलवायु परिस्थितियों को परिलक्षित करती है। इसके विपरीत, उन क्षेत्रों में इष्टतम परिस्थितियाँ मध्य होलोसीन के दौरान व्याप्त रहीं, जो कि दक्षिण–पूर्वी एशियाई मानसून और पछुवा पवन के प्रभाव के अंतर्गत आते हैं। ये विरोधाभास होलोसीन में हवा संहति(द्रव्यमानों) के क्षेत्रीय चढ़ाव और उतार से समझाया जा सकता है। पूर्व होलोसीन के दौरान प्रबल आतपन ने सम्भवतः तिब्बतीय पठार के ऊपर एक छोटे स्तर के अभिसरण(चक्रवाती परिसंचरण) का निर्माण किया, जिसके परिणामस्वरूप ग्रीष्म मानसून का तीव्रीकरण हुआ। तिब्बतीय पठार में हवा का तीव्र चढ़ाव बना जिसके कारण वर्षण बढ़ा और ऊपरी क्षोभ मंडल में हवा का अपसरण बना। पठार के ऊपर बने इस अपसरण ने हवा संहति में तीव्र उतार का निर्माण किया, जिसके परिणामस्वरुप उत्तर से लगे हुए क्षेत्रों में शुष्कता बढ़ गयी। पुराजलवायु के अधिकांश अध्ययन क्षेत्र में पश्च होलोसीन से घटती हुई प्रभावी आर्द्रता सुझाते हैं।

बीज शब्द– मध्य एशिया, होलोसीन, आर्द्रता विकास।

Moisture evolution in Central Asia during Holocene- A review

Randheer Singh[1], Binita Phartiyal[1] and Bindhyachal Pandey[2]
[1]Birbal Sahni Institute of Palaeobotany,
53-University Road, Lucknow– 226007, U.P., India
[2]Banaras Hindu University, Varansi-221005, U.P., India
randheer.singh@gmail.com,binitaphartiyal@gmail.com, drbpandey@yahoo.co.in

Abstract- A general review account of the late-Quaternary moisture history of monsoonal Central Asia, inferred from the published literature[1,2] is given. All studies show high effective moisture from the area dominated by the Indian Monsoon during the early Holocene, suggesting Holocene optimal climate conditions. In contrast, areas which are dominated by the South-East Asian monsoon and the Westerlies, optimal conditions prevailed there during the mid-Holocene. These apparent contradictions can possibly be explained by the regional uplift and descent of air masses in the Holocene. Strengthened insolation during the early Holocene, possibly caused an enhanced low-level convergence over the Tibetan Plateau which results in the intensification of the summer monsoon. Tibetan Plateau experienced strong air uplift which caused intensified precipitation and air divergence in the upper troposphere. This divergence over the plateau led an intensified descent of air masses and consequently increased aridity in the areas adjacent to the north. The majority of the palaeoclimatic records suggest reduced effective moisture since the late Holocene in the region.

Key words- Central Asia, Holocene, moisture evolution.

1. प्रस्तावना–प्रस्तुत समीक्षा में लिए गए 50 स्थल ऐसे क्षेत्र में (तिब्बतीय पठार, उत्तर–पश्चिम, उत्तर–मध्य चीन और मंगोलिया) स्थित हैं, जो अपनी दो मुख्य विशेषताओं की वजह से जलवायु अध्ययनों के लिए खासे महत्त्व रखते हैं। पहली विशेषता यह है कि, यह क्षेत्र भारतीय मानसून, दक्षिण पूर्वी एशियाई मानसून और पछुवा पवनों के त्रिकोण में स्थित हैं(चित्र–1)। दूसरी विशेषता यह है कि इस इलाके में प्रबल जलवायवी भिन्नता खासतौर पर प्रभावी आर्द्रता से जुड़ी हुई, बहुत पाई जाती है।

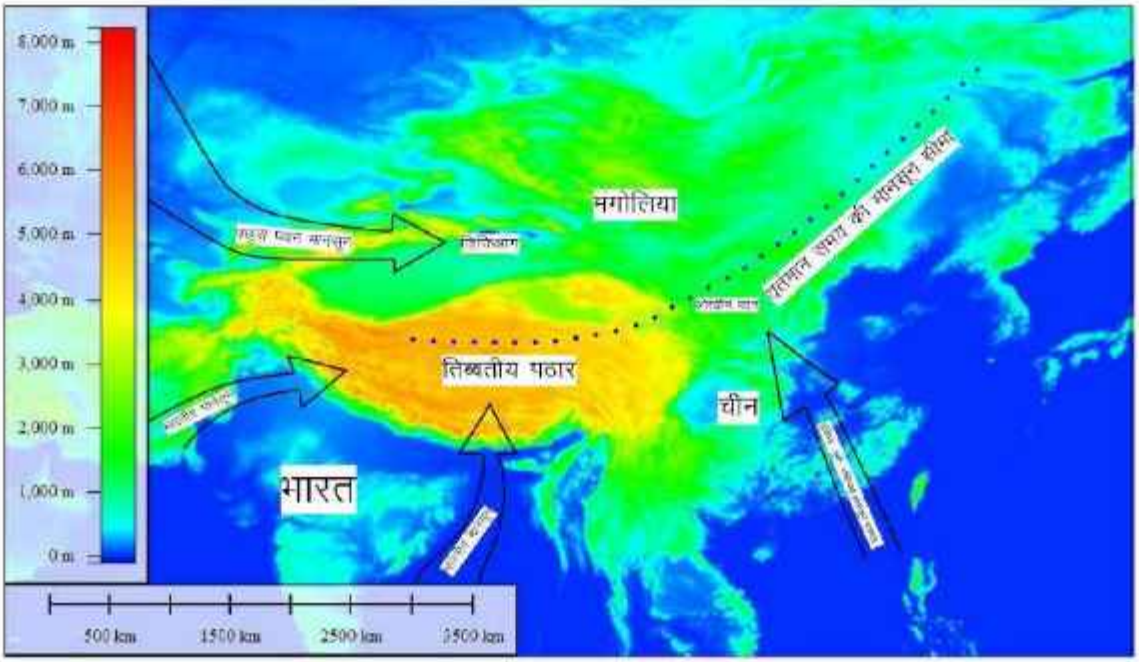

चित्र–1 अध्ययन क्षेत्र में प्रभावी मानसून तंत्र

2. विधि– उपरोक्त क्षेत्र के स्थलों की सूखी झीलों–अनावृत परिच्छेदिकाओं, वर्तमान झीलों, नदीय निक्षेप, पीट दलदल और लोएस परिच्छेदिकाओं में कई पुराजलवायु अध्ययन हुए हैं, जिनमें विभिन्न विधियों द्वारा जलवायु की स्थितियों (शुष्क या आर्द्र) का निर्धारण मृत्तिका खनिज अध्ययन, स्थायी समस्थानिक विश्लेषण–ऑक्सीजन स्थायी समस्थानिक तथा कार्बन स्थायी समस्थानिक, कण अमाप विश्लेषण, कार्बन मात्रा विश्लेषण, कार्बन और नाइट्रोजन अनुपात विश्लेषण, चुम्बकीय प्रभाव्यता, परागकण, ऑस्ट्राकॉड अध्ययन और डायटम अध्ययन से किया गया है। किसी क्षेत्र में जब 50 प्रतिशत से अधिक अध्ययन स्थलों में नम/आर्द्र स्थितियाँ मिली हैं, तब उस क्षेत्र में अनुकूलतम/इष्टतम आर्द्रता मानी गयी है। सभी अध्ययनों में आयु निर्धारण ^{14}C विधि द्वारा किया गया है। होलोसीन आर्द्रता स्थितियों के प्रभावी परिसंचरण तंत्र से जुड़े क्षेत्रीय पहलुओं को स्पष्ट करने के लिए उत्तरीय भारत, उत्तरीय यूनान और तिब्बतीय पठार (100° पूर्व के पश्चिम) के क्षेत्रों से हुए अध्ययनों को भारतीय मानसून के तहत रखा गया है। इसमें भारत में थार मरुस्थल की डिडवान झील, लुकरानसर झील, तिब्बतीय पठार से ज़ाबुये झील, हिडन झील, रेन त्सो (त्सो=झील), सेलिंग त्सो, बैंगगोंग/पैंगगोंग त्सो, सुम्क्सी त्सो, अक्साय्चिन झील, होंग्यान पीट दलदल, वासोंग पीट दलदल, हक्सी लोएस, दुन्दे हिमाच्छादन तथा चीन से चिलू, चिसन्यूं हु, शयेमा झील, वाकी झील में हुए पुराजलवायु अध्ययन शामिल हैं। इसी तरह, ग्रीष्म मानसून की आधुनिक सीमा के दक्षिण के और 100° पूर्व के सभी अध्ययनों को दक्षिण पूर्व एशियन मानसून के साथ रखा गया है, जिसमें चीन के लोएस पठार की युआन्बो लोएस, विनान लोएस, योक्सियन लोएस, ददिवान लोएस, शाजिंपिंग लोएस, जिन्बियन लोएस, दाजीयू झील, ऑरडोस पठार की हेइमुगौ लोएस, मिदिवान लोएस, यांग्तोमाओ लोएस और मध्य आंतरिक मंगोलिया से यानहैजी झील, दहाई झील, साचुकी झील, होलुकु लोएस, लिउज्हौवन लोएस प्रान्त में हुए अध्ययन शामिल हैं। उत्तर से लगे हुए क्षेत्र मुख्यतः ज़िंजिआंग से बोस्टन झील, तरिम नदी, पश्चिमी आंतरिक मंगोलिया से होंग्शुई नदी, संजिओचेंग झील, येमा झील, शिंगदू झील, बैंजियन झील, दुअन्तौलिअना झील, जुयांजे झील और मंगोलिया के डबा नुर (नुर=झील), डोतोन नुर, बयान नुर, गुन नुर, दूद नुर, होव्स्गोल झील, तेल्मेन झील, ज्हालैआईनोर झील और ओज़ेरकी पीट दलदल में हुए अध्ययन शामिल हैं। ज़िंजिआंग पश्चिमी आंतरिक मंगोलिया और मंगोलिया के स्थल सामान्यतः ग्रीष्म मानसून और अधिक पैमाने में पछुवा/पश्चिमी हवाओं से प्रभावित माने जाते हैं, इसलिए इन स्थलों के अध्ययन मध्य एशिया में पछुवा हवाओं की सक्रियता की जानकारी देते हैं।

3. परिणाम

3.1. होलोसीन काल के पूर्व आर्द्रता स्थितियाँ– सबसे अधिक अनुकूल आर्द्रता स्थितियाँ आज से 43 और 37.6 हजार वर्ष पूर्व सुझायी गई हैं। आज से 25.5 हजार वर्ष पूर्व के बाद, माध्य आर्द्रता मान में उल्लेखनीय गिरावट दर्ज की गई है। संपूर्ण क्षेत्र में आर्द्रता न्यूनतम आज से 21.3–19.8 हजार वर्ष पूर्व के बीच पाई गई है। आज से 19.8–17.2 हजार वर्ष पूर्व के बीच माध्य आर्द्रता मान धीरे धीरे बढ़ता है। आज से 17.2 और 15.4 हजार वर्ष पूर्व स्थायी या थोड़ी सी घटी हुई आर्द्रता सुझाई गयी है। परवर्ती समय (आज से 15.4–13.0 हजार वर्ष पूर्व), में प्रभावकारी आर्द्रता में तीक्ष्ण बढ़त प्रदर्शित होती है। आज से 13.0 और 11.6 हजार वर्ष पूर्व के समय अंतराल में कमतर आर्द्रता प्राप्यता की तरफ सुस्पष्ट वापसी दिखाती है। प्लेस्टोसीन–होलोसीन संक्रमण (11.5 हजार वर्ष पूर्व) पर नमी की स्थितियाँ उल्लेखनीय ढंग से आर्द्रतर हो गयी थीं।

3.2 होलोसीन काल की आर्द्रता स्थितियाँ– भारतीय मानसून क्षेत्र, पूर्व होलोसीन (10.9–7.0 हजार वर्ष पूर्व) के दौरान अनुकूलतम आर्द्रता स्थितियों को स्पष्ट करता है और आज से 4.3 हजार वर्ष पूर्व तक अधिक आर्द्र स्थितियाँ दर्शाता है। दक्षिण पूर्व एशियन मानसून क्षेत्र पूर्व होलोसीन से लेकर पश्च होलोसीन के मध्य तक, यानि आज से 11.5–1.7 हजार वर्ष पूर्व अधिक आर्द्र स्थितियाँ दर्शाता है, पर भारतीय मानसून क्षेत्र के विपरीत इस क्षेत्र में अनुकूलतम आर्द्रता पूर्व मध्य होलोसीन (आज से 8.3–5.5 हजार वर्ष पूर्व) के दौरान दर्ज की गयी है। पछुवा प्रदेश, सुस्पष्ट अधिकतम आर्द्रता व्यक्त नहीं करता, बल्कि आज से 12.1 और 2.7 हजार वर्ष पूर्व लगभग स्थिर मान दिखाता है। लघु अधिकतम मान आज से 7.5 और 6.8 हजार वर्ष पूर्व के बीच प्राप्त होता है। पूर्व होलोसीन के दौरान क्षेत्र में एक साथ अधिक शुष्क, आर्द्र और अधिक आर्द्र स्थितियाँ होने के असंगत परिणाम मिले हैं। यद्यपि मानसून प्रभावी इलाकों के विपरीत, अधिक शुष्क स्थितियों के प्रमाण विशेषतः होलोसीन के पहले दो हजार सालों के दौरान पछुवा प्रदेश में सर्वाधिक मिले हैं।

4. होलोसीन के दौरान आर्द्रता विकास पर परिचर्चा– अरब सागर के अवसादों पर हुए पुराजलवायवी अध्ययनों से पता चला है कि भारतीय मानसून शताब्दी और दशक पैमाने पर आतपन अंतर के प्रति अत्यधिक संवेदनशील हैं। 23 हजार वर्ष पर न्यूनतम आतपन के बाद आतपन "लास्ट टर्मिनेशन" काल के दौरान लगातार बढ़ता जाता है और प्लेस्टोसीन–होलोसीन संक्रमण पर अपने अधिकतम मान में पहुँच जाता है। मानसून प्रभावित एशिया भर से स्थलीय अवसादों और उसको घिरे हुए समुद्रों के अध्ययनों से स्पष्ट है कि भारतीय और दक्षिण पूर्वी एशियाई मानसून का प्रबल तीव्रीकरण प्लेस्टोसीन–होलोसीन संक्रमण (लगभग 11.5 हजार वर्ष पूर्व) में घटित हुआ। अरब सागर और दक्षिण चीन सागर से हुए लगभग सभी उच्च विभेदन समुद्रीय पुराजलवायवी अध्ययनों से यह स्पष्ट होता है कि निम्न अक्षांशों के समुद्रीय क्षेत्रों में ग्रीष्मकालीन मानसून होलोसीन के पहले आधे भाग (आज से लगभग 11.5–6 हजार वर्ष पूर्व) के दौरान सबसे प्रबलतम था। समुद्रीय रिकार्ड्स के विपरीत मानसूनी मध्य एशिया के सभी अध्ययन इष्टतम आर्द्रता स्थितियों को प्लेस्टोसीन–होलोसीन संक्रमण के तुरंत बाद के समय में नहीं स्वीकारते हैं बल्कि अध्ययन स्थलों के एक दूसरे के बहुत समीप होने पर भी होलोसीन अनुकूलतम में अत्यधिक भिन्नता मिलती है। इसके साथ ही पूर्व होलोसीन (आज से 11–5 हजार वर्ष पूर्व) के लिए उच्चतम झील स्तर और अनुकूलित वनस्पति परिस्थितियाँ तिब्बतीय पठार की कई झीलों (सुमक्सी सो (सो=झील), सीलिंग सो, ज़ोइगी बेसिन) से भी उल्लेखित हैं। उत्तर–मध्य और उत्तरीय चीन से हुए पुराजलवायवी अध्ययन मध्य होलोसीन अनुकूलतम को स्पष्ट दर्शाते हैं। भारत में थार मरुस्थल की कई झीलों (डिडवाना झीलः आज से 8.3–7.3 हजार वर्ष पूर्व; लुकरानसर झीलः आज से 7.1–5.8 हजार वर्ष पूर्व) से भी सबसे अधिक आर्द्र परिस्थितियों के प्रारम्भिक मध्य होलोसीन के दौरान रहे होने के संकेत दर्ज किए गए हैं। मंगोलिया के पुराजलवायु प्रॉक्सी आंकड़ों के संकलन से पूर्व होलोसीन के, एक अधिक शुष्क प्रावस्था होने का पता चलता है, जबकि मध्य होलोसीन में अधिक आर्द्र परिस्थितियों का संकेत मिला है।

आम पुराजलवायवी पूर्वानुमान के अनुसार, इस क्षेत्र को, ग्रीष्मकालीन मानसून और पछुवा हवाओं के संबंध में अपनी सीमान्त स्थिति के चलते प्रभावी परिसंचरण तंत्रों के स्थानिक फैलाव या सिकुड़न को बहुत अधिक संवेदनशीलता के साथ प्रतिबिंबित करना चाहिए। इस मान्यता के अनुसार, पूर्व होलोसीन के दौरान उच्चतर आर्द्रता मान के लिए तिब्बतीय पठार में बढ़े हुए भारतीय मानसून को जिम्मेदार ठहराया जाता है, जबकि उत्तर और उत्तर–पूर्व के तरफ के क्षेत्र इस समय के दौरान पूरी तरह से शुष्क पछुवा हवाओं और कमजोर दक्षिण पूर्वी एशियाई ग्रीष्मकालीन मानसून से प्रभावित रहे। यह समझाया नहीं जा सका है कि क्यों मजबूत भारतीय मानसून ने अपना प्रभाव और उत्तर की तरफ नहीं फैलाया। इसके अलावा, दक्षिण चीन समुद्र और अरब सागर से हुए अध्ययनों की तुलना करने पर यह स्पष्ट होता है कि दक्षिण पूर्वी एशियाई मानसून में अल्पावधिक घटनाएं और दीर्घविधि परिवर्तन भारतीय मानसून दौर में हुए विचरण के समकालीन हैं। निष्कर्षतः आर्द्र प्रावस्थाओं से संबंधित रखने वाली क्षेत्रीय भिन्नताएं महाद्वीपों में परिसंचरण प्रक्रियाओं के बीच अंतर होने से सम्भव नहीं हैं। पूर्व होलोसीन के दौरान तिब्बतीय पठार पर आर्द्र और गर्म परिस्थितियों और इसके साथ ही उत्तर के पास के इलाकों में शुष्क परिस्थितियों के लिए एक अन्य स्पष्टीकरण शायद हवा संहति (द्रव्यमान) के चढ़ाव और उतार में क्षेत्रीय भिन्नता से जुड़ा हुआ है। गर्मियों में आतपन हवा संहति के तीव्र उत्थान को बढ़ावा देता है (जो गुप्त उष्मा की निर्मुक्ति करता है और इसलिए इलाके में वर्षा हो जाती है) जो निम्न दबाव सेल का निर्माण करता है (जिसे "तिब्बतन लो" कहा जाता है)। इसके चलते

तिब्बतीय पठार के ऊपर निचले क्षोभ मंडल में बड़े पैमाने के अभिसरण (चक्रवाती परिसंचरण) का निर्माण होता है, जिसके परिणाम स्वरूप ऊपरी क्षोभ मंडल में एक प्रति चक्रवाती परिसंचरण और अपसरण बनाता है। यह परिसंचरण तिब्बतीय पठार के उत्तर के पास के इलाकों के निचले भागों में हवा संहति के अवतलन को बढ़ाता है जो क्षेत्र में शुष्कता को बढ़ाता है। इन परिसंचरण तरीकों की तीव्रता, आतपन की तीव्रता और इसलिए मानसून गतिविधि का लगभग अनुसरण करती है। अतः परिणामस्वरूप पूर्व और मध्य होलोसीन के दौरान तिब्बतीय पठार पर तीव्रतर मानसून गतिविधि और बढ़े हुए वर्षण का संयोजन, दूर उत्तर में स्थित निचले भू–भागों में बढ़ी हुई शुष्कता का कारण रही होगी। इस तथ्य का क्षेत्र से संकलित अध्ययनों से भी संकेत होता है जो पठारीय क्षेत्रों में अनुकूल आर्द्रता परिस्थितियाँ और आंतरिक मंगोलिया, ज़िंज़िआंग और मंगोलिया में शुष्क परिस्थितियाँ स्पष्ट करते हैं।

5. निष्कर्ष– सामान्यतः मानसून प्रभावित एशिया में जलवायु परिवर्तन भारतीय मानसून के शिथिलन या सुदृढ़ीकरण के अनुक्रिया में हुई क्रमशः ठन्डे और शुष्क या गर्म और आर्द्र परिस्थितियों के संयोजन के रूप में जान पड़ता है। यद्यपि भिन्न संयोजन भी देखे गए हैं, पर वे प्रबल उतार–चढ़ाव और जलवायु अस्थिरता के परिणाम हैं। एशिया में अधिकांश होलोसीन महाद्वीपीय जलवायु के अध्ययन सरोवरी अवसादों पर हुए हैं, जो झील स्तर के परिवर्तनों और वनस्पति गतिशीलता की जानकारी देते हैं। जलवायु परिवर्तन प्रभावी आर्द्रता में परिवर्तनों जो कि तापमान और वर्षण परिवर्तनों के संयुक्त संकेत को दर्शाते हैं, के अनुरूप होता है। खासतौर पर अत्यन्त शुष्क प्रदेशों में अनियमित वर्षण के साथ प्रबलतर ग्रीष्मकालीन मानसून कम प्रभावकारी आर्द्रता (बढ़े वाष्पन के कारण) में परिणिति होती है। इसके विपरीत आर्द्र क्षेत्रों में वाष्पन केवल हल्का सा बढ़ जाता है चूँकि हवा पहले से ही जल वाष्प से पूरी तरह संतृप्त होती है। प्रबलतम मानसून की वजह से झीलों का स्तर बढ़ता है और पादप वृद्धि के लिए प्राप्य आर्द्रता बढ़ती है। अतः यह निष्कर्ष दिया जा सकता है कि होलोसीन के पहले आधे भाग के दौरान प्रबलतर ग्रीष्मकालीन मानसून के परिणामस्वरुप एशिया के अंदरूनी शुष्क देशों में प्रभावकारी आर्द्रता घटी होगी और आर्द्र क्षेत्रों में विशेषतः पूर्वी तिब्बतीय पठार में अधिक अनुकूल परिस्थितियाँ बनी होंगी।

6. आभार– यह अध्ययन कार्य बीरबल साहनी पुरावनस्पति विज्ञान संस्थान, लखनऊ में सम्पन्न हुआ। डॉ0 देवव्रत पाठक भाषाई सुधार में सहायता और श्री अजय कुमार श्रीवास्तव टंकण में मदद के लिए धन्यवाद के पात्र हैं।

सन्दर्भ

1. लॉन्ग, हा0; लाई, ज0 पी0; वांग ना0 एवं ली, यू(2010) होलोसीन क्लाइमेट वेरिएशंस फ्रॉम ज्हुयुजी टर्मिनल लेक रिकॉर्ड्स इन ईस्ट एशियन मानसून मार्जिन इन एरिड नोर्दर्न चाइना, क्वॉटनरी रिसर्च अंक, खण्ड–74, मु0पृ0 46–56।
2. हर्ज़्च्यू, यू0(2006) पेलियो–मोइस्चर एवल्यूशन् इन मानसूनल सेंट्रल एशिया ड्यूरिंग दि लास्ट 50,000 इयर्स, क्वॉटनरी साइंस रिव्यूज़, खण्ड–25, मु0पृ0 163–178।
3. इनमें प्रयुक्त सन्दर्भ ।

क्षय रोगः एक वैश्विक चुनौती और भारत के लिये गम्भीर समस्या

मोहित कुमार तिवारी[1], प्रतिभा गुप्ता[2] तथा आइजेक विलियम[1]
[1]जीव विज्ञान विभाग, लखनऊ क्रिश्चियन कॉलेज, लखनऊ–226018, उ0प्र0, भारत
[2]भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पर्यावरण एवं वन मंत्रायल, भा0सं0 सी0एन0एच भवन
आ0ज0चं0 बोस वनस्पति उद्यान, हावड़ा– 711103, प0ब0, भारत
drmohit2010@gmail.com, drpratibha2014@gmail.com

प्राप्त तिथि–02.05.2015, स्वीकृत तिथि–22.09.2015

सार

क्षय रोग एक अत्यन्त प्राचीन एवं गम्भीर रोग है, इस रोग का इतिहास मानव के विकास के साथ जुड़ा है, यह रोग केवल मनुष्यों में ही नहीं वरन् मछलियों, उभयचरों, सरीसृपों, पक्षियों एवं अन्य स्तनपायी जन्तुओं में भी पाया जाता है। यह रोग जन्तुओं से मनुष्य और मनुष्य से जन्तुओं में फैल सकता है। क्षयरोग *माइकोबैक्टेरियम टयूबरक्यूलोसिस* नामक रोगाणु से होता है। *माइकोबैक्टेरिया* की लगभग 106 प्रजातियाँ होती हैं जो जन्तुओं और मनुष्यों में क्षय रोग, त्वचीय अल्सर, कुष्ठ रोग तथा अन्य प्रकार के संक्रमण उत्पन्न करते हैं, यह रोगाणु के शरीर के समस्त अंगों में संक्रमण कर सकता है। *माइकोबैक्टेरियम टयूबरक्यूलोसिस* के अतिरिक्त *माइकोबैक्टेरिया* की अन्य प्रजातियों को असामान्य *माइकोबैक्टेरिया* कहा जाता है, जो सामान्यतः औषधि प्रतिरोधी होते हैं और क्षय प्रति जैविक औषधियों से उनका उपचार सम्भव नहीं होता। क्षय रोगाणु की कोशिका भित्ति अत्यन्त मोटी होती है उसी लिये सामान्य प्रति जैविक औषधियों (एण्टी बायोटिक्स) उन पर प्रभावी नहीं होते हैं कुछ विशेष क्षय रोगाणु प्रति जैविक औषधियों (एण्टी टयूबरक्यूलर ड्रग्स) से ही उनका उपचार सम्भव था, परन्तु इन औषधियों के अपूर्ण व अनियमित उपयोग ने क्षय रोगाणु को औषधि प्रतिरोधी बना दिया परिणाम स्वरूप यह रोग असाध्य हो गया है और केवल भारत के लिये ही नहीं वरन् पूरे विश्व के लिये एक गम्भीर चुनौती बन गया है। आज विश्व स्वास्थ्य संगठन व भारत सरकार ने उसे अति वरीयता स्तर पर रख कर उपाय प्रारम्भ किये है।

बीज शब्द– माइकोबैक्टेरिया, प्रति क्षय औषधि, बहु औषधि प्रतिरोधी, असामान्य क्षय रोगाणु।

Tuberculosis: a global challenge and serious problem for India

Mohit Kumar Tiwari[1], Pratibha Gupta[2] and Issac William[1]
[1]Deptt of Biological Sciences, Lucknow Christian College, Lucknow, 226018, U.P., India
[2]Botanical Survey of India, MOEF & CC, Govt of India
CNH Building, A.J.C. Bose Botanic Garden, Howrah- 711103, W.B., India
drmohit2010@gmail.com, drpratibha2014@gmail.com

Abstract

"Tuberculosis is a very ancient serious disease; its history is closely associated with evolution of man. This disease is found not only in man but also in fishes, amphibians, reptiles, birds and other mammals. It spreads from man to animals and animals to man. Tuberculosis is caused by a rod like bacteria *Mycobacterium tuberculosis*. There are about 106 species of *Mycobacteria* which are capable of causing. T.B., Leprosy, Skin Ulcers and other mycobactcrial infections not only in lungs but in almost all organs of human body. *Mycobacteria* other than *M. tuberculosis* are called as atypical *Mycobacteria* which are mostly resistant to anti tubercular drugs. The cell wall of *Mycobacteria* is very thick and resistant so killing of these bacteria by antibiotics is not easy hence some special anti tubercular antibiotics are used for treatment of this infection. Improper and incomplete use of antitubercular drugs has made this bacteria multidrug resistant

(M.D.R) and non curable. Now drug resistant tuberculosis is a serious international problem and is top priority of World Health Organization and Govt. of India.

Key words- *Mycobacteria*, anti tubercular drugs, multi drug resistant, atypical mycobacteria.

प्रस्तावना– पृष्ठधारियों के विकास के साथ–साथ *माइकोबैक्टेरियम* नामक रोगाणु का संक्रमण पाया गया। *माइकोबैक्टेरिया* की लगभग 106 विभिन्न प्रजातियां होती है जो मछलियों, उभयचरों, सरीसृपों, पक्षियों और स्तनधारियों सभी में संक्रमण उत्पन्न करती हैं। स्तनधारियों में होने वाला संक्रमण हमारे लिये ज्यादा विकट समस्या है। इसके संक्रमण से हमारे पालतू पशुओं एवं वन्यजीवों में क्षयरोग जैसे लक्षण उत्पन्न होते हैं। अभी कुछ वर्षों पहले लखनऊ के जन्तु उद्यान में एक शेर की मृत्यु क्षय रोग के कारण हो गई थी। पूरे विश्व में जन्तु उद्यानों और वनों के शेर, हाथी, बन्दरों की विभिन्न प्रजातियों और अन्य स्तनपायी जीवों की मृत्यु क्षय रोग के कारण होती रही है। ऐसा भी माना जाता है कि हो सकता है उन वन्य जीवों को यह रोग संक्रमित मनुष्य के द्वारा फैलाये गये रोगाणु से हुआ होगा। क्षय रोग/यक्ष्मा/राजरोग/टी0बी0 या ट्यूबरक्यूलोसिस अत्यन्त प्राचीन रोग है इस रोग के लक्षण मिस्र की ममियों में भी पाये गये हैं। हमारे यहाँ सुश्रुत संहिता में भी इसका वर्णन मिलता है। मनुष्य में यह रोग *माइकोबैक्टेरियम ट्यूबरक्यूलोसिस* नाम रोगाणु से होता है। यह रोग मुख्यतः फेफड़ों में होता है। परन्तु इसके अतिरिक्त यह शरीर के किसी भी भाग में हो सकता है और इसका कारण *माइकोबैक्टेरियम ट्यूबरक्यूलोसिस* के अलावा इस रोगाणु की अन्य प्रजातियाँ भी होती है जिन्हें असामान्य क्षय रोगाणु कहा गया है। इस रोग में कमजोरी, सांस फूलना, खाँसी आना, लम्बे समय तक हल्का बुखार, अन्य प्रभावित अंगों से सम्बन्धित लक्षण मुख्य होते हैं। इस रोग का परीक्षण एक्सरे, बलगम परीक्षण, रक्त परीक्षण, पी0पी0डी0 या ट्यूबरक्यूलीन या मोन्टाक्स टेस्ट द्वारा किया जाता है। क्षय रोग की पुष्टि होने पर इसका इलाज काफी लम्बे समय तक किया जाना आवश्यक होता है जिससे शरीर में रोगाणुओं को पूर्ण रूप से नष्ट किया जा सके।

किसी समय क्षय रोग अथवा टी0बी0 एक असाध्य रोग माना जाता था मगर अस्सी व नब्बे के दशक में यह रोग इतना घातक नहीं समझा जाता था, पर आज यदि मैं आपसे कहूँ कि एक रोगी जिसे क्षय रोग था, चिकित्सक अपनी पूरी कोशिश के बाद भी उसे बचा न सके, चुपचाप खड़े रोगी को पल–पल मौत के मुँह में जाते देखते रहे, तो हो सकता है आपको विश्वास न हो, मगर यह सच है। आज जब चिकित्सा विज्ञान इतनी प्रगति कर रहा है और हम क्षय रोग पर लगभग पूर्ण विजय पा चुके थे ऐसी स्थिति में यह बात गले उतरना सम्भव नहीं है। मगर पिछले कुछ वर्षों के अध्ययनों से इस तथ्य की पुष्टि हुयी है कि क्षय रोग भारत में ही नहीं पूरे विश्व में विकराल रूप धारण कर चुका है। क्षय रोग से सम्बन्धित नयी समस्या जो हमारे सामने आयी है, उसमें सबसे महत्वपूर्ण है कुछ रोगियों पर सामान्यतः उपलब्ध दवाओं का असर न होना अर्थात टी0बी0 के रोगाणु का औषधि प्रतिरोधी हो जाना। इसके अतिरिक्त अन्य समस्याएं जैसे क्षय रोग से बचने के लिए लगाये जाने वाले टीके (बी0सी0जी0) का अप्रभावी होते जाना, कुछ रोगियों में क्षय रोग होने पर स्पष्ट लक्षण न होना, जिससे उन्हें सही समय पर उचित इलाज देना सम्भव नहीं हो पाता है। कुछ क्षय रोगियों में "असामान्य क्षय रोगाणु अर्थात एटिपिकल माइकोबैक्टीरिया" का पाया जाना जो कि अधिकतर औषधि प्रतिरोधी है और इन सबसे ऊपर एड्स के मरीज में टी0बी0 संक्रमण होना है। किसी समय यह रोग निर्धन और कुपोषित लोगों में होने वाला रोग माना जाता था। परन्तु आज देखा जा रहा है कि सम्पन्न सुपोषित और स्वस्थ्य दिखने वाले लोगों में भी क्षय रोग का संक्रमण पाया जा रहा है।

विश्लेषण– ये समस्याएँ क्यों और कैसे उत्पन्न हुई, यह पता लगाने की कोशिश में वैज्ञानिकों के सामने जो तथ्य सामने आये हैं, वे आज की चिकित्सा पद्धति पर तो प्रश्न चिन्ह लगाते ही हैं, साथ ही साथ आने वाले कल का जो भयावह रूप उत्पन्न हो रहा है उसका अनुमान लगा पाना सहज ही सम्भव नहीं है। विशेष रूप से विकासशील एवम् आर्थिक रूप से कमजोर देशों में इस समस्या का जो सबसे महत्वपूर्ण कारण पता लगा है, वह है "रोगी द्वारा ठीक से डॉक्टर के निर्देशानुसार इलाज न कराना है" जिसके परिणाम स्वरूप रोगाणु औषधि प्रतिरोधी क्षमता उत्पन्न कर लेता है यह समस्या आज कल रोगाणुओं से होने वाले सभी संक्रमणों (बैक्टीरियल इन्फेक्शन्स) के साथ जुड़ती जा रही है। इस रोग के फैलने के कारणों में असंतुलित आहार, भागदौड़ वाली जीवनशैली, वातावरण में बढ़ता प्रदूषण जिससे हमारा प्रतिरोधी तन्त्र लगातार दुर्बल होता जा रहा है वायु प्रदूषण के कारण नाक गले और श्वसन तन्त्र में जल्दी–जल्दी होने वाले संक्रमण एलर्जी हमारे भोजन तथा पानी में भारी धातुओं विशेष रूप से शीशा, पारद, एल्यूमिनियम इत्यादि का आना जो हमारे प्रतिरोधी तन्त्र को कमजोर करते हैं। परिणाम स्वरूप हमारा शरीर रोगों के लिये सुग्राही हो जाता है, और क्षय रोग का संक्रमण आसानी से हो जाता है।

यदि किसी व्यक्ति को 15–20 दिनों से खांसी आ रही हो या बिना किसी स्पष्ट रोग के लक्षण के रोगी शिथिल हो रहा हो या शरीर का तापक्रम सामान्य से अधिक रहता हो विशेष रूप से सन्ध्या और रात्रि के प्रथम प्रहर में, क्षुधा का कम होना, लम्बे समय से आहार नाल सम्बन्धी विकार, त्वचा पर कोई व्रण जो जीवाणु प्रतिरोधी औषधियां खाने व लगाने पर भी ठीक न हो रहा हो, मस्तिष्क व शरीर के अन्तरांगों से सम्बन्धित कोई समस्या जो काफी समय से ठीक न हो रही हो इसका सम्बन्ध क्षय रोग से हो सकता है। ऐसे में सिर्फ विशेषज्ञ चिकित्सक से परामर्श कर क्षय रोग सम्बन्धी परीक्षण कराने चाहिए। आज भारत

में लगभग 1.7 करोड़ लोग क्षय रोग से ग्रस्त है, प्रतिदिन लगभग 1000 लोगों की क्षय से मृत्यु होती है और लगभग 700 नये लोगों को इसका संक्रमण हो रहा है। सामान्यतः क्षय रोग की औषधियों को हम मुख्य तीन स्तरों में विभाजित कर सकते हैं। प्रथम स्तर में सामान्यतः वे औषधियां आती हैं जो किसी भी नये रोगी का इलाज प्रारम्भ करने में प्रयोग की जाती हैं। ये दवायें विशेष रूप से तब ज्यादा प्रभावी होती है, जब रोग प्रारम्भ में ही पता चल जाये तथा रोगी ने इससे पहले कभी क्षय रोग की दवाओं का प्रयोग न किया हो। दूसरे स्तर की औषधियां कुछ विशेष औषधियां होती है, इनका प्रयोग प्रथम स्तर की कुछ औषधियों के साथ में भी किया जाता है। ये उन रोगियों को दी जाती है जो पहले इलाज करके छोड़ चुका हो या रोग ज्यादा बढ़ चुका हो या जिनमें प्रथम स्तर की औषधियां प्रभावी सिद्ध न हो रही हो। तीसरी श्रेणी की औषधियां "विशिष्ट" मानी जाती है, यह दवाएं काफी मंहगी भी पड़ती है। इनका प्रयोग डॉक्टर तभी करते हैं, जब प्रथम तथा द्वितीय श्रेणी की औषधियां अप्रभावी सिद्ध हो चुकी हो। परन्तु आज स्थित भिन्न है आज चिकित्सालयों में आने वाले 50 प्रतिशत रोगी औषधि प्रतिरोधी क्षय रोग से ग्रस्त आते हैं और उसे बहु औषधि उपचार देना पड़ता है।

क्षय रोग से सम्बन्धित जो समस्यायें हमारे सामने हैं, वह दवाओं के सही ढंग से सही समय तक प्रयोग न करने के कारण उत्पन्न हुई है। जब एक क्षय रोगी चिकित्सक के पास पहुंचता है तो चिकित्सक उसका परीक्षण करने के पश्चात दवायें बताते हैं। साथ ही साथ यह भी बता देते हैं कि उपचार बारह से अट्ठारह माह तक चलेगा। रोगी औषधियां खाना शुरू करते है, 3–4 माह बाद रोगी को लगता है कि अब वह ठीक हो गया है क्योंकि खांसी भी नहीं है, बुखार भी नहीं आता है, वजन भी बढ़ गया है और भूख भी खूब लग रही है, ऐसी स्थिति में वह डॉक्टर के दिये हुए निर्देश भूल जाता है। इसके साथ ही शुरू हो जाती है लापरवाही। पहले औषधि खाने के समय में गड़बड़ी, फिर कभी–कभी औषधि न खाना और फिर धीरे–धीरे इलाज छोड़ देना। फलस्वरूप इलाज छोड़ने के छः सात माह के अन्दर ही रोगी दोबारा डॉक्टर चिकित्सक के पास पहुंचता है और इस बार उसकी तबीयत पिछली बार की अपेक्षा ज्यादा खराब होती है अब चिकित्सक के सामने एक नई समस्या आती है वह यह कि पिछली बार रोगी को जो दवायें दी गयी थीं वे सब उसके लिए बेकार है, क्योंकि रोगी के शरीर में उपस्थिति रोगाणुओं ने उन दवाओं के लिए प्रतिरोधी क्षमता उत्पन्न कर ली होती है। अतः अब चिकित्सक के सामने एक मात्र विकल्प है कि रोगी को अधिक मात्रा में बहु औषधियां उपचार अर्थात मल्टीपल ड्रग थिरेपी दें, आजकल औषधि प्रतिरोधकता बढ़ जाने के कारण यही चिकित्सा विधि प्रयोग की जा रही है। परन्तु अधिकांश रोगी औषधि की अधिक मात्रा और उनसे होने वाले द्वितीयक प्रभाव के कारण अन्य समस्याओं से ग्रस्त हो जाते हैं जो अक्सर जीवन के लिये घातक भी होती है। यदि इस बार भी रोगी ने फिर वही खेल दोहराया तो बेहतर औषधियां भी नहीं है। अब उसका इलाज किस दवा से और उससे भी बड़ी समस्या यह कि यह रोगी जिन लोगों में रोग फैलायेगा उनका क्या होगा। इस घटनाक्रम में रोगी अपनी गलती नहीं मानता वरन् वह चिकित्सक की योग्यता पर शक करता है। मरीज इलाज में लापरवाही क्यों बरतने लगता है, इसका मुख्य कारण यह है कि सामान्यतः एक औसत भारतीय जो दो वक्त रोटी का इन्तजाम मुश्किल से कर पाता है उसके लिए मूल्यवान औषधियां खरीदना और पौष्टिक आहार लेना काफी कष्टदायी है और वह भी एक डेढ़ वर्ष तक लगातार। यही कारण है कि उसे पांच छः माह के इलाज के बाद जैसे ही प्राण बचते दिखाई देते हैं, वह दवा से ज्यादा रोटी पर ध्यान देने लगता है, जिसके परिणाम स्वरूप उसे अगली बार पहले से ज्यादा मूल्यवान दवाओं के लिये अपनी रोटी छोड़नी पड़ती है, वैसे तो सरकार की ओर से क्षय रोग की औषधियां निःशुल्क दिये जाने का इन्तजाम है मगर राजधानी एवम् मुख्य नगरों के बड़े सरकारी अस्पतालों को छोड़कर कहाँ किसे कितनी कौन–कौन सी औषधियां मिलती है यह तो कोई भुक्त–भोगी ही जानता होगा। इसी कारण यह समस्या हर बार जटिल रूप में हमारे सामने आती है। इसी के साथ जनता में रोग सम्बन्धी ज्ञान का अभाव व भ्रान्तियां भी एक महत्वपूर्ण कारण हैं।

लगभग तीन दशक पहले जब हमारा क्षय रोग सम्बन्धी विज्ञान बहुत प्रगति कर गया था और ऐसा प्रतीत हुआ था मानो इस रोग पर पूर्ण विजय पा ली गयी है, जिसके फलस्वरूप क्षय रोग सम्बन्धी अध्ययनों तथा शोध कार्यों की प्राथमिकता के स्तर से हटाकर, अन्य रोगों पर ध्यान केन्द्रित कर दिया गया जिसके कारण क्षय रोग पर नये शोधों, चिकित्सा पद्धति के नये आयामों की तलाश की गति धीमी पड़ गयी। परिणाम स्वरूप क्षय रोग की औषधि अनुसंधान पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया इसी कारण पिछले 20 वर्षो में क्षय रोग की एक भी नयी प्रभावी सुरक्षित औषधि बाजार में नहीं आयी। जब दक्षिण भारत के चिंगलपेट में क्षय रोग के टीके की प्रमाणिकता पर हमें संशय हुआ, तभी विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्टों में आसामान्य क्षय रोगाणु तथा औषधि प्रतिरोधी रोगाणु के कारण क्षय रोग की बढ़ती हुई जटिलताओं में पुनः हमारा ध्यान क्षय रोग की ओर खींचा।

निष्कर्ष– आज आवश्यकता इस बात की है कि रोगी, उनके परिवार के लोग, उसके मित्र, चिकित्सक, वैज्ञानिक तथा सरकार सब इस प्रश्न पर गम्भीरता से विचार करें तथा कुछ विशेष बातों का ध्यान रखे जैसे कि रोगी को चाहिए कि वह रोग की गम्भीरता को समझे मगर इसे असाध्य न समझे, अच्छे विशेषज्ञ डाक्टर से ही इलाज कराये तथा उसके द्वारा दिये गये निर्देशों तथा समय सीमा दोनों का कड़ाई से पालन करें। रोगी के परिवार वालों और मित्रों को चाहिए कि वे रोगी के साथ सहयोग करें और अगर वह इलाज में शिथिलता बरते तो उसे समझाये। चिकित्सकों और वैज्ञानिकों के कन्धों पर आज वास्तव में बहुत बड़ी जिम्मेदारी आयी है कि वे नये और ज्यादा प्रभावी टीके की खोज के साथ–साथ नयी ज्यादा प्रभावी सस्ती तथा कम

समय अवधि में प्रभाव देने वाली चिकित्सा विधियां खोजें। सबसे अधिक दायित्व निर्वहन जिम्मेदारी इस समय सरकार को करनी है। वह, इस रोग को पूर्ण रूप से विजित समझ कर इसकी ओर से बेखबर न रहें वरन इस रोग के इलाज में प्रयोग की जाने वाली औषधियों के निर्माण, वितरण व मूल्य पर गम्भीरता से ध्यान दें, रोगी पूरे समय तक ठीक से इलाज कराये तथा रोगी और उसके परिवार के लोग, यह रोग ज्यादा न फैला सके इसके लिए कठोर नियम बनाये जायें। इसके साथ ही साथ यह भी देखा जाये कि क्या टी0बी0 एसोसिएशन, विश्व स्वास्थ्य संगठन तथा सरकार द्वारा दी गयी आर्थिक एवं चिकित्सीय सुविधाओं का सही उपयोग हो रहा है। क्षय रोग सम्बन्धी खोजों को प्राथमिक स्तर की वरीयता दी जाये अन्यथा कहीं ऐसा न हो कि हम पुनः आज से पचास–साठ साल पुरानी दशा में पहुँच कर इस रोग के सामने असहाय हो जायें। आज जब सारे विश्व से विशेष रूप से अविकसित और विकासशील देशों से आ रही रिपोर्टों में क्षय रोग का विनाशकारी रूप सामने आ गया है। अमेरिका, यूरोप, ऑस्ट्रेलिया, जापान जैसे विकसित देश भी इसकी चपेट में है। आज हमारे सामने इस समय दो रक्तबीज रूपी दैत्य खड़े हैं एक ओर एड्स और दूसरी ओर क्षय रोग, जो हर पल बढ़ रहे हैं। दोनों के सबसे अधिक रोगी भारत में ही है। आज क्षय रोग हमारे लिये एड्स से बड़ी चुनौती है। औषधि प्रतिरोधी क्षय रोगाणु, असामान्य क्षय रोगाणु तथा एड्स संयुक्त क्षय रोग ने अब वीभत्स रूप धारण करना शुरू कर दिया है। आज हमारे देश के नीति निर्धारकों की वैज्ञानिक सोच में भी काफी कमी आयी है। इसी कारण वैज्ञानिक शोधों, चिकित्सा शास्त्र एवं विज्ञान अध्ययन को दोयम दर्जे का स्थान दिया जाने लगा है और देश की वास्तविक ज्वलन्त समस्याओं को नकार दिया जाता है। हमारे देश के कर्णधारों, शासन प्रशासन के शीर्ष पर बैठे लोगों को सोचना होगा कि हमें अगर वास्तव में प्रगति करनी है तो देश के लोगों का रोग–मुक्त होना आवश्यक है। औषधि प्रतिरोधी संक्रमण, क्षय रोग जैसी विभिषिकाओं पर यदि समय रहते अंकुश नहीं लगा तो वो ये देश की प्रगति में गम्भीर बाधा बनेंगी, इन सब तथ्यों को ध्यान में रखते हुए केन्द्र सरकार ने 23 अप्रैल 2015 को **रिवाइज्ड नेशनल टयूबरक्यूलोसिस कार्यक्रम** प्रारम्भ किया है जिसमें नये सिरे से क्षय रोग का उन्मूलन करने के लिये योजना बनाई गई है। हमारे देश में योजनायें और उनका क्रियान्वयन कम्प्यूटर हार्डडिस्क से निकल कर दलालों के माध्यम से कागज की फाइलों पर फैल जाता है। बहुत कुछ कर दिया जाता है मगर सार्थक कुछ भी नहीं होता है। अगर सचमुच होता तो यह समस्या हमारे सामने न होती अभी भी बहुत कुछ हो सकता है। **रिवाइज्ड नेशनल टयूबरक्यूलोसिस कार्यक्रम** से काफी सुधार हो सकता है। परन्तु हमारी जानकारी, जागरूकता, सहयोग ही हमें इस महामारी से बचा सकती है।

संदर्भ

1. कैंसल, एम0 एवं कैलेरी, जे0 आर0(1974) *माइकोबैक्टेरियम गैडियम*, टयूबरक्ल, खण्ड–55, अंक–4, मु0पृ0 294–308।
2. कार्पे, आर0 एफ0 एवं अन्य(1961) *डेथ ड्यू टू माइकोबैक्टेरियम फारटयूटम*, जे0 अमे0 मे0 एसो0, खण्ड–177, मु0पृ0 262–263।
3. क्रिस्टेन, आई0 बास एवं अन्य(2014) प्री कोल्मबियन *माइकोबैक्टेरियल जिनाम रिवील्स सील्स एज़ सोर्स ऑफ न्यू वर्ल्ड ह्यूमन टयूबरक्यूलोसिस*, नेचर, पृ0 13591।
4. मिचालस्का, जेड0; कोक्यूला, के0 एवं गुकविन्सकी, ए0(1978) *ऑक्यूलर टयूबरक्यूलोसिस इन टाइगर*, आइ0 एस0 इ0 जेड, खण्ड–20, मु0पृ0 297–298।
5. स्टैनफोर्ड, जे0 एल0 एवं गनर्थोपे, डब्लू0 जे0(1971) *स्टडी ऑफ सम फास्ट ग्रोइंग स्कोटोक्रोमोजेनिक माइकोबैक्टिरिया*, ब्रि0 ज0 एक्स0 पैथोल0, खण्ड–52, मु0पृ0 627–637।
6. स्टील, जे0 एच0 एवं रैने, ए0 एफ0(1958) *ऐन इपीजूओटिक ऑफ बोवाइन टूयूबरक्यूलोसिस इन बोरबाडोस, वेस्टइण्डीज*, अमे0 रेव0 रेस्प0 डिज0, खण्ड–77, मु0पृ0 908–922।
7. सूकामूरा, एम0(1973) *न्यू स्पीसीज़ ऑफ रैपिडली ग्रोइंग स्कोटोक्रोमोजेनिक माइकोबैक्टीरिया, माइकोबैक्टेरियम छुबुएन्स*, मेडि0 बायोल0, खण्ड–86, मु0पृ0 13–17।
8. तिवारी, एम0 के0; साईंबाबा, पी0 एवं गुप्ता, एस0 के0(1982) *पैथोलॉजी ऑफ न्यूली आइसोलेटेड माइकोबैक्टिरिया टेनटेटिवली लेवेल्ड एज़ माईकोबैक्टेरियम लखनवी इन कामन लंगूर मंकी प्रेस्बाइटस एन्टलस (डिफ्रेस्नी)*, इण्डि0 वेट0 मेड0 जे0, खण्ड–6, मु0पृ0 87–90।
9. तिवारी, एम0 के0 तथा गुप्ता एस0के0(1983) *टयूबरक्यूलोसिस इन फ्रॉग रना टिग्रिना(दाउद)*, इडि0 जे0 एक्स0 बायोल0, खण्ड–21, अंक–4, मु0पृ0 219–221।
10. तिवारी, एम0 के0 एवं गुप्ता पी0(1999) *माइकोबैक्टेरियम लखनवेन्स, ए न्यू एनवायरमेन्टल हजार्ड*, एडवान्सेस इन इनवायरमेन्टल बायोपोल्यूशन, ए0 पी0 एच0 पब्लीकेशन कॉर्पोरेशन, न्यू दिल्ली, भारत, खण्ड–22, मु0पृ0 167–177।
11. किआलिएर, ज0 तथा जोवर्ट, एल0(1974) *इपीडिमोलोजिक देस इनफेक्शन्स अ माइकोबैक्टेरिएस एटिपिक्यूएस लियूर कान्सीक्यूवेन्सस एलर्जीगोलोजिक्सिस एट इम्यूनोलॉजिक्यूविस*, लियो0 मेडि0, खण्ड–232, मु0पृ0 597–601।

प्रकृति के दो प्रमुख औषधीय प्रदेयः अलसी और तुलसी

पल्लवी दीक्षित
असिस्टेंट प्रोफेसर, वनस्पति विज्ञान विभाग
महिला विद्यालय डिग्री कॉलेज, लखनऊ–226018, उ0प्र0, भारत
drpallavidixit80@gmail.com

प्राप्त तिथि–02.05.2015, स्वीकृत तिथि–10.08.2015

सार

अलसी और तुलसी प्रकृति के दो महत्वपूर्ण औषधीय प्रदेय हैं। इनका उल्लेख भारत के प्राचीन ग्रन्थों में भी है और वर्तमान में देश–विदेश के वैज्ञानिक अनुसन्धानों के द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि इनके सेवन से विभिन्न प्रकार के सामान्य एवं असाध्य रोगों का निदान भी सम्भव है तथा पर्यावरण की पवित्रता एवं शुद्धीकरण में भी इनका अस्तित्व अत्यन्त महत्वपूर्ण है, जिसका संक्षिप्त अध्ययन इस आलेख में प्रस्तुत किया गया है।

बीज शब्द– प्रकृति, औषधीय प्रदेय, अलसी, तुलसी।

The two main medicinal gifts of nature: Alsi and Tulsi

Pallavi Dixit
Assistant Professor, Department of Botany
Mahila Vidyalaya Degree College, Lucknow-226018, U.P., India
drpallavidixit80@gmail.com

Abstract

Plants are the most important source of medicines and among them Tulsi and Alsi (Linseed) have been well documented for their therapeutic potential. These plants have been used for thousand years in Ayurveda for their diverse healing & spiritual properties. Tulsi and Alsi have been widely used for curing various ailments due to its great pharmacological potentials. Several pharmacological studies have established a scientific basis for therapeutic use of these plants.

Key words- Nature, medicinal gifts, Alsi, Tulsi.

प्रस्तावना– भारतवर्ष नें प्राचीन काल से ही औषधीय पौधों के महत्व को समझते हुए उनके सेवन पर बल दिया जाता रहा है। अलसी और तुलसी प्रकृति के दो महत्वपूर्ण औषधीय प्रदेय है। इनका उल्लेख भारत के प्राचीन ग्रन्थों में भी है तथा वर्तमान में देश–विदेश के वैज्ञानिक अनुसन्धानों द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि इनके सेवन से विभिन्न प्रकार के सामान्य एवं असाध्य रोगों का निदान भी सम्भव है।

1. **अलसी**– भारतवर्ष में प्राचीन काल से ही अलसी के सेवन पर बल दिया जाता रहा है। पूर्व में इसका प्रयोग कपड़ों, रंग और वार्निश के निर्माण में भी होता था। अलसी का बोटेनिकल नाम है– *लाइनम यूजीटेटीसिमम्* (***Linum usitatissimum***) इसका बीज छोटा, सुनहरा व चिकना होता है। अलसी में ओमेगा–3 उपलब्ध होता है, जो हमारे शरीर के मस्तिष्क, स्नायुतन्त्र एवं नेत्र के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है।

रसायनिक संरचना एवं उपयोग– अलसी में लगभग 18–20 ओमेगा–3 फैटी एसिड अल्फा–लिनोलेनिक एसिड(ए0एल0ए0) होते हैं।[1] अल्फा–लिनोलेनिक एसिड के कार्यों में प्रमुख हैं– ई0पी0ए0 और डी0एच0ए0 का निर्माण, रक्तचाप, रक्त शर्करा का नियन्त्रण, कॉलेस्ट्रॉल का नियोजन, जोड़ों को स्वस्थ रखना, वसा कम करना, नेत्र–मस्तिष्क और नाड़ी–तन्त्र का विकास करना। यकृत, वृक्क आदि की कार्य क्षमता को बढ़ाना आदि–आदि। अनेक शोधों से यह ज्ञात हुआ है कि हमारे भोजन में

ओमेगा–3 की कमी और ओमेगा–6 की प्रचुरता से शरीर में उच्च रक्तचाप, डायबिटीज, दमा, अवसाद, कैंसर आदि रोग बढ़ने लगते हैं। शरीर के स्वस्थ संचालन के लिए ओमेगा–3 तथा ओमेगा–6 दोनों 1:1 अर्थात् बराबर के अनुपात में होने चाहिए। शरीर में ओमेगा–3 की कमी नहीं होनी चाहिए। मात्र 30 ग्राम अलसी के सेवन से ओमेगा–3 की यही कमी पूरी हो जाती है। अलसी के सेवन से रक्तचाप सन्तुलित रहता हैं। यह दिल की धमनियों में खून के धक्के बनने से रोकती है और हृदय–घात से बचाती है।

विश्व में अनेक शोध–संस्थानों में अलसी से सम्बन्धित शोध हो रहे हैं। "एड्स रिसर्च असिस्टेंस इंस्टीट्यूट(ए0आर0ए0आई0) सन् 2002 से एड्स के रोगियों पर लिगनेन के प्रभावों पर शोध कर रही है और आश्चर्यजनक परिणाम सामने आये हैं। 'डॉ0 कैनेथ शेसेल ई0एच0डी0 चिल्ड्रन्स हॉस्पिटल मेडिकल सेंटर' सिनसिनाटी के आचार्य डॉ0 कैनेथ शेसेल ई0एच0डी0 ने पहली बार यह पता लगाया था कि लिगनेन का सबसे बड़ा स्रोत अलसी है।"[2] किसी व्यक्ति के द्वारा अपनी रोटी में अलसी मिलाकर खाने से उसमें लिगनेन की मात्रा अधिक पायी गयी और उक्त विशेषज्ञ इस नतीजे पर पहुँचे थे। विभिन्न शोधों से यह निष्कर्ष निकला था, कि लिगनेन एक शक्तिशाली एण्टी–ऑक्सीडेंट है और यह अलसी में सर्वाधिक मात्रा में पाया जाता है। अलसी में लिगनेन की मात्रा 800 माइक्रोग्राम प्रति ग्राम होती है। अलसी में 27 प्रतिशत घुलनशील और अघुलनशील दोनों ही प्रकार के फाइबर होते हैं। कब्ज में यह राहत देती है साथ ही पित्त की थैली में पथरी नहीं बनने देती है। अलसी बीज त्वचा को स्वस्थ बनाकर सौन्दर्य का उत्कृष्ट प्रसाधन सिद्ध हुआ है। यह ऐसा सौन्दर्य प्रसाधन है जो त्वचा में अन्दर से निखार उत्पन्न करता है, साथ ही वाह्य रूप से भी उपयोगी सिद्ध हुआ है, क्योंकि अलसी के शक्तिशाली एण्टी–ऑक्सीडेंट ओमेगा–3 व लिगनेन त्वचा के कोलेजन की रक्षा करते हैं और त्वचा को स्वस्थ व सुन्दर बनाते हैं।[3]

उच्च रक्त–चाप, डायबिटीज़ और कैंसर जैसे रोगों से मुक्त होने के लिए अलसी का सेवन अत्यधिक लाभप्रद है। अमेरिका में हुई एक शोध से यह ज्ञात हुआ है कि अलसी में 27 प्रतिशत से अधिक कैंसररोधी तत्व होते हैं। जर्मनी की सुप्रसिद्ध कैंसर वैज्ञानिक डॉ0 योहाना बुडविज ने अपने परीक्षणों से सिद्ध कर दिया था कि "अलसी के तेल में विद्यमान इलेक्ट्रॉन युक्त, असंतृप्त ओमेगा–3 वसा कोशिकाएं ऑक्सीजन को आकर्षित करने की अपार क्षमता रखती हैं, पर मुख्य समस्या रक्त में अघुलनशील अलसी के तेल को कोशिकाओं तक पहुँचाने की थी, वर्षों तक शोध करने के बाद वे मालूम कर पायीं कि सल्फरयुक्त प्रोटीन जैसे पनीर अलसी के तेल को घुलनशील बना देते हैं और तेल सीधा कोशिकाओं तक पहुँचकर ऑक्सीजन को कोशिकाओं में खींचता है व कैंसर खत्म होने लगता है। इस तरह उन्होंने अलसी के तेल, पनीर, कैंसर रोधी फलों और सब्जियों से कैंसर के उपचार का तरीका विकसित किया था, जो "बुडविज प्रोटोकाल" के नाम से विख्यात हुआ।"[4]

2. **तुलसी**– प्रकृति का एक अन्य महत्वपूर्ण प्रदेय है– तुलसी। भारतवर्ष की पौराणिक संस्कृति से लेकर आज तक, अनेक औषधीय और दिव्य गुणों के कारण तुलसी को "दिव्य पौधा" माना गया है। यह न केवल भारतीय परम्परा में 'आस्था' का प्रतीक है, वरन् इसे एक श्रेष्ठ बहुगुणकारी औषधि होने के कारण आयुर्वेद चिकित्सा–विज्ञान में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। ज्योतिष एवं वास्तुशास्त्र में तुलसी के विविध गुणों का विवरण उपलब्ध होता है। स्थान एवं शरीर से सम्बन्धित अनेक दोषों के निवारक तुलसी–पौधा और तुलसी दल के सम्बन्ध में अनेक विद्वानों ने पर्याप्त प्रकाश डाला है। धर्मग्रन्थों में तुलसी–पूजा के प्रावधान बताये गये हैं और इसे 'विष्णु प्रिया' नाम भी दिया गया है। प्रत्येक घर में तुलसी के लहलहाते पौधे तथा उसकी पूजा के उपाय वर्णित हैं। तुलसी का पौधा प्रायः तीन फीट तक का द्विबीजपत्री औषधीय पौधा है, जिसका वनस्पतिक नाम "*ऑसीमम सैंक्टम*(***Ocimum sanctum***) है। विद्वानों ने इसके 22 भेद भी माने हैं, परन्तु श्वेत तुलसी, श्यामा तुलसी, राम तुलसी, गन्ध तुलसी, वन तुलसी अधिक प्रसिद्ध नाम है। "ऑसीमम सैंक्टम" को प्रधान पौधा माना गया है व इसकी दो प्रधान प्रजातियाँ मानी गयी है– रामा तुलसी व श्यामा तुलसी। रामा तुलसी की पत्तियाँ हरी होती हैं और श्यामा तुलसी की पत्तियाँ बैंगनी रंग लिए हुए होती हैं। रामा तुलसी के पत्ते श्वेताभ होते हैं तथा श्यामा तुलसी के पत्ते श्याम वर्ण के होते हैं।

रसायनिक संरचना व उपयोग– रसायनिक संरचना की दृष्टि से तुलसी पर अनेक स्थानों पर अनेक शोध हो चुके हैं। इसमें "अनेक जैव सक्रिय रसायन पाये जाते हैं, जिनमें ट्रेनिंग, सैवोनिन, ग्लाइकोसाइड्स और एल्केलॉइड्स प्रमुख हैं। प्रमुख सक्रिय तत्व हैं– एक प्रकार का पीला उड़नशील तेल, जिसकी मात्रा, संगठन, स्थान व समय के अनुसार बदलते रहते हैं। 0.1 से 0.3 प्रतिशत तक तेल पाया जाना सामान्य बात है। वेल्थ ऑफ इण्डिया के अनुसार इस तेल में लगभग 71 प्रतिशत यूजीनॉल, बीस प्रतिशत यूजीनॉल मिथाइल ईथर तथा तीन प्रतिशत कार्वाकोल होता है। रामा तुलसी में श्यामा की अपेक्षा कुछ अधिक तेल होता है तथा इस तेल का सापेक्षिक घनत्व भी कुछ अधिक होता है। तेल के अतिरिक्त पत्रों में लगभग 83 मिली ग्राम प्रतिशत की मात्रा विटामिन सी एवं 2.5 मिलीग्राम प्रतिशत कैरोटीन होता है। तुलसी–बीजों में हरे–पीले रंग का तेल लगभग 17.8 प्रतिशत की मात्रा में पाया जाता है। इसके घटक हैं– कुछ सीटों स्टेरॉल, अनेक वसा–अम्ल, मुख्यतः पामिटिक, स्टीयरिक, ओलिक, लिनोलक और लिनोलिक अम्ल। तेल के अलावा बीजों में श्लेशनक प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। इस म्यूसिलेज के प्रमुख घटक हैं– पैंटोस, हेक्जा यूरोनिक अम्ल और राख। राख लगभग 0.2 प्रतिशत होती है।"[5]

वनस्पतिक क्षेत्र में तुलसी का औषधीय महत्व सर्वाधिक है। तुलसी को एक विशेष औषधि माना गया है, जो अनेक रोगों को नष्ट करती है। लिवर(यकृत) सम्बन्धी रोग, पेट–दर्द, मुख का संक्रमण, सिर दर्द, त्वचा–रोग, नेत्रों की तकलीफ, वात, कैंसर, तनाव–अवसाद आदि रोगों में तुलसी सेवन के विविध उपाय आयुर्वेद, ज्योतिष, यूनानी–चिकित्सा आदि में बताये जाते हैं, जिनसे आशातीत लाभ हुआ है। तुलसी को त्रिदोष–नाशक कहा जाता है, और इसके सेवन से रक्त–कणों की वृद्धि होती है। तुलसी का पौधा मलेरिया के कीटाणुओं को नष्ट करता है। तुलसी की लकड़ी का भी वैज्ञानिक महत्व है। तुलसी की लकड़ी धारण करने से शरीर की विद्युत शक्ति नष्ट नहीं होती है। आयुर्वेद में इसे कफनाशक तथा वायुनाशक माना गया है।

निष्कर्ष– इस प्रकार जहाँ एक ओर अलसी को विश्व स्वास्थ्य संगठन ने "सुपरस्टार फूड" का दर्जा दिया है वहीं तुलसी का पौधा न केवल औषधीय दृष्टिकोण से, वरन् आध्यात्मिक, धार्मिक व भौतिक दृष्टि से भी मानव जीवन के लिए अत्यन्त उपयोगी है। अपने रूप–रस–गन्ध से यह पौधा अपने चारों ओर के वातावरण को शुद्ध, रोगों और कीटाणुओं से मुक्त करता है। इस प्रकार अनेक आयुर्वेदाचार्य, चिकित्सक मनुष्य को अलसी व तुलसी का नियमित सेवन करने के लिए प्रेरित करते हैं। यह गर्भावस्था से लेकर वृद्धावस्था तक मानव स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त लाभदायक हैं।

संदर्भ

1. दुवानी, शिवनारायण(संपा0)(2011) श्री दत्त जयन्ती विशेषांक, यथार्थ आरोग्य, इंदौर, पृ0 14।
2. दुवानी, शिवनारायण(संपा0)(2011) श्री दत्त जयन्ती विशेषांक, यथार्थ आरोग्य, इंदौर, मु0पृ0 51–52।
3. दीक्षित, मिथिलेश(2015) पर्यावरण एवं औषधीय वृक्ष, समान्तर विमर्श, उत्कर्ष प्रकाशन, कानपुर(प्रकाशनाधीन)।
4. दुवानी, शिवनारायण(संपा0)(2011) श्री दत्त जयन्ती विशेषांक, यथार्थ आरोग्य, इंदौर, मु0पृ0 49–50।
5. गायत्री सांस्कृति धरोहर, http:/www.hindi.awgb.org अभिगमन् तिथि, 2009।

व्यायाम एवं प्रशिक्षण के दौरान खिलाड़ी के हृदय परिसंचरण तंत्र पर रक्त परिसंचरण की विशेष भूमिका–एक अध्ययन

रेनू मौर्या
असिस्टेंट प्रोफेसर, शारीरिक शिक्षा विभाग
संत कवि बाबा बैजनाथ राजकीय स्ना0 महा0, हरख, बाराबंकी–225121, उ0प्र0, भारत
renu0607@gmail.com

प्राप्त तिथि–11.05.2015, स्वीकृत तिथि–22.06.2015

सार

किसी खिलाड़ी के जीवन को बनाये रखने के लिये विभिन्न प्रकार की शारीरिक क्रियाओं हेतु शरीर रक्त के माध्यम से ऑक्सीजन ग्रहण की जाती है। रक्त शरीर के कार्बन डाई ऑक्साइड और ऑक्सीजन के लिए मुख्य वाहक का कार्य करता है। सामान्यतः 5 से 6 लीटर रक्त प्रति मिनट हृदय से निकलकर धमनियों में प्रवेश करता है। जिसे आयतन हृदय निकाय कहा जाता है। व्यायाम एवं प्रशिक्षण के दौरान खिलाड़ी की रक्त संरचण लगभग 30 से 40 लीटर/मिनट, आघात आयतन 70 से 200 मिली, हृदय गति लगभग 150 से 180 मिनट हो जाता है तथा आसन के दौरान रक्त संचरण खड़ी हुई स्थिति की अपेक्षा झुकी हुई स्थिति में शिरा रक्त की हृदय में वापसी अधिक हो जाती है। जिसमें हृदय निकास बढ़ जाता है। जिस व्यक्ति का हृदय दर और नाड़ी दर अभ्यास के बाद शीघ्र ही अपने सामान्य अवस्था में आ जाती है तो खिलाड़ी का हृदय एवं हृदय परिसंचरण तंत्र का क्षतिपूर्ति काल अच्छा होता है और वह खिलाड़ी व्यायाम एवं प्रशिक्षण दृष्टिकोण से अच्छा माना जाता है। खिलाड़ी के हृदय में व्यायाम के समय प्रारंग में रक्त दाब बढ़ता है तथा बाद में रक्त दाब घटता है। अनुशिथिलन दाब पर किसी प्रकार का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। हृदय चक्र मुख्य रूप से तीन अवस्थाओं से होकर पूर्ण होता है तथा ये पूर्णतयः प्रत्येक तरंग 8 सेकेण्ड के पश्चात् क्रमशः प्रारंभ होती है। व्यायाम के समय हृदय ध्वनि सामान्य रूप में नियमित गति से चलती रहती है। हृदय का वजन लम्बी अवधि तक व्यायाम करने में बढ़ता है जिसका प्रभाव रक्त के संचरण पर पड़ता है। सामान्यतः खिलाड़ियों का हृदय का आकार बढ़ने के साथ–साथ इसके हृदय प्रकोष्ठों का आयतन रक्त प्रवाह के दृष्टिकोण से बढ़ता है।

बीज शब्द– व्यायाम एवं प्रशिक्षण, खिलाड़ी, हृदय परिसंचरण तंत्र, रक्त परिसंचरण।

Special role of blood circulation in heart circulatory system of a sport person during exercise and training- A study

Renu Mourya
Assistant Professor, Department of Physical Education
S.K.B.B. Govt. P.G. College, Harakh, Barabanki-225121, U.P., India
renu0607@gmail.com

Abstract

Physical activities are one of the most important aspects of sports person's life. For these activities oxygen is required which is made available to the body through blood. Blood acts as a main carrier of carbondioxide and oxygen in the body. Normally 5 to 6 litre of blood per minute leaves the heart and enters the blood vessels. This is called cardiac output. At the time of exercise and training blood circulation becomes 30 to 40 litre per minute, stroke volume 70 to 200 ml and heart rate 150 to 180 minute. At the time of "Aasan" the input of blood into the heart increases in bent position of the body as compared to vertical position, as a result cardiac output increases. The person whose heart rate and pulse rate comeback rapidly to normal after exercise is considered a person having healthy heart with perfect blood circulation. Such persons are best suited for exercise and training. At the beginning of exercise the blood pressure of sports person

increases and later on decreases. There is no effect on diastolic pressure. Cardiac cycle is completed mainly in three stages and each cycle starts after every 8 seconds. During exercise the heart sound has regular pace. Long duration of exercise increases weight on heart which affects blood circulation. Normally the heart of sports person increases in view of the increase in volume of heart chambers and blood flow in and out of these chambers.

Key words- Exercise and training, sport person, heart circulatory system, blood circulation.

प्रस्तावना– व्यायाम और प्रशिक्षण के दौरान रक्त परिसंचरण की विशेष भूमिका को पूर्ण रूप से जानने के पूर्व हृदय परिसंचरण तंत्र की रचना और उनके कार्य प्रणाली के बारे में समझना अति आवश्यक है कि हृदय परिसंचरण है क्या हृदय की रचना कैसी है तथा ये कैसे कार्य करते हैं। हृदय परिसंचरण तंत्र दो शब्दों से मिलकर बना है जिसमें धमनी का सम्बन्ध हृदय और वॉस्कुलर का सम्बन्ध धमनी और शिराओं से होता है। धमनियां, प्रायः शुद्ध रक्त को शरीर के विभिन्न अंगों में भेजने का कार्य करती हैं, जबकि शिरायें, अशुद्ध रक्त को शरीर के विभिन्न भागों से हृदय की ओर लाती हैं। पूर्णतयः धमनियां और शिराओं द्वारा रक्त परिसंचरण की प्रक्रिया पूर्ण की जाती है। धमनियों और शिराओं के द्वारा किये इस प्रकार के कार्य तंत्र को रक्त परिसंचरण तंत्र कहते हैं। किसी खिलाड़ी को पूर्ण रूप से स्वस्थ बनाये रखने के लिए विभिन्न प्रकार की शारीरिक क्रियाओं हेतु शरीर के विभिन्न अंगों को रक्त के माध्यम से ऑक्सीजन ग्रहण की जाती है। ये शारीरिक क्रियायें पूर्ण रूप से खेल के द्वारा पूर्ण की जा सकती है। पूर्णतयः रक्त शरीर में कार्बन डाई ऑक्साइड और ऑक्सीजन के लिए मुख्य वाहक का कार्य करती है। रक्त वाहिनियाँ हृदय को ऑक्सीजन युक्त रक्त को ले जाने तथा रक्त संचरण के लिए दायित्व निर्वहन करती है। जो रक्त वाहिनियाँ हृदय से विभिन्न अंगों तक शुद्ध रक्त ले जाने का कार्य करती है और जो वाहिनियाँ हृदय की ओर चलती हैं वे अशुद्ध रक्त के लिए दायित्व का निर्वहन करती हैं। हृदय दाहिने और बाँये फेफड़ों के बीच स्थित वक्ष क्षेत्र पर स्थिर रहता है तथा पसलियां स्टर्नम और मेरूदंड द्वारा हृदय की रक्षा करती हैं। हृदय एक गुम्बद् आकार की रचना का बना होता है। इस हृदय का तीन चौथाई भाग स्टर्नम के बाईं ओर और एक चौथाई भाग स्टर्नम के दाहिनी ओर झुका हुआ होता है। परन्तु महिलाओं में हृदय का आधा भाग स्तन के उभरे भाग के बीच स्थिर रहता है।

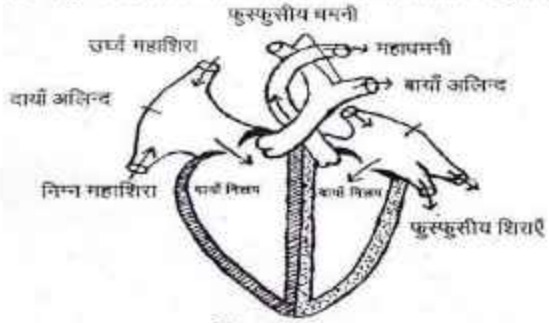

चित्र नं0 1

सामान्यतः हृदय का वजन लगभग 8 औंस से 9 औंस के बीच होता है। हृदय ऊपरी खण्ड में दो भागों में विभक्त रहता है जिन्हें दायां और बायां आलिंद कहते हैं तथा नीचे वाला खण्ड दो भागों में विभक्त रहता है जिन्हें क्रमशः बायां और दायां निलय कहते हैं। दाहिना निलय दाहिने आलिंद के साथ जुड़ा रहता है और बाया निलय बायें आलिंद के साथ जुड़ा रहता है। इस प्रकार के जोड़ को आरटीरियो वेन्ट्रीकुलर वाल्व, ट्राईक्यूपीड और बाइक्यूपीड वाल्व कहते हैं। इन वाल्वों की रक्त परिसंचरण में विशेष भूमिका होती है।

हृदय परिसंचरण तंत्र पर व्यायाम एवं ट्रेनिंग के प्रभाव– व्यायाम से प्रायः मानव शरीर पर मुख्यतः दो प्रकार के परिवर्तन होते हैं। ये ऐसे परिवर्तन हैं जो व्यायाम के प्रभाव को शीघ्र दर्शाते हैं, उन्हें तीक्ष्ण परिवर्तन कहते हैं और कुछ ऐसे परिवर्तन हैं जो लम्बी अवधि के बाद दिखाई देते हैं उन्हें दीर्घ स्थाई परिवर्तन कहते हैं। व्यायाम एवं प्रशिक्षण के प्रभाव से निम्नलिखित रूप से परिवर्तन होते हैं– 1. हृदय दर, 2. आघात आयतन, 3. हृदय निकाय, 4. रक्त दबाव, 5. हृदय चक्र, 6. हृदय ध्वनि, 7. हृदय वजन, 8. हृदय क्षमता, 9. हृदय प्रकोष्ठ आयतन, 10. धमनियों और महाधमनियों का व्यास, 11. आकुंचन आरक्षित आयतन, 12. शिथिलन एवं अनुशिथिलन समय, 13. रक्त वितरण, 14. हृदय से शरीर के विभिन्न भागों को रक्त पूर्ति की मात्रा।

1. हृदय दर– यह हृदय गति एक मानव से दूसरे मानव, एक बच्चे से दूसरे बच्चे, एक खिलाड़ी से दूसरे खिलाड़ी के मध्य भिन्न–भिन्न होती है। सामान्यतः पुरूषों में 72 धड़कन प्रति मिनट की दर से होती है। हृदय धड़कन प्रति मिनट की कुल संख्या को हृदय दर कहते है। स्त्रियों में यह पुरूषों की अपेक्षा अधिक होती है। हृदय गति आयु, उपापचय दर, श्वसन निम्न

कारकों पर निर्भर करता है तथा इन कारकों के अलावा हृदय दर आसन, लिंग, सवंग एवं वातावरण जैसे कारकों द्वारा प्रभावित होता है। सामान्यतः हृदय दर निम्न वर्गों में निम्नलिखित धड़कन प्रति मिनट होती है–

1. जनन के समय हृदय दर– 140 से 160 धड़कन प्रति मिनट
2. अप्रशिक्षित महिला/पुरूष हृदय दर– 60 से 80 धड़कन प्रति मिनट
3. प्रशिक्षित एथलीट हृदय दर– 40 से 55 धड़कन प्रति मिनट
4. अंतर्राष्ट्रीय खिलाड़ी हृदय दर– 32 से 38 धड़कन प्रति मिनट

पूर्णतयः व्यायाम के समय हृदय दर बढ़ती है लेकिन खिलाड़ी कन्डिशनिंग के कारण शीघ्र ही पुनः सामान्य रूप में आ जाती है। व्यायाम के समय हृदय की दर प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित खिलाड़ी की हृदय की गति 200 धड़कन प्रति मिनट होती है। इस हृदय दर का मान 195 से 190 धड़कन प्रति मिनट कहीं–कहीं हो सकता है।

2. आघात आयतन– 'आघात आयतन रक्त की वह मात्रा है जो एक आघात या एक धड़कन द्वारा हृदय से बाहर की ओर धकेला जाता है।' "The amount of blood which is pushed out from the heart in a one stroke or in a one best, is called stroke volume."

3. हृदय निकास– हृदय के प्रत्येक गति द्वारा आकुचितः निलयों से जितना रक्त धमनियों गें जाता है, उसे आघात आयतन कहते हैं। दोनों निलयों से सामान आयतन में रक्त धमनियों में जाता रहता है। प्रत्येक निलय से 70 घन मिलीनीटर रक्त सामान्यतः प्रत्येक हृदय गति पर धमनियों में जाता है। एक मिनट में 70 से 80 धड़कन प्रति मिनट हृदय निकाय कहलाता है। अर्थात् रक्त की वह मात्रा जो प्रत्येक निलयी संकुचन द्वारा हृदय से बाहर की ओर फेंकी जाती है उसे हृदय निकाय कहते हैं।

हृदय निकाय = आघात आयतन × हृदय दर व्यायान के समय हृदय निकाय बढ़ता है।

1. विराम अवस्था में हृदय निकास = 5 लीटर में 25 लीटर प्रति मिनट
2. व्यायाम के समय हृदय निकास = 35 लीटर से 40 लीटर प्रति मिनट
3. अप्रशिक्षित एथलीट में हृदय निकास = 5 लीटर से 25 लीटर प्रति मिनट
4. अच्छे एथलीट में हृदय निकाय = 35 से 40 लीटर प्रति मिनट

1. विराम अवस्था में

हृदय निकास = हृदय दर × आघात आयतन

अ. अप्रशिक्षित एथलीट में : 70 धड़कन प्रति मिनट × 71.4 मिली0
= 4998.0 मिली या लगभग 5 लीटर

ब. प्रशिक्षित एथलीट में : 45 धड़कन/मिनट × 111.1 मिली0
= 4999.5 मि0ली0 या लगभग 5 लीटर

2. व्यायाम के दौरान

हृदय निकास = हृदय दर × आघात आयतन

अ. अप्रशिक्षित एथलीट में : 200 धड़कन प्रति मिनट ×100 मि0ली0
= 20.000मि0ली या 20 लीटर

ब. प्रशिक्षित एथलीट में : 200 धड़कन/मिनट × 200 मि0ली0
= 40.000मि0ली0 या 40 लीटर

हृदय निकास को प्रभावित करने वाले कारक:

1. व्यायाम– व्यायाम करने से रक्त संचरण लगभग 30 से 40 लीटर/मिनट, आघात आयतन 70 से 200 मि0ली0 और हृदय गति लगभग 150 से 180/मिनट हो जाती है।
2. आसन– खड़ी हुई स्थिति की अपेक्षा झुकी हुई स्थिति में शिरा रक्त की हृदय में वापसी अधिक हो जाती है जिससे हृदय निकास बढ़ जाता है।
3. ज्वर– उत्तेजना, भोजन पाचन काल और गर्भावस्था के अंतिम दिनों कार्बन डाई ऑक्साइड के अधिक होने के कारण हृदय निकास बढ़ जाता है।
4. रक्त स्त्राव, हृदय पात आदि में हृदय निकास कम हो जाता है।

4. रक्त दबाव– रक्त वाहिकाओं में रक्त परिसंचरण के समय रक्त वाहिकाओं की भित्त पर एक पार्श्विक दबाव पड़ता है जिसे रक्त दबाव कहते हैं। यह रक्त दबाव मुख्य रूप से निम्न प्रकार का होता है:–

आकुंचन रक्त दबाव– निलय आकुंचन काल के समय धमनियों में अधिकतम रक्त दाब को आकुंचन रक्त दाब कहते हैं।

अनुशिथिलन दबाव– निलय अनुशिथिलन काल के समय रक्त दाब धीरे–धीरे गिरना प्रारम्भ हो जाता है और अंतिम अवस्था में न्यूनतम पहुँच जाता है(अगले आकुंचन के प्रारंभ होने से पूर्व) इस न्यूनतम दाब को अनुशिथिलन दाब कहते हैं।
नाड़ी दबाव– आकुंचन दाब और अनुशिथिलन दाब के अंतर को नाड़ी दाब कहते हैं।

1.	विरामावस्था में आकुंचन दाब	=	120m.n. of Hg से 140m.n. of Hg
2.	विरामावस्था में अनुशिथिलन दाब	=	80 m.n. of Hg
3.	व्यायाम के समय आकुंचन दाब	=	220m.n. of Hg से 230m.n. of Hg
4.	व्यायाम के समय अनुशिथिलन दाब	=	80m.n. of Hg

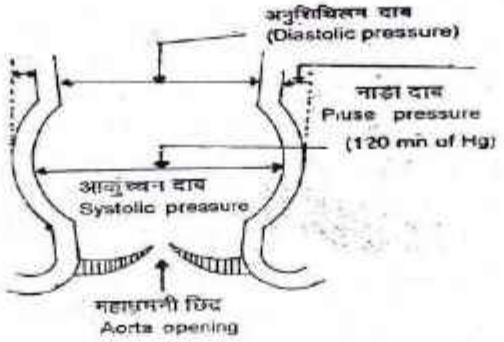

चित्र नं0 2

उपरोक्त आंकड़ों से स्पष्ट है कि व्यायाम के समय प्रारंभ से रक्त दाब बढ़ता है और बाद में घटता है। अनुशिथिलन दाब पर किसी प्रकार कोई प्रभाव नहीं पड़ता। उत्तेजना के समय, व्यायाम के दौरान खड़े होने के समय, आकुंचन दाब सामान्य से अधिक हो जाता है, लेकिन सोते समय या विश्राम अवस्था में आकुंचन दाब कम हो जाता है और सामान्य परिस्थितियों का अनुशिथिलन दाब पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

5. **हृदय चक्र**– हृदय चक्र में दाब परिवर्तन आयतन परिवर्तन और छिद्र क्रिया आदि जैसी घटनायें हृदय के संकुचन और शिथिलन के समय होती रहती हैं। अलिन्द और निलय में संकुचन को आकुंचन के नाम से जाना है। इस हृदय चक्र में मुख्य रूप से हृदय में प्रत्येक दो स्पन्दों के मध्य जो चक्रानुक्रम परिवर्तन होते हैं उन हृदय चक्र में मुख्य रूप से तीन अवस्थायें आती हैं।
आकुंचन अवस्था– संकुचन के काल में आकुंचन अवस्था आती है।
अनुशिथिलन अवस्था– शिथिलन के काल को अनुशिथिलन अवस्था कहते हैं।
विरामावस्था– विश्राम काल को विरामावस्था कहते हैं।
दायें आलिंद में स्थिति सिरानाल आलिंद पर्व से हृदय स्पंद प्रारम्भ करने वाली आवेग तरंग एक मिनट में 75 बार प्रारंभ होती है। इस प्रकार प्रत्येक तरंग 8 सेकेण्ड के पश्चात् प्रारंभ होती है। इस 8 सेकेण्ड के मध्य हृदय में जो चक्रानुक्रम परिवर्तन होते हैं उसे हृदय चक्र कहते हैं। व्यायाम के समय वह हृदय चक्र सामान्य रूप से गति करता रहता है।

6. **हृदय ध्वनि**– जब कान को हृदय के साथ लगाया जाता है तो नियमित रूप से कुछ ध्वनि सुनाई देती है। इस ध्वनि को बूमिंग ध्वनि कहते हैं। अर्थात् निलय में संकुचन के समय रक्त दाब बढ़ जाने से अलिंद निलय कपाट बंद हो जाते हैं। इसके बन्द होते ही जो ध्वनि होती है उसे प्रथम हृदय ध्वनि कहते हैं, यह लब के उच्चारण के समान होती है। अलिन्द निलय कपाट के खुलते ही एक अन्य दूसरी ध्वनि सुनाई देती है जो डप के उच्चारण के सनान होती है। इस समय हृदय के अर्धचन्द्र कपाट बंद हो जाते हैं। जब रक्त अलिन्दों से निलय में अधिक वेग से प्रवेश करता है तो रक्त के इस अतिवेग से प्रवाहित होने से एक ध्वनि उत्पन्न होती है जिसे द्वितीय हृदय ध्वनि कहते हैं। व्यायाम के समय हृदय ध्वनि सामान्य रूप से नियमित गति से चलती रहती है।

7. **हृदय वर्जन**– व्यायाम करने से खिलाड़ी के हृदय के वजन की मात्रा बढ़ती है जिसका प्रभाव रक्त के संचरण पर पड़ता है। हृदय का वजन लम्बी अवधि तक व्यायाम करने से बढ़ता है।
सामान्य या अप्रशिक्षित एथलीट का हृदय वजन = 300 ग्राम
प्रशिक्षित एथलीट या व्यायाम करने के बाद हृदय वजन = 500 ग्राम

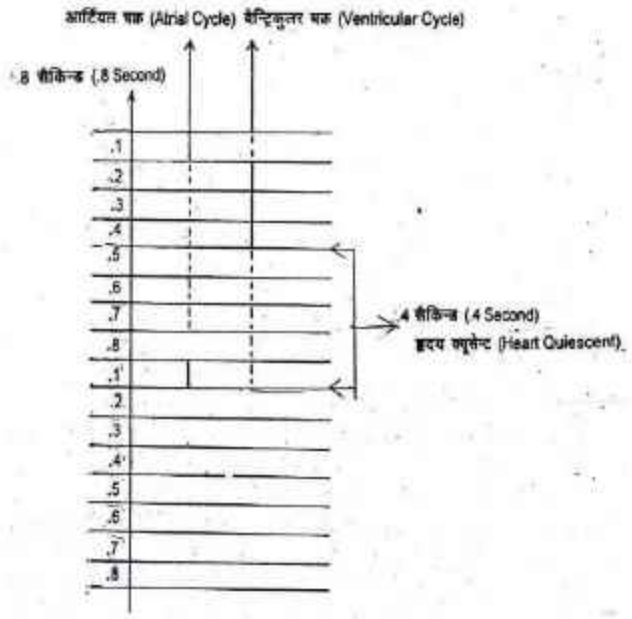

चित्र नं0 3

8. **हृदय क्षमता**– हृदय की क्षमता का तात्पर्य, हृदय के आयतन से है। अर्थात् व्यायाम के परिणाम स्वरूप हृदय का आयतन बढ़ता है।

विरामावस्था में हृदय आयतन	=	11.3 मिलीलीटर/किग्रा. (शरीर के भार का)
व्यायाम के समय हृदय आयतन	=	20 मिलीलीटर/किग्रा. (शरीर के भार का)
एक अच्छे एथलीट का हृदय आयतन	=	14 मिलीलीटर/किग्रा0 (शरीर के भार का)

9. **हृदय प्रकोष्ठ आयतन**– हृदय के प्रकोष्ठों का आयतन व्यायाम से बढ़ता है। हृदय का वजन बढ़ने के कारण हृदय प्रकोष्ठों के आकार में वृद्धि होने के कारण प्रकोष्ठों का (रक्त की मात्रा अधिक हो जाने से) आयतन बढ़ता है। सामान्यतः लम्बी दूरी धावक साइकिलिस्ट, भारत्तोलक और कुश्ती आदि के खिलाड़ियों का हृदय का आकार बढ़ने के साथ–साथ उसके हृदय प्रकोष्ठों का आयतन रक्त प्रवाह के दृष्टिकोण से बढ़ता है।

10. **धमनियों और महाधमनियों का व्यास**– व्यायाम के परिणाम स्वरूप खिलाड़ी के धमनी एवं महाधमनी का व्यास बढ़ता है। फुस्फुसीय धमनी व्यायाम के कारण इनका व्यास बढ़ता है जिससे इनके माध्यम से रक्त की मात्रा हृदय को अधिक पहुँचती है। इसके साथ–साथ फुस्फुसीय महाधमनी की संख्या भी बढ़ती है। ये धमनियां हृदय के साथ जुड़ जाती हैं। धमनियों की संख्या बढ़ने से हृदय धमनी की संख्या भी बढ़ती है। ये धमनियों व हृदय के दायें और बायें भाग को रक्त की पूर्ति करती है। इससे हृदय का सामान्य रक्त परिसंचरण बढ़ जाता है।

11. **आकुंचन आरक्षित आयतन**– व्यायाम के दौरान हृदय संकुचन के कारण आकुंचन आरक्षित आयतन की मात्रा बढ़ती है। इसकी मात्रा एक खिलाड़ी में अपर्याप्त होने के कारण हृदय आयतन में वृद्धि होना संभव नहीं है।

विरामावस्था में आकुंचन आरक्षित आयतन	=	150 मिली0
व्यायाम के समय आकुंचन आरक्षित आयतन	=	180 मिली0

12. **शिथिलन एवं अनुशिथिलन समय**– व्यायाम के दौरान शिथिलन एवं अनुशिथिलन समय बढ़ता है जिसका मान 5 सेकेण्ड से बढ़कर 10 सेकेण्ड हो जाता है। इसके बढ़ने से क्षतिपूर्ति काल और सहनशीलता भी बढ़ जाती है।

13. **रक्त वितरण**– व्यायाम के दौरान रक्त का विभाजन रक्त परिसंचरण द्वारा विभिन्न भागों को होता है और एक समान रक्त की मात्रा बार–बार शरीर में संचरित होती रहती है।

विरामावस्था में रक्त वितरण	=	250 मि0ली0/मिनट
व्यायाम के दौरान रक्त वितरण	=	1000 मि0ली0/मिनट

14. हृदय से शरीर के विभिन्न भागों को रक्त पूर्ति की मात्रा

मांसपेशियों में

विरामावस्था में = 1200 मि०ली०/मिनट
व्यायाम के दौरान = 2200 मि०ली०/मिनट
अर्थात् व्यायान के दौरान मांसपेशियों को रक्त पूर्ति की मात्रा बढ़ती है।

मस्तिष्क में

विरामावस्था में = 750 मि०ली०/मिनट
व्यायाम के दौरान = 750 मि०ली०/मिनट
अर्थात् व्यायान के दौरान और विरामावस्था में मस्तिष्क को रक्त की पूर्ति नियत रहती है।

गुर्दे में

विरामावस्था में = 1100 मि०ली०/मिनट
व्यायाम के दौरान = 250 मि०ली०/मिनट
अर्थात् व्यायान के दौरान हृदय से गुर्दों को रक्त पूर्ति की मात्रा घटती है।

आंत्र में

विरामावस्था में = 1400 मि०ली०/मिनट
व्यायाम के दौरान = 300 मि०ली०/मिनट
अर्थात् व्यायान के दौरान हृदय से आंत्र को रक्त पूर्ति की मात्रा घटती है।

त्वचा में

विरामावस्था में = 500 मि०ली०/मिनट
व्यायाम के दौरान = 600 मि०ली०/मिनट
अर्थात् व्यायान के दौरान त्वचा में रक्त पूर्ति की मात्रा बढ़ती है।

हड्डियों में

विरामावस्था में = 600 मि०ली०/मिनट
व्यायाम के दौरान = 1000 मि०ली०/मिनट
अर्थात् व्यायान के दौरान शरीर के अन्य ऊतकों में रक्त की पूर्ति बढ़ती है।

निष्कर्ष– उपरोक्त परिणामों एवं आंकड़ों के आधार पर कहा जा सकता है कि हृदय से रक्त की पूर्ति शरीर के विभिन्न भागों को खिलाड़ी की व्यक्तिगत क्षमता पर निर्भर करती है। जिस व्यक्ति का हृदय दर और नाड़ी दर अभ्यास के बाद शीघ्र ही अपने सामान्य अवस्था में आ जाती है उस व्यक्ति का हृदय एवं हृदय परिसंचरण तंत्र का क्षतिपूर्ति काल अच्छा होता है वह व्यक्ति कार्य के दृष्टिकोण से अच्छा खिलाड़ी माना जाता है। व्यायान से खिलाड़ी के रक्त में लाल रक्त कणिकाओं की संख्या बढ़ती है लेकिन लम्बे समय तक शारीरिक क्रिया के समय लाल रक्त कणिकाओं की संख्या शरीर में घटती जाती है। बहुत कठिन व्यायान के बाद श्वेत कणिकाओं की संख्या एड्रेलीन नामक हरमोन्स में सैक्रीन की उपस्थिति के कारण बढ़ती है। अतः खेल क्षेत्र में खिलाड़ी को अच्छे प्रदर्शन को प्राप्त करने के लिए एक अच्छे रक्त परिसंचरण तंत्र की आवश्कता अनिवार्य है।

संदर्भ

1. दुल, देवेन्द्र सिंह(1999) शरीर रचना क्रिया विज्ञान व मौंसपेशीय गति विज्ञान तथा स्वास्थ्य शिक्षा, फ्रेंड्स पब्लिकेशंस।
2. शर्मा, आर० के०(1999) व्यायाम क्रिया विज्ञान एवं खेल चिकित्सा शास्त्र, साहित्य प्रकाशन।
3. वैद्य, राजेश कुमार(2005) स्वास्थ्य शिक्षा एवं शारीरिक शिक्षा में गति विज्ञान, आर० लाल बुक डिपो, सूर्या प्रकाशन।
4. कुमार, विजय; प्रसाद, महेन्द्र एवं हेम्ब्रज, बी० सी०(2004) मानव शरीर रचना और शरीर क्रिया विज्ञान, जे० पी० ब्रदर मेडिकल प्रकाशन।

यज्ञों की वैज्ञानिकता–एक समीक्षा

मीरा वाणी
एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, संस्कृत विभाग
बी०एस०एन०वी० पी०जी० कॉलेज, लखनऊ–226001, उ०प्र०, भारत
meeravani85@gmail.com

प्राप्त तिथि– 20.05.2015, स्वीकृत तिथि– 13.08.2015

सार

वैदिक धर्म, संस्कृति तथा चिन्तन का आधारस्तम्भ "यज्ञ" है। आज समस्त प्राणी जगत् पर्यावरण प्रदूषण से ग्रसित है। वैदिक ऋषियों ने प्राकृतिक सन्तुलन को बनाये रखने के लिए यज्ञों की अनिवार्यता को बताया है। "यज्ञ" पवित्र अग्नि में हवन–सामग्रियों(औषधियों) को अर्पित करने की प्रक्रिया है। यज्ञ का उद्देश्य मनुष्य को देवत्व की ओर ले जाना ही नहीं है अपितु इसकी रोगनिवारक एवं वैज्ञानिक महत्ता भी है। यज्ञानुष्ठान के दो प्रमुख तत्व(ऊर्जायें) हैं– 1. ध्वनि(ध्वनि तरंगें उच्चारण के रूप में) 2. ताप(उष्णता–अग्नि से उत्पन्न ऊर्जा के रूप में)। यज्ञ मात्र वातावरण को प्रदूषण रहित नहीं करता अपितु वातावरण में रोगनिवारक शक्ति विकसित करता है। यज्ञ द्वारा वातावरण सूक्ष्म जीवाणुओं एवं विषाणुओं से रहित होता है जिससे समस्त मानव जीव–जन्तु रोगों से मुक्त हो जाते हैं। यज्ञानुष्ठान से इससे मानव–मस्तिष्क तथा त्वचा की कोशिकायें पुनर्जीवित होती हैं, रक्तशोधन होता है तथा क्षयरोग, अस्थमा, खसरा, चेचक, श्वांस सम्बन्धी तथा त्वचा सम्बन्धी बीमारियों के रोगाणुओं को बढ़ने से रोकता है। वैज्ञानिक अध्ययन से विदित होता है कि यज्ञ प्रक्रिया का उपयोग मनोरोग, तन्त्रिका रोग तथा अवसाद पीड़ित आदि बीमारियों के निवारण हेतु भी उत्तम है। अतः यज्ञ पर्यावरण शोधन के साथ मानव–जीवन को रोगमुक्त एवं स्वस्थ बनाता है।

बीज शब्द– देवपूजन, संगतिकरण, दान, ताप, ध्वनि, रोगनिवारक, आध्यात्मिक, तन्त्रिका रोग, मानस शास्त्र सम्बन्धी, प्रदूषण, वातावरण।

Scientific study of yajya- A review

Meera Vani
Associate Professor and Head, Department of Sanskrit
B.S.N.V. P.G. College, Lucknow-226001, U.P., India
meeravani85@gmail.com

Abstract

"Yajya" is the basic foundation of Vedic religion, culture and thought. Presently the whole of humankind is suffering from pollution. Our Vedic Rishi had always emphasized the importance of "Yajya" to maintain the natural balance. "Yajya" is the process of herbal sacrifies in to the holy fire. It not only aimed for spiritual benefits but also had scientific and therapeutic values. "Yajya" being using two basic energy systems in the physical world - 1. Sound energy(in the form of mantras) and 2. Heat energy(in form of fire), created a recreation in the environment. This is achieved by establishing thereby making life more disease free. Yajya's literal meaning is healing process. It heals the atmosphere and the healed atmosphere would heal mankind. Scientific study has found that the electrons generated during this process purify the blood and prevent the growth of pathogenic organism like T.B., Asthma, Measles, Chickenpox, Skin diseases, and Lung Cancer etc. Scientists have showed that "Yajya" is being used as an excellent remedy for the treatment of various mental disorder like psychosis, neurosis depression etc.

Thus, "Yajya" is beneficial for environment and human should opt it in their day to day life for the sake of disease free and healthy life in future.

Keywords- Devapujana, unity, charity, heat, sound, pathogenic, spiritual, neurosis, psychological, pollution, atmosphere.

प्रस्तावना– "सर्वं यज्ञमयं जगत्" सम्पूर्ण जगत् यज्ञमय है। प्रकृति सहचरी के सुरम्य अन्चल में निवसित जीव–जन्तुओं, मानव–जीवन के कल्याणार्थ तथा स्वास्थ्यवर्द्धनार्थ यज्ञों की महत्ता सर्वविदित है। भौतिकवाद तथा विज्ञान के युग में मानवीय गतिविधियों तथा प्राकृतिक सन्तुलन बनाने में यज्ञों को अपनाना नितान्त आवश्यक हो गया है क्योंकि वैदिक ऋषियों एवं मनीषियों ने यज्ञ विद्या को अपनाकर ही विश्वकल्याण, त्रिविध–ताप–प्रशनन तथा विविध रोगों से मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया है।[1] इतना ही नहीं अपितु "यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म" अर्थात् समस्त कर्मों में यज्ञ ही श्रेष्ठतम कर्म है। "सर्वेषां देवानाम् आत्मा यद् यज्ञः" अर्थात् यज्ञ को समस्त देवों की "आत्मा" कहा गया है।

प्राचीन भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्त्वों में "यज्ञ" ही प्रधान है। वैदिक भारत में यज्ञों का प्राधान्य था। वैदिक भारत में मानव–जीवन की प्रवृत्ति एवं निवृत्ति का एकमात्र आधार यज्ञ था, यहाँ की प्रत्येक क्रिया में वेदों की ऋचाओं के माध्यम से यज्ञ का विधान था।[2] भारतीय संस्कृति में गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि संस्कार तक के समस्त कार्यों में यज्ञों का आवश्यक विधान था। किसी भी समारोह या उत्सव में यज्ञ का होना परमावश्यक था। यज्ञ का उद्देश्य मात्र पर्यावरण शुद्धि एवं रोगनाशक ही नहीं अपितु यज्ञ मनुष्य को देवत्व की ओर ले जाने का साधन भी है। यज्ञों के महत्त्व की स्वीकृति वेदों में उद्घोषित है।[3] वेदों में यज्ञ को विश्व की नाभि कहा गया है– "अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः।"[4] शरीर विज्ञान की दृष्टि से जैसे शरीर में नाभि का विशिष्ट स्थान है वैसे ही विश्व में "यज्ञ" का प्रमुख स्थान है। विश्वसृजन एवं पालन, यज्ञ प्रक्रिया के ही प्रतिफल है। यथा– नवजात शिशु जन्म से पूर्व नाभि के माध्यम से ही माता के शरीर से संयोजित होकर रस(भोजन) प्राप्त करता है और उसी से भोजन प्राप्त करके जीवित रहता है उसी प्रकार सांसारिक प्राणी भी यज्ञ से जुड़कर स्वस्थ एवं सुखमय जीवन को प्राप्त करता है।

वैदिक वाङ्मय में वैज्ञानिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक गतिविधियों का केन्द्र बिन्दु यज्ञ प्रतीत होता है। यज्ञ–संस्था के अभाव में वैदिक धर्म, दर्शन एवं भारतीय संस्कृति को जानना असंभव है। आज वैज्ञानिक भी अपने अनुसन्धान के परिणामस्वरूप यह स्वीकार करने लगे हैं कि गन्धगुण वाली शुद्ध मिट्टी तथा राख वातावरण तथा शरीरस्थ व्याप्त विषाणुओं, कीटाणुओं एवं जीवाणुओं को नष्ट करने में सर्वथा सक्षम हैं। यज्ञ कर्म से वातावरण परिशुद्ध रहता है। "यज्ञ" मानव–जीवन तथा वैदिक साहित्य(ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, ब्राह्मण तथा सूत्रों आदि) का अविभाज्य अंग है। वैदिक ऋषियों की सम्पूर्ण जीवनचर्या यज्ञ कर्मों से अनुप्राणित थी। "यज्ञ" शब्द यज् धातु से निर्मित है जिसका अर्थ है–
1. देवपूजा, 2. संगतिकरण, 3. दानादि(यज्देवपूजासंगतिकरण दानेषु)। सामान्यतया देवों का आहवान करके किसी उद्देश्य हेतु अग्नि के माध्यम से दिया गया(हविष् आदि) दान–त्याग ही यज्ञ है।[5]

संगतिकरण– संगतिकरण का अर्थ है "संगठन"। यज्ञ का प्रमुख उद्देश्य धार्मिक प्रवृत्ति के लोगों को सद्प्रयोजन हेतु मन्त्रोच्चारण के द्वारा संगठित करना ही "यज्ञ" है। यज्ञ की तीन विधाएं हैं– 1. इष्टि, 2. पशुबन्ध, 3. सौमिक।
इष्टि– इष्टि में पुरोडाश की मुख्य आहुति दी जाती थी।
पशुबन्ध– पशुबन्ध में पशु की आहुति दी जाती थी।[6] प्रतीकात्मक पशु की आहुति का उल्लेख है। "वैदिकी हिंसा, हिंसा न भवति।" ब्राह्मण ग्रन्थों में अनेक स्थलों से यज्ञ का प्रतीकात्मक स्वरूप प्रकाश में आया है।
सौमिक– सौमिक में सोम–रस की आहुति दी जाती थी। ब्राह्मण–ग्रन्थों में उपर्युक्त तीनों का अत्यधिक उल्लेख नहीं मिलता।

इसी प्रकार यज्ञों का एक अन्य विभाजन है– 1. नित्य (यज्ञ) कर्म, 2. नैमित्तिक (यज्ञ) कर्म, 3. काम्य (यज्ञ) कर्म।

नित्य (यज्ञ) कर्म– अपरिहार्य प्रकृति के कर्म हैं जिन्हें दैनन्दिन करना होता था।
नैमित्तिक (यज्ञ) कर्म– यह यज्ञ कर्म विशिष्ट उद्देश्यों एवं अवसरों पर किये जाते थे।
काम्य (यज्ञ) कर्म– वे यज्ञ थे जो विशिष्ट उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किये जाते थे। प्रो० हिलेब्रांट ने यज्ञों का वर्गीकरण नित्य एवं नैमित्तिक ही माना है तथा यज्ञ प्रक्रिया की विशिष्टता को माना है। यज्ञ को ही प्रजापति व विष्णु कहा गया है– "यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म, प्रजापतिर्वैयज्ञः। यज्ञो वै विष्णुः.....।"[7,8] आशय यही है कि वैदिक धर्म एवं वैदिक संस्कृति में यज्ञ का प्रमुख स्थान है।

प्राचीन भारतीय हिन्दू जाति ने नित्य के धार्मिक कृत्यों में पाँच महायज्ञों का अनिवार्य विधान किया है। मनुस्मृतिकार मनु ने अपनी रचना मनुस्मृति के तीसरे अध्याय में लिखा है कि प्रत्येक गृहस्थ से पाँच प्रकार की हिंसाएं प्रतिदिन होती है(चूल्हा, चक्की, झाड़ू, ओखली–मूसल और घटादि से) इन हिंसाओं के प्रायश्चित स्वरूप मनु ने पाँच महायज्ञों का विधान किया है। मनु के अनुसार पन्च महायज्ञ निम्न हैं–

"ऋषियज्ञं देवयज्ञं भूतयज्ञं च सर्वदा।
नृयज्ञं पितृयज्ञं च यथाशक्ति न हापयेत्।।"

1. ऋषि यज्ञ, 2. देव यज्ञ, 3. भूत यज्ञ, 4. नृयज्ञ, 5. पितृ यज्ञ, अर्थात् उपर्युक्त पन्च यज्ञों को यथाशक्ति नहीं छोड़ना चाहिए अपितु इनका अनुष्ठान करते रहना चाहिए। ये महायज्ञ यदि नित्य विधिपूर्वक श्रद्धापूर्वक किये जाते हैं तो मनुष्य का जीवन निरन्तर उन्नत, पवित्र और महान् हो जाता है और अन्ततः वह मनुष्य मोक्ष का अधिकारी बनता है।

1. **ऋषि यज्ञ**– इस यज्ञ के अंतर्गत स्वाध्याय और सन्ध्योपासना ये दो कर्म आते हैं। स्वाध्याय के दो अर्थ हैं प्रथम तो यह कि मनुष्य प्रतिदिन प्रातः एवं संध्या सद्ग्रन्थों(धार्मिक ग्रन्थों) का पठन–पाठन एवं चिन्तन करे। परिणाम स्वरूप इससे मनुष्य के दुर्गुणों का क्षय होगा तथा सद्गुणों की अभिवृद्धि होगी। स्वाध्याय से यह आशय है कि मानव स्वयं प्रतिदिन आत्म–निरीक्षण करे तथा आत्म निरीक्षण करते हुए अपने दुर्गुणों का परित्याग और सद्गुणों का वर्द्धन करने का प्रयत्न करे। उपर्युक्त सन्ध्योपासना में मानव के निर्माण का प्रयत्न स्पष्ट परिलक्षित होता है। मानवमात्र जब आत्म निरीक्षण करता हुआ परमात्मा में लीन होता है, तभी विश्वकल्याण सम्भव है।

2. **देव यज्ञ**– देव यज्ञ का दूसरा नाम "अग्निहोत्र" है। अग्निहोत्र भी प्रातः सम्पन्न करना चाहिए। वेदमन्त्रों के द्वारा किया गया यह अग्निहोत्र मानव का कल्याण करता है। इससे वातावरण की शुद्धि होती है। अग्निहोत्र करते समय प्रत्येक व्यक्ति स्वयं अपनी तथा अपने आस–पास की सफाई करता है। स्वस्तिवाचन, शान्ति के मन्त्रों से विश्वकल्याण की कामना–परक मन्त्रों का उच्चारण करता है। कभी–कभी ये यज्ञ विशाल रूप से किये जाते हैं, उस समय अनेक व्यक्ति परस्पर आदान–प्रदान करते हुए सामाजिक क्षमता, मैत्री–भाव के विकास में भी योग देते हैं। अतः यज्ञ राष्ट्र के लिए उपयोगी तत्त्व सिद्ध होते हैं।

3. **भूत यज्ञ**– इस यज्ञ में भोजनादि की आहुतियां अग्नि में दी जाती हैं। तदनन्तर कुत्ता, भंगी, कोढ़ी आदि प्राणियों को तथा पशु–पक्षियों, कीट–पतंगों आदि को भोजन का भाग देकर सन्तुष्ट किया जाता है। इस प्रकार भूत यज्ञ में दान एवं त्याग की भावना के साथ–साथ असमर्थ प्राणियों की मंगल कामना भी निहित है।

4. **नृयज्ञ**– नृयज्ञ को "अतिथि यज्ञ" भी कहते हैं। इसमें अतिथि–अभ्यागत, साधु–महात्मा तथा सज्जनों को भोजन–वस्त्र, दक्षिणा इत्यादि से सन्तुष्ट करके उनके सत्संग का लाभ उठाया जाता है। "अतिथि देवो भव।" इस यज्ञ से त्याग–दान एवं सेवा की भावना का प्रसार होता है। विद्वानों का आदर होता है।

5. **पितृ यज्ञ**– पितृ यज्ञ से आशय माता–पिता, आचार्य आदि गुरुजनों की सेवा–शुश्रूषा तथा आज्ञा पालन करते हुए श्रेष्ठ कर्मों का आचरण करना है। इस यज्ञ से सृष्टि–विकास की प्रक्रिया में भी महत्वपूर्ण योगदान मिलता है यथा– हमारे माता–पिता ने हमें उत्पन्न कर संस्कृति में योगदान करके पीढ़ी का विकास किया है, उसी प्रकार मनुष्य का कर्त्तव्य है कि आगे की पीढ़ियों को सुरक्षित रखने के लिए प्रयत्नशील रहे। इस प्रकार सृष्टि–विकास तथा ज्ञान–धारा को अक्षुण्ण रखने के लिए पितृ–यज्ञ नितान्त अपेक्षित है। सन्तानोत्पत्ति से मनुष्य पितृ–ऋण से भी मुक्त हो जाता है।

अग्निहोत्रादि यज्ञ कर्मों को प्रदूषण निवारक माना गया है। आज नाइट्रोजन डाई ऑक्साइड, सल्फर डाई ऑक्साइड, कार्बन मोनो ऑक्साइड आदि गैसें वायु को प्रदूषित करने वाली गैसें हैं किन्तु आज वायु प्रदूषण एक गम्भीर समस्या बन गई है जिसके कारण श्वांस सम्बन्धी बीमारियों से लेकर फेफड़े के कैंसर व हृदय सम्बन्धी अनेकों बीमारियों का प्रकोप बढ़ रहा है। इन समस्याओं के मूल रूप से समाधान हेतु अग्निहोत्रादि यज्ञों को प्रत्येक घर में करने पर बल देना चाहिए तभी मनुष्य स्वस्थ एवं दीर्घायु को प्राप्त होगा। "जीवेम शरदः शतम्।" टाटलिक एवं त्रिले नामक विद्वानों के अनुसन्धान से यह बात सिद्ध हो गई है कि हवन–सामग्रियों के प्रज्जवलन से उत्पन्न धूम(गैस) से अनेक प्रकार के कीटाणुओं, विषाणुओं एवं जीवाणुओं का विनाश होता है तथा जलवायु शुद्ध होती है। इतना ही नहीं यज्ञानुष्ठान करने से पर्जन्य–वृष्टि द्वारा विश्व के समस्त जीव–जन्तुओं का पालन–पोषण होता है। यज्ञाग्नि से एक हजार वाट की विद्युत् निकलती है जो आकाश–तत्त्व में मिलकर सूक्ष्मातिसूक्ष्म परमाणुओं के रूप में हमारे शरीर को लाभान्वित करती हैं।

यज्ञकर्मों में उच्चरित सस्वर मन्त्रोच्चारण की ध्वनि से वातावरण पवित्र हो जाता है तथा कर्णप्रिय होने के कारण अन्तःकरण शुद्ध तथा सात्विक हो जाता है। मन्त्रों में अनेक शक्तियां निहित हैं। शुद्ध मन्त्रोच्चारण से एक विशिष्ट प्रकार की ध्वनि तरंगें उत्पन्न होती हैं। वेदों में वर्णित है कि वृक्षों में भी जीवात्मा है एवं श्वसन क्रिया होती है जिसे आज वैज्ञानिकों ने भी स्वीकार

किया है। यज्ञ आयोजनों के पीछे जहाँ विश्व की सुख–वैभव–समृद्धि एवं शांति की विज्ञान सम्मत परम्परा सन्निहित है तथा दैवीय शक्तियों का मन्त्रोच्चारण के द्वारा आह्वान–पूजन का मंगलमय समावेश है वहाँ ही मानवीय गतिविधियों तथा प्राकृतिक सन्तुलन को बनाये रखने में यज्ञों की उपयोगिता वैज्ञानिकों द्वारा मान्य है। यह एक वैज्ञानिक सत्य है कि सूक्ष्म शरीरधारी देव समस्त स्थूल भौतिक पदार्थों के गन्धमात्र को ग्रहण करते हैं। भौतिक पदार्थों के गन्ध में परिवर्तन मात्र अग्नि के संस्पर्श से सम्भव है। अग्नि के माध्यम से देवों को हविर्भाग अर्थात्(हविष् आदि) की आहुति दी जाती थी। ऐसी धारणा थी कि देवगण उसे ग्रहण करते थे। जैसे–तैसे देवों को प्रसन्न करने की कुन्जी यज्ञानुष्ठान यजमान मानव के मन में घर करती गई वैसे–वैसे समाज के प्रबुद्ध वर्गों में इसका विस्तार एवं विकास होता चला गया। दैवीय प्रकोप, दुःख, रोग तथा जरा आदि से सन्तप्त मानव को यज्ञों के माध्यम से देवों का सर्वशक्तिसम्पन्न तथा सर्वसुखप्रदातृ रूप शनैः–शनैः अपनी ओर आकृष्ट करता चला गया तथा मानव मन को एक विश्वसनीय सम्बल तथा अभयपूर्ण आश्रय प्राप्त हो गया। फिर क्या था? वेदकालीन मानव पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, द्यौ, अन्तरिक्ष, सूर्य, चन्द्रमस् एवं वनस्पतियों की पूजा–अर्चना में संलग्न हो गये। विश्व का वातावरण उपर्युक्त प्राकृतिक महाशक्तियों के पारस्परिक सन्तुलन व सामंजस्य पर निर्भर करता है। शनैः–शनैः यज्ञ का इतना विकास हुआ कि उस कड़ी में बड़ी संश्लिष्टता एवं तकनीकीपन आता गया। यज्ञ एक प्रकार के विशिष्ट वैज्ञानिक प्रयोग बन गये।[9] वाक् का सूक्ष्म रूप विद्युत् चुम्बकीय तरंगें हैं जो मन से भी सूक्ष्मतर हैं। शतपथ ब्राह्मण (1/4/4/7) यहीं वाक् तडित्(थण्डर बोल्ट) के समान बहुत शक्तिशाली है। समस्त दुःखों के लिए यह रामबाण औषधि है। विद्युत् चुम्बकीय तरंगों को इस उचित प्रकार से प्रयुक्त करें तो न केवल ध्वनि प्रदूषण ही अपितु वायु प्रदूषण को भी दूर किया जा सकता है। 1928 ई0 में बर्लिन विश्वविद्यालय ने शंख ध्वनि का अनुसन्धान करके यह सिद्ध किया कि शंख ध्वनि की तरंगें रोगाणुओं को नष्ट करने में उत्तम एवं सस्ती औषधि है। शिकागो के डॉ0 डी0 ब्राइन ने बधिरों को शंख ध्वनि से ठीक किया।[10] सामवेद संगीत विद्या का जन्मदाता है। सामवेदीय मंत्र विविध रूप में ध्वनि प्रदूषण को रोक सकते हैं। वेदों में राजयक्ष्मा रोग के निवारण के लिए यज्ञ विहित है।[11]

यज्ञ एक उपचारात्मक प्रक्रिया है। यज्ञ के द्वारा मानव मस्तिष्क की कोशिकायें तथा त्वचा की कोशिकायें पुनर्जीवित होती हैं। यज्ञानुष्ठान से रक्त शोधन होता है एवं श्वांस सम्बन्धी– अस्थना, फेफड़े का कैंसर, खसरा, चेचक, स्वाइन फ्लू आदि रोगों से मुक्ति मिलती है। यज्ञ वातावरण को प्रदूषण से सुरक्षित ही नहीं करता है अपितु वातावरण में रोग निवारक ऊर्जा(शक्ति) को विकसित करता है। गोपथ ब्राह्मण के तृतीय प्रपाठक में विविध होताओं के कार्यकलापों का वितरण अति वैज्ञानिक ढंग से उल्लिखित है। मनोवान्छित आहुतिगन्ध प्राप्त कर दाता यजमान के ऊपर देवों का प्रसन्न होना अत्यन्त स्वाभाविक बात थी। इस प्रकार यह एकमात्र यज्ञ प्रक्रिया ही थी जो देवों और मानव के मध्य सेतु बनकर स्थित हो गयी। जैसे–जैसे देवों की यज्ञ विधि रूपी कुंजी यजमान मानव के मन में आस्था की जड़ जमाती गयी वैसे–वैसे समाज के प्रबुद्ध वर्गों में यज्ञ का विस्तार एवं प्रचार सहज होता चला गया। यज्ञ मुख्यतः पाँच प्रकार के होते हैं– 1. अग्निहोत्र 2. दर्शपूर्णमास 3. चातुर्मास्य 4. पशुयाग, 5. सोमयाग।

भोजन विधि भी अग्निहोत्र विधि के समान है–

"सायं प्रातर्द्विजातीनामशनं श्रुति चोदितम्। नान्तरा भोजनं कुर्यादग्निहोत्रसमो विधिः।।"(कर्मठगुरु, पृ0 38)

भोजन क्रिया भी इस प्रकार का यज्ञ कर्म है जैसे अग्नि में हवि प्रदान करते हैं उसी प्रकार जठराग्नि में भोजन ग्रास रूपी हवियां डालते हैं। उत्तम हवि से उत्तम यज्ञ का फल प्राप्त होता है इसी प्रकार उत्तम(संतुलित) भोजन से उत्तम आयु तथा स्वस्थ शरीर तथा मन की प्राप्ति होती है। "जैसा खाये अन्न, वैसा होवे मन।" अतः मानसिक स्वास्थ्य के लिए सुविचारित अन्न ग्रहण करना चाहिए। जैसे जलती हुई अग्नि में डाली गयी आहुति भस्म हो जाती है उसी तरह प्रज्वलित जठराग्नि के द्वारा भोजन भी अच्छी तरह पच जाता है। दोनों भोजन कालों में इतना अन्तर रखने का मूल कारण भोजन पचने में कठिनता है उसी प्रकार प्रज्वलित अग्नि में अधिक मात्रा में हविद्रव्य अर्पित करने से अग्नि सहजता से पूरा नहीं जला पायेगी एवं वह बुझ सकती है। उसी प्रकार अधिक बार भोजन करने से जठराग्नि मन्द पड़ जाती है तथा भोजन ठीक से नहीं पचता है।

मानव सभ्यता एवं सुख–शान्ति के इतिहास के निर्माण में इन यज्ञ प्रक्रियाओं का बहुमूल्य योगदान रहा है। यज्ञ ही कर्मचक्र, धर्मचक्र और जगचक्र का अनुवर्त्तन है। वेदों के साथ यज्ञों का नीरक्षीरवत् अटूट सम्बन्ध है। सम्पूर्ण वैश्विक क्रिया–कलापों की धुरी में यज्ञ की ही स्थिति है। उसी के सहारे विश्व ब्रह्माण्ड का गतिचक्र घूमता है। अतएव वैदिक ऋषियों ने सृष्टि का चक्र यज्ञ को माना है। यज्ञ को धर्म का स्वरूप अकारण ही नहीं कहा गया है। महर्षि कणाद ने धर्म का लक्षण करते हुए कहा है– "यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः धर्मः।" अर्थात् "जिसके द्वारा अभ्युदय और निःश्रेयस की सिद्धि हो, वह धर्म है।" अभ्युदय की हेतु यज्ञानुष्ठान है और निःश्रेयसका हेतु है ज्ञान–साधना। यज्ञादि कर्मानुष्ठानों की उपेक्षा के परिणाम स्वरूप ही आज विश्व में दुःख–दरिद्रता, अत्याचार, अन्याय, भुखमरी, आतंकवाद एवं भ्रष्टाचार का साम्राज्य है तथा फलस्वरूप मनुष्य का सामाजिक एवं नैतिक पतन तीव्र गति से हो रहा है। अतः जगत् को सुव्यवस्थित रूप से संचालित करने के लिए यज्ञानुष्ठान की अनिवार्यता का विधान किया गया था। यज्ञविहीन प्राणी आत्म पवित्रता के अभाव में छिन्न–भिन्न होकर पत्तों की तरह नष्ट हो जाते हैं।[13]

ब्राह्मण ग्रन्थों में यज्ञों का विस्तृत उल्लेख मिलता है। कुछ विद्वानों का कथन है कि इन यज्ञों का महत्त्व मात्र परम्परागत रूढ़ियों और आस्था के कारण किया गया है किन्तु विचारपूर्वक देखा जाय तो यज्ञ–विधान के पीछे प्राचीनतम क्रान्तदर्शी ऋषियों की अत्यन्त सूक्ष्म वैज्ञानिक दृष्टि रही है। इन यज्ञों का अनुष्ठान मानव–जीव–जन्तुओं के लिए हितकारी भी है। यज्ञ में ही जगत् की समस्त समस्याओं एवं त्रिविध तापों(आध्यात्मिक, आधिदैविक एवं आधिभौमिक) का निराकरण निहित है। आध्यात्मिक एवं धार्मिक क्षेत्र में यज्ञों की महत्ता तथा उपयोगिता सिद्ध ही है किन्तु सामाजिक दोषों के निवारण समस्याओं के निदान एवं विज्ञान के युग में शारीरिक तथा मानसिक व्याधियों को दूर करने की एकमात्र औषधि "यज्ञ" है। भौतिकवादी वैज्ञानिक भी प्रकृति के संरक्षण का एकमात्र साधन "यज्ञ" को ही मानते हैं। यज्ञ प्रक्रिया की सृष्टि और उत्पत्ति वह विधि है जिससे प्राकृतिक जगत् में आवश्यक सन्तुलन बना रहता है। प्राकृतिक यज्ञ विश्व में प्रतिक्षण चलता रहता है। अतएव "यजुर्वेद" एवं "अथर्ववेद" में यज्ञ को सृष्टि चक्र कहा गया है। यज्ञ धूम से मेघ बनता है तथा मेघ से वृष्टि होती है। कात्यायन के श्रौत सूत्र के अनुसार द्रव्ययज्ञ की परिभाषा है– वह यज्ञ जिसमें देवता को दृष्टि करके किसी पदार्थ का त्याग किया जाता है। यज्ञ की परिकल्पना वैदिक महर्षियों की सर्वोत्कृष्ट देन हैं। इनको विभिन्न सांसारिक कामनाओं की पूर्ति का मुख्य साधन माना गया है। ऋग्वेदीय "पुरुष सूक्त" के अनुसार यज्ञ प्रक्रिया सृष्टि का प्रथम धर्म है। वेदों में जीव–जन्तुओं के हित की कामना हेतु विशुद्ध वायु का वर्णन विशेषरूपेण किया गया है। यह ही वातावरण को शुद्ध करने में सहायक है। जिस प्रकार वृक्षों के अभाव में ऑक्सीजन दुर्लभ है उसी प्रकार यज्ञानुष्ठान के अभाव में जीवन सारहीन एवं असम्भव है। ऋषिवर दयानन्द सरस्वती का दृढ़ विश्वास है कि यज्ञ ही पर्यावरण को शुद्ध करता है तथा जीव–जन्तुओं के स्वास्थ्य की रक्षा करता है। याज्ञिक अग्निहोत्रों के द्वारा वातावरण को शुद्ध करते हैं। इस संदर्भ में एक उदाहरण प्रस्तुत है– "पूना के फर्ग्युसन कॉलेज के वैज्ञानिकों ने प्रयोगशाला में प्रयोग के उपरान्त यह पाया कि 6X6X2.5 गहरे ताम्रपत्र में आम्र की समिधाओं के माध्यम से सामान्य वनौषधि सम्मिश्रण से किया गया अग्निहोत्र एक बार की 108 आहुतियों से 36X22X10 के हॉल के 1000 घनफुट से भी अधिक घनफुट वायु में कृत्रिम रूप से निर्मित वायु प्रदूषण समाप्त करने में सफल रहा क्योंकि यज्ञ कक्ष वायु की वैज्ञानिक जाँच से शुद्ध पाया गया। वैज्ञानिकों ने यह भी अभिप्रमाणित किया कि हवन सामग्री से जो वायु बनती है उसमें अधिक भाग ऑक्सीजन का होता है।"[14] श्रीमद्भागवत गीता में उद्धृत है कि यज्ञों को करने से मानव अनजाने में हुई हिंसा से मुक्त हो जाता है।[15] यज्ञ न करने से होने वाली हानि पर प्रकाश डालते हुये श्रीमद्भागवत गीता में उद्धृत है "समस्त प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं, अन्न की उत्पत्ति वृष्टि से होती है, वृष्टि यज्ञ से होती है और यज्ञ विहित कर्मों से उत्पन्न होता है।"[16] इससे यह सिद्ध होता है कि सर्वव्यापी परम अक्षर परमात्मा सदा ही यज्ञ में प्रतिष्ठित हैं[9]। इतना ही नहीं मानव–जीवन की आधार शिला है–"यज्ञ"। पर्यावरण प्रदूषण के निवारण की दिशा में पर्यावरणविद् एवं वैज्ञानिक अत्याधिक प्रयत्नशील है। प्रकृति का सन्तुलन बनाये रखने में यज्ञों की अहम भूमिका है। पर्यावरण प्रदूषण का वर्तमान स्वरूप असन्तुलन का ही परिणाम है। यज्ञानुष्ठान द्वारा पर्यावरण सुरक्षा एक ऐसा विषय है जिसे अनदेखा नहीं किया जा सकता है। यदि अनदेखा करेंगे तो आने वाली पीढ़ी के साथ अन्याय होगा।

"संगतिकरण" से तात्पर्य व्यक्ति आपस में मिलकर सद्कर्मों को सम्पन्न करे। यज्ञानुष्ठान में सम्मिलित होकर लोग "यज्ञीय भावना" से प्रेरित होते हैं यथा–भूकम्प, सुनामी आदि दैवीय आपदा से त्रस्त लोगों को पीड़ामुक्त करने के लिए स्वायत्त संस्थाओं ने मिलकर जो कार्य किया, वह "संगतिकरण" ही है। जिस प्रकार विज्ञान के युग में विज्ञान का वर्चस्व दृष्टिगत होता है उसी प्रकार यज्ञादि अनुष्ठान बहुत से पदार्थों के सम्मेलन से निर्मित यज्ञ सामग्री से मानसिक शान्ति ही नहीं मिलती अपितु विभिन्न प्रकार की व्याधियों तथा रोगों का निवारण भी होता है। अथर्ववेद के एक स्थल पर वर्णित है कि देवगण हमारे यज्ञ को ग्रहण करें क्योंकि हम हविषों को एकत्रित करके आहुतियां दे रहे हैं।[17] अतएव मनुष्यों को चाहिए कि द्वेष आदि भावनाओं का परित्याग करें, तथा गृह, ग्राम, नगर, समाज, राष्ट्र तथा विश्व में "संगतिकरण" को विस्तारित करें, इसकी नितान्त आवश्यकता है। यथा "वसुधैव कुटुम्बकम्।"

इतना ही नहीं यज्ञ का प्राणतत्त्व "दान" है। यज्ञकर्म से जनों में सात्विक भावना का उदय होता है तथा वे विश्व कल्याण में निरत होते हैं। वर्तमान युग में अग्निहोत्रादि यज्ञों को प्रत्येक गृह में करने पर विशेष बल देना चाहिए जिससे मानव–जीवन सुखी, समृद्धिशाली, स्वस्थ एवं लोग दीर्घायु को प्राप्त हो। "शतं जीवेम शरदः सर्ववीराः"।[18] भारतवर्ष में ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व में यज्ञानुष्ठान के अभाव में भारतीय संस्कृति की गरिमा धूमिल हुई है और मनुष्य(प्राणी) दुःख–दारिद्रय, दुर्भिक्ष, अशान्ति, हिंसा, भ्रष्टाचार तथा आतंकवाद आदि को भोग रहा है। यज्ञों के पुनः अनुष्ठान से एवं प्रसार के द्वारा हम लोगों की सामाजिक, सांस्कृतिक, मानसिक, शारीरिक, आत्मिक एवं वैज्ञानिक उन्नति होगी तथा प्रदूषण जैसी विभीषिका से मुक्ति मिलेगी। पर्यावरण की शुद्धता से ओजोन गैस की पर्त में होने वाले छिद्रों की सम्भावना भी समाप्त हो जायेगी। भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने यज्ञों की सार्वभौमिक वैज्ञानिकता को माना है उसी से व्यक्ति, समाज, देश, राष्ट्र एवं विश्व का संरक्षण एवं कल्याण हो सकता है। अखिल विश्व के निखिल कार्य यज्ञों पर आश्रित हैं। अतः वैदिक ऋषियों ने विश्व कल्याण के लिए यज्ञ–विधान के द्वारा जो दिव्य भावना की सुर–सरिता प्रवाहित की है, वह अविरल गति से सृष्टि के आदिकाल से आजतक प्रवाहित होती जा रही है और उसमें अवगाहन कर देश एवं विदेशों के असंख्य पुण्यवान लोग दिव्यजीवन के भागी हुए हैं, हो रहे हैं तथा होते रहेंगे।

संदर्भ

1. सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुखभाग्भवेत्।।
2. ऋग्वेद 4/20/1; 7/33/3; 7/66/8; 8/26/16। इसी संदर्भ में के0 आर0 पोतदार का कथन– Sacrifice and hymns are almost as vitalty and inextricably connected with each other and can also be fittingly said to be evolving out of each other like the renowned 'Bija and Ankura' of the Vedantic doctrine.(सैक्रिफाइसेज इन द ऋग्वेद, पृ0 19)
3. आयुर्यज्ञेन कल्पतां मनो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पता श्रोतं यज्ञेन कल्पतां वाग्यज्ञेन कल्पता.....। यजुर्वेद संहिता 18/29।
   सर्वाभ्यो वा ए .....। तै0ब्रा0 2/1/8/3।
4. यजुर्वेद 23/62; अथर्ववेद 9/10/14।
5. यास्ककृत निरुक्त 8/3/22।
   देवतोद्देशेन द्रव्यत्यागो यागः। श्री विद्याधर शर्मा शतपथ ब्रा0 वॉल्यूम–2, पृ0 16–17।
6. सेक्रिफाइज इन द ब्राह्मण टेक्स्ट्स, डॉ0 गणेश उमाकान्त थीटे, पृ0 151।
7. तैत्तिरीय ब्राह्मण 3/2/1/4, शतपथ ब्राह्मण 1/5/4/5, 1/1/2/1–2।
8. तैत्तिरीय ब्राह्मण 3/2/3/12; 3/2/7/4; 3/3/6/1 शतपथ ब्राह्मण 1/1/3/1, 1/2/5/3, पं0 ब्रा0 13.3.2।
9. "..... the ritualist is perfectly in attributing to this hollowed acts and words a power which.....does something, the sacrament confers grace exopere operatio there are rather may be, matters of direct experience facts which anyone who chooses to fulfill the necessary conditions can verify empirically for himself." आल्डस ए0 हक्सले– पेरेनियल फिलॉसफी, पृ0 307।
10. अग्निहोत्र यज्ञ, स्वामी विवेकानन्द सरस्वती, गुरुकुल प्रभात आश्रम मोलाझाल, मेरठ।
11. अष्टांगहृदयम् 5/83, ऋग्वेद 10/18/11, अथर्ववेद 3/11/1, तैत्तिरीय संहिता 11/3; मैत्रायणी 2/27।
12. इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका वॉल्यूम–18, 801ए0–805ए0।
13. गुरुकुल शोध भारती, पृ0 138।
14. नास्त्ययज्ञस्य लोको वै नायज्ञो विन्दते शुभम्। अयज्ञो न च पूतात्मा नश्यति छिन्न पर्णवत्।।
15. यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः। भुन्जते ते त्वधं पापा ते पचन्त्यात्मकारणात्।। श्रीमद्भागवत गीता 3/13।
16. अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसंभवः। यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः।। श्रीमद्भागवत गीता 3/14।
17. सं सं स्रवन्तु ..... हविषा जुहोमि।। अथर्ववेद 1/51/1।
18. "शतं जीवेम शरदः सर्ववीराः" अथर्ववेद 3/12/6।

कैंसर रोगियों में योग की भूमिका–एक अध्ययन

तृप्ति मिश्रा[1], शिप्रा शुक्ला[1], अंजलि वर्मा[1], विभा सिंह[2] एवं महेश पाल[1]
[1]पादप रसायन विभाग, राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ–226001, उ0प्र0, भारत
[2]किंग जार्ज मेडिकल यूनिवर्सिटी, लखनऊ–226003, उ0प्र0, भारत
drshipra.biotech@gmail.com

प्राप्त तिथि– 21.05.2015, स्वीकृत तिथि– 10.06.2015

सार

हजारों सालों से योग का अभ्यास शारीरिक और भावनात्मक सुधार के लिए किया जाता है। कई दशकों से कैंसर रोगियों पर रोगियों का अनुभव जन्य अनुसंधान जारी है। कुछ कैंसर रोगियों तथा कैंसर रोगों का उपचार करा चुके लोगों पर हुए अध्ययनों के अनुसार योग करने से नींद की गुणवत्ता, मूड़ तनाव, कैंसर सम्बन्धित लक्षणों तथा जीवन की समग्र गुणवत्ता में सुधार होता है। प्रस्तुत लेख कैंसर रोगियों पर योग के प्रभाव पर हो रहे अनुसंधानों पर आधारित एक संक्षिप्त अध्ययन है।

बीज शब्द– योग, कैंसर रोगियों, शारीरिक सुधार।

Role of Yoga in Cancer patients- A study

Tripti Misra[1], Shipra Shukla[1], Anjali Verma[1], Vibha Singh[2] and Mahesh Pal[1]
[1]Department of Phyto-Chemistry, N.B.R.I., Lucknow-226001, U.P., India
[2]King George Medical University, Lucknow-226003, U.P., India
drshipra.biotech@gmail.com

Abstract

Yoga has been used for improving mental and physical health since the ancient time. Cancer research is the thrust area of research of many institutional bodies, which are doing it on cancer patients. The present report is providing evidence of Yoga on cancer patients. The studies conducted on cancer patients who had treatment and those who are under treatment with yoga show positive result on improving moods, cancer symptoms and many other values of life.

Keywords- Yoga, cancer patient, physical improvement.

परिचय– योग शब्द की उत्पत्ति संस्कृत से हुई है जिसका अर्थ है जुगल करना या शामिल होना। दार्शनिक सदर्भ में योग व्यक्ति का ब्रह्मांड से मिलन व्यक्त करता है। (योग भारतीय दर्शन शास्त्र की छः शाखाओं में से एक योग का सन्दर्भ वेदों तथा सभी प्राचीन ग्रन्थों से मिलता है)[2] लगभग एक दो हजार वर्ष पूर्व भारतीय ऋषि पतंजलि ने योग के सूत्रों को संहिताबद्ध किया। जिसे योग सूत्र कहा गया जो योग के आधुनिक अभ्यास को परिभाषित करने में मदद करता है। योग सूत्र के आठ अंग होते हैं, यम(नैतिक विषय), नियम(पालन), आसन(स्थित तथा मुद्रा), प्राणायाम(खांस पर नियंत्रण) प्रत्याहार(इंद्रियों की वापसी), धारणा(एकाग्रता), ध्यान और समाधि(आत्मबोध ज्ञान), संयुक्त राज्य अमेरिका में योग शब्द आमतौर पर तीसरे और चौथे अंग अर्थात आसन और प्राणायाम को ही दर्शाता है। जबकि परम्परागत रूप से योग के सभी अंग आपस में सम्बन्धित होते हैं। योग का प्रभाव कई तरह के रोगों में पहले भी देखा गया है जैसे अस्थमा, हृदय रोग, गठिया, मिर्गी, अवसाद, मधुमेह, गैस्ट्रोइन्टेस्टाईनल विकारों इत्यादि। परन्तु हाल के वर्षों में शोधकर्ताओं का रूझान कैंसर रोगियों तथा कैंसर से जीवित बचे लोगों के बीच योग के प्रभाव के अध्ययन की तरफ बढ़ा है। योग हाल ही में कैंसर रोगियों के लिये एक संभावित लाभदायक मध्यवर्ती उपचार साबित हुआ है। योग का भारतीय रूप स्वास्थ्य और आत्म जागरूकता के लिए मन, शरीर, आत्मा, को एकजुट करने के लक्ष्य के साथ अध्यात्मिकता को भी सम्मिलित करता है।[3,4] इस लेख का प्राथमिक लक्ष्य कैंसर रोगियों और सर्वाइवर(यह शब्द उन व्यक्तियों को संबोधित करता है जिन्होने कैंसर का इलाज को पूरा कर लिया है) पर आयोजित योग

अनुसंधान की विस्तृत समीक्षा प्रदान करना है। इस लेख में योग की विभिन्न शैलियों तथा उसके फलस्वरूप रोग पर प्रभाव को सम्मिलित करता है।

विधि

प्रतिभागी– यह अध्ययन मानव विषयों की सुरक्षा के लिये संस्थागत बोर्ड द्वारा अनुमोदित किया गया था और सभी प्रतिभागियों को सूचित करके और उनकी लिखित सहमति के बाद ही किया गया। इस अध्ययन में ऐसी महिलाओं को शामिल किया गया था और सभी प्रतिभागियों को सूचित करके और उनकी लिखित सहमति के बाद ही किया गया । इस अध्ययन में ऐसी महिलाओं को शामिल किया गया जो द्वितीय से चतुर्थ स्तर के स्तन कैंसर से पीड़ित थी। तथा कम से कम 2 महीने कैंसर का इलाज करा चुकी थी। स्थानीय कैंसर सैंटर के डाटाबेस से लगभग 604 महिलाओं को पत्र भेजे गये जिनमें से 140 महिलाओं ने जवाब दिया और अध्ययन मे रूचि दिखाई ऐसी महिलाओं को अध्ययन में शामिल नहीं किया गया जो संक्रिय गंभीर संक्रमण, प्रतिरक्षा कमी, साइकोएक्टिब दवाओं का उपयोग करने वाली थी। 18 महिलाओं ने इस पात्रता की कसौटी को पास किया, जिनमें से 9 महिलाओं को कन्ट्रोल समूह तथा अन्य 9 महिलाओं को योग हस्तक्षेप या योग मध्यवर्ती समूह में निस्देश्यता से बांट दिया गया।

कार्यविधि– आठ सप्ताह का योग कार्यक्रम शुरू करने से एक सप्ताह पहले प्रतिभागियों से बेसलाइन आंकड़े एकत्रित किये गये। योग कार्यक्रम पूरा होने के एक सप्ताह भीतर (T1) आधारभूत तथा योग कार्यक्रम (T2) के पूरा होने पर सभी विषयों ने स्वयं रिपोर्ट उपकरणों के द्वारा पूरे कर लिये थे। जिनमे जीवन की गुणवत्ता, स्तन कैंसर विशिष्ट प्रश्नावली जनसांख्यिकीय जानकारी[4] लक्षण प्रोफाइल, थकान, दवा, इतिहास, स्तन कैंसर का इतिहास रोग तथा उपचार शामिल थे। दोनों ही अवसरों पर रोगियों को लार संग्रह किट दिये गये तथा एक सप्ताह के भीतर दोनों समूहों से आंकड़े संग्रहित किये गये। कट्रोल ग्रुप समूह को नियमित दिनचर्या जारी रखने के निर्देश दिये गये तथा योग ग्रुप एक सप्ताह में दो बार 90 मिनट का योग सूत्र कार्यक्रम में भाग ले रहे थे।

लार कार्टिसाल गाप– प्रतिभागियों का लार सेंपल सेलवेट(Salivate Collection vials) संग्रह शीशियों में लिया जाता था। सेंपल लेने का समय एक दिन में चार बार(सुबह, दोपहर, 5 बजे और 10 बजे पी.एस.टी.) होता था। यह समय बेसलाइन(T1) के लिए लगातार दो दिन तथा (T2) के लिए 8 सप्ताह बाद होता था। अनुपालन वृद्धि के लिए प्रतिभागियों को पूर्व निर्धारित अलार्म वाली कलाई में बाधने वाली घड़ियाँ प्रदान की गई। प्रतिभागियों को दिये गये ट्रैकिंग फॉर्म में सेंपल कलेक्शन का वास्तविक समय रिकार्ड करना होता था। योग ग्रुप तथा कंट्रोल ग्रुप दोनों को एक जैसे निर्देश दिये जाते थे। तथा सभी सेंपल्स को एक समान तरीके से प्रोसेस किया जाता था।

परिणाम– अध्ययन विश्लेषण (T2) 14 लोगों (विषयों) पर पूरा किया गया जिस समूह में 7 लोग थे। योग समूह में 7 विषय ऐसे थे जिन्होंने लगभग 14.16 सेशन (87.5) की अध्ययन प्रक्रिया को पूरा किया।

इस अध्ययन के अलावा भी कैंसर रोगियों में योग की भूमिका पर कई विश्लेषण हो चुके हैं। कैंसर पर योग के प्रभाव का अध्ययन पहली बार भारत में छपा। पहले ट्रायल में 50 कैंसर रोगियों पर योग का प्रभाव देखा[6] गया जो रेडियेशन थेरेपी से गुजर रहे थे हालांकि उसमें कंट्रोल समूह शामिल नहीं था। योग से हुए लाभ में बहुत सी बातें शामिल थी जैसे भूख लगना(22%), नींद में सुधार(22%).आंत व्यवहार सुधार(26%) तथा शांति और सौहार्द की भावना।

वर्ष 2004 में कोहेन और उनके सहयोगियों ने कैंसर रोगियों के लिए तिरवती योग का एक नियंत्रित परीक्षण प्रकाशित किया[7]। इस अध्ययन में 3 घटक थे नियंत्रित श्वांस दृश्य और मन परिपूर्णता। इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य तनाव कम करना तथा कैंसर रोगी के जीवन की गुणवत्ता में सुधार लाना था। योग समूह के प्रतिभागियों को दिन में कम से कम एक बार योग अभ्यास करने को प्रोत्साहित किया जाता था। योग समूह के लिए 30 रोगियों का चुनाव किया गया जिन्हें स्टेज (I- IV) लिम्फोमा कैंसर था। जिनमें से 21 प्रतिभागी कीमोथेरेपी पर निर्भर थे। इनमें मूड, उर्जा, नींद का आंकलन योग के बाद किया गया। योग ग्रुप के प्रतिभागियों की रिपोर्ट के अनुसार योग समूह प्रतिभागी कट्रोल समूह की तुलना में नींद की गुणवत्ता में सुधार तथा नींद की दवाओं का उपयोग कम से कम करने के परिणाम मिले हैं। कैंसर रोगियों पर हुए एक रेंडम ट्रायल जो कि नॉन पियर रिव्यूड योगा जर्नल में प्रकाशित हुआ जिसके अनुसार यह अयंगर तकनीक से प्रभावित होता है।[8] 75 मिनट की सप्ताहिक कक्षाओं में प्रतिभागियों को योग के संशोधित संस्करण सिखाये जाते थे। जिनमें सामान्य स्ट्रेचिंग तथा शरीर को मजबूत बनाने के व्यायाम, सवासन आदि शामिल थे। इस अध्ययन का लक्ष्य शारिरिक फिटनेस में सुधार, तनाव को कम करना तथा शारीरिक गुणवत्ता में सुधार लाना था। एक अन्य अध्ययन में 30 कैंसर रोगियों को शामिल किया गया जिनमें कैंसर रोगी तथा कैंसर सर्वाइवर दोनों शामिल थे। प्रतिभागियों के मूड, तनाव, जीवन की गुणवत्ता, शारिरिक क्रियाशीलता

आदि का अध्ययन योग प्रक्रिया के पहले तथा बाद में किया गया। परिणाम इस कार्यक्रम की प्रभावकारिता के प्रारम्भिक सबूत प्रदान करते हैं।

सारिणी–1: लार कार्टिसाल स्त्राव और (Prochosocial well being) मनोसामाजिक प्रक्रिया की कन्ट्रोल समूह और बेसलाइनकी योग की भागीदारी के बाद तुलना

(Variable) परिवर्तनशील	Baseline (T1) आधार रेखा	T2	Significance महत्व	Baseline (T1) आधार रेखा	T2 योग के बाद	Significance महत्व
(Physical Well being) शारिरिक कल्याण	0.29+0.27	0.42 +0.25	0.140	0.96+0.86	0.77+0.94	0.465
(Social Wellbeing) समाजिक कल्याण	3.24+0.69	3.6+0.83	0.588	3.18+0.65	2.8+0.67	0.686
(Emotional Wellbeing) भावनात्मक कल्याण	0.46+0.52	0.38+0.31	0.462	0.79+0.23	0.47+0.36	0.042
(Functional Wellbeing) क्रियात्मक कल्याण	3.37+0.46	3.24+0.56	0.235	3.08+0.92	3.46+0.64	0.343
(Fatigue) थकान	0.86+0.90	1.57+0.98	0.059	1.86+1.07	1.00+0.89	0.046
(Breast Cancer Conarn) स्तन कैंसर प्रसंग	10.14+3.13	8.43+3.91	0.106	9.85+7.73	8.80+3.11	0.892
(Morning Cortisol) प्रातः कार्टिसाल स्तर	2-56+0.27	2.45+0.29	0.176	2.52+0.11	2.33+0.09	0.018
(Noon Cortisol) दोपहर कार्टिसाल स्तर	2.20+0.16	2.11+0.29	0.612	1.17+0.16	1.72+0.26	0.999
(Evening Cortisol) सायं कार्टिसाल	1.85+0.21	1.74+0.45	0.499	1.44+0.38	1.19+0.35	0.028

निष्कर्ष– इस अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि योग कैंसर रोगियों तथा कैंसर सर्वाइवर के लिये एक सकारात्मक हस्तक्षेप है। मौजूदा अध्ययन में कैंसर रोग के प्रकार जैसे लिंफोमा, स्तन, प्रोस्टेट आदि) रोग के चरण (स्टेज) तथा उपचार की स्थिति आदि को शामिल किया गया है विविधता होने के बावजूद योग के कैंसर सहभागियों द्वारा अच्छी तरह से सहन किया है तथा इसका पालन भी सरल रहा है। कैंसर रोगियों के लिए योग अपनी प्रभावकारिता के कारण प्रारम्भिक समर्थन प्रदान करता है। इसके बहुत से सकारात्मक परिणाम देखे गये हैं। जैसे नींद की गुणवत्ता, मूड, तनाव, कैंसर से संबधित संकटों से कमी तथा जीवन की समग्र गुणवत्ता आदि। ध्यान देने योग्य बात यह है कि योग से होने वाले लाभ के कुछ ही अध्ययन का वर्णन इस लेख में किया गया है। इसके अलावा योग के अध्ययन का वर्णन इस योग में किया गया है। इसके अलावा योग का अध्ययन अन्य कई रोगों पर भी हो रहा है, जिसके कई सकारात्मक प्रभाव देखे जा सकते हैं।

सन्दर्भ

1. अयंगर, बी0 के0 एस0(1995) एडीशन लाइट ऑन योगा, न्यूयॉर्क, एन.वाई. साकेन बुक्स।
2. विद्यालंकार, पी0(1998) द होली वेदास, क्लेरियन बुक्स।
3. जयंकर, वी0 के0 एस0(2005) लाइट ऑन लाइफ रेनकास्ट बुक्स, डेन्कोवर।
4. सेला, डी0 एफ0; तुल्सकाई, डी0 एस0; ग्रे0, जी0; साराफियान वी0; लिन, ई0; बोनोमी ए0 एवं अन्य(1983)
5. कोलिन्स सी0(1998) योगाः इन्ट्यूशन प्रिवेन्टिव मेडिसिन एन्ड ट्रीटमेन्ट, ज0 आग्सटेट गाइनीकोल नियोनेटल नर्स, खण्ड–27, मु0पृ0 563–568।
6. जोसेफ, सी0 डी0(1983) साइकोलॉजिकल सपोर्टिव थेरेपी फॉर कैंसर पेशेन्ट, इण्डियन जर्नल कैंसर, खण्ड–20, मु0पृ0 268–270।
7. कोहेन, एल0; वार्ने, के0 सी0; फौलाडी, आर0 टी0 एवं अन्य(2004) साइकोलॉजिकल एडजस्टमेन्ट एण्ड स्लीप क्वालिटी इन ए रेन्डमाइज्ड ट्रायल ऑफ द इफेक्ट ऑफ टाइवेटन योगा इन्टरवेन्शन इन पेशेन्ट्स विद् लिम्फोमा कैंसर, खण्ड–100, मु0पृ0 2253–2260।
(8). क्यूलास, रीड एस0; कार्लसन, एल0 ई0; डाराक्स, एल0 एम0 एवं अन्य(2004) डिस्कवरिंग द फिजिकल एण्ड साइकोलॉजिकल बेनेफिट्स ऑफ योगा फॉर कैंसर सर्वाइवर्स, इन्टरनेशनल जर्नल योगा थेरेपी, खण्ड–14, मु0पृ0 45–52।

रामानुजन की लगातार भिन्नों का एक परिचय

रमा जैन
एसोसिएट प्रोफेसर, गणित विभाग
महिला विद्यालय डिग्री कॉलेज, लखनऊ-226018, उ0प्र0, भारत
ramajain26@yahoo.com

प्राप्त तिथि– 02.06.2015, स्वीकृत तिथि– 25.06.2015

सार

लगातार भिन्न, भिन्न लिखने का एक अलग तरीका है। रोजर्स–रामानुजन लगातार भिन्न को निम्न प्रकार से परिभाषित किया जाता है–

$$R(q)=\cfrac{q^{1/5}}{1+\cfrac{q}{1+\cfrac{q^2}{1+\cfrac{q^3}{1+\dots}}}},\quad |q|<1$$

जी0 एच0 हार्डी को लिखे अपने पहले दो पत्रों में और अपनी नोटबुक में रामानुजन ने रोजर्स–रामानुजन के लगातार भिन्नों से सम्बन्धित कई प्रमेयों को उल्लिखित किया है। सन् 2000 में ब्रूस सी0 बर्न्ट ने विलुप्त नोट बुक में पाये गये रोजर्स–रामानुजन एवं विस्तृत रोजर्स–रामानुजन लगातार भिन्नों के बारे में बहुत से दावों का सिद्धीकरण प्रस्तुत किया। ये भिन्न, एक आयत को वर्ग में बांटने की जिगसॉ पहेली(Jigsaw Puzzle) समस्या से भी सम्बन्धित है। प्रस्तुत लेख रोजर्स–रामानुजन लगातार भिन्नों से सम्बन्धित एक संक्षिप्त अध्ययन है।

बीज शब्द– भिन्न, रोजर्स–रामानुजन लगातार भिन्न, जिगसॉ पहेली समस्या।

An introduction to Ramanujan's continued fractions

Rama Jain
Associate Professor, Department of Mathematics
Mahila Vidyalaya Degree College, Lucknow-226018, U.P., India
ramajain26@yahoo.com

Abstract

Continued fraction is a method of writing a fraction in a different way. The Rogers- Ramanujan continued fraction is defined as

$$R(q)=\cfrac{q^{1/5}}{1+\cfrac{q}{1+\cfrac{q^2}{1+\cfrac{q^3}{1+\dots}}}},\quad |q|<1$$

In his first two letters to G.H. Hardy, and his note book, Ramanujan recorded many theorems about the Rogers-Ramanujan continued fractions. In the year 2000, Bruce C. Burnt, provided proof for many of claims about the Rogers-Ramanujan and generalized Rogers-Ramanujan continued fractions, found in the lost note book. These fractions are also related to Jigsaw Puzzle

problems of dividing a rectangle into squares. Present paper is a conclusive study of Rogers-Ramanujan continued fractions.

Key words- Fractions, Rogers-Ramanujan continued fractions, Jigsaw Puzzle problems.

1.परिचय

प्रारम्भिक संख्या सिद्धांत में वर्णित सम्भवतः प्रथम अनन्त लगातार भिन्न निम्नांकित है–

$$1+\cfrac{1}{1+\cfrac{1}{1+\cfrac{1}{1+\cfrac{1}{1+....}}}}=\frac{\sqrt{5}+1}{2} \qquad (1.1)$$

तथा

$$1-\cfrac{1}{1+\cfrac{1}{1-\cfrac{1}{1+\cfrac{1}{1-....}}}}=\frac{\sqrt{5}-1}{2} \qquad (1.2)$$

इन लगातार भिन्नों को निम्न प्रकार से एक लाइन में भी सुविधाजनक रूप से दर्शाया जा सकता है–

$$b_0+\cfrac{a_1}{b_1+\cfrac{a_2}{b_2+\cfrac{a_3}{b_3+.....}}}=b_0+\frac{a_1}{b_1+}\ \frac{a_2}{b_2+}\ \frac{a_3}{b_3+.....}$$

रामानुजन के कार्यकाल में सबसे ज्यादा चर्चित प्रमेयों में से एक रोजर्स–रामानुजन की लगातार भिन्न की प्रमेय है जो कि निम्न प्रकार से है–

$$C(q)=1+\cfrac{q}{1+\cfrac{q^2}{1+\cfrac{q^3}{1+\cfrac{q^4}{1+....}}}}=\prod_{n=0}^{\infty}\frac{\left(1-q^{5n+2}\right)\left(1-q^{5n+3}\right)}{\left(1-q^{5n+1}\right)\left(1-q^{5n+4}\right)}$$

2. लगातार भिन्न क्या है ?

सर्वप्रथम हम लगातार भिन्न के बारे में एक आसान तरीके से समझेंगे। लगातार भिन्न(continued fractions) भिन्न को लिखने का एक अलग तरीका है। इन भिन्नों का एक आयत को वर्ग में बांटने की जिगसॉ पहेली(Jigsaw Puzzle) समस्या से भी सम्बन्ध है जो कि निम्न प्रकार से समझी जा सकती है।

जिगसॉ पहेली(Jigsaw Puzzle) समस्या द्वारा लगातार भिन्न बनाना

इसके लिए हम इवांसविल यूनिवर्सिटी, यू0एस0ए0, के क्लार्क किम्बलिंग की चित्र परिपाटी का प्रयोग करेंगे। यह परिपाटी सन् 1951 में एन0एन0 वोरोब इव द्वारा चिन्हित की गई थी।

उदाहरण– लगातार भिन्न को समझाने के लिए एक उदाहरण के तौर पर हम एक साधारण भिन्न 44/33 को लेंगे। हम 44X33 का एक आयत लेंगे और उसको 13X13 के तीन वर्गों एवं 5X13 के एक आयत में बाटेंगे, जैसा कि निम्न चित्र से स्पष्ट है।

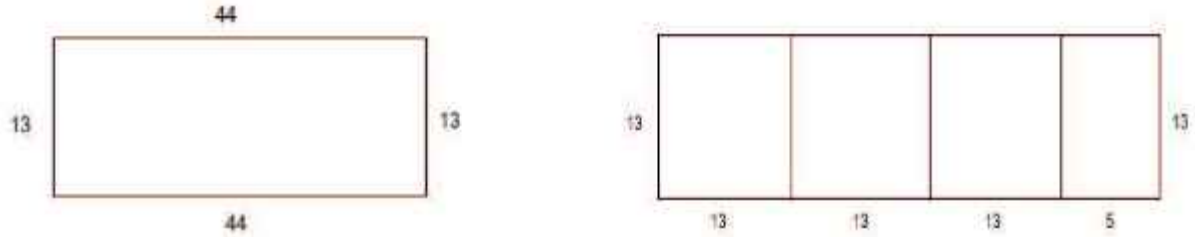

अतः $$\frac{44}{13}=\frac{13+13+13+5}{13}=3+\frac{5}{13}=3+\frac{1}{\frac{13}{5}}$$

अब यही प्रक्रिया हम $\frac{13}{5}$ के लिए पुनः दोहरायेंगे। इसके लिए हम अंत के 5X13 के आयत को 5X5 इकाई के दो वर्ग तथा 3X5 इकाई के एक आयत में बाँट लेंगे। जैसा कि निम्न चित्र से स्पष्ट है।

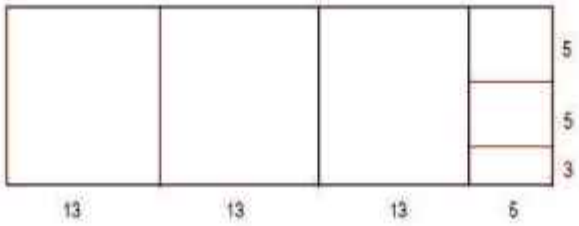

और $$\frac{44}{13}=3+\frac{1}{\frac{13}{5}}=3+\frac{1}{2+\frac{3}{5}}=3+\frac{1}{2+\frac{1}{\frac{5}{3}}}$$

यहाँ पर हम साधारण भिन्न को लगातार भिन्न के क्रम मे लिखते जा रहे हैं। अब इस 3X5 के आयत को 3X3 इकाई के एक वर्ग तथा 2X3 इकाई के एक आयत में बाटेंगे। फिर 2X3 इकाई के आयत को 2X2 इकाई के वर्ग तथा 2X1 इकाई के आयत में बाटेंगे और अंत में 2X1 इकाई के आयत को 1X1 इकाई के वर्ग में बाटेंगे। जो कि चित्र द्वारा निम्न प्रकार से समझा जा सकता है।

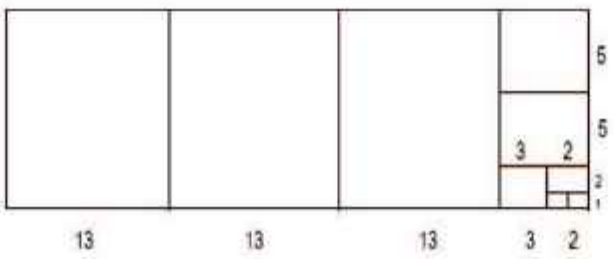

गणित में इस भिन्न को निम्न प्रकार से निरुपित कर सकते हैं।

$$\frac{44}{13}=3+\cfrac{1}{2+\cfrac{1}{1+\cfrac{2}{3}}}=3+\cfrac{1}{2+\cfrac{1}{1+\cfrac{1}{\cfrac{3}{2}}}}=3+\cfrac{1}{2+\cfrac{1}{1+\cfrac{1}{1+\cfrac{1}{2}}}}$$

उक्त भिन्न को एक लाइन में निम्न प्रकार से भी व्यक्त किया जा सकता है।

$$\frac{44}{13}=3+\frac{1}{2+}\ \frac{1}{1+}\ \frac{1}{1+}\ \frac{1}{2}$$

उपर्युक्त व्यंजक ज्यामिति के वर्ग एवं आयत(Jigsaw) से निम्न प्रकार सम्बद्ध होता है–

3 वर्ग	3X3
2 वर्ग	5X5
1 वर्ग	3X3
1 वर्ग	2X2
2 वर्ग	1X1

क्योंकि अंक लगातार कम हो रहे हैं तो शेष आयत का नाप प्रारम्भिक आयत की एक भुजा से हमेशा छोटा होता है। तब यह प्रक्रिया 2X1 के आयत पर समाप्त होती है।

लगातार भिन्न का व्यापक निरुपण

यदि हम कोई भिन्न P/Q लें जहाँ P और Q पूर्णांक हैं तो

$$\frac{P}{Q}=a+\cfrac{1}{b+\cfrac{1}{c+\cfrac{1}{d+....}}}=a+\frac{1}{b+}\ \frac{1}{c+}\ \frac{1}{d+.....}$$ जहाँ a, b, c, d, ... आदि पूर्णांक हैं।

यदि $\frac{P}{Q}$ का मान 1 से कम है तो प्रथमांक का मान 0(शून्य) होगा। यदि भिन्न का मान 1 से कम है तो हम इसके व्युत्क्रम का प्रयोग करेंगे और इसको पूर्ण भाग हिस्से एवं दूसरा भिन्न जिसका मान 1 से कम है, में बांट सकेंगे। और फिर पूर्व प्रक्रिया को दोहरायेंगे। जब अंश या हर का मान 1 हो जायेगा तो हम इस प्रक्रिया को रोक देंगे। उदाहरण के तौर पर–

$$\frac{5}{27}=0+\cfrac{1}{\cfrac{27}{5}}=0+\cfrac{1}{5+\cfrac{2}{5}}=0+\cfrac{1}{5+\cfrac{1}{\cfrac{5}{2}}}=0+\cfrac{1}{5+\cfrac{1}{2+\cfrac{1}{2}}}=0+\cfrac{1}{5+\cfrac{1}{2+\cfrac{1}{1+1}}}$$

लगातार भिन्न को एकल भिन्न बनाना

उपरोक्त प्रक्रिया को विपरीत दिशा में कार्यान्वित करके हम लगातार भिन्न को एकल भिन्न भी बना सकते हैं। जैसे–

$$2+\cfrac{1}{1+\cfrac{1}{3+\cfrac{1}{5}}}=2+\cfrac{1}{1+\cfrac{1}{\frac{16}{5}}}=2+\cfrac{1}{1+\frac{5}{16}}=2+\cfrac{1}{\frac{21}{16}}=2+\frac{16}{21}=\frac{58}{21}$$

बीजगणितीय समीकरण द्वारा लगातार भिन्न प्राप्त करना

यदि हम x परिवर्ती की एक द्विघात समीकरण लें जैसे कि

$$x^2-x=5 \qquad (1)$$

$$\Rightarrow \qquad x(x-1)=5 \text{ or } x=1+\frac{5}{x}$$

दाहिनी ओर x का मान पुनः रखने पर प्राप्त होगा–

$$\Rightarrow \qquad x=1+\cfrac{5}{1+\cfrac{5}{x}}$$

इसी प्रक्रिया को पुनः–पुनः दोहराने पर x का मान लगातार भिन्न के रूप में प्राप्त होता है जैसे कि–

$$x=1+\cfrac{5}{1+\cfrac{5}{1+\cfrac{5}{1+\cfrac{5}{1+.....}}}}=1+\frac{5}{1+}\ \frac{5}{1+}\ \frac{5}{1+.....}$$

दिये गये समीकरण (1) को द्विघातीय विधि से हल करके x का मान निकाल कर हम उपर्युक्त लगातार भिन्न का मान लिख सकते हैं। अतः

$$\frac{1\pm\sqrt{21}}{2}=1+\frac{5}{1+}\ \frac{5}{1+}\ \frac{5}{1+.....}$$

रोजर्स–रामानुजन लगातार भिन्न(Rogers-Ramanujan continued fractions)

रोजर्स–रामानुजन लगातार भिन्न को निम्न प्रकार से परिभाषित किया जाता है–

$$R(q)=\cfrac{q^{1/5}}{1+\cfrac{q}{1+\cfrac{q^2}{1+\cfrac{q^3}{1+....}}}}=\frac{q^{1/5}}{1+}\ \frac{q}{1+}\ \frac{q^2}{1+}\ \frac{q^3}{1+.....}, \quad |q|<1$$

यह सर्वप्रथम सन् 1894 में एल0 जे0 रोजर्स के शोधपत्र में उल्लिखित हुआ था। व्यापक लगातार भिन्न के रोजर्स–रामानुजन स्वरूप को निम्न प्रकार से परिभाषित करते हैं–

$$R(a;q)=\frac{1}{1+}\ \frac{aq}{1+}\ \frac{aq^2}{1+}\ \frac{aq^3}{1+.....}$$

सन् 2000 में ब्रूस सी0 बर्न्ट ने विलुप्त नोटबुक(Lost Note Book) में पाये गये रोजर्स–रामानुजन एवं व्यापक रोजर्स–रामानुजन लगातार भिन्नों के बारे में बहुत से दावों का सिद्धीकरण प्रस्तुत किया। रामानुजन ने R(q) से सम्बन्धित बहुत सी महत्वपूर्ण प्रमेय दी हैं। ये विशेषतः के0 जी0 रामानाथन के प्रपत्र[3–4] के 1.6 और 1.7 में तथा एन्ड्रयूज और अन्य[1] के मेमॉयर और बर्न्ट[2] की पुस्तक के अध्याय 32 में लिखित है।

निष्कर्ष

लगातार भिन्नों के सिद्धांत को समझ कर रामानुजन की बहुत सी महत्वपूर्ण प्रमेयों को समझा जा सकता है। यह सिद्धांत, संख्या सिद्धांत(Number Theory) में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

संदर्भ

1. एण्ड्रयूज, जी0 ई0 एवं बर्न्ट, बी0 सी0(1992) द कन्टीन्यूड फ्रैक्शन्स फाउण्ड इन द अनऑर्गेनाइज्ड पोर्शन्स ऑफ रामानुजन नोट बुक, मेमॉयर, अमेरिकन मैथेनेटिकल सोसायटी, खण्ड–99, संख्या–477।
2. बर्न्ट, बी0 सी0(1995) रामानुजनः पत्र एवं आख्या, अमेरिकन मैथेमेटिकल सोसायटी, प्रोविडेन्स।
3. बर्न्ट, बी0 सी0 एवं चान, एच0 एच0(1995) सम वैल्यूज फॉर द रोजर्स रामानुजन कन्टीन्यूड फ्रैक्शन्स, कनाडियन जर्नल ऑफ मैथेमेटिक्स, खण्ड–47, मु0पृ0 897–914।
4. बर्न्ट, बी0 सी0(2000) ट्रांजैक्शन्स ऑफ द अमेरिकन मैथेमेटिकल सोसायटी, खण्ड–99, संख्या–5, मु0पृ0 2157–2177।
5. रामनाथन, के0 जी0(1984) ऑन रामानुजन्स कन्टीन्यूड फ्रैक्शन, प्रोसीडिंग्स, इन्डियन एकेडमी ऑफ साइंस, मैथेमेटिकल साइंसेज, खण्ड–93, मु0पृ0 67–77।

समाजशास्त्र–समाज के विज्ञान के रूप में

विजय कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग
बी0एस0एन0वी0 पी0जी0 कॉलेज, लखनऊ–226001, उ0प्र0, भारत
kvijay297@gmail.com

प्राप्त तिथि– 06.06.2015, स्वीकृत तिथि– 28.06.2015

सार

विज्ञान किसी विषय का व्यवस्थित अध्ययन है। समाजशास्त्रीय अध्ययन में समाजशास्त्री वैज्ञानिक विधियों–साधनों और तकनीकों का प्रयोग करते हैं। समाजशास्त्र मानवीय सम्बन्धों का अध्ययन है। इसका हित सामान्यीकरण तक पहुचने में है। वैज्ञानिक सर्वप्रथम नियन्त्रित दशाओं में उपकल्पना या अनुमान लगाता है। सामान्य समझ व्यक्तिगत अनुभव से सम्बन्धित होती है। ऑगस्त कोंत[16] ने इतिहास का विश्लेषण तीन युगों में किया है। उसने सामाजिक घटना को प्राकृतिक तथ्य कहा है तथा यह प्राकृतिक नियनों से सम्बन्धित है। दरखाईम[19] का "आत्महत्या" पर अध्ययन प्रथम वैज्ञानिक समाजशास्त्रीय अध्ययन माना जा सकता है। मार्क्स एवं ऐंजिल्स[17] ने संघर्ष सिद्धान्त को प्रतिपादित किया है और संघर्ष संस्थागत गतिशीलता का एक चरण है। विज्ञान संचित रूप में आगे बढ़ता है। विज्ञान ने अपनी वर्तमान स्थिति धीमी किन्तु सतत् ज्ञान की बढ़ोत्तरी के साथ प्राप्त की है। इसी को कुहन[18] ने रूपावली परिवर्तन के सिद्धान्त के माध्यम से बताया है। इस शोध पत्र में समाज के विज्ञान के रूप में समाजशास्त्र की समीक्षा प्रस्तुत की गई है।

बीज शब्दः व्यवस्थित ज्ञान, साधन और प्रविधि, उपकल्पना, युग, आत्महत्या, संस्थागत गतिशीलता, रूपावली परिवर्तन।

Sociology- as a science of society

Vijay Kumar
Assistant Professor, Department of Sociology
B.S.N.V. P.G. College, Lucknow-226001, U.P., India
kvijay297@gmail.com

Abstract

Science is the systematic knowledge of any subject. In sociological study, sociologists use scientific methods, tools and techniques. Sociology is the science of human relations. It is interested in arriving at generalizations, usually about cause and effect relations. The scientist first formulates hypothesis or guesses as to what will occur under carefully controlled conditions. Common sense is based on direct experience. Auguste Comte[16] analyzed history into three epochs. He declared the social phenomena are natural facts, subject to natural laws. Durkheim's[19] study of 'Suicide' may be considered as the first scientific sociological study. Marx and Engels[17] formulated the conflict theory and conflict is a phase of institutional dynamics. Science advances in a cumulative manner. Science has achieved its present state through slow and steady increments of knowledge. This is shown by Kuhn[18] by the Paradigm Shift theory. In present paper, a review over Sociology-as a science of society has been presented.

Key words- Systematic knowledge, tool and technique, hypothesis, epoch, suicide, institutional dynamics, paradigm shift.

प्रस्तावना– सभी विज्ञानों का उद्देश्य नयी चीज की खोज करना है और प्रत्येक खोज स्वीकृत विचारों को परेशान करती है।[1] वास्तव में विज्ञान वास्तविकताओं से सम्बन्धित है। विश्वास और आचरण, जो पूर्व के पीढ़ियों द्वारा बना–बनाया संचारित होता है, हम उसको प्राप्त करते हैं और सहजता से स्वीकार करते हैं क्योंकि वह सामूहिक और पुराना है। कई शताब्दियों बाद जब कापर्निकस ने आकाशीय पिण्डों को खोजा, तब जो पहले की माया थी, वह धीरे–धीरे गायब हो गयी। कॉत ने यह सत्य घोषित किया कि सामाजिक घटनायें प्राकृतिक तथ्य हैं; जो प्राकृतिक नियमों से सम्बन्धित हैं।[2] यही माननीय प्रगति का रूप समाजशास्त्र का मुख्य विषय है। समाज सर्वोच्च वास्तविकता है क्योंकि यह व्यक्तियों से अधिक महत्वपूर्ण है। यह समाज ही है जो समाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा व्यक्तियों को उत्पन्न करता है। समाजशास्त्र मानव सम्बन्धों का विज्ञान है। लोग एक–दूसरे के सम्पर्क में आते हैं, एक–दूसरे को जानने और पहचानने लगते हैं। अन्ततः अनौपचारिक या व्यवस्थित समूह बनाते हैं। बहुत से लोगों का यह विचार एक गलत विचार है कि समाजशास्त्र विज्ञान नहीं है, परन्तु समाजशास्त्र एक विज्ञान जैसा ही है क्योंकि इसके ज्ञान का आधार व्यवस्थित निरीक्षण है।[3] समाजशास्त्र मानवीय समाज का एक वैज्ञानिक अध्ययन है या और अधिक शुद्ध और विस्तृत रूप में यह मानवीय संगठनों जैसे– उनकी प्रकृति, प्रकार्य, अन्तःसम्बन्ध और विभिन्न प्रकार के परिवर्तन के प्रतिमानों (जिसको कॉत ने सामाजिक स्थितिविज्ञान और सामाजिक गतिविज्ञान कहा है) को जहाँ तक सम्भव हो, वैज्ञानिक अध्ययन हेतु शामिल करता है।

ऑगस्त कॉत फ्रांसीसी क्रान्ति के समय रहे थे। वह लोगों के भौतिक और सांस्कृतिक गरीबी और उस समय की अव्यवस्था से लगातार परेशान और दुखी थे। वह जीवन भर इसी में लगे रहे कि कैसे अव्यवस्था को व्यवस्था में परिवर्तित किया जाय? कैसे समाज का पुर्ननिर्माण हो? उन्होंने परिवर्तन बिन्दु(फ्रांसीसी क्रान्ति) को देखा जिससे इतिहास की मानवीय घटना को बदला जा सकता है। पुनर्जागरण के पहले मनुष्यों की सामाजिक क्रियायें अनियंत्रित और दिशाविहीन थी। मनुष्यों की सोच वैज्ञानिक नहीं थी। वैज्ञानिक ज्ञान और औद्योगीकरण की दशाओं तथा नये प्रतिमानों के कारण प्राचीन युग धीरे–धीरे समाप्त होता गया। तब एक नयी नीति–एक नया अनुभव, सोचने और क्रिया करने की व्यवस्था नये, जटिल और औद्योगिक समाज की आवश्यकता थी। समाज के पुनर्निर्माण के लिए एक विश्वास योग्य ज्ञान की आवश्यकता थी। फ्रांसीसी क्रान्ति, औद्योगिक क्रान्ति तथा नये वैज्ञानिक ज्ञान के उदय ने यह सब दिया।

विज्ञान की विशेषतायें

(1) एक विज्ञान की प्रथम आवश्यकता यह है कि वह वस्तुनिष्ठ और पक्षपात–रहित हो। वैज्ञानिक को 'सत्य, पूर्ण सत्य और सत्य के अलावा कुछ नहीं' प्राप्त करना चाहिए।
(2) विज्ञान की दूसरी विशेषता सामान्यीकरण है, जो कारण–प्रभाव के सम्बन्धों द्वारा पहुँचना है। इसका सम्बन्ध केवल व्यक्तिगत तथ्यों से नहीं है।[4] सामान्यीकरण के दो प्रकार होते हैं–
(1) अनुभविक या सामान्य सामान्यीकरण, (2) सैद्धान्तिक सामान्यीकरण
सैद्धान्तिक सामान्यीकरण के लिए वैज्ञानिक सर्वप्रथम उपकल्पना का निर्माण करता है या अनुमान करता है। यह अनुमान तार्किक आधार पर होता है। मैक्स वेबर इस उपकल्पना को 'आदर्श प्रारूप' कहते हैं। विज्ञान का उद्देश्य निश्चित (सटीक) भविष्यवाणी करना है परन्तु समाजशास्त्र सटीक भविष्यवाणी भौतिकशास्त्र या वनस्पतिशास्त्र जैसे नहीं कर सकता।[5]

सामान्य समझ(कॉमन सेंस) और विज्ञान की सम्भावनायें– हर व्यक्ति अपनी स्वाभाविक बुद्धि और अनुभव के विस्तार से एक सामान्य समझ रखता है। सामान्य समझ व्यक्तिगत अनुभव से सम्बन्धित होती है। वैज्ञानिक का ज्ञान वस्तुनिष्ठ और विशेष प्रशिक्षण से प्राप्त किया गया होता है। वैज्ञानिक निश्चित प्रविधियों और साधनों का प्रयोग करके अमूर्त सिद्धान्तों का निर्माण करता है। अच्छे निरीक्षण के लिए सामान्य समझ वैज्ञानिक के लिए एक नये साधन प्रदान करता है। सामान्य समझ का आधार प्रत्यक्ष अनुभव है जबकि विज्ञान का आधार नियंत्रित अनुभव होता है, जैसे– गैलिलियो के समय तक एक सामान्य समझ थी कि भारी वस्तुयें हल्की वस्तुओं की अपेक्षा तेजी से नीचे गिरती हैं। गैलिलियो ने यह सिद्ध किया कि यदि हवा और अन्य प्रतिरोध करने वाले स्रोत को नियंत्रित कर दिया जाय तो सभी वस्तुयें गति के समान दर से नीचे गिरेंगी। इसी प्रकार, सामान्य समझ यह भी है कि जब लोगों का आर्थिक स्तर ऊँचा होता है तो अधिक बच्चों को पालने की क्षमता आ सकेगी और इसी कारण से यूनाइटेड स्टेट की जनसंख्या इतनी तेजी से बढ़ी। शायद कुछ यह अनुभव कर सकते हैं कि मानवीय सम्बन्धों को वस्तुनिष्ठ या सामान्यीकृत ढंग से अध्ययन नहीं किया जा सकता क्योंकि प्रत्येक सामाजिक अनुभव या घटना अद्वितीय और व्यक्तिगत होती है।[6]

ऑगस्त कॉत का हित प्रत्यक्षवाद में है, जो समाजशास्त्र से सम्बन्धित है। कॉत समाजशास्त्र को सबसे प्रत्यक्षवादी विज्ञान, भौतिकशास्त्र से सम्बन्धित करते हैं। कॉत ने प्रत्यक्षवादी विज्ञानों के एक संस्तरण को विकसित किया जो क्रमशः निम्नवत है। गणित, खगोलशास्त्र, भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र, जीवशास्त्र और समाजशास्त्र। ऑगस्त कॉत ने समाजशास्त्र के अध्ययन में तीन आधारभूत पद्धतियों की खोज की– (1) अवलोकन, (2) प्रयोग, (3) तुलना।

तुलना को कॉत ने तीन उपभागों में बाँटा है –
(1) हम मानव समाज की निम्न जन्तुओं वाले समूह से तुलना कर सकते हैं।
(2) हम विश्व के विभिन्न भागों के समाजों से तुलना कर सकते हैं।
(3) हम समय के आधार पर समाजों की विभिन्न चरणों में तुलना कर सकते हैं।
कॉत ने तीसरे उप प्रकार को 'मुख्य वैज्ञानिक उपकरण' माना है। कॉत का चौथा मुख्य पद्धतिशास्त्र ऐतिहासिक शोध है।[7] पुनर्जागरण काल बौद्धिक विकास और दार्शनिक विचारों में परिवर्तन के सन्दर्भ में स्मरण करने योग्य समय है। पुनर्जागरण काल के समय के प्रसिद्ध विचारकों में फ्रांसीसी दार्शनिक चार्ल्स मांटेस्क्यू (1689–1755) और जीन जैक्स रूसो (1712–1778) प्रमुख थे। प्रारम्भिक समाजशास्त्र का विकास एक तरह से पुनर्जागरण की प्रतिक्रिया स्वरूप था। सत्रहवीं सदी के दार्शनिक, विचारक, रेने देकार्ट, थामस हाब्स और जान लॉक के कार्यों से प्रभावित थे। यह लोग अनुभविक शोध को तर्क से संयोजित करना चाहते थे। कुल मिलाकर, पुनर्जागरण काल ने इस विश्वास को विश्लेषित किया कि लोग तर्क के साधनों और अनुभविक अनुसंधान के माध्यम से विश्व को समझ सकें और नियंत्रित कर सकें। यह विचार कि भौतिक दुनिया प्राकृतिक नियमों द्वारा निर्देशित थी, इसलिए सामाजिक दुनिया भी इसी नियमों द्वारा निर्देशित होगी। इसलिए विचारक तर्क और शोध के माध्यम से सामाजिक नियमों की खोज कर रहे थे। पुनर्जागरण काल के दार्शनिकों ने परम्परागत अधिकार के विश्वास को नकार दिया था। कार्ल मार्क्स इस काल से प्रत्यक्ष रूप से बहुत प्रभावित थे।[8] विज्ञान, सामाजिक परिवर्तन की गतिशील शक्ति है। सामाजिक संरचना पर विज्ञान के प्रभाव का अध्ययन समाजशास्त्र का विज्ञान करता है, विशेष रूप से तकनीकी ज्ञान का। 'ज्ञान की प्रगति के साथ धार्मिक विचारों को विज्ञान से प्रतिस्थापित हो जाना चाहिए। स्पेंसर ने माना कि धर्म का उदय मानव की उसकी अपनी प्रकृति तथा उसके पर्यावरण के अनुभविक तथ्यों की पूर्व वैज्ञानिक धारणा से हुआ है।'[9] किसी भी वैज्ञानिक ज्ञान के विकास में सिद्धान्त की मुख्य भूमिका होती है। वैज्ञानिक सिद्धान्त घटनाओं की व्याख्या करता है, यह व्याख्या को अनुभविक तथ्यों के माध्यम से, निरपेक्ष भाव से सिद्ध करता है। सिद्धान्त एक मानसिक क्रिया है, यह विचारों की प्रक्रिया से विकास करता है। सिद्धान्त का निर्माण निम्नलिखित तत्वों के द्वारा होता है[10]–(1) संकल्पनायें, (2) चरों, (3) कथनों, (4) ढाँचा (फार्मेट)।

अनुभविक अन्वेषण, सामान्य समझ की अपेक्षा सापेक्षिक वंचन(रिलेटिव डिप्राइवेशन) को आधार प्रदान करता है। दरखाईम का सामाजिक तथ्य एवं आत्महत्या सिद्धान्त, मर्टन का संदर्भ समूह, विसंगति एवं भूमिका पुंज सिद्धान्त अन्वेषण के द्वारा सिद्ध किया गया है। भूमिका विन्यास का सिद्धान्त सामाजिक संरचना के संग इन में सामाजिक प्रस्थिति का निर्धारण करता है। यह उसी प्रकार है जैसे बॉयल के वायुमण्डल सिद्धान्त या गिल्बर्ट के पृथ्वी के चुम्बकत्व के सिद्धान्त।[11]

समाजशास्त्रीय सिद्धान्त– सामाजिक चिन्तकों ने समाजशास्त्रीय सिद्धान्त को विभिन्न चरणों में विकास करते हुए देखा है। जब विज्ञानों का औपचारिक स्तर पर विकास नहीं हुआ था तब तक सामान्य समझ(कॉमन सेन्स) के आधार पर सामाजिक घटनाओं को देखा और उसकी व्याख्या की जाती थी। तब सिद्धान्त लोकोक्तियों, मुहावरों के रूप में रहता था। समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों के विकास की औपचारिक शुरूआत ऑगस्त कॉत द्वारा की गयी। कॉत ने देखा कि मनुष्य तीन स्तरों से होकर गुजरता है– बचपन(धार्मिक अवस्था), प्रौढ़ावस्था(तात्त्विक अवस्था) और परिपक्वता(प्रत्यक्षवादी अवस्था)। प्रत्यक्षवाद का अर्थ 'वैज्ञानिक' है। कॉत का विचार है कि समग्र ब्रह्माण्ड 'अपरिवर्तनीय प्राकृतिक नियमों' द्वारा व्यवस्थित तथा निर्देशित होता है और यदि इन नियमों को समझना है तो धार्मिक या तात्त्विक आधारों पर नहीं अपितु विज्ञान की विधियों द्वारा ही समझा जा सकता है। वैज्ञानिक विधियों को निरीक्षण, परीक्षण, प्रयोग और वर्गीकरण के आधार पर समझा जा सकता है। हर्बर्ट स्पेन्सर ने सामाजिक डॉर्विनवाद सिद्धान्त के आधार पर उद्विकास एवं सावयव सिद्धान्त का प्रतिपादन किया और समाज को संरचनात्मक– प्रकार्यात्मक दृष्टि से देखा। दरखाईम ने अपनी पुस्तक 'द रूल्स ऑफ सोशियोलॉजिकल मेथड्स', 'सुसाइड', 'द डिविजन ऑफ लेबर इन सोसाइटी' तथा 'द एलिमेन्ट्री फार्म्स ऑफ रिलिजियस लाइफ' को वैज्ञानिक विधियों के द्वारा व्याख्या की। अर्नाल्ड रोज ने कहा कि आत्महत्या(1897) पुस्तक को प्रथम वैज्ञानिक समाजशास्त्रीय अध्ययन माना जा सकता है। कार्ल मार्क्स ने समाज को संघर्षात्मक सिद्धान्त के रूप में व्याख्या की। मर्टन ने कहा कि संघर्ष संस्थागत गतिकी(प्रगति) का चरण है।[12] मैक्स वेबर मूल्यरहित(वैल्यू फ्री) समाजशास्त्र की व्याख्या करते हैं।

स्पष्ट है कि प्रारम्भिक समाजशास्त्र के संस्थापक सदस्यों ने अपने इस नवीन विज्ञान की प्रकृति की वैज्ञानिक प्रविधियों के माध्यम से व्याख्या की। समाजशास्त्रीय सिद्धान्त के निर्माण में आर० के० मर्टन ने छः चरणों की व्याख्या की है[13]–(1) पद्धतिशास्त्र, (2) सामान्य समाजशास्त्रीय अभिविन्यास, (3) समाज– शास्त्रीय संकल्पनाओं का विश्लेषण (4) पोस्ट फैक्टम (निरीक्षण के बाद) समाजशास्त्रीय व्याख्या (5) समाजशास्त्र में अनुभविक सामान्यीकरण (6) समाजशास्त्रीय सिद्धान्त।

रूपावली(पैराडाइम) परिवर्तन– थॉमस कुहन[14] ने 1962 में अपनी पुस्तक 'द स्ट्रक्चर ऑफ साइंटिफिक रिवोल्यूशन' में रूपावली परिवर्तन की संकल्पना दी है। विज्ञान अपने पूर्व ज्ञान को संचित करके आगे बढ़ता है। विज्ञान ने अपनी वर्तमान स्थिति धीमी किन्तु सतत् ज्ञान की बढोत्तरी के साथ प्राप्त की है। कुहन ने यह पाया कि विज्ञान की प्रगति में संचित ज्ञान कुछ भूमिका निभाता है, परन्तु वास्तव में वृहत् परिवर्तन क्रान्तियों के फलस्वरूप ही आते हैं। विज्ञान में वृहत् परिवर्तन कैसे

होता है? इस सम्बन्ध में कुहन ने एक सिद्धान्त दिया। उन्होंने विज्ञान को किसी समय विशेष में एक विशिष्ट रूपावली से प्रभावित होने के रूप में देखा। सामान्य विज्ञान, ज्ञान के संचय की वह अवधि है, जिसमें वैज्ञानिक 'रूपावली' के आधिपत्य का विस्तार करने के लिए कार्य करते हैं। इस प्रकार के वैज्ञानिक कार्य अनिवार्य रूप से व्यतिक्रम अथवा निष्कर्ष उत्पन्न करते हैं जो प्रमुख रूपावली(अधिपति रूपावली) द्वारा वर्णित नहीं किये जा सकते। यदि ये व्यतिक्रम बहुत बढ़ जाते हैं तो संकट की अवस्था(क्राइसिस स्टेज) उत्पन्न होती है और यह संकट अवस्था अन्ततः वैज्ञानिक क्रान्ति में जाकर समाप्त होती है। इस क्रान्ति के परिणामस्वरूप दूसरे रूपावली का जन्म होता है और इस प्रकार चक्रिय क्रम में रूपावली दोहराती है। कुहन के सिद्धान्त को निम्नलिखित आरेख द्वारा प्रदर्शित कर सकते हैं–

रूपावली I → सामान्य विज्ञान → अवस्थायें → संकट → क्रान्ति → रूपावली II

कुहन के विज्ञान के विकास के सिद्धान्त को हेनरिक्सन ने निम्नलिखित आरेख के माध्यम से दिखाया है[15] –

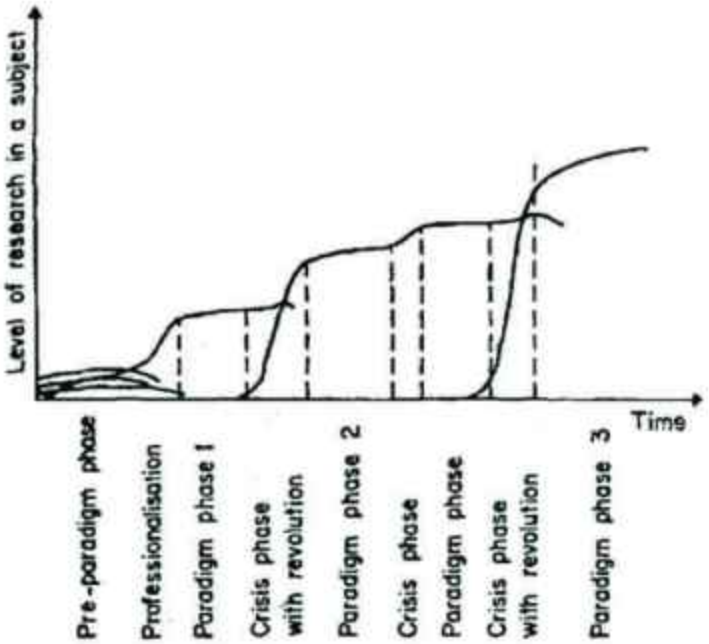

निष्कर्ष– प्रारम्भिक समाजशास्त्रियों प्रमुखतः ऑगस्त कोंत, इमाईल दरखाईम, हर्बर्ट स्पेन्सर, जॉर्ज मीड, अल्फ्रेड शूट्ज आदि ने प्राकृतिक विज्ञान की तरह समाजशास्त्र को विज्ञान बनाने सम्बन्धी सिद्धान्त प्रस्तुत किये। समय के सापेक्ष समाजशास्त्र को मैक्स वेबर, एलेक्स इंकेल्स जैसे विचारकों ने व्यवहारिक विज्ञान के रूप में परिभाषित किया। पुनः इसके रूप में परिवर्तन क्रमशः संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक सिद्धान्त, संघर्ष सिद्धान्त, विनिमय सिद्धान्त, प्रतीकात्मक अन्तःक्रियावाद सिद्धान्त, नारीवादी सिद्धान्त, उत्तर संरचनावाद और उत्तर आधुनिकतावाद सिद्धान्त आदि के रूप में आया। जॉर्ज रिट्जर ने समाजशास्त्रीय सिद्धान्त का अद्यतन विकास तीन महत्वपूर्ण रूपों में देखा है– लघु–वृहत् एकीकरण, अभिकरण–संरचना एकीकरण और सैद्धान्तिक संवाद। अतः एक समाज व्यक्तिनिष्ठ और वस्तुनिष्ठ दोनों संरचनाओं से बनता है। यह विज्ञान रूढ़ियों, लोकाचारों और मूल्यों के साथ–साथ वैज्ञानिक प्रविधियों का प्रयोग करके भी अध्ययन करता है।

संदर्भ

1. इमाईल, दरखाईम(1964) द रूल्स ऑफ सोशियोलॉजिकल मेथड्स, अनुवाद सोलोवाक साराह ए. एण्ड मुल्लर जॉन एच. और संपादक कैटलिन जार्ज ई.जी., द फ्री प्रेस, न्यूयार्क, प्राक्कथन, पृ0 37।
2. तथैव, पृ0 8।
3. अर्नाल्ड, रोज एम0(1957) सोशियोलॉजी, द स्टडी ऑफ ह्यूमन रिलेशन्स, अल्फ्रेड ए. नोफः न्यूयार्क, पृ0 3।
4. तथैव, पृ0 8।
5. तथैव, पृ0 9।
6. तथैव, पृ0 11।

7. जॉर्ज, रिट्जर(2000) क्लासिकल सोशियोलॉजिकल थियरी, मैक्ग्रॉ हिल, न्यूयार्क, पृ0 89।
8. तथैव, पृ0 11–12।
9. पारसन्स, टी0(1949) द स्ट्रक्चर ऑफ सोशल एक्शन, अमेरिण्ड पब्लिशिंग कम्पनी प्राईवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, पृ0 4।
10. टर्नर, जे0 एच0(1995) द स्ट्रक्चर ऑफ सोशियोलॉजिकल थियरी, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, पृ0 5।
11. मर्टन, आर0 के0(1968) सोशल थियरी एण्ड सोशल स्ट्रक्चर, अमेरिण्ड पब्लिशिंग कम्पनी प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, पृ0 41।
12. तथैव, पृ0 596।
13. तथैव, पृ0 140।
14. रिट्जर एवं गुडमैन(2004) मॉडर्न सोशियोलॉजिकल थियरी, मैक्ग्रॉ हिल, न्यूयार्क, अपेण्डिक्स ए7–ए8।
15. माजिद, हुसैन(2002) इवोल्यूशन ऑफ जियोग्राफिकल थॉट, रावत पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, पृ0 309।
16. कॉत, ऑगस्ट(1842) द कोर्स ऑफ पॉजिटिव फिलॉसफी, कैल्विन ब्लैंकर्ड, न्यूयॉर्क।
17. मार्क्स, कार्ल एवं ऐंजिल्स, फ्रेड्रीक(1848) मैनिफेस्टो ऑफ द कम्यूनिस्ट, इंटरनैशनल पब्लिशर्स, न्यूयॉर्क।
18. कुहन, थॉमस(1962) द स्ट्रक्चर ऑफ साइंटिफिक रिवोल्यूशंस, यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो, शिकागो।
19. दुर्खाइम, इमाइल(1897) सूसाइड, फ्री प्रेस, न्यूयॉर्क।

क्लाउड कम्प्यूटिंगः एक वैज्ञानिक समीक्षा

राकेश कुमार सिंह[1] एवं रंजन सिंह[2]
[1]वैज्ञानिक–डी, सूचना प्रौद्योगिकी, गोविंद बल्लभ पंत हिमालय पर्यावरण एवं विकास संस्थान
कोसी–कटारमल, अल्मोड़ा–263601, उत्तराखंड, भारत
[2]एमसीए छात्रा, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, भारत
rksingh@gbpihed.nic.in; ranjan418@yahoo.com

प्राप्त तिथि– 17.06.2015, स्वीकृत तिथि– 20.07.2015

सार

क्लाउड कम्प्यूटिंग या मेघ संगणना वास्तव में इंटरनेट आधारित एक प्रक्रिया और कम्प्यूटर ऐप्लीकेशन का उपयोग है। गूगल एप्स क्लाउड कम्प्यूटिंग का एक उदाहरण है, जो बिजनेस ऐप्लीकेशन ऑनलाइन मुहैया कराता है और वेब ब्राउजर का इस्तेमाल कर इस तक पहुँचा जा सकता है। इंटरनेट पर सर्वरों में जानकारियाँ(अनुप्रयोग, वेब पेजेस, प्रोग्राम, इत्यादि) सदा सर्वदा के लिए भंडारित रहती हैं और ये उपयोक्ता के डेस्कटॉप, नोटबुक, गेमिंग कंसोल इत्यादि पर आवश्यकतानुसार अस्थाई रूप से संग्रहित रहती हैं। इसे थोड़ा विस्तारित और सरल रूप में कहें तो सीधी सी बात है कि अब तक जो सॉफ्टवेयर प्रोग्राम हम स्थानीय रूप से अपने कम्प्यूटर, लैपटॉप और नोटबुक पर स्थापित करते थे, अब इनकी कतई आवश्यकता नहीं होगी क्योंकि ये सब सॉफ्टवेयर अब हमें वेब सेवाओं के जरिए मिल सकेंगी। यही नहीं, गूगल गियर जैसे अनुक्रमों के जरिए हमें इस तरह की बहुत सारी सुविधाएं ऑफलाइन भी मिल सकेंगी।

बीज शब्द– क्लाउड कम्प्यूटिंग, वेब ब्राउजर, ग्रिड कम्प्यूटिंग, वर्चुअलाइजेशन, नेटवर्किंग, आदि।

Cloud computing- A scientific review

Rakesh Kumar Singh[1] and Ranjan Singh[2]
[1]Scientist-D, Information Technology, Govind Ballabh Pant Himalaya Paryavaran &
[2]Development Institute, Kosi-Katarmal, Almora-263601, Uttarakhand, India
[2]M.C.A. student, I.G.N.O.U., New Delhi, India
rksingh@gbpihed.nic.in; ranjan418@yahoo.com

Abstract

Cloud Computing or Cloud based computing is actually an internet based process and use of computer application in a optimized way. Google Apps is an example of cloud computing, which provides business application in online mode and can be reached using the web browser. Information in servers on the internet(applications, web pages, programms, etc.) are stored forever and also temporarily stored on the desktop computers, notebooks, gaming consoles, smartphones of the users. To put it slightly extended and simple way it means that so far we had software program locally on our computer, laptop and notebook installed, now they will not be necessary, because now we can have all these software via web services. Further, we can get such types of services through the enterprise like Google Gears in an offline mode.

Key Words- Cloud computing, web browser, grid computing, virtualization, networking, etc.

1. **क्लाउड कम्प्यूटिंग का संक्षिप्त परिचय**– क्लाउड कम्प्यूटिंग, कम्प्यूटरों का एक विशाल नेटवर्क है जिसके सहारे दूर बैठकर किसी सेल फोन, लैपटॉप या मोबाइल उपकरण के माध्यम से सूचना या आंकड़े प्राप्त किए जा सकते हैं। यह कम्प्यूटिंग की एक ऐसी शैली है, जहाँ आई.टी. से संबंधित क्षमताएं सेवा के रूप में उपलब्ध कराई जाती हैं और जिनसे इंटरनेट के माध्यम से प्रौद्योगिकी समर्थित सेवाओं की उपलब्धता संभव होती है। दुनिया की बड़ी आई.टी. कंपनियों में से एक आई.बी.एम. ने हाल ही में भारत में सूचना तकनीक के प्रमुख केंद्र बंगलौर में अपने क्लाउड कम्प्यूटिंग सेंटर का उद्घाटन

किया। सेंटर में विभिन्न एप्लीकेशंस के डिजाइन तैयार करने से लेकर उसके उपयोग के संबंध में ग्राहकों को बुनियादी संरचना संबंधी सुविधाएं उपलब्ध करायी जाएंगी। इस अत्याधुनिक तकनीक आधारित उत्पाद और सेवाओं के लांच के साथ भारत में कम्प्यूटर आधारित सेवाओं के एक नए युग का आगाज हुआ। महज कुछ सेकंडों में सूचनाओं और आंकड़ों तक पहुंच संभव करने के लिए हजारों कम्प्यूटर काम कर रहे होते हैं। यह क्लाउड कम्प्यूटिंग ओपन स्टैंडर्ड और ओपन सोर्स सॉफ्टवेयर पर आधारित होता है जो सिस्टम्स टेक्नोलॉजी और सेवाओं के साथ रेडी–टू–यूज प्लैटफॉर्म की फैमिली है। यह भारत में अपनी तरह का इकलौता और आईबीएम के दुनियाभर में फैले 13 केंद्रों में से एक है। इस केन्द्र के जरिए मिड–मार्केट, यूनिवर्सिटी और सरकारी संगठनों समेत इंटरप्राइज क्लायंट्स, उन संसाधनों का उपयोग कर सकते हैं जिनकी उन्हें अपने ग्राहकों को अत्याधुनिक सेवाएं उपलब्ध कराने के लिए आवश्यकता पड़ती है।

2. **क्लाउड कम्प्यूटिंग का इतिहास**– 'दी क्लाउड' टेलीफोनी से लिया गया एक शब्द है। 1990 के दशक तक, डाटा सर्किट गंतव्य स्थानों के बीच सख्त तारों से युक्त थे। बाद में लंबे समय से चली आ रही टेलीफोन कंपनियों ने डाटा संचार के लिए वर्चुअल प्राइवेट नेटवर्क(वीपीएन) सेवा की पेशकश करना शुरू किया। टेलीफोन कम्पनियां समान गारंटी युक्त बैंडविड्थ के साथ कम लागत पर एक निर्धारित परिपथ के रूप में वर्चुअल प्राइवेट नेटवर्क आधारित सेवाएं पेश करने में सक्षम थी। क्योंकि वे उपयोगिता को संतुलित करने के लिए ट्रैफिक को बदल सकती थीं. इस प्रकार से उन्होंने अपने समग्र नेटवर्क बैंडविड्थ को अधिक प्रभावी तरीके से काम में लिया। इस व्यवस्था के परिणाम स्वरुप, उपयुक्त तरीके से यह निर्धारित करना असंभव था कि नेटवर्क ट्रैफिक को कौन से मार्ग पर भेजा जाये। इस प्रकार की नेटवर्किंग का वर्णन करने के लिए शब्द 'टेलीकॉम क्लाउड' का उपयोग किया जाता था. और क्लाउड कम्प्यूटिंग अवधारणात्मक रूप से कुछ मिलती जुलती है। क्लाउड कम्प्यूटिंग वर्चुअल मशीनों पर बहुत अधिक भरोसा करती है, जो उपयोगकर्ता की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए मांग पर उत्पन्न हुई हैं। क्योंकि ये आभासी उदाहरण मांग पर उत्पन्न हुए हैं, यह निर्धारित करना असम्भव है कि एक दिए गए समय में ऐसी कितनी वर्चुअल मशीन चलेंगी। चूँकि परिस्थिति की मांग के अनुसार वर्चुअल मशीनों को किसी भी दिए गए कम्प्यूटर पर उत्पन्न किया जा सकता है, साथ ही वे विशिष्ट स्थान पर स्थित होते हैं, यह स्थिति क्लाउड नेटवर्क को प्रदर्शित करती है। क्लाउड कम्प्यूटिंग की बुनियादी अवधारणा 1960 में आयी, जब जॉन मेककेर्थी ने राय दी कि कम्प्यूटेशन को किसी दिन एक सार्वजनिक उपयोगिता के रूप में संगठित किया जा सकता है। क्लाउड शब्द पहले से ही 1990 के दशक के प्रारंभ में व्यवसायिक उपयोग में आ गया था, इसका उपयोग अतुल्यकालिक अंतरण विधा(ए.टी.एम.) नेटवर्क का उल्लेख करने के लिए किया जाता था।

3. **क्लाउड कम्प्यूटिंग द्वारा प्रदत्त सेवाएं**– क्लाउड कम्प्यूटिंग, कम्प्यूटिंग की एक ऐसी शैली है, जिसमें गतिक रूप से परिमाप्य और अक्सर आभासी संसाधनों को इंटरनेट पर एक सेवा के रूप में उपलब्ध कराया जाता है। उपयोगकर्ताओं को उनकी मदद करने वाले तकनीकी ढांचे के ज्ञान, उसमें विशेषज्ञता या उस पर नियंत्रण की कोई आवश्यकता नहीं होती है। इस अवधारणा में आमतौर पर निम्नलिखित संयोजन शामिल किये जाते हैं–

- एक सेवा के रूप में इंफ्रास्ट्रक्चर
- एक सेवा के रूप में प्लेटफॉर्म
- एक सेवा के रूप में सॉफ्टवेयर
- एक सेवा के रूप में नेटवर्क
- एक सेवा के रूप में भंडारण
- एक सेवा के रूप में सुरक्षा
- एक सेवा के रूप में डाटा
- एक सेवा के रूप में डाटाबेस
- एक सेवा के रूप में टेस्ट पर्यावरण
- एक सेवा के रूप में डेस्कटॉप वर्चुअलाइजेशन
- एक सेवा के रूप में एपीआई
- एक सेवा के रूप में बैकेंड

क्लाउड कम्प्यूटिंग सेवाएं अक्सर वाणिज्यिक अनुप्रयोगों को ऑनलाइन उपलब्ध कराती हैं और एक वेब ब्राउजर से उपलब्ध होती हैं, जबकि सॉफ्टवेयर और डाटा, सर्वर पर संग्रहित होते हैं। इंटरनेट के लिए शब्द क्लाउड का उपयोग एक मेटाफोर के रूप में किया जाता है, यह इस बात पर आधारित होता है कि कम्प्यूटर नेटवर्क आरेख में इंटरनेट का वर्णन कैसे किया जाता है। इस शब्द का पहला शैक्षणिक उपयोग प्रोफेसर रामनाथ के0 चेलाप्पा के द्वारा किया गया, जिन्होंने इसे मूल रूप से एक कम्प्यूटिंग प्रतिमान के रूप में परिभाषित किया जहां कम्प्यूटिंग की सीमाओं का निर्धारण तकनीकी सीमाओं के बजाय आर्थिक तर्क के द्वारा किया जाता है।

4. **क्लाउड कम्प्यूटिंग का आर्किटेक्चर**– क्लाउड संरचना, क्लाउड कम्प्यूटिंग की डिलीवरी में शामिल सॉफ्टवेयर सिस्टम की सिस्टम संरचना, हार्डवेयर और सॉफ्टवेयर से बनी होती है, जिसे एक क्लाउड वास्तुकार के द्वारा डिजाइन किया जाता है, जो प्रारूपिक रूप से एक क्लाउड एकीकरण के लिए काम करता है। इसमें आमतौर पर कई क्लाउड अवयव शामिल होते हैं जो अनुप्रयोग प्रोग्रामिंग इंटरफेस, सामान्यतया वेब सेवाओं पर एक दूसरे के साथ संचार करते हैं। यह यूनिक्स दर्शन से बहुत अधिक मिलता जुलता है जिसमें बहुल प्रोग्राम होते हैं, जो एक चीज को अच्छी तरह से करते हैं और सार्वभौमिक इंटरफेस पर एक साथ मिल कर काम करते हैं। जटिलता का नियंत्रण किया जाता है और परिणामी सिस्टम अखंड सनकक्षों की तुलना में अधिक प्रबंधन योग्य हैं। क्लाउड संरचना ग्राहक तक पहुँच जाती है, जहाँ वेब ब्राउजर और सॉफ्टवेयर अनुप्रयोग के लिए क्लाउड अनुप्रयोग सुलभ होते हैं। क्लाउड भंडारण संरचना शिथिल युग्मित होती है, जहाँ मेटाडाटा गतिविधियां केंद्रीकृत होती हैं जो डाटा नोड्स को सैंकडों के पैमाने तक पहुँचने में सक्षम बनाती हैं, प्रत्येक स्वतंत्र रूप से अनुप्रयोग या उपयोगकर्ता को डाटा डिलीवर या वितरित करती है। क्लाउड कम्प्यूटिंग बुनियादी संरचनाओं में 2009 के अनुसार मरोसेमंद सेवाओं में शामिल हैं, जो डाटा केन्द्रों के माध्यम से वितरित की जाती हैं, और आभासीकरण तकनीकों के भिन्न स्तरों पर बनायीं जाती हैं। सेवाएं कहीं पर भी सुलभ हो सकती हैं, जो कि नेटवर्किंग बुनियादी संरचनाओं को उपलब्ध कराता है। क्लाउड अक्सर उपभोक्ताओं की सभी कम्प्यूटिंग आवश्यकताओं के लिए सुलभता के एकमात्र बिंदु के रूप में प्रकट होते हैं। वाणिज्यिक संगठनों से अक्सर उम्मीद की जाती है कि वे ग्राहकों की सेवा की गुणवत्ता(क्वालिटी ऑफ सर्विस) को पूरा करेंगी और प्रारूपिक रूप से सर्विस लेवल एग्रीमेन्ट(एसएलए) पेश करेंगी।

ग्राहक
सेवा
अनुप्रयोग
प्लेटफार्म
भंडारण
इंफ्रास्ट्रक्चर

चित्रः क्लाउड कम्प्यूटिंग की संरचना एवं विभिन्न स्तर

ग्राहकः एक क्लाउड ग्राहक के पास कम्प्यूटर हार्डवेयर और कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर होता है जो अनुप्रयोग डिलीवरी के लिए क्लाउड कम्प्यूटिंग पर निर्भर करता है, या जो विशेष रूप से क्लाउड सेवाओं की डिलीवरी के लिए डिजाइन किया जाता है। उदाहरणः मोबाइल (एन्ड्रॉयड, आईफोन, विंडोज मोबाइल)

सेवाः एक क्लाउड सेवा में उत्पाद, सेवाएं और समाधान शामिल होते हैं जो इंटरनेट पर वास्तविक समय में डिलीवर और उपभोग किये जाते हैं। उदाहरणः वेब सेवायें जो अन्य क्लाउड कम्प्यूटिंग अवयवों, सॉफ्टवेयर या सॉफ्टवेयर प्लस सेवाएं जो सीधे अंतिम उपयोगकर्ता के लिए सुलभ हो सकती हैं।

अनुप्रयोगः एक क्लाउड अनुप्रयोग क्लाउड को सॉफ्टवेयर संरचना में प्रयुक्त करता है। अक्सर ग्राहक के अपने कम्प्यूटर पर अनुप्रयोग को इंस्टाल करने और चलाने की आवश्यकता को कम कर देता है। इस प्रकार से सॉफ्टवेयर के रख रखाव, चल रही गतिविधियों, और सहारे के बोझ को कम करता है। उदाहरणः सॉफ्टवेयर एक सेवा के रूप में (गूगल एप्स और सेल्स फोर्स)।

प्लेटफॉर्मः एक क्लाउड प्लेटफॉर्म, जैसे एक सेवा के रूप में प्लेटफॉर्म, कम्प्यूटिंग प्लेटफॉर्म की डिलीवरी है, और एक सेवा के रूप में समाधान का अम्बार है, जो इसके तहत उपस्थित हार्डवेयर और सॉफ्टवेयर परतों के प्रबंधन और क्रय की जटिलता और लागत के बिना अनुप्रयोग को लागू करने को बढावा देती है। उदाहरणः क्लाउड कम्प्यूटिंग अनुप्रयोग और वेब होस्टिंग(रैक स्पेस क्लाउड)।

भंडारण: क्लाउड कम्प्यूटिग में एक डाटा सेन्टर को आभासीकरण विधि से सूचनाओं के भंडारण के लिए उपयोग किया जाता है। उपयोगकर्ता इस क्लाउड भंडारण के द्वारा अपना महत्वपूर्ण डाटा यहाँ स्टोर कर सकता है तथा किसी भी समय एवं किसी भी स्थान पर पुनः प्रयोग कर सकता है।

इंफ्रास्ट्रक्चर: क्लाउड बुनियादी संरचना, जैसे एक सेवा के रूप में बुनियादी संरचना, कम्प्यूटर की बुनियादी संरचना की डिलिवरी है। प्रारूपिक रूप से एक सेवा के रूप में, एक प्लेटफॉर्म आभासीकरण वातावरण है। उदाहरणार्थ पूर्ण आभासीकरण (गो ग्रिड, स्काईटेप, आईलैंड)।

5. क्लाउड कम्प्यूटिंग की प्रमुख विशेषताएँ

- **लागत:** क्लाउड कम्प्यूटिंग के द्वारा क्लाइन्ट्स बहुत कम लागत में अपने व्यवसाय को शुरु कर सकते हैं तथा ऑन लाइन विपणन प्रणालियां विकसित कर सकते हैं। क्लाउड कम्प्यूटिंग की बुनियादी सरंचना को एक तीसरे पक्ष के द्वारा उपलब्ध कराया जाता है और इसे एक बार के लिए या अनावृत व्यापक कम्प्यूटिंग सेवाओं को खरीदने की जरुरत नहीं होती। क्लाउड कम्प्यूटिंग, कंपनियों के प्रौद्योगिकी खर्च में कमी लाती है, क्योंकि इसे संबद्ध ऐप्लीकेशन सदस्यता शुल्क चुका कर ऑनलाइन माध्यम से किराए पर लिया जा सकता है। किसी उद्यम को कम या लगभग शून्य लागत पर आरम्भ किया जा सकता है। क्लाउड कम्प्यूटिंग तकनीक समय की बचत, इन्फ्रास्ट्रक्चर लागत में कमी, डाटा भंडारण में सुगमता, ऐप्लीकेशन प्रबंधन खर्च आदि में अहम भूमिका निभाती है।
- **युक्ति और स्थान की स्वतंत्रता:** प्रयोक्ता की स्थिति एवं उसके द्वारा प्रयुक्त डिवाइस, कुछ भी होने पर भी क्लाउड कम्प्यूटिंग का उपयोग किया जा सकता है क्योंकि यह वेब ब्राउजर पर आधारित है। क्लाउड कम्प्यूटिंग, उपयोगकर्ता को एक वेब ब्राउजर का उपयोग करते हुए सिस्टम सुलभ कराती है। इस पर इस बात का फर्क नहीं पड़ता कि उनकी स्थिति क्या है और वे कौन सी डिवाइस(जैसे–पीसी, मोबाइल) का उपयोग कर रहे हैं।
- **आवश्यकता के अनुसार कम–ज्यादा करने की सुविधा(स्केलेबिलिटी):** हम कम क्षमता की सेवा किराये पर ले सकते हैं और जैसे ही हमें लगे कि हमें अधिक क्षमता की आवश्यकता है, तब अधिक क्षमता खरीदी जा सकती है। यह बदलाव एक घंटे से भी कम समय में किया जा सकता है।
- **चपलता:** चपलता उपयोगकर्ताओं की तेजी से और सस्ते में पुनः–प्रोविजन प्रौद्योगिकी सुविधाओं के संसाधनों की क्षमता में सुधार करती है। समग्र कम्प्यूटिंग की लागत अपरिवर्तित रहती है, हालांकि अन्य प्रदाता कभी–कभी फ्रंट लागत को अवशोषित कर लेते हैं, और एक लम्बी अवधि के दौरान लागत को प्रसारित करते हैं।
- **बहुल किरायेदारी:** क्लाउड कम्प्यूटिंग के किराये का मॉडल भी बहुत सुविधाजनक है। यहाँ तक कि इसे एकाध घंटे के लिये किराये पर लिया जा सकता है। उपयोगकर्ताओं के एक बड़े समूह में लागत संसाधनों के सहभाजन को सक्षम बनाती है, इस प्रकार से निम्न के लिए अनुमति देती है:
  (अ) बुनियादी सरंचना का केंद्रीकरण कम लागत की स्थिति के साथ (जैसे रिअल एस्टेट, विद्युत आदि)।
  (ब) पीक–भार क्षमता बढ़ जाती है (उपयोगकर्ताओं को उच्चतम संभव लोड–स्तरों के लिए अभियांत्रिकी की आवश्यकता नहीं होती है)।
  (स) सिस्टम के लिए उपयोगिता और प्रभाविता में सुधार, जो अक्सर केवल 10–12 प्रतिशत उपयोग किये जाते हैं।
- **विश्वसनीयता:** चूँकि यह बड़ी एवं विश्वसनीय कम्पनियों द्वारा प्रदत्त सेवा है(जैसे अमेजन डॉट कान, आईबीएम, आदि) अतः यह बहुत विश्वसनीय सेवा है। कई निरर्थक साइटों के उपयोग के माध्यम से बेहतर हो जाती है, जो क्लाउड कम्प्यूटिंग को व्यापार की निरंतरता और आपदा वसूली के लिए उपयुक्त बनाती हैं।
- **मापनशीलता:** यह संसाधनों का प्रावधानीकरण जैसे आत्म वास्तविक समय, निकट सेवा आधार, प्रयोक्ताओं पीक लोड के लिए इंजीनियर बिना, प्रदर्शन पर नियंत्रण किया जा सकता है। सिस्टम इंटरफेस के रूप में वेब सेवाओं का उपयोग करते हुए स्थिर और शिथिल युग्मित संरचना का उपयोग किया जाता है।
- **सुरक्षा:** आमतौर पर डाटा के केन्द्रीकरण के कारण काफी हद तक डाटा के बैकअप द्वारा सुरक्षा को बढाया जा सकता है। विशेष संवेदी डाटा पर नियंत्रण की कमी के बारे में चिंता बनी रहती है।
- **स्थिरता:** क्लाउड कम्प्यूटिंग में स्थिरता, संसाधनों की उपयोगिता में सुधार, अधिक प्रभावी प्रणाली और कार्बन उदासीनता के कारण आती है। क्लाउड कम्प्यूटिंग में कम्प्यूटर और संबंधित बुनियादी संरचनाएं ऊर्जा के बड़े उपभोक्ता हैं तथा इस संरचना में कम्प्यूटिग कार्य, ऊर्जा की एक बडी मात्रा का उपयोग करते हैं चाहे यह ऑन–साईट हो या ऑफ–साईट।

6. सेवाओं की गति व गुणवत्ता बढ़ाती क्लाउड कम्प्यूटिंग– इस कम्प्यूटिंग मॉडल के जरिए बिजनेस करने वाले और उपभोक्ता दूर से ही उस विशाल कंप्यूटिंग संसाधन तक पहुंच बनाने में सक्षम होते हैं जिनका दोहन मांग के आधार पर नए दौर की उन सेवाओं को उपलब्ध कराने के लिए किया जाता है जिनकी उपभोक्ताओं को जरूरत है। इनमें ऑनलाइन मेडिकल रिकॉर्ड्स या मोबाइल स्टॉक पोर्टफोलियो मैनेजमेंट समेत कई तरह की आवश्यकताएं शामिल हैं। एक साझी बुनियादी संरचना

के रूप में क्लाउड कम्प्यूटिंग ऊर्जा कार्यकुशलता को बेहतर बनाती है। इससे सूचनाओं की आवाजाही का ट्रैक भी बेहतर बनता है। इसके जरिए उपभोक्ता अपनी आवश्यकता के मुताबिक सिर्फ कम्प्यूटिंग, स्टोरेज, सर्विसेज और एप्लीकेशंस जैसी सुविधाओं के लिए शुल्क देते हैं। आई.बी.एम. इंडिया के अनुसार, क्लाउड कम्प्यूटिंग की सहायता से अत्याधुनिक शोध संभव बनाने के लिए उभर रहे देशों में पहले से सहयोगियों, सरकार और अकादमीविदों से सहयोग स्थापित किया जा रहा है। भारत में मिड मार्केट वेंडर्स, अकादमिक संस्थानों, तकनीकी संस्थानों और सरकारी संगठनों समेत सभी ग्राहक अपने उपभोक्ताओं को विभिन्न तरह की सेवाएं उपलब्ध कराने के लिए इस तकनीक का इस्तेमाल कर सकेंगे। आई.बी.एम. सेंटर ऐसी कंपनियों की भी मदद करेगा जो सर्विस डिलिवरी, सेवाओं को अत्याधुनिक बनाने और नए व्यवसाय शुरू करने में जुटे हुए हैं, और अपनी सेवाओं के लिए नई बुनियादी सुविधाएं निर्मित करने में सक्षम नहीं हैं। क्लाउड कम्प्यूटिंग के जरिए भारत के क्लायंट अपनी क्लाउड बुनियादी संरचना निर्मित करने और वैसे विशेषज्ञों की मदद लेने में भी सक्षम हो पाएंगे जो उनकी मदद कर सकते हैं। आईबीएम ने क्लाउड कम्प्यूटिंग के विकास में 1 अरब डॉलर के निवेश के साथ लगभग 200 शोधकर्ताओं की सेवा ली है।

7. **क्लाउड कम्प्यूटिंग में निहित अर्थशास्त्र**– क्लाउड कम्प्यूटिंग उपयोगकर्ता, हार्डवेयर, सॉफ्टवेयर, और सेवाओं पर पूंजी खर्च करने से बच सकते हैं जब वे प्रदाता को केवल उसी का भुगतान करते हैं जिसका वे उपयोग कर रहे हैं। उपभोग का बिल एक उपयोगिता या सदस्यता के आधार पर बनाया जाता है जिसमें अपफ्रंट लागत बहुत कम होती है या नहीं होती है। इस समय सहभाजन शैली दृष्टिकोण के अन्य लाभ हैं प्रवेश में कम बाधाएं, सहभाजित बुनियादी संरचना और लागत कम प्रबंधन उपरिव्यय, और अनुप्रयोगों की एक विस्तृत रेंज की उपलब्धि। उपयोगकर्ता आमतौर पर किसी भी समय अनुबंध को समाप्त कर सकते हैं और सेवाओं को अक्सर वित्तीय दंड के साथ सेवा स्तर समझौते (एस्एलए) के द्वारा कवर किया जाता है। वेमवेयर, सन माइक्रोसिस्टम्स, रेकस्पेस यू एस, आईबीएम, अमेजन, गूगल, बीएमसी, माइक्रोसॉफ्ट और याहू कुछ प्रमुख क्लाउड कम्प्यूटिंग सेवा प्रदाता हैं। क्लाउड सेवाएं व्यक्तिगत उपयोगकर्ताओं द्वारा बड़े उद्यमों के माध्यम से भी अपनाई जा रही हैं, इन उद्यमों में वेमवेयर, जनरल इलेक्ट्रिक और प्रॉक्टर एंड गैंबल शामिल हैं।

8. **क्लाउड कम्प्यूटिंग के समकक्ष अन्य तुलनात्मक प्रणालियां**– क्लाउड कम्प्यूटिंग निम्न के साथ भ्रम पैदा करती है:

- **ग्रिड कम्प्यूटिंग:** वितरित कम्प्यूटिंग का एक रूप जहाँ एक सुपर और आभासी कम्प्यूटर नेटवर्क में शिथिल युग्मित कम्प्यूटर के एक समूह से बना है, जो भिन्न बड़े कार्यों को करने के लिए मिल कर कार्य करता है।
- **यूटिलिटी कम्प्यूटिंग:** कम्प्यूटिंग संसाधनों जैसे अभिकलन और संग्रहण की एक मापन सेवा के रूप में पैकेजिंग जो सार्वजनिक उपयोगिता जैसे विद्युत के समान है।
- **ऑटोनोमिक कम्प्यूटिंग:** प्रबंधन में सक्षम कम्प्यूटर प्रणालियां।
- **स्वायत्त कम्प्यूटिंग:** कम्प्यूटर में सक्षम सिस्टम आत्म प्रबंधन।
- **क्लाइंट सर्वर मॉडल:** कम्प्यूटिंग क्लाइंट सर्वर किसी भी मोटे तौर पर संदर्गित वितरित आवेदन है कि सेवा प्रदाता(सर्वर) और सेवा अनुरोधकर्ताओं(ग्राहकों) के बीच अलग है।
- **मेनफ्रेम कम्प्यूटर:** शक्तिशाली महत्वपूर्ण अनुप्रयोगों, आम तौर पर थोक के रूप में इस तरह के डाटा प्रोसेसिंग के लिए बड़े संगठनों द्वारा मुख्य रूप से प्रयोग किया जाता है, जो कम्प्यूटर, जनगणना उद्योग, उपभोक्ता के आँकड़े, पुलिस और गुप्त खुफिया सेवाओं, उद्यम संसाधन योजना, और वित्तीय लेन-देन प्रसंस्करण में उपयोग किया जाता है।
- **बादल गेमिंग:** इसे इसके अतिरिक्त मांग गेम के रूप में जाना जाता है, यह कम्प्यूटर के लिए खेल देने का एक तरीका है। गेमिंग डाटा सामान्यतः प्रदाता के सर्वर में संग्रहित किया जाता है

कई क्लाउड कम्प्यूटिंग का प्रभावी प्रयोग ग्रिड्स पर निर्भर करता है, इसकी स्वायत्त विशेषताएं होती हैं और बिल जैसी उपयोगिताएं होती हैं। लेकिन क्लाउड कम्प्यूटिंग की विस्तृत होने की प्रवृति होती है जो ग्रिडों और उपयोगिताओं के द्वारा प्रदान की जाती हैं। कुछ सफल क्लाउड की संरचना में अल्प या कोई केंद्रीकृत बुनियादी संरचना या बिलिंग प्रणाली नहीं होती है, इसमें सहकर्मी नेटवर्क जैसे बिट टोरेंट और स्काइप शामिल हैं जिसमें स्वयंसेवक कम्प्यूटिंग शामिल हैं। क्लाउड कम्प्यूटिंग ग्राहकों की आम तौर पर अपनी भौतिक बुनियादी संरचना नहीं होती है जो सॉफ्टवेयर प्लेटफॉर्म के लिए एक मेजबान का कार्य करे, इसके बजाय, वे एक तीसरे पक्ष प्रदाता से किराये पर उपयोग के द्वारा पूंजी खर्च करने से बचते हैं। वे एक सेवा के रूप में संसाधनों का उपभोग करते हैं और केवल उन्हीं संसाधनों के लिए भुगतान करते हैं जिनका वे उपयोग करते हैं। कई क्लाउड कम्प्यूटिंग प्रस्ताव यूटिलिटी कम्प्यूटिंग मॉडल के आधार पर काम करते हैं, जो इसके अनुरूप हैं कि पारंपरिक उपयोगिता सेवाओं(जैसे विद्युत) का उपभोग कैसे किया जाता है, जबकि अन्य सदस्यता के आधार पर बिल बनाते हैं।

9. **क्लाउड कम्प्यूटिंग की आलोचना**– क्लाउड कम्प्यूटिंग उपयोगकर्ता को अपने डाटा के भौतिक भण्डारण की अनुमति नहीं देता है(यह संभावना अपवाद है कि डाटा को उपयोगकर्ता की भण्डारण युक्ति जैसे एक फ्लैश ड्राइव या हार्ड डिस्क तक भेजा जा सकता है) यह डाटा संग्रहण और नियंत्रण की जिम्मेदारी को प्रदाता के हाथों में नहीं देता है। क्लाउड कम्प्यूटिंग की आलोचना इस बात को लेकर की जाती है कि यह उपयोगकर्ता की स्वतंत्रता को सीमित कर देता है और उन्हें क्लाउड कम्प्यूटिंग प्रदाता पर निर्भर बना देता है, और कुछ आलोचकों के अनुसार केवल उसी अनुप्रयोग या सेवा का उपयोग करना संभव है जिसे प्रदाता उपलब्ध कराना चाहता है। आमतौर पर, उपयोगकर्ता को नए अनुप्रयोग इन्स्टॉल करने की स्वतंत्रता नहीं होती है और विशिष्ट कार्य करने के लिए प्रशासकों की स्वीकृति आवश्यक होती है।

10. **क्लाउड कम्प्यूटिंग के प्रकार**

सार्वजनिक क्लाउड– सार्वजनिक क्लाउड या बाहरी क्लाउड पारंपरिक मुख्यधारा अर्थ में क्लाउड कम्प्यूटिंग का वर्णन करता है, जिसके द्वारा संसाधन इंटरनेट पर स्व–सेवा आधारित, एक फाइन–ग्रेन्ड पर गतिक रूप से स्थापित होते हैं, ये वेब अनुप्रयोग वेब सेवाओं के माध्यम से, एक ऑफ–साईट तीसरे पक्ष प्रदाता से कार्य करते हैं, जो एक फाइन–ग्रेंड यूटिलिटी कम्प्यूटिंग आधार पर बिल और संसाधनों को शेयर करता है। सार्वजनिक बादल अनुप्रयोगों, भंडारण, और अन्य संसाधनों को एक सेवा प्रदाता द्वारा आम जनता के लिए उपलब्ध बनाते हैं। इन सेवाओं के लिए स्वतंत्र या एक भुगतान प्रति उपयोग मॉडल पर देने की पेशकश करते हैं। आम तौर पर, अमेजन, माइक्रोसॉफ्ट और गूगल की तरह सार्वजनिक बादल सेवा प्रदाताओं के मालिक हैं और बुनियादी ढांचे और प्रस्ताव का उपयोग केवल इंटरनेट के माध्यम से संचालित करते हैं।

निजी क्लाउड– निजी क्लाउड और आंतरिक क्लाउड निओलोजिस्म हैं कि कई विक्रेताओं ने हाल ही में उस प्रस्तुति का वर्णन करने के लिए प्रयोग किया है जो निजी नेटवर्क पर क्लाउड कम्प्यूटिंग का अनुसरण करता है। ये उत्पाद पिटफॉल्स के बिना क्लाउड कम्प्यूटिंग के कुछ फायदों को वितरित करने, डाटा सुरक्षा पर पूंजीकरण, कोरपोरेट प्रशासन, और विश्वसनीयता के मुद्दों का दावा करते हैं, उनकी इस आधार पर आलोचना की गयी है कि उपयोगकर्ता को अभी भी उन्हें खरीदना, बनाना और प्रबंधित करना पड़ता है और ये लोवर–अप फ्रंट पूंजी लागत से फायदा नहीं देते, और कम प्रबंधन करते हैं।

समुदाय बादल– समुदाय बादल आम चिंताओं(सुरक्षा, अनुपालन, अधिकार क्षेत्र, आदि) के साथ एक विशेष समुदाय से कई संगठनों के बीच शेयरों के बुनियादी ढांचे, चाहे आंतरिक या किसी तीसरे पक्ष द्वारा प्रबंधित और आंतरिक या वाह्य की मेजबानी हो। एक सार्वजनिक बादल(लेकिन एक निजी बादल से अधिक) की तुलना में लागत कम उपयोगकर्ताओं पर फैले हुए हैं, तो केवल क्लाउड कम्प्यूटिंग की संभावित लागत बचत को कुछ महसूस कर सकते हैं।

संकरित क्लाउड– एक संकरित क्लाउड पर्यावरण में बहुल आंतरिक और बाहरी प्रदाता शामिल होते हैं जो अधिकांश उद्यमों के लिए प्रारूपिक होते हैं।

हाइब्रिड बादल– हाइब्रिड बादल दो या दो से अधिक(निजी समुदाय, या सार्वजनिक) बादलों कि अद्वितीय संस्थाओं में निहित रहते हैं, लेकिन एक साथ बंधे हुए हैं, कई मॉडलों की तैनाती के लाभ की पेशकश की एक संरचना है। हाइब्रिड बादल का उपयोग करके संकर बादल वास्तुकला कंपनियों, और व्यक्तियों के लिए इंटरनेट कनेक्टिविटी पर निर्भरता के बिना स्थानीय स्तर पर तत्काल प्रयोज्य के साथ संयुक्त गलती सहिष्णुता की डिग्री प्राप्त करने में सक्षम हैं। हाइब्रिड बादल वास्तुकला दोनों पर परिसर संसाधनों और दूरस्थ साइट सर्वर आधारित बादल बुनियादी सुविधाओं की आवश्यकता है।

11. **निष्कर्ष**– उपरोक्त चर्चा से स्पष्ट है कि क्लाउड कम्प्यूटिंग ने आज के समय में ऐसे नये आयाम उत्पन्न किये हैं जिसके द्वारा सामान्य उपभोक्ताओं को लगभग सभी ऑनलाइन सेवाऐं एक वर्चुअल प्लेटफॉर्म पर उपलब्ध होती हैं। क्लाउड कम्प्यूटिंग के माध्यम से सूचनाओं के संग्रहण एवं विभिन्न प्रकार की सेवाओं को किसी भी समय कहीं से भी केवल एक आई.टी. डिवाइस जैसे पीसी, लैपटॉप, टेबलेट, मोबाईल फोन आदि के माध्यम से क्लाउड कम्प्यूटिंग सेवाओं का उपभोग किया जा सकता है। भारत सरकार के संचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय को इस तकनीक को व्यापक बढावा देने के लिए एक सरकारी स्तर पर क्लाउड कम्प्यूटिंग नेटवर्क स्थापित करना चाहिए जिससे सरकारी सेवाओं को जनता तक आसानी से पहुँचाया जा सके। भारत में अभी क्लाउड कम्प्यूटिंग को सरकारी एवं वाणिज्य स्तर पर बढावा देने की आवश्यकता है। जिससे सभी वाणिज्य एवं सरकारी सेवाओं को ऑनलाइन प्लेटफॉर्म पर उपलब्ध कराया जा सके।

सन्दर्भ

1. https://hi.wikipedia.org/s/c91
2. https://hi.wikipedia.org/s/mqg
3. https://en.wikipedia.org/wiki/Cloud_computing
4. http://searchcloudcomputing.techtarget.com/definition/cloud-computing
5. http://www.webopedia.com/TERM/C/cloud_computing.html
6. http://www.ibm.com/cloud-computing/in/en/what-is-cloud-computing.html
7. http://www.verio.com/resource-center/articles/cloud-computing-benefits/
8. http://mobiledevices.about.com/od/additionalresources/a/Cloud-Computing-Is-It-Really-All-That-Beneficial.htm

सरस्वती नदी का पुर्नप्रामाणीकरण : सार्थक प्रयास का एक तकनीकी अध्ययन

अलका शर्मा
असिस्टेंट प्रोफेसर, भौतिकी विज्ञान विभाग
श्री जे0एन0 पी0जी0 कॉलेज
स्टेशन रोड, चारबाग, लखनऊ–226001, उ0प्र0, भारत
alkasharma.bhu @ gmail.com

प्राप्त तिथि– 24.06.2015, स्वीकृत तिथि– 16.08.2015

सार

ऋग्वेद में वर्णित सरस्वती मिथकीय नदी नहीं है। इस तथ्य का वैज्ञानिक प्रमाण हरियाणा के मुगलवाली क्षेत्र की खुदाई के दौरान इसके पानी मिलने से स्पष्ट हो गया है। प्रस्तुत तकनीकी अध्ययन में सरस्वती नदी के पौराणिक इतिहास तथा वैदिक काल में इसके महत्व को दर्शाया गया है। वर्तमान समय में इसके पुनर्जीवन के लिये किये गये वैज्ञानिक प्रयासों एवं उनकी सार्थकता पर प्रकाश डाला गया है।

बीज शब्द– ऋग्वेद, मिथकीय, खनन।

Revalidation of Saraswati river : A technical study of relevant efforts

Alka Sharma
Assistant Professor, Department of Physics
S.J.N. P.G. College, Lucknow-226001, U.P., Lucknow
alkasharma.bhu @ gmail.com

Abstract

River Saraswati is not a mythical river. During excavation, finding of water channel, mentioned in Rigveda at Mughalwali, District Yamunagar(Haryana) proves its scientific evidence. In the present technical article the author described the importance of Saraswati River in history of Vedic period. In the light of scientific efforts and their significance, the importance of the work being done for regeneration of river Saraswati has been presented.

Keywords- Rigveda, mythical, excavation.

परिचय एवं उद्गम

"इयं शुष्मेभिर्विसस्रा इवारुजत सानुगिरीणां तविषेभिरूर्मिभिः पारावताघ्नीमवसे सुवृक्तिभिः सरस्वतीमार्विवासेमधीतिभिः"

सरस्वती नदी अपनी शक्तिशाली और तीव्र लहरों से पर्वत की चोटियों को ध्वस्त करती है। ठीक उसी प्रकार से जिस प्रकार कमल के तने को उखाड़ फेंका जाता है। दूर और पास की वस्तुओं पर प्रहार करने वाली उस नदी का प्रार्थनाओं से आवाहन करना चाहिये।(ऋग्वेद में वर्णित)

1. सरस्वती नदी एक पौराणिक नदी है। जिसका वर्णन सर्वप्रथम वेदों में आता है। ऋग्वेद(241,16–18) में सरस्वती का अन्नवती तथा उदकवती के रूप में वर्णन आया है। यह सदानीरा नदी पौराणिक वर्णन के अनुसार पंजाब में सिरमूर राज्य के पर्वतीय भाग से निकलकर अंबाला तथा कुरुक्षेत्र होती हुई कर्नाल जिला और पटियाला राज्य में प्रविष्ट होकर सिरसा जिले की दृशद्वती(कांगार) नदी में मिल गई थी।

2. के0 एस वालिया की पुस्तक 'सरस्वती द रिवर दैट डिसअपीयर्ड' और बी0पी0 राधाकृष्णा व एस0 एस0 मेढा की पुस्तक 'वैदिक सरस्वती' में कहा गया है कि मानसरोवर से निकलने वाली सरस्वती हिमालय को पार करते हुए हरियाणा, राजस्थान के रास्ते कच्छ पहुँचती थी। ऋग्वेद में सरस्वती को एक विशाल नदी के रूप में वर्णित किया है, इसीलिये 'राय' आदि मनीषियों का विचार था कि ऋग्वेद में सरस्वती वस्तुतः मूलरूप में सिंधु का ही अभिधान है। किंतु मेकडॉनेल्ड के अनुसार सरस्वती ऋग्वेद में कई स्थानों पर सतलुज और यमुना के बीच की छोटी नदी के रूप में वर्णित है। भूगोलविदो का विचार है कि सरस्वती पूर्व काल में सतलुज की सहायक नदी अवश्य रही होगी।

3. मनु संहिता में कहा गया है कि सरस्वती और दृषद्वती के बीच का भूभाग ही ब्रह्मावर्त कहलाता था।

4. क्रिश्चियन लैसन, मैक्समूलर, मार्क ऑरेल स्टीन, सी0 एफ0 ओल्ढम और जेन मैकिनटोस जैसे विद्वानों ने वैदिक नदी की पहचान घग्गर–हकरा नदी के रूप में की है। इतिहासाकार माइकल डेनिनो ने कहा है कि प्राचीन काल में घग्गर–हकरा नदी घाटी में एक प्रमुख नदी बहती थी, जिसका प्रवाह कच्छ से रण तक था। वर्तमान में घग्गर–हकरा नदी पाकिस्तान के उत्तर पश्चिम में प्रवाहित होने वाली नदी है। जो 500–3000 ई0 पूर्व पूरे प्रवाह के साथ बहती थी। इसरो एवं ओ0एन0जी0सी0 के पास उपलब्ध चित्रों से पता चलता है कि नदी के प्रवाह का बड़ा हिस्सा वर्तमान में घग्गर नदी के प्रवाह से मिलता है।

5. कुछ विद्वानों का मत है कि वैदिक काल में सतलुज और यमुना की कुछ धाराएँ सरस्वती नदी में आकर मिलती थी। इसके अतिरिक्त दो अन्य लुप्त हुई नदियाँ दृष्टावती और हिरण्यवती भी सरस्वती की सहायक नदियाँ थी।

6. महाभारत के अनुसार सरस्वती नदी का मैदानी क्षेत्रों में प्रवेश आदिबद्री से होता है। भवानीपुर और बल छप्पर गाँव से होते हुए यह नदी बालू क्षेत्र में लुप्त हो जाती है। फिर थोड़ी दूर पर कर्नाल से बहती है घग्गर नदी का उद्गम इसी क्षेत्र से है जो 175 किमी दूर रसूला के निकट इसमें मिल जाती है। यह बीकानेर से पहले हनुमानगढ़ के पास बालूकामय राशि में लुप्त हो जाती है। आज भी बीकानेर से करीब 10 किमी0 दूर रेतीले क्षेत्र को सरस्वती कहकर पुकारा जाता है।

7. भारतीय पुरातत्व परिषद के अनुसार सरस्वती का उद्गम उत्तरांचल के रूपण नामक हिमनद से होता है। नैतवार में आकर यह हिमनद जल में परिवर्तित हो जाता था, फिर जलधार के रूप में आदिब्रदी तक सरस्वती बहकर आती थी।

8. 19वी0 शताब्दी में इटली के निवासी मनुची ने प्रयाग के किले की चट्टान से नीले पानी की नदी को निकलते देखा था यह नदी, गंगा और यमुना संगम में मिल जाती है।

9. यूनानी लेखकों ने अलक्षेद्र के समय सरस्वती का राज्य सक्खर रोरी(सिंधु, पाकिस्तान) में लिखा है।

सरस्वती नदी का इतिहास एवं महत्व– हॉपकिंस का मत है कि ऋग्वेद का अधिकांश भाग सरस्वती के तट पर रचित है। ऋग्वेद की ऋचायें (661,795) और 696 में सरस्वती नदी को स्तवन समर्पित किये गये हैं। ऋग्वेद के 'नदी सूक्त' में सरस्वती का उल्लेख इस प्रकार किया गया है–

इंम में गंगे यमुने सरस्वती शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या असिकन्या मरुद्वधे वितस्तायार्जीकीये श्रृणुहया सुषोमया[1]

ऋग्वेद के मंत्र 7.9.52 तथा अन्य जैसे 8.21.18 में सरस्वती नदी को 'दूध और घी' से परिपूर्ण बताया है।

यजुर्वेद की वाजस्नेयी संहिता 34.11 में कहा गया है कि पाँच नदियाँ अपने पूरे प्रवाह के साथ सरस्वती नदी में प्रविष्ट होती हैं वी0 एस0 वाकणकर के अनुसार ये पाँचों नदियाँ सतलुज, रावी, व्यास चेनाव और दृष्टावती हो सकती हैं। इन पाँचों नदियों के संगम के सूखे अवशेष राजस्थान के बाड़मेर या जैसलमेर के निकट पंचभद्र तीर्थ पर देखे जा सकते है।[2] वाल्मीकि रामायण में भी सरस्वती नदी का वर्णन आता है–

'सरस्वतीं च गंगा च युग्मेन प्रतिपद्य च, उत्तरान् वीरमत्स्यानां भारुण्डं प्राविशद् वनम्।।[3]

महाभारत काल में भी सरस्वती नदी के तीर्थ तट पर तीर्थस्थानों का वर्णन आया है। वर्तमान में इन स्थानों की खुदाई के दौरान मुख्यतः कालीबंगा, लोथल में यज्ञकुंडों के अवशेष मिले है।[4]

विलुप्त सरस्वती का बहाव क्षेत्र– नदी के खोजे गये अब तक के चैनल मैप यह बताते हैं कि यह नदी करीब 1500 किमी लंबी थी, तीन से 25 किमी चौड़ी थी औसतन इसकी गहराई 5 मीटर थी। यह नदी संभवतः मौजूदा राज्यों हिमाचल प्रदेश, हरियाणा, पंजाब और राजस्थान से होकर अरब सागर में मिल जाती थी।[7]

विलुप्ति के कारण– सिंधु घाटी सभ्यता का नाम यद्यपि सिंधु नदी के नाम पर पड़ा परन्तु इसको सरस्वती संस्कृति, सरस्वती सभ्यता के नाम से भी जाना जाता है।

1. गिओसेन ने अपने अध्ययन 'फ्लुविअल लैंडस्केप्स ऑफ द हड़प्पन सिविलाइजेशन' में कहा है कि घग्गर–हकरा नदी प्रवाह तंत्र हिमालयी ग्लेशियर से निकलने वाली नदी का विस्तृत रूप नहीं था यह केवल मानसूनी नदी प्रवाह तंत्र था इसी से दूसरी ईसा पूर्व में यह प्रवाह तंत्र सूख गया।

2. कुछ अन्य वैज्ञानिकों का मानना है कि भूगर्भीय कारणों से नीचे के पहाड़ ऊपर की ओर सरक गये और सरस्वती का जल पीछे चला गया। वैदिक काल में एक और नदी दृषवती का वर्णन आता है। यह सरस्वती की सहायक नदी थी यह भी हरियाणा से होकर बहती थी, कालांतर में भूकम्प आने से हरियाणा और राजस्थान की धरती के पहाड़ ऊपर उठे तो नदियों के बहाव की दिशा बदल गई। दृषवती नदी उत्तर और पूर्व की ओर बहने लगी, सरस्वती नदी पश्चिम की ओर विस्थापित हो गई।

3. भूगर्भीय प्लेटों के खिसकने के कारण सतलुज नदी सिंधु की ओर उन्मुख हो गई और यमुना नदी गंगा की ओर उन्मुख हो गई जिसके कारण यह नदी थार रेगिस्तान में सूख गई। कुछ विद्वानों के मतानुसार सरस्वती का जल यमुना के साथ प्रयाग में गंगा में मिला तो वह त्रिवेणी कहलाई।

4. महाभारत में वर्णन आता है कि सरस्वती नदी मरुस्थल में विनाशन नामक स्थान पर लुप्त हो जाती है एवं अन्य स्थान पर प्रकट होती है।[8]

5. महाभारत में यह भी वर्णन आया है कि ऋषि वशिष्ठ सतलुज में आत्महत्या का प्रयास करते हैं। जिससे नदी 100 धाराओं में टूट जाती है। यह तथ्य सतलुज के अपने पुराने मार्ग को बदलने की घटना को प्रमाणित करता है।[9]

पुनः खोज के प्रयास– सर्वप्रथम अमेरिकी सेटेलाइट लैंडसेट द्वारा भेजी गई डिजिटल तस्वीरों ने वैज्ञानिकों को हतप्रभ कर दिया इनमें जैसलमेर इलाके में एक निश्चित पैटर्न में भूजल के साक्ष्य मिले इसके बाद वैज्ञानिक अनुमान लगाने लगे कि यह कोई प्राचीन बड़े जल का चैनल है जो किसी बड़ी नदी का हिस्सा है। इसरों की रिमोट सेंसिंग तस्वीरों और 'जियोलाजिकल सर्वे आफ इंडिया' ने भी कुछ स्थानों पर इन चैनलों के विषय में साक्ष्य दिये थे, सभी अरावली पर्वतमाला के पश्चिम में थे। उसके पश्चात् 'जिओलॉजिकल सर्वे आफ इंडिया' ने टानोत और लोंगेवाला क्षेत्र में किये अपने अध्ययन में बताया कि 30 से 60 मीटर की गहराई में ऐसी बजरी मिलती है जो नदी की धाराओं मे मिलती है[9] जिससे नदी के अस्तित्व पर बल मिला।

वर्ष 2002 में भारत सरकार ने विलुप्त हुई सरस्वती नदी की खोज निकालने की परिकल्पना की एवं तत्कालीन संस्कृति मंत्री जगमोहन के नेतृत्व में विशेषज्ञों का एक पैनल गठित किया गया। जिसके सदस्य अहमदाबाद इसरो के बलदेव साहनी, पुरातत्वविद् एस0 कल्याण रमन, ग्लेशियरविद् वाई0 के0 पुरी, और जल सलाहाकार माधव चितले थे। हरियाणा में आदिबद्री से लेकर भगवान पुरा तक पहले चरण की खुदाई इन विशेषज्ञों की देख रेख में होनी थी, इसके बाद दूसरे चरण के तहत भगवानपुरा से लेकर राजस्थान सीमा पर स्थित कालीबंगन की खुदाई होनी थी। भारत सरकार के इन प्रयासों को राजस्थान ग्राउडवाटर डिपार्टमेन्ट द्वारा किये गये 1996 के प्रयासों से भारी मदद मिली।[8] इस परियोजना में केन्द्रीय भूजल बोर्ड, इसरो, 'भाभा एटामिक रिसर्च सेंटर' और 'नेशनल फिजीकल लेबोरेटरी रिसर्च सेंटर' सहयोग कर रही थी। जब राजस्थान ग्राउंडवाटर डिपार्टमेन्ट इन जल के पुरातन चैनल वाले स्थानों की जांच कर रही थी तब केन्द्रीय भूजल बोर्ड ड्रिलिंग करके जल और मृदा नमूने एकत्र कर रहा था। कार्बन–14 डेटिंग तकनीक से भाभा एटॉमिक रिसर्च सेंटर जल और मिट्टी के नमूनों की आयु का आंकलन कर रहा था।

वर्ष 2005 में रिमोट सेंसिग और धरातलीय अध्ययन के माध्यम से ओ.एन.जी.सी. के भूगर्भीय वैज्ञानिक एवं अधिशाषी निदेशक पद से सेवानिवृत्त डॉ0 एम0 आर0 राव ने नदी के रूट की सेटेलाइट मैपिग की और फिर हिमाचल प्रदेश में सिरमौर जिले के काला अंब के पास 'सरस्वती टियर फाल्ट' का बारीक अध्ययन किया।[10] अवशेषीय अध्ययन के बाद ओ0एन0जी0सी0 ने राजस्थान के जैसलमेर से सात किलोमीटर दूर जमीन में करीब 550 मीटर तक ड्रिल किया। वहाँ 7600 लीटर प्रति घंटे की दर से साफ पानी निकला। 6 मई 2015 मंगलवार उद्गम स्थल आदिबद्री से पांच किमी दूर यमुनानगर के मुगलवाली में जल की धारा फूटने से सरस्वती नदी की प्रमाणिकता सिद्ध हो गई। कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय के भू–विज्ञान विभाग के अध्यक्ष डॉ0

ए0 आर0 चौधरी ने बिलासपुर के गाँव मुगलवाली में निकले जल के विषय में बताया कि सरस्वती के पेलियो चैनल इस क्षेत्र से निकलते हैं यद्यपि अभी डेटिंग का कार्य शेष है। परन्तु यह कहा जा सकता है कि यहाँ से बहने वाली धारा आगे चलकर सरस्वती में मिलती होगी।

निष्कर्ष– सरस्वती नदी पर किये गये शोधों से ज्ञात होता है कि जमीन के 60 मीटर भीतर इन चैनलों का सूत्र सरस्वती से जुड़ता है, यदि इन चैनलों को फिर से खोज लिया जाये तो उन कड़ियों को जोड़कर नदी के बहाव को बनाया जा सकता है। इसके लिए सिद्धान्त यह है कि ये चैनल मानसून के दिनों में हरियाणा और पंजाब से भारी मात्रा में पानी ला सकेंगे और भविष्य के प्रयोग के लिये पानी जमा किया जा सकेगा। यद्यपि यह एक सरल कार्य नहीं है परन्तु भूगर्भशास्त्री एवं वैज्ञानिक इस पवित्र एवं विशाल नदी के पुनर्जीवन के लिये विशद अध्ययन एवं अथक प्रयास कर रहे हैं।

सन्दर्भ

1. ऋग्वेद 10.75.5।
2. बाकणकर, बी0 एस0 एवं परचुरी, सी0 एन0(1994) द लॉस्ट सरस्वती रिवर, मैसूर।
3. बाल्मीकी रामायण, अयो0, 71, 5।
4. लाल, बी0 बी0 "फ्रन्टियर आफ इन्ड्स सिविलाइजेशन"।
5. महाभारत 3.82.111,3.130.3, 6.7.47।
6. यशपाल(एस0 पी0 गुप्ता में)(1995) मु0पृ0 175।
7. ओ0 एन0 जी0 सी0(मई 9, 2006) "दु एक्सप्लोर रूट आफ रिवर सरस्वती"
8. रिवाइविंग सरस्वती, आर0 जी0 डब्ल्यू डी0 रिपोर्ट, 29.09.1999।
9. महापात्रा, रिचर्ड(नवम्बर 15,2002) "सरस्वती अन्डरग्राउन्ड"।
10. राव, एम0 आर0, जीजीएम ओ0एन0जी0सी0(2009) "वैदिक रिवर सरस्वती एड हिन्दू सिविलाइजेशन", कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय, कान्फ्रेन्स पेपर, मु0पृ0 20–22।
11. इसरो(मार्च 28,2013) "प्रिपेयर पेलियोचैनल मैप आफ रिवर सरस्वती।
12. कुमार, चेलाप्पन(13.05.2015) "रिवर सरस्वती; हिस्टोरिकल फैक्ट", साइंटिफिक प्रूफ।

मुगलकालीन कृषिगत तकनीकी विशिष्टता

वन्दना कलहंस
एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, इतिहास विभाग
बी0एस0एन0वी0 पी0जी0 कॉलेज, लखनऊ–226001, उ0प्र0, भारत
vandanakalhans123@gmail.com

प्राप्त तिथि– 31.07.2015, स्वीकृत तिथि– 10.10.2015

सार

भारतीय इतिहास में मुगलकाल में कृषिगत तकनीक में प्रगति के संकेत मिलते हैं। तत्कालीन कृषि में प्रयोग किए जाने वाले विविध कृषि यंत्रों द्वारा भारतीय कृषक खेतों से अच्छा उत्पादन प्राप्त करने की क्षमता रखते थे। मुगलकालीन कृषि कर्म में अपनायी जा रही तकनीकों यथा–सिंचाई, कृषि, यंत्रों के प्रयोग, खाद–बीज आदि के प्रयोग, फसलों के रोपण तथा उत्पादन एवं अनाज के भण्डार और संरक्षण की विशिष्ट तकनीक विकसित अवस्था में थी।

बीज शब्द– रहट, चरस, हल, यंत्र, घिरनी।

Special agricultural techniques used during the Mughal period

Vandana Kalhans
Associate Professor and Head, Department of History
B.S.N.V. P.G. College, Lucknow-226001, U.P. India
vandanakalhans123@gmail.com

Abstract

During the Mughal Period in Indian history, there are many signs that indicate that special agricultural techniques were used by the farmers. The Indian farmers using Contemporary agricultural tools were able to harvest good crops. Some of the major techniques used by the farmers were irrigation of crops, use of agricultural tools, use of fertilizers and seeds, special techniques of production, storage and preservation of plantation and produce was in a developed state.

Key words- Persian wheel, inclined plane method, foot plough, equipment, pulley.

प्रस्तावना– प्राचीन काल की भांति मुगलकाल में भी भारतीय अर्थव्यवस्था कृषि प्रधान थी। मुगल साम्राज्य की लगभग 85 प्रतिशत जनसंख्या गांवों में निवास करती थी, जिसमें कृषि पर आधारित वर्ग की बहुतायत थी। लघु उद्योग एवं व्यापार आदि की अच्छी वृद्धि के बाद भी तत्कालीन आर्थिक गतिविधियों में कृषि कार्य सर्वोपरि था। ऐतिहासिक स्रोतों एवं विदेशी यात्रियों के विवरण से हमें इसकी जानकारी प्राप्त होती है, परन्तु उस काल में कृषि फसलों का उत्पादन किस विधा से होता था? परिस्थितियों के अनुरूप कृषि कार्य को ढालकर उत्पादन में विशिष्टता का सूत्रपात कैसे किया जाता था? अर्थात् तत्कालीन कृषि प्रणाली पर विवरण अत्यल्प है, फिर भी यत्र–तत्र इस सन्दर्भ में जो भी विवरण प्राप्त होते हैं उसके आधार पर एक मोटी धारणा अवश्य बनती है, जिसके आधार पर तत्कालीन कृषिगत तकनीकी विशिष्टता का आंकलन सम्भव है।

सिंचाई तकनीक– मुगलकाल में कृषि उत्पादन मानसून के साथ जुएं का सा व्यवसाय था, क्योंकि जल का मुख्य स्रोत वर्षा ही थी। अधिक या कम वर्षा होने पर कृषक कठिनाई में पड़ जाता था। कृषक को अवर्षण की स्थिति में मानसून पर निर्भरता से मुक्त होने के लिए सिंचाई के कृत्रिम साधनों पर आश्रित होना पड़ता था। बाबर के अनुसार, चौदहवीं एवं पन्द्रहवीं शताब्दी में भारत की भूमि बहुत उपजाऊ थी तथा वर्षा भी अच्छी होती थी। कृषकों को सिंचाई के कृत्रिम साधनों की जानकारी भी थी,

फलतः उत्पादन भी अच्छा होता था।[5] सिंचाई के कृत्रिम साधनों के अन्तर्गत कुएँ, तालाब तथा नहरें आदि सिंचाई के कृत्रिम साधन के मुख्य श्रोत थे।[6]

कुएँ– कुएँ सिंचाई के मुख्य श्रोत थे। मुगल काल में अधिकतर कुएँ कच्चे होते थे।[7] दरअसल ईंट के पक्के कुओं का निर्माण बहुत खर्चीला था।[8] सन् 1660 में अजमेर के मेड़ता परगना में अवस्थित लगभग 6000 कुओं में मात्र 20 कुएँ पक्के थे।[9] सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक भी पूर्वी राजस्थान के 18 गाँवों के 528 कुओं में से मात्र 41 कुएँ ही पक्के थे।[10] मुगलकाल में गंगा के उपरी मैदानी क्षेत्रों तथा दक्षिणी भाग में कुएँ सिंचाई के मुख्य श्रोत थे, जिससे इन क्षेत्रों में कृषि उत्पादन अच्छी स्थिति में था। कुएँ से पानी निकाल कर उसे नालियों के माध्यम से खेतों तक पहुँचाने की कई विधियाँ थीं।

रहट– 'रहट' या 'अरहट' जिसे अंग्रेजों द्वारा पर्सियन व्हील् नाम से सम्बोधित किया गया है, सिंचाई हेतु प्रयुक्त की जाने वाली एक विलक्षण मशीन थी, जो चेन तथा गीयर पर आधारित थी।[12] मुगलकाल में लाहौर, दिपालपुर, तथा सरहिन्द में इसका व्यापक प्रयोग होता था। भारत में रहट के प्रवेश का वास्तविक समय तेरहवीं या चौदहवीं शताब्दी में माना जाता है[13] किन्तु इसका सर्वप्रथम एवं विस्तृत वर्णन बाबर द्वारा सोलहवीं शताब्दी में किया गया है।[14] प्रारम्भ में लकड़ी की इस विलक्षण मशीन पर केवल धनी किसानों का ही अधिपत्य बना रहा,[15] परन्तु सोलहवीं शताब्दी तक धीरे–धीरे यह आम किसानों की पहुँच के भीतर हो गया। रहट से पानी निकालने की प्रक्रिया यह थी कि कुएँ की गहराई के अनुसार दो समान लम्बाई की रस्सियों के एक सिरे की ओर लकड़ी का एक लट्ठा बाँध दिया जाता था, जिसके साथ घड़े बंधे होते थे। दोनों रस्सियों को उस चर्ख पर चढ़ाते हुए जो कुएँ पर लगा होता था, घड़ों को लट्ठे सहित कुएँ में ढ़ीला छोड़ा जाता था। इस चर्ख से धुरे से एक दूसरी चर्खी जुड़ी रहती थी, जिसे बैल घुमाता था। इस चर्खी के दांते दूसरी चर्खी के दाँतों से फँसे होने के कारण बैलों के घूमने पर खड़े वाली चर्खी भी घूमती थी और इस प्रक्रिया से पानी कुएँ से बाहर निकाला जाता था। कुएँ से बाहर आने पर घड़े का पानी कुएँ के पास ही स्थित एक कठौते में गिराया जाता था, जो नालियों के माध्यम से अपेक्षित खेतों तक पहुँचता था।[17] सिंचाई कार्य में प्रयुक्त होने वाले इस महत्वपूर्ण यंत्र ने सिंचाई की संभावना को पर्याप्त बढ़ा दिया।[18] सिंचाई की इस प्रक्रिया में बैलों के प्रयोग से मानव उर्जा की बचत होती थी। जिसका प्रयोग कृषि से सम्बन्धित अन्य उद्यमों में किया गया।[19]

चरस– कुएँ से पानी निकालने की दूसरी सामान्य विधि चरस थी।[20] बाबर के अनुसार आगरा, चन्दवार, बयाना आदि क्षेत्रों में चरस द्वारा सिंचाई होती थी। इस विधि में कुएँ की घिरनी पर रस्सी चढ़ाकर उसके एक सिरे में चमड़े का बड़ा बैग बांधा जाता था। जबकि दूसरा सिरा एक बैल से बंधा होता था। बैल को कुएँ के समीप खड़ा कर पानी का बैग कुएँ में ढ़ीला छोड़ा जाता था। बैग में पर्याप्त पानी भर जाने के बाद एक व्यक्ति बैल को हाँकता हुआ कुएँ से दूर ले जाता था और इस प्रकार खींचकर कुएँ से बाहर आये पानी से भरे बैग को कुएँ पर खड़ा एक दूसरा व्यक्ति एक कठौते में खाली करता जाता था। कठौते से जुड़ी नालियों द्वारा पानी खेतों तक पहुँच जाता था। बाबर ने इस विधि को अत्यन्त घृणित बताया है क्योंकि जब बैल पानी का बैग एक बार खींचकर प्रक्रिया दुहराने के लिए पुनः कुएँ की ओर लौटता था तो रस्सी, मार्ग के पड़े गोबर एवं मूत्र आदि को लथेड़ती जाती थी जिससे यह गंदगी रस्सी द्वारा कुएँ में चली जाती थी[21], और कुएँ का जल दूषित हो जाता था। सिंचाई की चरस तकनीक से ढेंकली के मुकाबले अधिक गहरे कुएँ से पानी खींचा जा सकता था। अतः यह तकनीक उन क्षेत्रों के लिए अधिक उपयोगी थी जहाँ कुएँ का जलस्तर अपेक्षाकृत अधिक नीचे होता था।[22] इस उपकरण के माध्यम से ढेंकली की अपेक्षा अधिक मात्रा में पानी निकाला जा सकता था अतः इसके प्रयोग द्वारा अधिक बड़े खेतों की सिंचाई सम्भव थी।

ढेंकली– जिन क्षेत्रों में कुओं का जलस्तर अपेक्षाकृत ऊँचाई पर होता था वहाँ लीवर सिद्धांत पर आधारित ढेंकली नामक उपकरण सिंचाई हेतु प्रयुक्त होता था।[23] वाराणसी के भारत कला भवन में संग्रहित मृगावत की चित्रित हस्तलिपि, जिसका चित्रण उत्तर प्रदेश में 1525–70 के बीच हुआ, इस उपकरण को दर्शाती है।[24] उस उपकरण के नीचे उथले कुएँ के किनारे पर एक खूँटी गड़ी होती थी और दूसरे किनारे पर एक काँटेनुमा हिस्सा लगा रहता था। इस कांटे के बीच में एक लम्बा खम्भा उत्तोलक के सिद्धांत के अनुसार लगा रहता था। इस खम्भे में कुएँ के किनारे पर एक बाल्टी लटकी होती थी और दूसरे किनारे पर भारी पत्थर रहता था। एक आदमी रस्सी खींचकर इस यंत्र को चला सकता था। रस्सी को कुएँ के अंदर खींचा जाता था और पानी से भरी बाल्टी खम्भे से उठाकर खोल दी जाती थी, जिससे पानी खेतों में पहुँच जाय। इस यंत्र द्वारा कुएँ से पानी बाहर निकालने के लिए कड़े श्रम की आवश्यकता थी, फिर भी कम खर्चीला होने के कारण यह साधारण किसानों की पहुँच में था।[25] कुओं से पानी निकालकर सिंचाई करने की उपर्युक्त विधियों के अलावा एक सामान्य विधि पानी को ढोकर खेतों तक पहुँचाने की थी। बाबर के अनुसार कुछ स्थानों पर आवश्यकतानुसार स्त्री–पुरूष कुओं से डोल या मटकों में पानी भर–भरकर खेतों में पहुँचाते थे।[26] मुगलकालीन किलों में सीढ़ीदार पक्के कुओं, जिन्हें बावली कहा जाता था, का निर्माण भी महत्वपूर्ण था। इन बावलियों के पानी का प्रयोग किले से सम्बद्ध बाग–बगीचों की सिंचाई हेतु किया जाता था। इस प्रकार मुगलकाल में कुओं के निर्माण एवं विविध तकनीक से उनमें से पानी निकालकर सिंचाई की व्यवस्था से कृषि भूमि के विस्तार एवं खेतों से अधिक उत्पादन की आशा की जा सकती है। यह अनुमान लगाना भी कठिन नहीं है कि इसके

कारण कृषि को अधिक सुचारु व्यवस्था प्रदान की जा सकी, क्योंकि इससे जहाँ एक ओर सिंचाई का जल नियंत्रित करने में सहायता मिली वहीं फसलों को जलाधिक्य से बचाया भी जा सका। विशेषकर पक्के कुओं के विकास एवं फारसी रहट पर पूँजी निवेश अधिक मूल्य वाली फसलों की ओर बढ़ने का संकेत देता है।[27] अतएवं कृषि की प्रगति की दृष्टि से यह विकास अति महत्वपूर्ण था।

नहरें– सिंचाई के उद्देश्य से सोलहवीं शताब्दी के आरम्भिक वर्षों में बाबर ने भारत में नहरों की कृत्रिम व्यवस्था का अभाव बताया है किन्तु बाद में कृषि भूमि सिंचित करने हेतु कुछ नहरों के निर्माण के विवरण मिलते हैं। भारत के उत्तरी मैदान, विशेष रूप से उपरी गंगा एवं सिंधु क्षेत्र, में सिंचाई हेतु अनेक नहरें निर्मित की गयी।[28] नहरें दो प्रकार की होती थीं, प्राकृतिक एवं मानव निर्मित। नदियों द्वारा अपना मार्ग बदल लेने के कारण प्राकृतिक रूप से नहरों का उद्भव हो जाता था। ऐसी नहरें मुख्य नदी से शाखाओं में बँटकर प्रणालिकाओं के रूप में बहती थी, जिनका प्रयोग सिंचाई हेतु किया जाता था। मुगलकाल में इस प्रकार से निर्मित कुछ प्राकृतिक नहरें बहुत विशाल थीं।[29] दक्षिण भारत में इस काल में कुछ छोटी नहरों के प्रमाण मिलते हैं, किन्तु उत्तरी भारत में वास्तविक रूप से कई बड़ी नहरों का निर्माण सिंचाई सुविधाओं के विस्तार और उन्हें प्रभावी बनाने की दृष्टि से किया गया।[30] सत्रहवीं शताब्दी में शाहजहाँ द्वारा बड़ी संख्या में नहरों के निर्माण का विवरण मिलता है।[31] पूर्वी यमुना की पुरानी नहर शाहजहाँ के ही काल में खोदी गयी।[32] फिरोजशाह के काल में कृषि भूमि को सिंचित करने की दृष्टि से यमुना नदी के दूसरे किनारे पर निर्मित करायी गयी नहर की मरम्मत अकबर के काल में की गयी।[33] बाद में यह नहर पुनः नष्ट हो गयी जिसे शाहजहाँ ने अपने शासनकाल में नये रूप में बनवाया।[34] फसलों की बुवाई की अवधि में इस नहर के पानी को बाँटने की व्यवस्था की गयी थी।

शाहजहाँ के काल में नहर–ए–फैज या नहर–ए–बहिस्त(स्वर्ग की नहर) 150 मील लम्बी थी जो यमुना नदी के तराई क्षेत्र में प्रवेश करते ही अलग हो जाती थी और पहले दक्षिण–पश्चिम एवं फिर दक्षिण पूर्व दिशा में बहते हुए दिल्ली के निकट अपनी मूल नदी से मिल जाती थी।[35] एक अन्य नहर जो लम्बाई में 100 मील से कम थी, रावी नदी से निकलती थी तथा लाहौर के निकट पुनः उसी में मिल जाती थी। इसका निर्माण शाहजहाँ के आदेश पर अली मर्दान खाँ द्वारा कराया गया था। एक लाख रूपये के व्यय से निर्मित इस नहर से कृषि का अधिक विकास हुआ।[36] शाहजहाँ के ही काल में पंजाब में रावी नदी से निकाली गयी 'शाह नहर' के अतिरिक्त तीन अन्य छोटी नहरों का भी ब्यौरा मिलता है।[37] जिन्हें सत्रहवीं शताब्दी के स्थानीय इतिहासकारों ने कृषि की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी बताया है। साम्राज्य के अन्य भागों में भी कुछ नहरें सिंचाई हेतु निर्मित की गईं किन्तु उनका महत्व सर्वथा स्थानीय था।[38]

तालाब, कृत्रिम बाँध एवं झीलें– मुगलकाल में कुओं तथा नहरों के अलावा तालाब तथा झीलें भी सिंचाई के कृत्रिम साधन के रूप में प्रयोग किये जाते थे। प्रायः गाँवों में एकाधिक तालाब होते थे। मध्य भारत, दकन और दक्षिण भारत में तालाब सिंचाई कार्य में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे।[39] दक्षिण भारत के गोलकुण्डा साम्राज्य को ट्रेवरनियर ने अनेक तालाबों से युक्त बताया था।[40] ये तालाब एक प्रकार के कृत्रिम बाँध के रूप में स्थापित थे और इनका प्रयोग वर्षा काल के बाद खेतों की सिंचाई हेतु होता था। खानदेश तथा बरार में कृषकों को सिंचाई सुविधाएं उपलब्ध कराने की दृष्टि से बाँध निर्माण हेतु शाहजहाँ के शासनकाल में 40 से 50 हजार रूपये पेशगी के तौर पर देने के प्रमाण मिलते हैं।[41] मेवाड़ में सोलह कुरोह के वृत्ताकार क्षेत्रफल में धेबर नामक झील अवस्थित थी, जो उस क्षेत्र में गेहूँ की कृषि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती थी।[42] विजयनगर साम्राज्य में पन्द्रहवीं सोलहवीं शताब्दी के दौरान वहाँ निर्मित मदाक झील तत्कालीन निर्माण प्रौद्योगिकी का श्रेष्ठ उदाहरण है।[43] ऐतिहासिक तौर पर जिस प्रकार यूरोप के लिए कृषि क्षेत्र में खाद का महत्व था, भारतीय कृषि के लिए सिंचाई उतने ही निर्णायक रूप से महत्वपूर्ण थी। यही कारण था कि भारतीय इतिहास में सिंचाई के क्षेत्र में उपर्युक्त महत्वपूर्ण आविष्कारों एवं उपकरणों का विकास हुआ।[44] विशेष रूप से सिंचाई सुविधाओं को उपलब्ध कराने के प्रयास में व्यक्ति एवं राज्य दोनों की पहल ने बड़ा योगदान दिया और इससे उल्लेखनीय तकनीकी और आर्थिक विकास सम्भव हुआ।

कृषि यंत्र तथा उनके उपयोग की तकनीक– मुगल काल में सिंचाई सुविधाओं के विस्तार के फलस्वरूप विकसित सिंचाई यंत्रों जिनका विवरण ऊपर किया गया है, के अतिरिक्त हल, फावड़े, कुदाल, खुरपे, जुओंठ[45], पाटा, ड्रील तथा हँसुआ आदि कृषि यंत्रों का प्रयोग सामान्य रूप से होता था। कृषि कार्य में जुताई की प्रक्रिया सर्वाधिक महत्वपूर्ण होती है। खेतों में बीज डालने के पूर्व मिट्टी के ढेलों को तोड़कर उसे ढीली करने एवं भुरभुरी बनाने के लिए हलों का प्रयोग किया जाता है। मुगल काल में भारत में खेतों की जुताई हेतु प्रयुक्त किये जा रहे हल को टेरी ने 'फुट प्लाऊ' नाम से सम्बोधित किया है जो तत्कालीन यूरोप में प्रयुक्त हो रहे एक प्रकार के हल के समान था।[46] यूरोपीय स्रोतों में तत्कालीन भारतीय हलों पर प्रायः इसके अति साधारण एवं हल्केपन का लांछन लगाया जाता रहा है कि यह मिट्टी को गहराई तक खोदने की क्षमता नहीं रखता था और मिट्टी की उपरी सतह को खरोचता भर था,[47] किन्तु अब तक इस क्षेत्र में हुए अनुसंधानों से प्रमाणित हो चुका है कि ऐसा तकनीकी कमजोरी लोहे के मंहगा होने के कारण नहीं थी, बल्कि वास्तव में इसका कारण यह था कि यहाँ की जलवायु एवं मिट्टी की परिस्थितियों में ऐसे हल्के व साधारण हल ही उपयोगी थे। इनके द्वारा सतह को केवल ढीला कर दिया जाता था। ताकि जड़ों को पर्याप्त मात्रा में हवा मिल सके और जड़ों के नाजुक रेशे बढ़ सकें, साथ ही नीचे की नम

मिट्टी के ऊपर आ जाने और उनके धूप में सूख पाने का खतरा भारतीय कृषक नहीं उठाना चाहते थे। अतएव कम लोहे वाले हल्के तथा साधारण हलों के कारण उनकी कार्य कुशलता में कोई कमी नहीं आयी। इस तथ्य को टेरी ने भी स्वीकार किया था।[49] भारत में जहाँ एक ओर सूखी तथा कड़ी मिट्टी वाले क्षेत्रों में प्राचीन काल से ही लोहे के फाल वाले हलों का प्रयोग हो रहा था[40], जो मुगलकाल में भी प्रचलन में था, वहीं दूसरी ओर फायर ने भारत के तटवर्ती क्षेत्रों की नम मिट्टी पर जोते जाने वाले कुछ ऐसे हलों के विषय में विवरण दिये है। जिनमें लोहे की बजाय कठोर लकड़ी की फाल लगी होती थी।[50]

विभिन्न उद्देश्यों के लिए अलग–अलग प्रकार के हल थे।[51] प्रत्येक हल बैलों के द्वारा खींचे जाते थे जो अलग–अलग नस्ल के होते थे।[52] हल में जोतने के संदर्भ में भारत के बैल इंग्लैण्ड के बैलों की अपेक्षा अधिक उपयोगी थे क्योंकि भारतीय हल जहाँ बैलों के कूबड़ में फँसाकर खींचे जाते थे वहीं इंग्लैण्ड के हल बैलों के सींग में बाँधकर प्रयोग किये जाते थे।[53] अतएव भारतीय बैलों का कूबड़ जहाँ हल खींचने में तकनीकी रूप से इंग्लैण्ड के बैलों से अधिक सक्षम स्वीकार किया जायेगा। वहीं यह तकनीक इंग्लैण्ड की जुताई तकनीक की उपेक्षा कम अमानवीय भी थी। कभी–कभी जुताई के दौरान हल की फाल को अतिरिक्त दबाव देने के लिए कृषक उसके ऊपर किसी बालक को खड़ा कर देते थे। खेतों में बीज बोने के लिए मुगलकाल में 'ड्रील' नामक एक यंत्र का प्रयोग किया जाता था।[54] जो तकनीकी रूप से अत्यन्त महत्वपूर्ण था। बीज डालने के बाद लकड़ी के साधारण यंत्र का प्रयोग खेतों को समतल करने के लिए किया जाता था। 'पाटा' नामक यह यंत्र समतल लकड़ी का एक पटरा होता था, जिसे बैल खींचता था।[55] खेत की मिट्टी को खोदने, मेड़ बनाने एवं नालियों आदि की खुदाई करने के लिए लोहे के फाल वाले कुदाल तथा फावड़े प्रयोग किये जाते थे जिसमें लकड़ी की मेंख लगी होती थी। पौधों की निराई–गुड़ाई करने के लिए खुरपे का प्रयोग सामान्य रूप से उसी प्रकार किया जाता था, जिस प्रकार वर्तमान में किया जाता है। फसलों की कटाई के लिए हँसुआ एक सामान्य यंत्र था।

खाद बीज एवं कीटनाशक आदि के प्रयोग की तकनीक– भूमि की उर्वरा शक्ति को स्थापित रखने एवं अधिक उत्पादकता के उद्देश्य से खेतों में विविध प्रकार की खादों का प्रयोग भारत में प्राचीन काल से ही होता आ रहा है। अर्थशास्त्र में शहद, गोबर, हड्डियों एवं मछलियों का उर्वरक के रूप में प्रयोग किये जाने का वर्णन मिलता है।[56] इस आधार पर यह अनुमान लगाना कठिन नहीं है कि मुगल काल में भी लगभग ऐसे ही पदार्थों का प्रयोग खेतों में उर्वरक के रूप में होता था। विविधि तथ्यों से यह अनुमान पुष्ट भी होता है। विशेष रूप से पशुओं के गोबर व इसी तरह की खादों ने खेती की उर्वरता को बनाये रखने व बढ़ाने में पर्याप्त योगदान दिया।[57] कृषि पराशर नामक ग्रन्थ में गाय के गोबर से मिश्रित खाद बनाने और बुवाई के समय उनके प्रयोग का स्पष्ट सन्दर्भ मिलता है।[58] तटवर्ती क्षेत्रों में कुछ फसलों के उत्पादन में उर्वरक के रूप में मछलियों का प्रयोग किया जाता था।[59] गुजरात में गन्ने तथा कोंकण में नारियल की कृषि में मछली की खाद का प्रयोग विशेष रूप से होता था।[60] इसके अतिरिक्त फसलों की अदला–बदली की परम्परागत बुवाई के ज्ञान ने भी कृषकों को भूमि की उर्वरा शक्ति को बनाये रखने में विशेष योगदान दिया।[61]

खेतों में खाद डालने की प्रक्रिया भी कम महत्वपूर्ण नहीं थी। फसलों की प्रकृति के अनुसार ही खाद का प्रकार एवं उसकी मात्रा निर्धारित की जाती थी। आमतौर पर खेतों में खाद डालने की दो विधियाँ प्रचलित थीं। एक यह कि विभिन्न उर्वरक पदार्थों के मिश्रण का घोल बनाकर बीज में ही लगा दिया जाता था और समझा जाता था कि इससे अंकुरण बेहतर होगा, या फिर खाद को बीज बोते समय अथवा अंकुरण के बाद खेतों में डाला जाता था।[62] आधुनिक काल की भाँति सुधरी हुई नस्ल के संकरित बीज, तैयार करने की तकनीक का उस काल में नितांत अभाव होने के कारण फसलों से प्राप्त पुराने बीज ही परम्परागत रूप से बोये जाते थे। कीटनाशक आदि के प्रयोग की भी स्पष्ट जानकारी प्राप्त नहीं होती तथापि प्राचीन काल में फसलों को कीड़ों तथा चूहों आदि से बचाने के उद्देश्य से अपनाये जाने वाले कतिपय उपाय मुगलकाल में भी अवश्य ही आजमाये जाते रहे होंगे। फसलों को कीड़ों से सुरक्षित रखने हेतु कुछ विशेष वनस्पतियों की भस्म तथा गोबर के कण्डे की राख का छिड़काव किया जाता था। फसलों की चिड़ियों आदि से रक्षा के लिए खेतों के बीच मानव आकृति वाले कृत्रिम पुतले खड़े किये जाते थे।

रोपण एवं उत्पादन की तकनीक– खेतों में बीज रोपित करने के पूर्व हल द्वारा खेतों की जुताई की जाती थी। इसमें मिट्टी के बड़े ढेले टूट–फूट जाते थे और मिट्टी ढीली पड़ जाती थी। इसके बाद खेतों से खर–पतवार साफ कर उसमें बीज रोपित किये जाते थे। बीज बोने की भी कई विधियाँ थीं, जिसमें छिड़क कर बोना सबसे आसान विधि थी।[63] कुछ फसलों जैसे कपास आदि के रोपण में भारतीय किसान 'ड्रिल यंत्र' का प्रयोग करते थे। इस यंत्र के प्रयोग द्वारा बीज बोने की तकनीक 'डिबलिंग' कहलाती थी।[64] इसमें किसान खेत में एक खोखली मेंख गाड़ कर उसके छिद्र में से कपास के बीच जमीन में डालते थे और ऊपर से उसमें मिट्टी भर देते थे। ऐसा अधिक उत्पादन की दृष्टि से किया जाता था।[65] धान की बुवाई का तरीका अन्य फसलों की अपेक्षा कुछ अलग था। धान के बीज खेत के एक हिस्से में नानसून के पूर्व छींट कर पानी दे दिया जाता था। अंकुरण के पश्चात् जब धान के पौधे कुछ बढ़ जाते थे, तो उन्हें सावधानीपूर्वक जड़ सहित उखाड़ कर पानी से भरे खेतों में अपेक्षित दूरी रखते हुए पंक्तियों में रोपित कर दिया जाता था।[66] 'धान उत्पादन' की यह परम्परागत तकनीक आज भी भारत में प्रचलित है। बीज रोपण के संदर्भ में सत्रहवीं शताब्दी के दौरान एक महत्वपूर्ण सुझाव यह सामने

आया की बीज को तीन चरणों में बोना चाहिए। कुछ बीजों को पहले चरण में बोना चाहिए, कुछ थोड़ी देर से और शेष इसके भी बाद ताकि अगर इनमें से कुछ बीज खराब भी हो जायें तो शेष बीज अंकुरित हो सकें।[67]

बीज बोने के तुरंत बाद खेत को समतल करने की प्रक्रिया की जाती थी, जिससे की बीज मिट्टी से ढक जाय। यह कार्य बैलों द्वारा खींचे जाने वाले एक मोटे समतल पटरे द्वारा किया जाता था, जिसे 'पाटा' कहा जाता था।[68] बैलों द्वारा पाटा खींचे जाने के दौरान कृषक दबाव डालने के उद्देश्य से पाटे पर दोनों पैर फैला कर खड़ा रहता था। तुहफत-ए-पंजाब इस उपकरण को सोहाग नाम देता है। और इसके कार्यों में बीज को मिट्टी से ढंकने, ढेले तोड़ने तथा खेत के सभी हिस्सों में समान रूप से नमी फैलाने का उल्लेख करता है।[69] अंकुर आने के बाद पौधों के थोड़ा बड़े होने पर उनकी जड़ों को हवा देने के उद्देश्य से खुरपे से उनके आस-पास की मिट्टी ढीला करने अर्थात् पौधों की निराई तथा गुड़ाई आदि की प्रक्रिया की जाती थी।[70] धान के पौधों की निराई दो बार करना अधिक उपयोगी समझा जाता था।[71] बीच-बीच में सम्बन्धित फसल को आवश्यकतानुसार सिंचित किया जाता था। पक जाने पर फसलों को काट कर खेतों से बाहर लाया जाता था और उनसे दाने निकालने का कार्य किया जाता था। फसलों को विशिष्ट प्रक्रिया से पीट कर दाने निकालने तक का कार्य कृषक की उत्पादक गतिविधि का महत्वपूर्ण अंग था।[72] आज के युग में यह कार्य आधुनिक मशीनों द्वारा किया जाता है जबकि मुगलकाल में यह प्राचीन काल से ही चली आ रही परम्परागत तकनीक द्वारा सम्पन्न होता था। कोल्हू से जुड़े गोल घेरे में घूमने वाले बैलों के पैरों तले अनाज की कटी फसल डाल दी जाती थी। बार-बार बैलों के द्वारा रौंदे जाने से अनाज के दाने पौधों से अलग हो जाते थे।[73]

हल जोतने, बुवाई, निराई-गुड़ाई और वे सभी कृषि कार्य जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है, के अतिरिक्त ग्रंथ "दर-फने-फलाहत" में विस्तार से पौधों की कलमें बनाने की विधि का भी वर्णन किया है।[74] स्पष्ट रूप से पौधों के नर और मादा अंगों की अवधारण या तो विकसित हो चुकी थी या सत्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में यहाँ पंहुच गयी थी।[75] अतएव एक प्रकार से यह आधुनिक कृषि विज्ञान के आरम्भ की स्थिति थी। सामान्यतः मुगलकाल का कृषक वर्ष में दो फसलें पैदा करता था, जिससे स्पष्ट होता है कि उस काल में फसल-चक्र व्यवस्था का प्रचलन था, यद्यपि यह भूमि की उर्वरता, स्थानीय पद्धति, सिंचाई साधनों एवं अन्य प्राकृतिक कारकों पर पूरी तरह निर्भर होता था। आइने-ए-अकबरी में रबी और खरीफ की फसलों की तालिका, फसल परिवर्तन की अवधारणा को सिद्ध करती है।[76] फसल चक्र के अनुरूप बोए गये क्षेत्र को 'एक फसला' तथा 'दो फसला' नामों से जाना जाता था जिसका विस्तृत विवरण हमें 'टोडरमल्स मेंमोरेण्डम' में मिलता है।[77] दो से अधिक फसलें पैदा करने वाले कुछ क्षेत्रों का भी विवरण मिलता है। बंगाल के एक कृषि क्षेत्र में तीन-तीन फसलों क्रमशः चावल, तम्बाकू एवं कपास चक्र-क्रमानुसार उत्पादित किये जाते थे।[78]

अनाज भण्डारण/संरक्षण की तकनीक- फसलों से दाने निकाल लेने के बाद उन्हें संग्रहित करके रखना भी महत्वपूर्ण था। अनाज भण्डारण का सामान्य तरीका गड्ढों या खत्तियों में रखने का था, जिससे अनाज को दीर्घकाल तक सुरक्षित रखा जा सकता था।[79] ये गड्ढे या खत्तियाँ सूखे स्थान पर बनाये जाते थे। इनकी ऊँचाई निर्माण में प्रयुक्त होने वाली मिट्टी की प्रकृति पर निर्भर थी। इनका निर्माण करते समय अन्दर कुछ वनस्पतियाँ भस्म की जाती थीं, फिर अनाज को उसमें भर दिया जाता था। इसके पूर्व खत्तियों के किनारे और धरातल पर गेहूँ या जौ कि बालियाँ लगायी जाती थीं। गड्ढे में डाले गये अनाज को पुआल से ढक कर उसके ऊपर गड्ढे के बाहर निकाला हुआ लगभग 18 इंच ऊँचा मिट्टी का चबूतरा खड़ा किया जाता था जो मानसून से भी टक्कर लेता था। पानी की बौछार से क्षतिग्रस्त हो जाने पर उसे फिर गोबर-मिट्टी के मिश्रण से छोप दिया जाता था। इस प्रकार अनाज बिना क्षति के वर्षों सुरक्षित रह सकता था। अन्दर इसके द्वारा उत्पन्न गर्मी कीटाणुओं को रोकती थी और चूहों तथा दीमकों को भी दूर रखती थी।[80] कभी-कभी इन खत्तियों में अनाजों के बीच नीम की पत्तियाँ भी रख दी जाती थीं जिनकी कीटाणुनाशक प्रकृति भी अनाज को सुरक्षित रखने में उपयोगी थी। अतएव तत्कालीन कृषिगत विशिष्टता के आधार पर भारतीय कृषि में प्रगति का स्पष्ट संकेत मिलता है। विपरीत परिस्थितियों में कार्य करते हुए भी भारतीय कृषक ने अपने अथक परिश्रम की पूँजी, परम्परागत तकनीक के साथ ही आधुनिक परिवर्तनों को भी स्वीकार किया, जिसके आधार पर तत्कालीन भारतीय कृषि को तकनीकी रूप से प्रभावी व वैज्ञानिक सिद्धांतों पर आधारित कहा जा सकता है। विशेष रूप से सिंचाई के क्षेत्र में हुए महत्वपूर्ण आविष्कारों एवं उपकरणों आदि के विकास ने इस उद्यम को अत्यधिक लाभ पहुँचाया। इस काल में उल्लेखनीय कृषि प्रसार भी विविध स्रोतों से प्रमाणित होता है। तेरहवीं तथा चौदहवीं शताब्दी में गंगा के मैदान में स्थित एक विशाल वन क्षेत्र सोलहवीं शताब्दी के अंत तक कृषि अधीन भूमि में बदल गया था।[81] अकबर के आधिपत्य में आया भक्खर भी कृषिगत तकनीक की प्रगति के फलस्वरूप ही उस काल में अत्यन्त उपजाऊ विस्तृत कृषि क्षेत्र के रूप में विद्यमान था।[82]

निष्कर्ष- इस अवधि में कुछ नयी फसलें पैदा किया जाना पुरानी फसलों की किस्में बढ़ना भी कृषि की गुणवत्तापूर्ण प्रगति का महत्वपूर्ण सूचक था। अतएव कुल मिलाकर यह कृषिगत तकनीक के साथ-साथ आर्थिक पहलुओं में भी प्रभावशाली प्रगति के रूप में माना जायेगा।

सन्दर्भ

1. वर्मा, हरिश्चन्द्र(सम्पा0)(1993) मध्यकालीन भारत, भाग–2(1540–1761), दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ0 399।
2. वही, पृ0 397।
3. दि इंग्लिश फैक्ट्रीज इन इण्डिया(1651–54), मु0पृ0 9–10।
4. हबीब, इरफान(1999) एग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुगल इण्डिया(1556–1707), द्वितीय संस्करण, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ0 28।
5. यादव, झिनकू(1993, 2003) सल्तनतकालीन कृषि जीवी निर्बल वर्ग(सम्पा0–चन्द्रभाल श्रीवास्तव), वाराणसी, पृ0 84।
6. हबीब, इरफान(1999) एग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुगल इण्डिया(1556–1707), द्वितीय संस्करण, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ0 28।
7. वही।
8. चिचरोव, ए0 आई0(2003) इण्डिया, इकोनॉमिक डेवलपमेंट इन सिक्सटीन्थ टू एट्टीन्थ सेन्चुरी का हिन्दी अनुवाद–मुगलकालीन भारत की आर्थिक संरचना(अनुवादक–मंगलनाथ सिंह), ग्रन्थ शिल्पी (इण्डिया) प्रा0 लि0, पृ0 194।
9. चौधरी, तपन राय एवं हबीब, इरफान(सम्पा0)(1982) दि कैम्ब्रिज इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इण्डिया भाग–1(1200–1750), कैम्ब्रिज, पृ0 215।
10. चिचरोव, ए0 आई0(2003) इण्डिया, इकोनॉमिक डेवलपमेंट इन सिक्सटीन्थ टू एट्टीन्थ सेन्चुरी का हिन्दी अनुवाद–मुगलकालीन भारत की आर्थिक संरचना(अनुवादक–मंगलनाथ सिंह), ग्रन्थ शिल्पी (इण्डिया) प्रा0 लि0, पृ0 194।
11. हबीब, इरफान(1999) एग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुगल इण्डिया(1556–1707), द्वितीय संस्करण, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ0 28।
12. वही
13. हबीब, इरफान, मध्यकालीन भारत (भाग–71) पृ0 31।
14. बाबर, बाबरनामा(अनु0 बेवरीज) भाग–2, लन्दन 1921, हिन्दी अनुवाद अतहर अब्बास रिजवी, अलीगढ़, 1961 एवं केशव ठाकुर, इलाहाबाद 1968, प्रथम संस्करण, पृ0 486।
15. गोपाल, लल्लन जी(1965) दि इकोनॉमिक लाइफ नार्दर्न इण्डिया(700–1200), दिल्ली, यूनिवर्सिटी ऑफ इलाहाबाद, स्टडीज, पृ0 10।
16. बाबर, बाबरनामा(अनु0 बेवरीज) भाग–2, पृ0 10।
17. बाबर, बाबरनामा (अनु0 बेवरीज) भाग–2, पृ0 487।
18. चिचरोव, ए0 आई0(2003) इण्डिया, इकोनॉमिक डेवलपमेंट इन सिक्सटीन्थ टू एट्टीन्थ सेन्चुरी का हिन्दी अनुवाद–मुगलकालीन भारत की आर्थिक संरचना(अनुवादक–मंगलनाथ सिंह), ग्रन्थ शिल्पी (इण्डिया) प्रा0 लि0, पृ0 193।
19. हबीब, इरफान(1969) प्रेसीडेन्सियल एड्रेस, मध्यकालीन भारत, खण्ड प्रोसीडिंगस ऑफ दि इण्डियान हिस्ट्री कांग्रेस, 13वां सत्र, वाराणसी, पृ0 153।
20. चौधरी, तपन एवं हबीब, इरफान(सम्पा0), कैम्ब्रिज इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृ0 215।
21. बाबर, बाबरनामा, पू0उ0, पृ0 487।
22. ए0आई0 चिचरोव, पू0उ0, पृ0 193।
23. क्रूक, डब्ल्यू(सम्पा0)(1915) फायर, न्यू एकाउण्ट ऑफ इण्डिया एण्ड पर्सिया(1672–81), भाग– द्वितीय, हुकलाएट सोसाइटी, लन्दन, पृ0 94।
24. खण्डेवलवाला, कार्ल एवं चन्द्र, मोती(1069) न्यू डॉक्यूमेण्ट ऑफ इण्डियन पेंटिंग ए रिएप्रेजल, बम्बई, पृ0 179. देखें ए0 आई0 चिचरोव, पृ0 192।
25. चिचरोव, ए0 आई0, पू0उ0, मु0पृ0 192–193।
26. बाबर, बाबरनामा, पू0उ0, पृ0 487।
27. चिचरोव, ए0 आई0, पू0उ0, पृ0 194।
28. चौधरी, तपन राय एवं हबीब, इरफान(सम्पा0), कैम्ब्रीज इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृ0 216।
29. हबीब, इरफान, एग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुगल इण्डिया, पृ0 33।
30. हबीब, इरफान, एग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुगल इण्डिया, पृ0 33।
31. चौधरी, तपन एवं हबीब, इरफान(सम्पा0) कैम्ब्रीज इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृ0 216।
32. हबीब, इरफान, एग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुगल इण्डिया, पृ0 33–34।
33. हबीब, इरफान, एग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुगल इण्डिया(1556–1707), पुनः संशोधित संस्करण, ऑक्सफोर्ड, मु0पृ0 33–34।
34. शर्मा, मथुरा लाल(1976) मुगल भारत का उदय और वैभव, कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल, पृ0 487।
35. चौधरी, तपन राय एवं हबीब, इरफान(सम्पा0), कैम्ब्रीज इकोनॉमिक हिस्ट्री आफ इण्डिया, पृ0 216।
36. लाहौरी, अब्दुल हमीद, बादशाहनामा(अनु0 इलियट एवं डाऊसन) भाग–7, मु0पृ0 67–68।
37. हबीब, इरफान, ऐग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुगल इण्डिया, पृ0 36।

38. मोरलैण्ड, डब्ल्यू0 एच0(1920) अकबर की मृत्यु के समय का भारत, लन्दन, पृ0 87।
39. चौधरी, तपन एवं हबीब, इरफान(सम्पा0) कैम्ब्रीज इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृ0 215।
40 ट्रेर्विनयर, ट्रवेल्स इन इण्डिया(1640–67), भाग–2, अनुवादक बी0 लाल, मु0पृ0 121–22।
41. आदाब–ए–आलमगीरी, प्रथम संस्करण, पृ0 207–208, देखें– इरफान हबीब, एग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुगल इण्डिया, पृ0 30।
42. हबीब, इरफान, पू0उ0, पृ0 31।
43. चौधरी, तपन एवं हबीब, इरफान(सम्पा0) कैम्ब्रीज इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृ0 215।
44. चिचरोव, ए0 आई0, पू0उ0, पृ0 192।
45. विपिन, डी0 एवं सिन्हा, बिहारी, मुगल भारत, पृ0 282।
46. टेरी, एडवर्ड(1977) वायेज टू ईस्ट इण्डिया, लन्दन, पृ0 208।
47. टेनेन्ट, विलियम, इण्डियन रिक्रिएसन्स, भाग–2, पृ0 78।
48. टेरी, एडवर्ड, वायेज टू ईस्ट इण्डिया, पृ0 208।
49 हबीब, इरफान, एग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुगल इण्डिया, पृ0 24।
50. क्रूक, डब्ल्यू(सम्पा0) फायर, न्यू एकाउण्ट ऑफ ईस्ट इण्डिया एण्ड पर्सिया(1672–81), भाग– द्वितीय, पृ0 108।
51. चिचरोव, ए0 आई0, पू0उ0, पृ0 190।
52 पावेल, बेडन बी0 एच0(1872) हैंड बुक ऑफ दि मैन्यूफैक्चर एण्ड आर्ट्स ऑफ दि पंजाब, लाहौर, पृ0 314।
53. हबीब, इरफान, एग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुगल इण्डिया, पृ0 26।
54. इलियट, हेनरी(1869) मैमॉयर्स ऑफ दि हिस्ट्री फोकलोर एण्ड डिस्ट्रीब्यूशन ऑफ दि नार्थ–वेस्टर्न प्राविंसेस ऑफ इण्डिया(सम्पा0 जॉन बीम्स) खण्ड–द्वितीय, लंदन, पृ0 223।
55. चिचरोव, ए0 आइ0, पू0उ0, पृ0 191।
56. अर्थशास्त्र, पृ0 132, देखें – ए0 आई0 चिचरोव, पू0उ0, पृ0 186।
57. कृषि पराशर, श्लोक, 109 से 111, पृ0 74, देखें– ए0आई चिचरोव, पू0उ0 187।
58. वही।
59. थेवनॉट, दि इण्डियन ट्रवेल्स ऑफ थेवनॉट एण्ट करेरी(सम्पा0 सुरेन्द्रनाथ सेन) दिल्ली, 1949, मु0पृ0 36–37।
60. थेवनॉट, दि इण्डियन ट्रवेल्स ऑफ थेवनॉट एण्ट करेरी (सम्पा0 सुरेन्द्रनाथ सेन) दिल्ली, 1949, मु0पृ0 36–37।
61. चौधरी, तपन एवं हबीब, इरफान(सम्पा0) कैम्ब्रीज इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृ0 214।
62. चिचरोव, ए0 आई0, पू0उ0, पृ0 186।
63. ट्रेमनहीर, जी0 बी0, रिपोर्ट इन दि पंजाब, पृ0 197, देखें– ए0आई0 चिचरोव, पू0उ0, पृ0 191।
64. इलियट, हेनरी, उ0प्र0, पृ0 223।
65. हुसैनी, अगनानुल्लाह, एडमिनिस्ट्रेशन अण्डर दि मुगल्स, पृ0 114।
66. हबीब, इरफान, एग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुगल इण्डिया, पृ0 26।
67. दर–फने–फलाहत, फोलियो, 3 ए, देखें– ए0आई0 चिचरोव, पू0उ0, पृ0 191।
68. चिचरोव, ए0 आई0, पू0उ0, मु0पृ0 190–191।
69. चिचरोव, ए0 आई0 चिचरोव, पू0उ0, पृ0 191।
70. चिचरोव, ए0 आई0, पू0उ0, पृ0 191।
71. कृषि पराशर, पृ0 82, देखें– ए0 आई0 चिचरोव, पू0उ0, पृ0 191।
72. हबीब, इरफान, एग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुगल इण्डिया, पृ0 63।
73. फायर पू0उ0, पृ0 108।
74. दर–फने–फलाहत, फोलियो, 6ए–7बी, देखें– एआई0 चिचरोव, पू0उ0, पृ0 194।
75. दर–फने–फलाहत, फोलियो, 9बी, देखें– ए0आई चिचरोव, पू0उ0, पृ0 194।
76. अब्दुल फजल, आइन–ए–अकबरी, भाग–1, अंग्रेजी अनुवाद–एच0 ब्लाक मैन, कलकत्ता, 1867–77। पृ0 304–36, भाग–2, अंग्रेजी अनुवाद एच0एस0 जैरेट 1891–94, पुर्न सम्पादित संस्करण, सर जदुनाथ सरकार कलकत्ता 1949, मु0पृ0 76–122।
77. हबीब, इरफान, एग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुगल इण्डिया, पृ0 27।
78. वही।
79. असरफ, के0 एम0(1969) हिन्दुस्तान के निवासियों का जीवन और उनकी परिस्थितियाँ, हिन्दी अनुवाद के0एस0 लाल, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, पृ0 122।
80. अशरफ, के0 एम0, पू0उ0, पृ0 122।
81. चिचरोव, ए0 आई0, पू0उ0, पृ0 195।
82. अबुल फजल, अकबरनामा भाग–2(हिन्दी अनु0 मथुरालाल शर्मा) कैलाश पुस्तक सदन ग्वालियर, प्रथम, संस्करण, 1975, पृ0 402।

अंग प्रत्यारोपण

अर्चना रानी
एसोसिएट प्रोफेसर, शरीर रचना विभाग
किंग जार्ज चिकित्सा विश्वविद्यालय, लखनऊ–226003, उ0प्र0, भारत
archana71gupta@yahoo.co.in

प्राप्त तिथिः 31.07.2015; स्वीकृत तिथिः 06.10.2015

सार

शल्य चिकित्सा द्वारा किसी व्यक्ति के अस्वस्थ अंग को दूसरे स्वस्थ व्यक्ति के अंग से बदलने की क्रिया को अंग प्रत्यारोपण कहते हैं। यह चिकित्सा पद्धति आधुनिक चिकित्सा के सबसे चुनौतीपूर्ण और जटिल क्षेत्रों में से एक है। प्रस्तुत लेख में अंग प्रत्यारोपण की तकनीकी व्याख्या की गई है।

बीज शब्द– अंग, ऊतक, दाता, प्रत्यारोपण।

Organ transplantation

Archana Rani
Associate Professor, Department of Anatomy
King George's Medical University-226003, U.P., India
archana71gupta@yahoo.co.in

Abstract

Organ transplantation is the replacement of diseased organ of one person to healthy organ of another person through surgery. This field of medicine is one of the most challenging and complex areas of modern medicine.

Keywords- Organ, tissue, donor, transplantation.

1. प्रस्तावना– अंग प्रत्यारोपण एक ऐसी चिकित्सीय प्रक्रिया है, जिसमें एक मरीज के विकृत अंग या ऊतक को दूसरे स्वस्थ व्यक्ति के अंग या ऊतक से बदलकर क्रियाशील बनाया जाता है। प्रत्यारोपण, अंग प्राप्त करने वाले मरीज के जीवन की गुणवत्ता में सुधार के साथ ही उन्हें जीने का एक और अवसर देता है। पहला स्वप्रतिरोपण, त्वचा का सन् 1823 ई0 में कार्ल बर्गर द्वारा किया गया था। पुनर्योजी चिकित्सा(regenerative medicine), एक नयी पद्धति है जिसमें अंगों को बनाने के लिए व्यक्ति की अपनी ही कोशिकाओं का उपयोग किया जाता है, इन्हें स्टेन कोशिकाएँ कहते हैं। अंगदाता, जीवित या मृत (मस्तिष्क अथवा प्राकृतिक) व्यक्ति हो सकता है।[1] हृदय स्पंदन बंद होने के 24 घण्टे के भीतर ही अंगों को निकाल लेना चाहिए। अंगों के विपरीत, अधिकतर ऊतकों (कॉर्निया के अपवाद के साथ) को 5 वर्ष तक संरक्षित किया जा सकता है। अंग प्रत्यारोपण में कई जैवनैतिक मुद्दे भी हैं, जैसे मृत्यु की परिभाषा, अंगदान के लिए कब और कैसे सहमति लेना चाहिए और प्रत्यारोपित अंगों की भुगतान राशि।[2,3] इसमें एक सामरया अंग की तस्करी है।[4]

वर्तमान समय में भारत में 2.5 लाख से ज्यादा मरीज वृक्क(किडनी) की बीमारी से तथा लगभग 2 लाख से ज्यादा मरीज जिगर(यकृत) की बीमारी से पीड़ित हैं। भारत में प्रतिवर्ष केवल 1000 यकृत का प्रत्यारोपण तथा लगभग 4000 गुर्दे का प्रत्यारोपण होता है। इसके कारण प्रतिवर्ष लाखों मरीजों की मृत्यु पर्याप्त अंगों की कमी के कारण हो जाती है। प्रत्यारोपण केवल उसी दशा में सम्भव है जब किसी अंगदाता से समयानुकूल अंग प्राप्त होते हैं।

मानव अंग प्रत्यारोपण अधिनियम–1994 के अनुसार केवल परिवार के निकट सदस्य जैसे माता–पिता, भाई–बहन और बच्चे ही जीवित अवस्था में अंगदान कर सकते हैं। सीमित अंगों का ही दान किया जा सकता है। जिगर का केवल एक हिस्सा या

केवल एक यकृत का ही दान किया जा सकता है। हृदय, कॉर्निया और फेफड़ों का प्रत्यारोपण जीवित व्यक्ति से सम्भव नहीं है। दाता को किसी भी प्रकार की बीमारी जैसे मधुमेह और उच्च रक्तचाप नहीं होना चाहिए और साथ ही दाता और मरीज का रक्तसमूह भी एक होना चाहिए। परिवार में उपयुक्त दाता न मिल पाने की अवस्था में मृतक व्यक्ति के अंगों को प्रत्यारोपित किया जा सकता है।

2. मृतक दान– मृत्यु दो प्रकार की होती है: मस्तिष्क मृत्यु और प्राकृतिक मृत्यु।

मस्तिष्क मृत्यु के पश्चात अंगदान– मस्तिष्क मृत्यु के दौरान मस्तिष्क की सभी क्रियाएँ समाप्त हो जाती हैं। ऐसे व्यक्तियों की श्वसन क्रिया तथा हृदयगति को बनाये रखने के लिए वेन्टिलेटर पर रखा जाता है। यह सड़क हादसे के दौरान सिर में चोट लगने के बाद या मस्तिष्क में रक्तस्राव (stroke) होने की स्थिति में देखा जाता है। मस्तिष्क मृत्यु (Brain death) की घोषणा प्रदेश सरकार द्वारा नामित चार चिकित्सकों की समिति द्वारा की जाती है जिसमें न्यूरोसर्जन/न्यूरोफिजीशियन/एनेस्थेटिस्ट इलाज करने वाला चिकित्सक और अस्पताल के मुख्य चिकित्सा अधीक्षक शामिल होते हैं। मस्तिष्क मृत्यु के बाद लगभग सभी अंगों का दान किया जा सकता है।

प्राकृतिक मृत्यु के बाद कॉर्निया और देहदान– प्राकृतिक मृत्यु में हृदय की धड़कन बंद हो जाती है। रक्त प्रवाह रुक जाने की वजह से आवश्यक अंग प्रत्यारोपण के लिए अनुपयोगी हो जाते हैं। नेत्रदान मृत्यु के 6 घण्टे बाद तक ही सम्भव होता है। इसके लिए मृतक के परिवार को नेत्र बैंक को सूचित करना होता है। नेत्र बैंक की टीम द्वारा एक छोटी प्रक्रिया के बाद, कॉर्निया को निकाला जाता है। सर्वप्रथम सफल कॉर्निया प्रत्यारोपण सन् 1905 ई0 में एडवर्ड ज़िर्न द्वारा किया गया था।

3. प्रत्यारोपण के प्रकार– अंगों या ऊतकों का प्रत्यारोपण यदि उसी व्यक्ति के शरीर के भीतर किया जाता है, तो उसे स्वप्रतिरोपण (autograft) कहते हैं। प्रत्यारोपण यदि एक ही प्रजाति के दो व्यक्तियों में किया जाए, तो उसे एलोग्राफ्ट (allograft) कहते हैं। जब अंगों या ऊतकों का प्रत्यारोपण आनुवांशिक रूप से समान व्यक्तियों के बीच होता है, तो उसे आइसोग्राफ्ट (isograft) कहते हैं। इसमें प्रतिरक्षा प्रतिक्रिया नहीं होती है। प्रत्यारोपण यदि एक प्रजाति से दूसरे में किया जाए, तो उसे ज़ीनोग्राफ्ट (xenograft) कहते हैं। सुअर का हृदय वाल्व प्रत्यारोपण इसका सफल उदाहरण है।

4. अंगदान क्यों करें? अंगदान से लोगों का जीवन बचाया जा सकता है, जबकि ऊतक–दान से पचास से ज्यादा लोगों की जीवन की गुणवत्ता को बढ़ा सकते हैं।

5. किन अंगों का दान किया जा सकता है? अंगों में हृदय, वृक्क, यकृत, फेफड़े, अग्न्याशय, आँत और थाइमस जबकि ऊतकों में हड्डियों, त्वचा, हृदय–वाल्व, धमनियों एवं शिराओं का प्रत्यारोपण किया जा सकता है।

6. कौन दान कर सकता है? अंगदान के लिए उम्र की सीमा नहीं है। किसी भी उम्र, प्रजाति या लिंग का व्यक्ति अंगदान कर सकता है। प्रत्येक स्थिति में अंगों की उपयोगिता का निर्धारण चिकित्सक द्वारा किया जाता है।

7. किस प्रकार अंगदान कर सकते हैं? 18 साल या उससे अधिक आयु का व्यक्ति अंगदान कर सकता है। 18 साल से कम आयु के मृतकों के अंगदान के लिए उनके माता–पिता या निकटतम अभिभावक की अनुमति आवश्यक होती है। यदि आप एच0आई0वी0/एड्स से ग्रसित हैं, किसी प्रकार का कैंसर या रक्त सम्बन्धित रोग है तब अंगदान नहीं कर सकते। **"अंगदान महादान है"।**

निष्कर्ष– एक व्यक्ति के जीवन में अंगदान का बहुत महत्व है। अंगदान दिवस भारत में प्रत्येक वर्ष 13 अगस्त को मनाया जाता है, जिसका उद्देश्य लोगों को अंगदान के लिए प्रेरित करना है।

सन्दर्भ

1. मनारा, ए0 आर0; मर्फी, पी0 जी0 एवं ओकैलान, जी0(2011) डोनेशन आफ्टर सर्कुलेटरी डेथ, ब्रिटिश जर्नल ऑफ एनेस्थीसिया, खण्ड–108, मु0पृ0 108–121।
2. मानद कोशिका, ऊतक और अंग प्रत्यारोपण पर विश्व स्वास्थ्य संगठन के मार्गदर्शी सिद्धान्त, विश्व स्वास्थ्य संगठन (2008)।
3. विश्व स्वास्थ्य संगठन की नैतिकता पर ग्रंथ सूची।
4. अंग तस्करी और प्रत्यारोपणः नई चुनौतियाँ।

आँवला–स्वास्थ्य लाभ के लिए कार्यात्मक भोजन के रूप में आयुर्वेदिक औषधि

प्रमोद कुमार सिंह[1], देवेन्द्र सिंह[2], संजीव कुमार ओझा[3], आर.सी. नैनवाल[2] एवं श्रीकृष्ण तिवारी[4]
[1]वरिष्ठ शोधकर्ता, [2]वैज्ञानिक, [3]वरिष्ठ वैज्ञानिक, [4]वरिष्ठ प्रधान वैज्ञानिक
सी0एस0आई0आर0–राष्ट्रीय वनस्पति अनुसन्धान संस्थान, राणा प्रताप मार्ग, लखनऊ–226001, उ0प्र0, भारत
yadav.pramod67@gmail.com

प्राप्त तिथि–09.04.2015, स्वीकृत तिथि–06.10.2015

सार

प्राचीन काल से ही हमारे ऋषि मुनियों ने आँवला को औषधीय रूप में प्रयोग किया गया और हिन्दू मान्यताओं के अनुसार इस फल को अमृत माना गया है। आँवले को आयुर्वेद में गुणों का फल माना गया है। यह विटामिन–सी का एक बहुत अच्छा श्रोत है। इसके प्रयोग से बुद्धि में वृद्धि तथा वृद्धावस्था दूर होती है। आँवले का स्वाद भले ही कसैला होता है परंतु इसके गुणों के कारण इसे "धातृ फल" भी कहा जाता है, धातृ का अर्थ होता है–पालन–पोषण करने वाला अर्थात "माँ", इसके अलावा इसे अमर फल और आदि फल भी कहते हैं।

बीज शब्द– आँवला, स्वास्थ्य एवं औषधि।

Amla- Ayurvedic medicine for health benefit as a functional food

Pramod Kumar Singh[1], Devendra Singh[2], R. C. Nainwal[2], S. K. Ojha[3] & Shri Krishna Tewari[4]
[1]Senior Research Fellow, [2]Scientist, [3]Senior Scientist, [4]Senior Principal Scientist
CSIR- National Botanical Research Institute(N.B.R.I.)
Rana Pratap Marg, Lucknow-226001, U.P., India
yadav.pramod67@gmail.com

Abstract

Amla has been used as medicine by Indian scholars(Rishi) since antiquity. This has been worshiped as per Hindu belief. In ayurveda amla has been considered as fruit of diverse medicinal qualities. This is one of the excellent source of vitamin-C which overcomes the senile degeneration and enhances mental ability. Although bitter in taste but due to its potent medicinal and nutritive qualities it is called as "Drata fal" which symbolizes the "Mother". It is also called immortal fruit(amar fal) and ancient fruit(aadi fal), due to its antigeriatic effect and its presence since antiquity in Indian subcontinent.

Keywords- Amla, Health and medicine.

प्रस्तावना– भोजन में फलों का बहुत महत्व होता है। फलों में विभिन्न प्रकार के खनिज तत्व, लवण, विटामिन तथा प्रतिऑक्सीकारक पाये जाते हैं जो स्वास्थ्यवर्धक एवं पौष्टिक होते हैं। फलों में पाये जाने वाले विभिन्न तत्व, यौगिक, विटामिन एवं प्रतिऑक्सीकारक विभिन्न रोगों के उपचार में भी काम आते हैं। आँवले को मनुष्य के लिए प्रकृति का वरदान कहा जाता है। यह एक देशज फल है, जो भारतीय उपमहाद्वीप में पाया जाता है। आँवला एशिया के अलावा यूरोप व अफ्रीका में भी पाया जाता है। हिमालयी क्षेत्र और प्राद्वीपीय भारत में आंवला के पौधे बहुतायत में मिलते हैं। इसकी उत्पत्ति और विकास मुख्य रूप से भारत में मानी जाती है। यह भारत के प्रायः सभी प्रान्तों में पाया जाता है लेकिन उत्तर प्रदेश में प्रतापगढ व वाराणसी के आँवले प्रसिद्ध हैं। तुलसी की तरह आंवले का पेड़ भी धार्मिक दृष्टिकोण से पवित्र माना जाता है। महिलाएं इसकी पूजा भी करती हैं। कार्तिक के महीने में आंवले का सेवन बहुत शुभ और गुणकारी माना जाता है। इसके पेड़ की छाया में भी एंटी–वायरस गुण विद्यमान है। यह कहा जाता है कि जो भगवान विष्णु को आँवले का बना मुरब्बा एवं नैवेद्

अर्पण करता है, उस पर वे बहुत संतुष्ट होते हैं। इसका प्रयोग भोजन व औषधि दोनों के रूप में होता है, ताजे फलों से चटनी, अचार, लेह व मुरब्बा बनाया जाता है जबकि सूखे फलों के गूदों का प्रयोग चूर्ण रूप में होता है।

वनस्पतिक विवरण– आँवले का पेड़ 6–8 मी0 तक ऊँचा, तना टेढ़ा–मेढ़ा और 1.5 से 3.0 मी0 तक मोटा तथा पेड़ की छाल पतली और परत छोड़ती हुई होती है। इसमें इमली के पत्तों की तरह छोटी और नुकीली लगभग आधा इंच लम्बी प्रत्येक दल में 100 पत्ती होती हैं इसलिए इसे संस्कृत में शतपत्री भी कहते हैं। जिससे नींबू के पत्तियों सी खुशबू आती है। इसमें फरवरी से मई के दौरान फूल लगते हैं तथा आगे चल कर अक्टूबर से अप्रैल तक फल आते हैं। इसके पुष्प हरे पीले रंग के बहुत छोटे गुच्छों में लगते हैं तथा घंटे की तरह होते हैं। फल गोलाकार लगभग 2.5 से 5.0 सेमी0 व्यास के चिकने, हरे–पीले रंग के होते हैं। पके फलों का रंग लालिमायुक्त होता है। खरबूजे की भांति फल पर छः रेखाएँ छः खण्डों का प्रतीक होती हैं। फल की गुठली में छः कोष(षट्कोषीय बीज) होते हैं, औषधीय प्रयोग के लिए छोटे आँवले ही अधिक उपयुक्त होते हैं। स्वाद में इनके फल कसाय होते हैं, आँवले का स्वाद गले ही कसैला होता है परंतु इसके गुणों के कारण इसे "धातृ फल" भी कहा जाता है, धातृ का अर्थ होता है पालन–पोषण करने वाला अर्थात "माँ"। इसके अलावा इसे अमर फल और आदि फल भी कहते हैं।

विभिन्न भाषाओं में आँवला का नाम–

हिन्दी	आँवला, आमला	कन्नड़	निल्लकाय, नेल्लि
संस्कृत	आमलकी, धात्री, आमृता, शिवा	द्राविडी	निल्लिक्काय, अमृत फल
मराठी	आंवली, आवलकांटी	तेलुगू	असरिकाय, उशीरिकई
बंगाली	आमकली, आंगला	अंग्रेज़ी	इंडियन गूसबेरी
गुजराती	आंवला, आमला	लैटिन	*एम्बिलिका ऑफिसिनेलिस*

रसायनिक संगठन–

संगठन	मात्रा	संगठन	मात्रा
प्रोटीन	0.5%	पानी	82.2%
वसा	0.1%	कैल्सियम	0.05%
खनिज द्रव्य	0.7%	फॉस्फोरस	0.02%
कार्बोहाइड्रेट	14.0%	निकोटीन अम्ल	0.2 मिग्रा/100ग्रा0
रेसा	3.4%	विटामिन–सी	600 मिग्रा/100ग्रा0
लोहा	1.2%	विटामिन–बी1	30 मिग्रा/100ग्रा0
श्रोत– हॉर्टीकल्चर ऐट ए गलांस (2007) कल्याणी प्रकाशक, वाराणसी			

आँवले के फल में रसायनिक अवयव–

प्रकार	रसायनिक अवयव
हाइड्रोलाइजेबल टैनिंस	इम्बिलिकैनिन ए व बी, पुनिग्लुकोनिन, पेडंकुलेजिन, चेबुलिनिक अम्ल, चेबुलैजिक अम्ल, जरेनीन तथा इलैगोटैनिन
एल्केलोइडस	फाइलैंटाइन, फाइलेम्बीन, फाइलेन्टिडीन
फिनोलिक यौगिक (कम्पाउंड)	गैलिक एसिड, मिथैल गैलेट, इलैजिक अम्ल, ट्रिगल्लाइल ग्लूकोज
एमिनो एसिड	ग्लूटैमिक एसिड, प्रोलीन, एस्पारटिक एसिड, एलानीन, सिस्टीन, लाइसीन
कार्बोहाइड्रेट्स	पेक्टिन
विटामिन	एस्कार्बिक एसिड
फ्लेवोनोइड्स	क्युर्सेटिन, केम्पफेरोल
कार्बनिक अम्ल	सिट्रिक एसिड

प्रतिऑक्सीकारक मूल्य– आँवला प्रतिऑक्सीकारक का एक बहुत अच्छा श्रोत है। यह अच्छा एण्टी–एजिंग रिजुविनेटिव है जो शरीर पर आयु का प्रभाव नहीं पडने देता है। अतः यह आयु के प्रभाव को कम करने वाली औषधियों में काम आता है। आँवला में टैनिन होने के कारण यह विटामिन–सी को कम नहीं होने देता है क्योंकि टैनिन ऑक्सीकरण को कम करता है।

फार्माकोलॉजिकल महत्व– फार्माकोलॉजिकल रिसर्च रिपोर्ट के अनुसार पता चला है कि आँवला एनल्जेसिक, एण्टी–टिश्यू, एण्टी–ऐथेरोजेनिक, एडाप्टोजेनिक, कार्डियो, गैस्ट्रो, न्यूरो प्रोटेक्टिव तथा एण्टी–कैंसर आदि के गुण भी पाये जाते हैं तथा इनके अलावा कीमोप्रिवेंटिव, रेडिओ, कीमो व इम्युनोमीडुलेटरी, फ्री रेडिकल स्केवेंजिंग प्रतिऑक्सीकारक गतिविधियां भी मौजूद

होती है। इन सारे गुणों से विभिन्न प्रकार की अन्य बीमारियों जैसे कैंसर, मधुमेह, पेप्टिक अल्सर, एनीमिया, यकृत व हृदय रोगों की रोकथाम तथा उपचार में प्रभावी होते हैं।

आयुर्वेदिक महत्व– अपने अनेक गुणों के कारण आयुर्वेद में आँवला को अमृत फल कहा गया है क्योंकि इसके फल के सेवन से कोई अकाल में मृत्यु को प्राप्त नहीं होता है। आयुर्वेद इसे आयुवर्धक तथा रसायन द्रव्यों में गणना करता है। इसका सेवन आयुर्वेदिक औषधियों में अधिक किया जाता है। यह च्यवनप्राश का मुख्य घटक है। आयुर्वेद के वैद्यों ने, विभिन्न ग्रन्थों में व वनौषधियों में हरड़ और आँवले को सर्वश्रेष्ठ माना है। इसमें हरड़ रोग नाशक तथा आँवला सर्वोत्तम स्वास्थ्य रक्षक माने गये हैं। आँवले में खट्टापन तथा कसैलापन प्रधान रूप से है पर इसमें मिठास, कड़वापन और खारापन भी गौण रूप से विद्यमान है। आयुर्वेद ग्रन्थों के अनुसार यह मूत्रल, रक्तशोधक, पाचक, रूचिवर्धक तथा अतिसार, प्रमेह, दाह, पीलिया, अम्लपित्त, रक्त विकार, रक्त स्राव, बवासीर, कब्ज, अर्जीण, बदहजमी, श्वांस, खांसी, वीर्य क्षीणता तथा रक्त प्रदर नाशक है। यह फल पित्त नाशक होने के कारण पित्त–प्रधान रोगों की प्रमुख औषधि है। यह फल मधुरता और शीतलता के कारण पित्त को शान्त करता है। यह तीनों दोषों(वात, पित्त, कफ) को संतुलित करता है। यह पाचक, अरुचि नाशक, वमन में लाभकारी है। यह नाड़ी तंत्र व इन्द्रियों को ताकत देने वाला पौष्टिक रसायन है। यह रक्त वाहिनियों के विकारों को नष्ट करने में सक्षम है।

"हरीतकीसमं धात्री फलं किंतु विशेषतः। रक्तपित्त प्रमेहघ्नं परं वृष्यं रसायनम्"।। (भाव प्रकाश निघंटु)

महर्षि चरक के अनुसार शरीर अवनति को रोकने वाले अवस्थस्थापक द्रव्यों में आँवला सबसे प्रधान है (आमलकी वयः स्थपनानाम श्रेष्ठम)। प्राचीन ग्रंथकारों ने इसको शिवा(कल्याणकारी), वयस्था(अवस्था को बनाये रखने वाला) तथा धात्री(माता के समान रक्षा करने वाला) कहा है।

कषायं कटुतिक्ताम्लं स्वादु चामलकं हिमम्। सरं त्रिदोषह्द वृष्यं ज्वरघ्नं च रसायनम।।
हन्ति वातं तदम्लत्वात्पितं माधुर्यशैत्यतः। कफं रूक्षकषायत्वात्फलं धायास्दिोषजित।। (धनवंतरि निघंटु)

आयुर्वेदिक स्वभाव

रस–कषाय, अम्ल, मधुर, कटु, तिक्त, **गुण**–सर, रूक्ष, **वीर्य**–शीत, **विपाक**–मधुर, **कर्म**–त्रिदोष हर

विटामिन–सी की संस्तुत मात्रा– आजकल आँवला पाउडर पूरे प्रतिरक्षा प्रणाली(इम्यून सिस्टम) को बढ़ाने के लिये प्रयोग किया जाता है। अमेरिका के अनुशांसित आहार भत्ता (आर.डी.ए.) के अनुसार विटामिन–सी का दैनिक अंतर्ग्रहण नीचे दिया गया है–

वर्ग	आयु	विटामिन–सी की मात्रा
शिशु	1 वर्ष से कम	30–35 मिग्रा.
बच्चे	1–14 वर्ष	40–50 मिग्रा.
किशोर	15–18 वर्ष	65–70 मिग्रा.
पुरूष	18 वर्ष से अधिक	90 मिग्रा.
महिला	18 वर्ष से अधिक	75 मिग्रा.

आँवला का औषधीय महत्वः– आर्थिक महत्व की दृष्टि से यह एक महत्वपूर्ण औषधीय फल है। इसको विभिन्न रोगों के उपचार में प्रयोग किया जाता है। इसे सीधे या विभिन्न उत्पाद(दवाइयाँ) बनाकर प्रयोग किया जाता है। इसमें विटामिन–सी प्रचुर मात्रा में पाई जाती है इसका विटामिन "सी" और अन्य पोषक तत्व पकाने, सुखाने, तलने, पुराना होने या अचार बनाने पर भी नष्ट नहीं होते हैं। यह हरा, ताजा हो या प्राकृतिक रूप से सुखाया हुआ पुराना हो, इसके गुण नष्ट नहीं होते हैं। इसके फल में संतरे के रस से 20 गुना अधिक विटामिन–सी पाई जाती है। इसमें सभी रोगों को दूर करने की शक्ति है। यह युवाओं को यौवन प्रदान करता है व बूढ़ों को युवाओं जैसी शक्ति देता है। इसके सेवन से रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है। इसका चूर्ण व तिल का समान भाग लेकर घी व मधु के साथ खाने से बुद्धि में वृद्धि व वृद्धावस्था दूर होती है। इसे चटनी, अचार, मुरब्बा, अवलेह, शर्बत या कच्चा ही किसी भी रूप में अधिक से अधिक प्रयोग में लाना चाहिए।

1. **आँखों के लिये**– इसके सेवन से आंखों की ज्योति बढ़ती है। सूखा आँवला रात को पानी में भिगो दें व सुबह छान कर इसके पानी से छिलका दरदरा कूट कर पानी में भिगो कर रख दें फिर इसे कपड़े से साफ छान कर दिन में तीन बार 2–2 बूंद आंखों में टपकाएं।

2. **खांसी में**– सूखे आँवले के एक चम्मच पाउडर में थोडा घी मिलाकर लुगदी बनाकर दिन में दो बार खाना चाहिए। सूखी खांसी होने पर इसका रस एक चम्मच को एक चम्मच शहद के साथ मिलाकर दिन में दो या तीन बार लेने से खांसी में आराम मिलता है। यह कफ को बाहर निकालता है। यह त्वचा, स्नायु तंत्र सम्बन्धी रोग ठीक करता है।
3. **बुढ़ापा दूर करने के लिए**– 100 ग्राम आँवले का पाउडर और 100 ग्राम काले तिल का पाउडर मिलाकर इसमें 50 ग्राम शहद और 100 ग्राम देशी घी मिलाकर प्रतिदिन एक महीने तक लेने से लाभ होता है। इसमें सकसीनिक अम्ल होता है। जो बुढ़ापे को रोकता है और पुनः यौवन शक्ति प्रदान करता है। इसके नियमित सेवन से वृद्धावस्था दूर होती है।
4. **हृदय रोग में**– इसमें पाये जाने वाला पेक्टिन सीरम मनुष्य में कोलेस्ट्रॉल को कम करता, प्लेटलेट्स का एकत्रीकरण तथा कोलेस्ट्रॉल स्तर को कन करता है। इस प्रकार आँवला हृदय आघात होने से बचाता है।
5. **पीलिया(जांडिस) में**– एक गिलास गन्ने के रस में तीन बड़े चम्मच हरे आवँले का रस और तीन चम्मच शहद मिला कर दिन में दो बार पिलाने से आराम मिलता है।
6. **स्कर्वी रोग में**– आँवला को दिन में दो या तीन बार लेने से अम्लपित से हुई बीमारियों में आराम होता है। विटामिन–सी की कमी से उत्पन्न स्कर्वी नामक रोग होता है, जिससे कमजोरी, चिड़चिड़ापन, मसूड़ों का फूलना व पाचन तंत्र का खराब होना, हड्डियों का स्वयं से टूटना शुरू हो जाता है। इस स्थिति में रोगी को विटामिन–सी देना आवश्यक होता है। जो आँवले में पर्याप्त मात्रा में होता है।
7. **बाल सफेद होने पर**– सूखा आँवला 30 ग्राम, 10 ग्राम बहेड़ा व 50 ग्राम आम की गुठली की गिरी को पीसकर रात भर लोहे की कढ़ाई में भिगो कर रख दें फिर इसे बालों पर लगाने से कन उम्र में सफेद हुए बाल कुछ ही दिनों में काले होने लगते हैं।
8. **बुखार में**– आँवला तथा अंगूर को 50–50ग्राम लेकर इसे पीसकर चटनी बना कर रख लें इसको दिन में कई बार चाटने से बुखार में लाभ होता है। आँवला, चित्रक, छोटी हरड़, पिप्पली इन सबकी 6–6 ग्राम मात्रा लेकर पीस लें फिर इसे 300 मिलीलीटर पानी में एक चौथाई रहने तक उबालें इसे सुबह–शाम पीने से बुखार में लाभ होता है। इसका काढ़ा बनाकर सुबह–शाम पीने से वृद्धावस्था में जीर्ण ज्वर व खांसी में लाभ होता है।
9. **कफ में**– आँवला तथा मुलहठी को अलग–अलग पीस कर चूर्ण बना कर एक में मिला ले। एक चम्मच चूर्ण दिन में दो बार खाली पेट सेवन करने से छाती में जमा कफ निकल जाता है।
10. **निम्न रक्त चाप में**– आँवले का 20 मिलीलीटर रस को 10 ग्राम शहद के साथ प्रतिदिन सेवन से निम्न रक्त चाप में लाभ होता है तथा इसके मुरब्बा को प्रति दिन कुछ सप्ताह तक खाने से भी लाभ होता है।
11. **उच्च रक्त चाप में**– आँवला चूर्ण एक चम्मच, सर्पगन्धा 3 ग्राम, गिलोय चूर्ण एक चम्मच तीनों को मिलाकर दो खुराक करें, सुबह–शाम इसका प्रयोग करने से लाभ होता है।
12. **मधुमेह रोग में**– 10 ग्राम आँवला रस, 1 ग्राम हल्दी व 3 ग्राम शहद के साथ सेवन से मधुमेह में लाभ होता है। 100 ग्राम सूखा आँवला तथा 100 ग्राम सौंफ को बारीक पीस लें, इसमें से 6 ग्राम सुबह–शाम खाने से मधुमेह रोग ठीक हो जाता है। सूखा आँवला तथा 100 ग्राम जामुन की गुठली को सुखा कर पीस ले इस चूर्ण में से एक चम्मच प्रतिदिन बिना कुछ खाये पानी के साथ सेवन से मधुनेह में लाभ होता है।

विशिष्ट योग– 1. च्यवनप्राश, 2. त्रिफला, 3. आँवले का मुरब्बा

1. **च्यवनप्राश**– आयुर्वेद के अनुसार यह कमजोरी, पुराने जुकाम, खांसी सहित फेफड़े व क्षय रोग आदि रोगों के लिए लाभकारी उत्पाद है इसमें रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने वाली जड़ी–बूटियाँ, आँवला, गिलोय व तुलसी भरपूर मात्रा में होती है। यह स्मरण शक्ति, बुद्धि के विकास के लिए काफी मददगार है। यह त्रिदोश नाशक है इसमें लवण रस को छोड़कर पाँचों लवण भरे होते हैं। वैज्ञानिक खोजों से यह पता चला है कि आँवले में पाया जाने वाला एंटी–ऑक्सीडेंट इन्जाइम बुढ़ापे को रोकता है। विषाणु फैलने की स्थिति में च्यवनप्राश शरीर की प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाता है।

2. **त्रिफला**– त्रिफला शब्द का शाब्दिक अर्थ है, "तीन फल"। यह एक प्रसिद्ध आयुर्वेदिक रसायनिक सूत्र है जिसमें आमलकी(*Emblica officinalis*), बहेड़ा(*Terminalia bellirica*) और हरड़(*Terminalia chebula*) के बीज निकाल कर समान मात्रा में पीस कर चूर्ण बना लिया जाता है। यह उत्तम रसायन है तथा नित्य प्रयोग हेतु प्रशस्त है। एक चम्मच सुबह व रात्रि काल जल से ले सकते हैं। इसको रात्रि पर्यंत जल में रख कर प्रातः नेत्र व केश धोने से आँख व बालों को लाभ करता है। संयमित आहार–विहार के साथ त्रिफला का सेवन करने वाले व्यक्तियों को हृदय रोग, उच्च रक्त चाप, मधुमेह, नेत्र रोग, पेट के विकार व मोटापा आदि के होने की सम्भावना नहीं रहती है। यह प्रमेह, कुष्ठ रोग, विषम ज्वर व सूजन नष्ट करता है। इसके नियमित सेवन से शरीर निरोग व फुर्तीला बनता है, यह भूख को बढ़ाने पाचन, लाल रक्त कोशिकाओं की संख्या में वृद्धि करने व शरीर से वसा की अवांछनीय मात्रा को हटाने में सहायता करता है।

3. **आँवले का मुरब्बा**– सर्वप्रथम रात्रिपर्यंत चूने के पानी में आँवले को भीगो दें। प्रातः कांटे वाली चम्मच से आँवलों में छेद कर पानी में उबाले। दो तार की चाशनी बना कर आँवलों को काँच/चीनी मिट्टी/स्टील के बर्तन में सुरक्षित रख ले। गर्मियों के मौसम में सुबह खाली पेट में एक आँवले का मुरब्बा खा कर पानी पीने से शरीर अंदर से शीतल रहता है।

सावधानियाँ– प्रसूता स्त्रियों को आँवला नहीं खाने चाहिए। अतिशय ठण्डे वातावरण में शीत व नाजुक प्रकृति वाले व्यक्तियों को उनके रस का उपयोग नहीं करना चाहिए। आँवला अत्यंत शीतल होते है अतः सर्दी, खांसी, कृमि, गठिया, बुखार, मन्दाग्नि आदि आम, कफ व शीत प्रधान व्याधियों में मिश्री मिली हुई आँवले की सामग्री का त्याग करें। ऐसे व्यक्तियों को आँवले को गर्म करके या उष्ण–तीक्ष्ण द्रव्यों के साथ(जैसे चटनी बना कर) उपयोग करना चाहिए। उपर्युक्त औषधियों को उपयोग करने से पहले परामर्शदाता से परामर्श अवश्य लें।

निष्कर्ष– आँवला चिकित्सा के आद्यग्रन्थ आयुर्वेद में वर्णित एक अत्यंत चिकित्सोपयोगी औषधीय फल है। आयुर्वेद ग्रन्थों के अनुसार जिसका प्रयोग विभिन्न प्रकार के रोगों में किया जाता है। आयुर्वेद इसे आयुवर्धक तथा रसायन द्रव्यों में गणना करता है। इसका उपयोग आयुर्वेदिक दवाईयाँ एवं खाद्य पदार्थों में अधिक किया जाता है। यह च्यवनप्राश तथा त्रिफला का मुख्य घटक है। आँवला सर्वोत्तम स्वास्थ्य रक्षक माना गया है। इसमें पाए जाने वाले एस्कॉर्बिक एसिड एवं प्रतिऑक्सीकारक प्रमुख कार्यकारी रसायनिक यौगिक हैं। अतः उपरोक्त वर्णित तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि आँवला का प्रयोग औषधि के रूप में प्राचीन भारतीय चिकित्सा पद्धतियों तथा आधुनिक चिकित्सा पद्धति में वृहत् रूप में हो रहा है। यह मात्र स्वास्थ्य रक्षक औषधि ही नहीं अपितु इसकी सफल व्यवसायिक खेती से हमारे देश के किसानों के आय का साधन भी है तथा उत्पादित फलों व इससे बने विभिन्न उत्पाद जैसे मुरब्बा, कैण्डी व अचार आदि के विक्रय एवं निर्यात से हमें आर्थिक लाभ के साथ–साथ विदेशी मुद्रा भी प्राप्त होगी। शिक्षित बेरोजगार युवक अनेक वित्त पोषित योजनाओं के अंतर्गत इसके औषधि एवं खाद्य उत्पाद की लघु इकाइयां भी स्थापित कर सकते हैं जो कि बेरोजगारी की समस्या दूर करने में सहायक होंगी साथ ही हमारे देश के ग्रामीण समाज की आर्थिक उन्नति के साथ इससे निर्मित औषधियों से एक ओर हमारा स्वास्थ्य सुरक्षित होगा वहीं दूसरी ओर स्वच्छ, संतुलित पर्यावरण भी प्राप्त होगा जिसकी हमें अत्यन्त आवश्यकता है।

सन्दर्भ

1. शर्मा, प्रियव्रत(आचार्य)(1992) द्रव्यगुण विज्ञान, द्वितीय भाग, चौखम्भा भारती अकादमी, वाराणसी, भारत।
2. पाण्डेय, गंगा सहाय एवं चुनेकर, कृष्ण चन्द्र(2002) भावप्रकाश निघट्टु, चौखम्भा भारती अकादमी, वाराणसी, भारत।
3. सिंह, बिजेन्द्र(2007) हॉर्टीकल्चर ऐट ए ग्लेंस, कल्याणी प्रकाशक, वाराणसी, पृ–122–125।
4. वर्मा, अजय कुमार; त्रिवेदी, सुरेश कुमार; लाल, गणेश एवं आर्या, रतन लाल(2012) आँवला की वैज्ञानिक खेती तथा औषधीय उपयोग, उद्यान रश्मि, केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ, वर्ष–13, अंक–2, मु0पृ0 24–28।
5. मुणालिनी, संकरन; वैथियानाथान, वेरूसामी एवं कृष्णवेणी, मणि(2013) आंमलाः अ नोवेल आयुर्वेदिक हर्ब ऐज अ फंक्शनल फूड फॉर हेल्थ बेनिफिटस, ए मिनि रिव्युः इंटर्नेशनल जर्नल आफ फार्मेसी एण्ड फार्मास्युटिकल सांइस, अंक 5, सप्लीमेंट्री–1, मु0पृ0 1–4।
6. कुमार, अखिलेश; शर्मा, ललित कुमार, नैनवाल, आर0 सी0; सिंह, श्वेता; कटियार, आर0 एस0 एवं तिवारी, श्रीकृष्ण(2014) व्यक्तिगत स्वास्थ्य सुधार हेतु गुणकारी आँवला, विज्ञान वाणी, सीएसआईआर–राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ, अंक–20, मु0पृ0 66–69।
7. दसरोजु, श्वेता एवं गोदतुमुक्काला, कृष्णमोहन(2014) करेंट ट्रेंड्स इन द रिसर्च आफ एम्बिलिका आफिकिनेलिस (आँवला): ए फार्मोकोलोजिकल प्रास्पेक्टिव, इंटर0 ज0 फार्म0 साइ0 रिव्यू, खण्ड–24, अंक–2, मु0पृ0 150–159।
8. जेकेहेल्थवर्ल्ड डाट काम (इंटरनेट)।

जैव रसायनिक तकनीक से जैवभार आधारित ईंधन

रेनू सिंह[1], रेनू पांडे[2], नोनिका श्रीवास्तव[1]
[1]पर्यावरण विज्ञान एवं जलवायु–समुत्थानशील कृषि केन्द्र
[2]पादप कार्यकी
भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–110012
renu_icar@yahoo.com

प्राप्त तिथि 16.03.2015, स्वीकृत तिथि 29.04.2015

जैसे–जैसे जनसंख्या और औद्योगिकीकरण बढ़ता जा रहा है, वैसे–वैसे ऊर्जा की माँग भी बढ़ती जा रही है। परन्तु जितनी तेजी से ऊर्जा का उपयोग हो रहा है, उतनी ही तेज़ी से ऊर्जा के स्त्रोतों का विकास नहीं हो पा रहा है। विकासशील देशों के साथ–साथ आज विकसित देशों के लिए भी तेज़ गति से ऊर्जा के स्त्रोतों का उत्पादन करना मुश्किल हो रहा है। अधिकतर देशों में अभी तक परम्परागत ऊर्जा के स्त्रोतों जैसे कोयला, पेट्रोलियम, प्राकृतिक तेल आदि के द्वारा ही ऊर्जा की माँग पूरी की जा रही है। परम्परागत ईंधनों के कारण, आज प्रत्येक देश दो बड़ी समस्याओं से जूझ रहा है:

1. जिस गति से हम परम्परागत ईंधनों का उपयोग कर रहे हैं, उससे ये खत्म होने के कगार पर आ चुके हैं। वैज्ञानिकों के अनुसार विश्व के तेल भण्डार 2050 तक समाप्त हो जाएंगे।
2. परम्परागत ईंधनों से निकलने वाले धुएँ, वायु प्रदूषण के मुख्य कारण बनते जा रहे हैं। जीवाश्म ईंधनों को जलाने से सल्फर डाइ ऑक्साइड(SO_2) उत्सर्जित होती है. जिसके कारणवश अम्लीय वर्षा होती है। एक निर्धारित सीमा से अत्याधिक ग्रीन हाउस गैसों जैसे कार्बन डाइ ऑक्साइड(CO_2), मीथेन(CH_4) आदि के निकलने की वजह से विश्व में जलवायु परिवर्तन की समस्या उत्पन्न हो रही है। आज हमें ऐसे ऊर्जा के विकल्प ढूँढने की आवश्यकता है, जो सस्ते, नवीकरणीय और प्रदूषण रहित हो। इसलिए ऊर्जा के अन्य विकल्पों जैसे कि सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, ऊष्मीय ऊर्जा, जल–विद्युतीय ऊर्जा, जैव ईंधन आदि की ओर ध्यान देने की अधिक आवश्यकता है।

जैवभार का ग्रीनहाउस प्रभाव में प्रमुख योगदान है। विश्व में कोयले, पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस के बाद जैव ईंधन का चौथा स्थान है और यह ऊर्जा का मुख्य स्त्रोत बनता जा रहा है। जैव ईंधन हर प्रकार की ऊर्जा की आवश्यकताओं जैसे बिजली उत्पादन के लिए, वाहन चलाने के लिए, कारखानों तथा फैक्ट्रियों में मशीने चलाने के लिए, आदि को पूरा करता है। अक्षय ऊर्जा के सभी विकल्पों में जैव ईंधन एक ऐसा ऊर्जा का विकल्प है जो सौर ऊर्जा का अच्छे से उपयोग करता है। यह एक मात्र ऐसा कार्बन स्त्रोत है जिसे आसानी से ठोसीय, द्रवीय और गैसीय ईंधनों में विभिन्न प्रक्रियाओं द्वारा रूपांतरित किया जा सकता है।

जैवभार– जैवभार एक ऐसा ईंधन है, जो धरती में पाए जाने वाले सभी सजीव जीवों से निर्मित होता है। ये पेड़–पौधों, फसलों, शैवाल आदि से बनते हैं। ये कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन और नाइट्रोजन से बना होता है तथा सल्फर भी थोड़ी मात्रा में उपस्थित होता है। पौधे प्रकाश–संश्लेषण के द्वारा कार्बोहाइड्रेट का निर्माण करते हैं, जो जैव ईंधन की नींव है।

जैवभार से जैव ईंधन का उत्पादन–इथेनॉल– ऑटोमोबाइल के जमाने से ही इथेनॉल का उपयोग ईंधन के रूप में किया जा रहा है। परन्तु सस्ते पेट्रोल ने शीघ्रता से इथेनॉल का स्थान ले लिया है। 1970 के दशक के दौरान, जब ब्राजील की सरकार ने अपना "प्रोएलकूल प्रोग्राम"(Proalcool Programme) प्रक्षेपित किया तब इथेनॉल की ईंधन के रूप में बाज़ार में पुनः वापसी हुई। वर्तमान में विश्व के कुल इथाइल एल्कोहल के उत्पादन का दो–तिहाई भाग इथेनॉल ईंधन के रूप में होता है। अन्य ईंधनों की अपेक्षा इथेनॉल एक स्वच्छ, ज्वलनशील ईंधन है, जिसका ऑक्टेन नम्बर और ईंधन विस्तृतीय गुण अधिक होता है। विकासशील देशों जैसे कि भारत के लिए इथेनॉल पेट्रोल के सम्मिश्रण को परिवहन ईंधन के रूप में उपयोग न केवल कच्चे तेल को आयात करने के लिए खर्च होने वाली विदेशी मुद्रा को बचाता है, बल्कि वाहनों से उत्सर्जित हानिकारक गैसों जिससे वायु प्रदूषण फैलता है, को कम भी करता है। भारत में गुड़ रस के द्वारा 1.3 बिलियन लीटर इथेनॉल का उत्पादन होता है। भारत में योजना के प्रथम चरण में 5 प्रतिशत पेट्रोल के मिश्रण के लिए प्रतिवर्ष 3.45 बिलियन लीटर इथेनॉल की आवश्यकता थी, जबकि पूरे देश में इस योजना के प्रस्तावित करने से ये बढ़कर 5 बिलियन लीटर हो गई। परन्तु, उचित मात्रा में गुड़ रस न होने की वजह से इस आवश्यकता को पूरा करना संभव नहीं हो पाया। इसलिए हमें इथेनॉल उत्पादन के लिए अन्य जैव भार की खोज करने की आवश्यकता है। कुछ महत्वपूर्ण जैवभार जिनसे इथेनॉल का उत्पादन सफलतापूर्वक किया जा सकता है, वे तालिका–1 में दर्शाए गए हैं।

तालिका–1: इथेनॉल उत्पादन के लिए संभावित जैवभार के संघटक(भार प्रतिशत सूखा आधार)

जैवभार का स्त्रोत	शर्करा	सेलूलोस	हेमी सेलूलोस	लिग्निन	अन्य
खोई	3	38	27	20	12
गुड़ रस	61	–	–	–	39
बना हुआ गन्ना	43	22	15	11	9
गन्ने की पत्तियाँ	–	36	21	16	27
पूरा गन्ना	33	25	17	12	13
नेपियर ग्रास	–	32	20	9	39
द्विजातिय गन्ना	28	37	14	15	6
मीठी ज्वार	34	36	16	10	3
यूकेलिप्टस ग्रेनडिस (Eucalyptus grandis)	–	38	13	37	12
ल्यूकेइना ल्यूकोसिफाला (Leucaena leucocephala)	–	43	14	25	18
यूकेलिप्टस सेलिग्ना (Eucalyptus saligna)	–	45	12	25	18
शहरी ठोस अवशेष	–	33	9	17	41
समाचार पत्र	–	62	16	21	1

जैवभार से इथेनॉल: तकनीक– जैवभार से इथेनॉल उत्पादन करने के प्रत्येक चरण के लिए अनेकों विकल्प उपलब्ध हैं। जैवभार को इथेनॉल में परिवर्तित करने के प्रत्येक चरण के लिए विभिन्न सरकारी प्रयोगशाला, शैक्षिक संस्थानों एवं निजी क्षेत्रों की कम्पनियों ने विविध प्रकार की तकनीक की खोज की है। विभिन्न प्रकार के तकनीकी विकल्पों के संयोजन से जैवभार से इथेनॉल उत्पादन के लिए एक सफल तकनीक प्राप्त हो सकती है। तुलनात्मक रूप से पेट्रोल की बढ़ी हुई कीमतों, पूरे वर्ष जैवभार के उत्पादन के लिए अवसर का उपलब्ध होना, और शर्करा उद्योग की स्थिरता के कारण सशक्त रूप से भूमि के उपलब्ध होने की वजह से भारत कई संस्थाओं का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर रहा है।

गुड़ रस से इथेनॉल का उत्पादन– गुड़ रस से इथेनॉल उत्पादन के तीन प्रमुख चरण है:

1. जलीय विश्लेषण
2. किण्वन
3. इथेनॉल की पुनः प्राप्ति।

1. जलीय विश्लेषण

लिग्नोसेलुलोज युक्त अवशेषों का किण्वन द्वारा जलीय विश्लेषण– लिग्नोसेलुलोस युक्त अवशेष का सूक्ष्म जैविक रोगाणवीय अवकर्षण, कई किण्वकों की सम्मिलित क्रिया होती है, इनमें सबसे मुख्य किण्वक सेलुलोज है। सूक्ष्म जीवों को अघुलनशील सेलुलोज को जल उपघटित एवं उपापचित के लिए कोशिकाय वाह्य सेलुलोज स्वतंत्र या कोशिकीय संयुक्त का उत्पादन आवश्यक होता है। तीन मुख्य प्रकार की सेलुलोज क्रिया है:

1. एण्डोग्लूकानेज़ (Endoglucanase) 1,4–β–डी ग्लूकेनोहाइड्रोलेज़ (1,4–β–D glucanohydrolase)
2. एक्सोग्लूकानेज़ (Exoglucanase)

I. सेलोडेक्सट्रिनेज़ (Cellodextrinase) 1,4–β–डी ग्लूकॉन ग्लूकेनोहाइड्रोलेज़ (1,4–β–D glucan glucanohydrolase)

II. सेलोबायोहाइड्रोलेज़ (Cellobiohydrolase)

III. β–ग्लूकोसाइडेज (β–glucosidases) β–ग्लूकोहाइड्रोलेसेज़ (β–glucohydrolases)

एण्डोग्लूकानेज़ सेलूलोज बहुशर्कराइड श्रृंखला को क्रम रहित तरीके से आंतरिक अक्रिस्टलीय स्थान को काट कर भिन्न–भिन्न लम्बाई के ओलिगो सैकेराइड उत्पन्न करता है और इसके परिणामस्वरूप छोटी–छोटी श्रृंखलाएँ बनती हैं। एक्सोग्लूकानेज़

सेलूलोज श्रृंखला के लघु एवं लघु रहित छोर को काट कर ग्लूकोज अथवा सेलोबायोज मुख्य उत्पादक के रूप में पैदा करता है। सूक्ष्मक्रिस्टलीय संरचना में एक्सोग्लूकानेज़ सेलूलोज श्रृंखला की सूक्ष्मक्रिस्टलीय सेलुलोज छाल पर भी कार्य करता है। β–ग्लूकोसाइडेज़ घुलनशील सेलोडेक्स्ट्रीन और सेलोबायोस को ग्लूकोस में परिवर्तित करता है। *ट्राइकोडरमा रीसाई(Tricoderma reesei)* का सेलुलोज तंत्र कम से कम दो एक्सोग्लूकानेज़(Exoglucanase), पाँच एण्डोग्लूकानेज़(Endoglucanase) और दो β–ग्लूकोसाइडेज़(β–glucosidase) से मिलकर बना होता है।

सांद्रित अम्ल जल अपघटन प्रक्रिया– यह प्रक्रिया सेलुलोज के सांद्रित अम्ल डी–क्रिस्टलीय पर आधारित है, इसके उपरान्त तनुकरण अम्ल जल अपघटन से सेलुलोज(Cellulose) को शर्करा में परिवर्तित करता है, ये लगभग सैद्धांतिक उत्पात 85–90 प्रतिशत है। शर्करा से अम्ल को अलग करना, अम्ल पुनःप्राप्ति और अम्ल को दुबारा सांद्रित करना संक्रिया एकक है। किण्वन शर्करा को इथेनॉल में परिवर्तित करता है।

तनुकरण अम्ल जल अपघटन– जैवभार से इथेनॉल उत्पादन के लिए तनुकरण अम्ल जल अपघटन एक पुरानी, सरल एवं अत्याधिक दक्ष प्रक्रिया है। तनुकरण अम्ल जैवभार को जल अपघटित करके शर्करा बनाता है। प्रथम चरण में 190°C पर 0.7 प्रतिशत गंधक अम्ल जैवभार में उपस्थित हेमीसेलुलोज का जल अपघटित करता है। दूसरा चरण ज़्यादातर प्रतिरोधी सेलुलोज अंश के उत्पात के अनुकूल होता है, यह 215°C पर 0.4 प्रतिशत गंधक अम्ल से प्राप्त होता है। किण्वन द्वारा शर्करा विलयन का इथेनॉल में परिवर्तन से पूर्व, जलीय जल अपघटक को निष्प्रभाव करना और विषैले यौगिक को हटाना होता है।

किण्वन प्रक्रियाएँ– विभिन्न प्रकार की किण्वन प्रक्रियाएँ हैं:
1. बैच प्रक्रियाएँ, 2. सेमी–कन्टीन्युअस प्रक्रियाएँ, 3. कन्टीन्युअस प्रक्रियाएँ

इथेनॉल की पुनः प्राप्ति– आसवन द्वारा ऊर्जा का अधिक उपभोग की वजह से औद्योगिक एल्कोहल उत्पादन में इथेनॉल की सांद्रता और शुद्धीकरण एक महँगा कार्य है। जैविक इथेनॉल का द्रव्य–ईंधन के रूप में उपयोग करना एक प्रश्न चिन्ह बना हुआ है, क्योंकि आसवन के लिए जितनी ऊर्जा की आवश्यकता होती है वो एल्कोहल उत्पादन की कुल ज्वलनशील ऊर्जा के बराबर पाई गई है। आसवन को बेहतर बनाने के लिए नई तकनीकों का विकास किया जा रहा है।

समकालिक शर्करीकरण और किण्वन(Simultaneous Saccharification and Fermentation)– यह तकनीक (एन.आर.ई.एल.) नेशनल रिन्यूवेबल एनर्जी लैबोरेटरी, गोल्डन सी ओ के अन्वेषण और विकास योजना से संबंधित है। यह प्रक्रिया मुख्यतः चार चरणों की होती है, जिसे अलग–अलग तरीकों से सम्मिलित भी किया जा सकता है:
1. पूर्व प्रशोधन, 2. किण्वक उत्पादन, 3.जल उपघटन, 4. किण्वन।

सेलुलोज से पृष्ठीय क्षेत्रफल में बढ़ोतरी जो कि किण्वक के लिए अभिगम्य है, वो लिग्नोसेलुलोजयुक्त की पाच्यता में बढ़ोत्तरी का मुख्य कारक है। पूर्व जल उपघटन 1.1 प्रतिशत गंधक अम्ल(160°C पर 10 मिनट) हेमिसेलुलोज के भाग को हटा देता है, इसके परिणामस्वरूप छिद्र का आकार बढ़ जाता है, जिससे सेलुलोज की संरचना किण्वक के प्रहार के लिए खुल जाती है। समकालिक शर्करीकरण और किण्वन प्रक्रिया में सेलुलोज को भंग करने वाला किण्वक *ट्राइकोडर्मा रीसाई (Tricoderma reesei)* कवक द्वारा उत्पन्न होता है। शेष पदार्थ में यीस्ट और किण्वक को मिला दिया जाता है, जहाँ किण्वक सेलुलोज को पाच्य करके ग्लूकोज को उत्पन्न करता है। यीस्ट अथवा अन्य सूक्ष्म जीव किण्वन द्वारा ग्लूकोज से इथेनॉल का उत्पादन करते हैं। इस प्रक्रिया को आकृति 1 द्वारा दर्शाया गया है।

निष्कर्ष– जैवभार एक विश्वसनीय, नवीकरणीय ऊर्जा का संसाधन है, इसलिए जैवभार पर आधारित ईंधन आने वाले भविष्य के लिए एक आशाजनक ऊर्जा का स्त्रोत है। विभिन्न कृषि उत्पादकों एवं अवशेषों जैसे कि गन्ने का रस, खोई, गुड़ रस, मीठा ज्वार, कसावा आदि द्वारा भारत में ऊर्जा माँग को पूरा किया जा सकता है। विभिन्न माध्यमों द्वारा नई पीढ़ी के जैव ईंधन के उत्पादन के लिए कई अध्ययन किए जा रहे हैं। जैविक इथेनॉल तकनीक की सफलता का सबसे मुख्य कारक सस्ती लागत पर सेलूलोज की उपलब्धता है। सेलूलोज किण्वक की उत्पादकता बढ़ाने के लिए अधिक शोध प्रयासों की आवश्यकता है। जैविक इथेनॉल, पेट्रोलियम आधारित ईंधनों के विकल्प के रूप में देखा जा रहा है, जो पर्यावरण में ग्रीनहाऊस गैसों के कुल योगदान को कम करता है। सभी प्रकार के वाहनों और इंजनों में ईंधन-इथेनॉल के सम्मिश्रण का सफलतापूर्वक उपयोग हो रहा है।

संदर्भ

1. बलत, एम0; बलत, एच0 तथा औ0 जेड0 सी0(2008) प्रोग्रेस इन बायो इथेनॉल प्रोसोसिंग प्रोग्रा0 इनर्जी0 कम्बस्ट0 साई0 खण्ड–34, मु0 पृ0 331–373।
2. सक्सेना, आर0 सी0; अधिकारी, डी0 के0 तथा गोयल, एच0 बी0(2009) बायोमास बेस्ड इनर्जी फ्यूल थ्रो बायोकेमिल रूट्स: ए रिक्यु0 रिन्यु0 सस्टेनेबल0 इनर्जी0 रिव0 खण्ड–13, मु0पृ0 167–178।
3. सिंह, आर0; तिवारी, एस0 तथा श्रीवास्तव, एम0(2014), जैविक इथेनॉल जीवाश्मी पेट्रोलियम का विकल्प, विज्ञान आपके लिए, अंक 3, मु0पृ0 14–17।

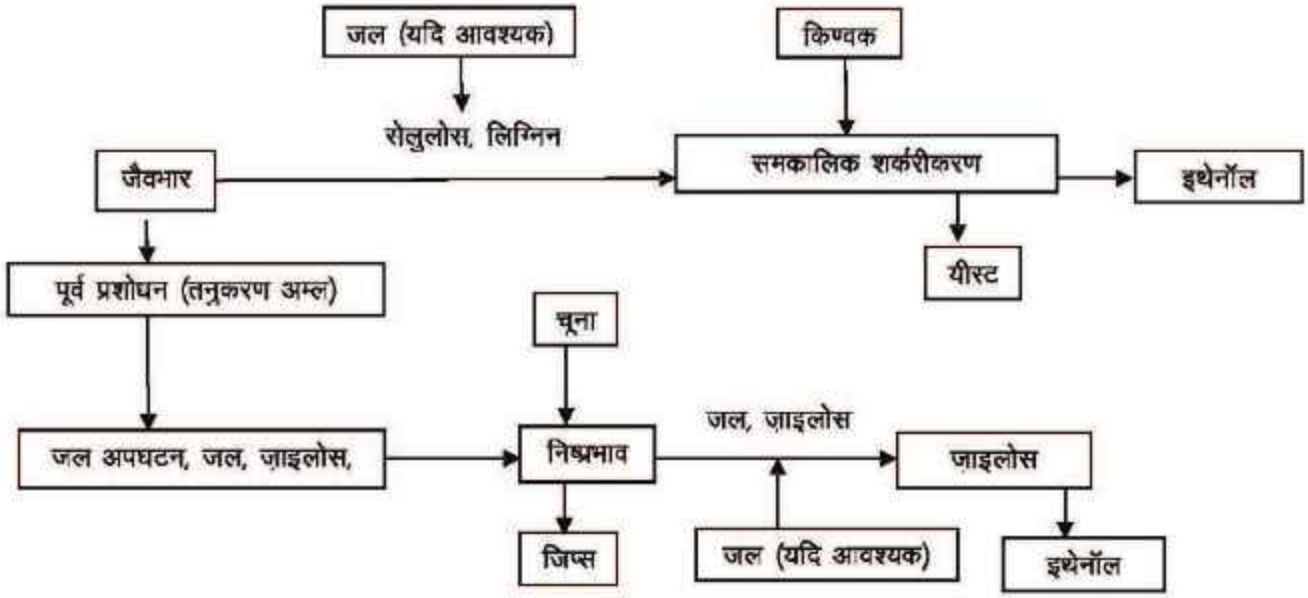

आकृति–1 समकालिक शर्करीकरण और किण्वन

ध्वनि प्रदूषण

उदय शंकर अवस्थी
वनस्पति विज्ञान विभाग
बी0एस0एन0वी0 पी0जी0 कॉलेज, लखनऊ–226001, उ0प्र0, भारत

प्राप्त तिथि–16.03.2015, स्वीकृत तिथि–25.04.2015

प्रदूषण– वातावरण मे उपस्थित ऐसे तत्व या कण जो उसकी शुद्धता को प्रभावित करते हैं प्रदूषक कहलाते हैं और उनकी उपस्थिति से जो वातावरण दूषित होता है उसी को प्रदूषण कहते हैं। प्रदूषण का असर जीव जन्तुओं पर तो होता ही है साथ ही साथ वह तमाम निर्जीव वस्तुओं पर भी बुरा प्रभाव डालता है।

प्रदूषण का कारण– यद्यपि प्रदूषण अनेक कारणों से होता है परन्तु शहरीकरण और औद्योगीकरण ही इसके प्रमुख कारण हैं।

ध्वनि प्रदूषण– अप्रिय या कर्कश ध्वनि, जो हानिकारक भी हो, ध्वनि प्रदूषण कहलाती है।

ध्वनि प्रदूषण के श्रोत– यातायात के साधन, कलकारखाने, लाउड स्पीकर, घरेलू उपकरण(बाल सुखाने वाली मशीन, ग्राइन्डर, मिक्सी, ब्लेंडर, दूरदर्शन, स्टीरियो, वैक्यूम क्लीनर, एअर कंडीशनर, कूलर, वाद्य यंत्र) पालतू जीव(कुत्ते) आदि।

ध्वनि प्रदूषण के प्रभाव

1 अधिक समय तक ध्वनि प्रदूषण के प्रभाव में रहने पर कानों मे सनसनाहट, आन्तरिक कानों की क्षति, असन्तुलन और अंततः बहरापन हो जाता है।
2 इसकी वजह से थकान, अनिन्द्रा, क्रोध, गल्तियां अव्यवहारिक आचरण दृष्टि गत होते हैं।
3 ध्वनि प्रदूषण की वजह से वैसोकान्सट्रिकसन रिफ्लेक्स पैदा होता है जो रक्त के बहाव को कम करता है।
4 ध्वनि प्रदूषण की वजह से आंख की पुतली बढ जाती है और दृष्टि दोष उत्पन्न होता है।
5 गैस्ट्रिक सीक्रेशन को कम करता है।
6 चक्कर आना और डायस्टोलिक ब्लड प्रेसर मे बढ़ोत्तरी होती है।
7 कार्डियोवैस्कुलर इन्जरी अल्सर इन्फेक्शन की संभावनाओं का बढना और रिप्रोडेक्टिव प्रॉबलम्स ध्वनि प्रदूषण के कारण हो सकती हैं।
8 ध्वनि प्रदूषण की वजह से एड्रीनेलिन रक्त संचार में पहुंचने लगता है। लगातार एड्रीनेलिन का बनना चिड़चिड़ापन, घबराहट, स्नायु ऊतकों मे तनाव, थकान, आवेष और चिंता का कारण बनता हैं।
9 हृदय रोगियों के लिये शोर अत्यन्त हानिकारक होता है क्योंकि यह सेरिब्रोस्पाइनल फ्ल्यूड पर दबाव डालता है और जिसकी वजह से ब्लड प्रेशर बढ़ जाता है।
10 लगातार होने वाले शोर से रक्त में कोलेस्ट्रॉल की मात्रा बढ जाती है जिसकी वजह से रक्त वाहिनियां संकुचित हो जाती हैं परिणामतः व्यक्ति हृदय घात का शिकार हो सकता है।
11 मृत बच्चों का जन्म या कम वजन के बच्चों का जन्म प्रायः एअर पोर्ट के नजदीक रहने वाली महिलाओं में देखने को मिलता है।
12 ध्वनि प्रदूषण की वजह से रक्त का बहाव उलटी दिशा में डाइजेस्टिव ऑर्गेन, त्वचा, दिमाग, से होने लगता है। मुँह भी सूख जाता है।
13 इसकी वजह से अनिद्रा, अति तनाव, यकृत रोग, व्यवहारिक तथा भावनात्मक दबाव, चक्कर आना, अति पसीना आना आदि लक्षण पाये जाते हैं।
14 इओसिनोफीलिया, हाइपरग्लाइसीमिया, हाइपोग्लाइसीमिया, हाइपोकैल्सीमिया आदि बीमारियां ध्वनि प्रदूषण के कारण हो सकती हैं।
15 सुपरसोनिक वायुयान सोनिक बूम का कारण होते हैं जिसकी वजह से खिड़कियों के शीशे टूट जाते हैं तथा मकान को भी क्षति पहुँच सकती है यही नहीं इसकी वजह से गर्भपात की संभावना भी बनती है।

ध्वनि प्रदूषण की रोकथाम

1 ध्वनि प्रदूषण को उसके उद्गम स्थान पर ही नियंत्रित करें।
2 इसके लिये ध्वनि प्रदूषण पैदा करने वाली मशीनों में परिवर्तन करके या उनके विकल्प तैयार करके। जैसे शोर करने वाले पंखों में ब्लेड की संख्या बढा कर साथ ही उनकी रोटेशनल स्पीड को घटाकर लेकिन हवा के बहाव को कम किये बिना।
3 शोर करने वाली मशीनों को इंसुलेटिंग मैटीरियल से कवर करके। मशीनों को पैड के उपर लगा कर।
4 इयरपफ पहन कर व्यक्ति ध्वनि प्रदूषण से खुद को बचा सकता है।
5 शोर करने वाले भारी वाहन का मार्ग बदल कर उन्हे शहरी सीमा से दूर रख कर।
6 शोर रहित दो पहिया, चौपहिया वाहन बनाकर।
7 नियम बना कर।
8 सरकारी गाड़ियों पर हूटर्स और सायरन का प्रयोग घटा कर।
9 रैलीज और धरना प्रदर्शन को शहरी सीमा मे प्रतिबंधित करके।
10 शोर करने वाले पटाखों का प्रयोग घटा कर।
11 धार्मिक स्थलों पर लाउड स्पीकरों के प्रयोग को कम कर के।
12 वृक्षारोपण के द्वारा। वृक्ष ध्वनि प्रदूषण को कम करने में सहायक होते हैं वे अवरोधक का काम करते हैं। दीवाल उठाकर भी ध्वनि प्रदूषण को कम किया जा सकता है।
13 शोर करने वाली मशीनों में तेल ग्रीस का प्रयोग करके।

ध्वनि प्रदूषण को मापने की यूनिट को डेसिबिल कहते हैं। केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड ने विभिन्न क्षेत्रों मे जो इसके अनुमन्य मानक तय किये हैं वे इस प्रकार हैं–

	दिन में	रात में
औद्योगिक क्षेत्र	75 डेसीबल	65 डेसीबल
व्यवसायिक क्षेत्र	65 डेसीबल	55 डेसीबल
आवासीय क्षेत्र	55 डेसीबल	45 डेसीबल
शान्त क्षेत्र	45 डेसीबल	35 डेसीबल

संदर्भ

1. शुक्ला, आर0 एस0 एवं चंदेल, पी0 एस0(2006) ए टेक्स्ट् बुक ऑफ प्लांट इकोलॉजी, मु0पृ0 1–544 एस0 चांद एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली।
2. मणिवसकम, एन0(1984) एनवायरनमेंटल पॉल्यूशन, मु0पृ0 1–160 नेशनल बुक ट्रस्ट ऑफ इंडिया, नई दिल्ली।
3. देसवाल, एस0 एवं देसवाल, ए0(2009) एनवायरनमेंट इकोलॉजी, मु0पृ0 1–741, धनपतराय एण्ड कम्पनी प्रा0 लि0 , नई दिल्ली।
4. डे, ए0 के0(2004) एनवायरनमेंटल केमेस्ट्री, मु0पृ0 1–406, न्यू ऐज इंटरनेशनल प्रा0 लि0 पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
5. अस्थाना, डी0 के0 एवं अस्थाना, मीरा(1984) ए टेक्स्ट् बुक ऑफ एनवायरनमेंटल स्टडीज, मु0पृ0 1–460, एस0 चांद एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली।
6. शर्मा, पी0 डी0(2012) इकोलॉजी और एनवायरनमेंट, मु0पृ0 1–643, रस्तोगी पब्लीकेशन, मेरठ।
7. अंजनेयूलू, वाई0(2005) इन्ट्रोडक्शन टू एनवायरमेंटल साइंस, मु0पृ0 1–745, बी0 एस0 पब्लीकेशन्स, हैदराबाद।

संस्कृतः एक सम्पूर्ण विज्ञान

कुलदीपक शुक्ल
प्रवक्ता, संस्कृत विभाग
अर्जुनगंज विद्या मंदिर डिग्री कॉलेज, लखनऊ
shuklakuldeepak10@gmail.com

प्राप्त तिथिः 28.03.2015, स्वीकृत तिथिः 18.05.2015

भारत को विश्वगुरु की उपाधि मिलने का मुख्य हेतु है– भारतीय संस्कृति। इस भारतीय संस्कृति की नीव संस्कृत भाषा पर आधारित है। यह एक मिथ्या धारणा है कि यह मात्र मन्दिरों या धार्मिक रीतियों में प्रयोग करने वाली भाषा है, जब कि संस्कृत साहित्य की अपेक्षा यह पांच प्रतिशत हैं। ६५% से अधिक संस्कृत साहित्य का धर्म या पौरोहित्य कर्म से कुछ भी लेना देना नहीं है। बल्कि इसके अतिरिक्त ये भाषा–दर्शन, कानून, ज्योतिष, व्याकरण, गणित, साहित्य, संगीत, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, आदि से सम्बन्ध रखती है। वास्तव में संस्कृत मुक्त विचारकों की भाषा थी उन विचारकों ने प्रत्येक क्षेत्र में प्रश्न उठाया तथा उनके विभिन्न विषयों पर विस्तृत रूप से अपने ही आप उत्तरों को व्यक्त किया।

विशेष रूप से प्राचीन भारत में संस्कृत वैज्ञानिकों की भाषा थी। हम आज अन्य देशों से विज्ञान में पिछड़े हो सकते हैं परन्तु एक समय ऐसा था जब भारत विज्ञान में समस्त विश्व का नेतृत्व कर रहा था। हमारे पूर्वजों की महान वैज्ञानिक उपलब्धियां तथा हमारी वैज्ञानिक विरासत भारत को आधुनिक समय में विज्ञान में आगे ले जाने के लिए हमें पुनः प्रेरणा एवं नैतिक शक्ति प्रदान करेगी।

इस भाषा को 'देववाणी' कहा जाता है। यह हमारे दार्शनिकों वैज्ञानिकों, गणितज्ञों, व्याकरण विदों, एवं राजनीतिज्ञों की भाषा थी। व्याकरण में पाणिनि एवं पतन्जलि (अष्टाध्यायी एवं महाभाष्य के लेखक) की विश्व में कोई समानता नहीं कर सकता। खगोल विद्या एवं गणित में आर्यभट्ट, ब्रहागुप्त एवं भास्कर की रचनाओं में मानवता के लिए नए द्वार खोल दिए। ठीक उसी तरह सुश्रुत एवं चरक ने चिकित्सा के क्षेत्र में किया। दर्शनशास्त्र में गौतम(न्यायव्यवस्था के संस्थापक), कपिल(सांख्य व्यवस्था के संस्थापक), शंकराचार्य, बृहस्पति आदि ने विस्तृत रूप से दर्शनशास्त्र की पद्धतियो(प्रयोगों) को प्रस्तुत किया जिनका विश्व में किसी ने भी दर्शन तक नही किया होगा। जैमिनी की रचना 'मीमांसा सूत्र' ने मूल ग्रन्थों की विचारयुक्त व्याख्या की सम्पूर्ण पद्धति की आधारशिला रखी जो न मात्र धर्म में प्रयुक्त हुई अपितु कानून, दर्शन तथा व्याकरण इत्यादि में भी प्रयोग की गई।

साहित्य के माध्यम से वाल्मीकि व्यास, कालिदास एवं भवभूति आदि ने समाज को जो जीवन मूल्य प्रदान किए हैं सभी वैज्ञानिक आधार पर ही हैं। महर्षि पाणिनि ने उच्चकोटि के संस्कृत व्याकरण का निर्माण किया जिसने वैज्ञानिक विचारों को सामर्थ्य प्रदान की ताकि विचारों को यथार्थता, शुद्धता, तार्किकता एवं स्वच्छता से व्यक्त किया जा सके। विज्ञान को तर्क एवं यथार्थता की आवश्यकता है। आजकल हमारे विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में पढ़ाई जाने वाली संस्कृत भाषा 'साहित्यिक संस्कृत या लौकिक संस्कृत' के नाम से जानी जाती है ।

सर्वप्रथम संस्कृत कृति 'ऋग्वेद' है जिसकी रचना लगभग 2000 ई0 पू0 मानी जाती है। यह विश्व साहित्य में सर्वपवित्र एवं प्राचीन ग्रन्थ है इसमें 1028 ऋचाओं के माध्यम से इन्द्र, अग्नि, सूर्य आदि देवताओं की स्तुति की गई है। वैदिक साहित्य के पश्चात् पाणिनि ने अपने समय की संस्कृत का सावधानी पूर्वक अध्ययन किया तथा इसे सुसंस्कृत, शुद्ध एवं व्यवस्थित किया। ताकि इसे शुद्ध, तार्किक, यथार्थ एवं महान बना सके। अतः पाणिनि ने संस्कृत को सरल रूप में विकसित कर अभिव्यक्ति का एक शक्तिशाली साधन बनाया। इस भाषा ने सम्पूर्ण भारत को एक समान बना दिया ताकि उत्तर, दक्षिण, पूरब और पश्चिम सभी दिशाओं के विद्वान एक दूसरे को समझ सकें।

आंग्ल भाषा में A से Z तक के वर्ण तार्किक एवं यथायोग्य विधि से व्यवस्थित नहीं हैं, परन्तु महर्षि पाणिनि ने मानव भाषा की ध्वनियों का सूक्ष्म निरीक्षण करने के बाद 14 सूत्रों में वर्णो को संस्कृत भाषा में वैज्ञानिक एवं तार्किक ढंग से व्यवस्थित किया। जैसे–स्वर – अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, सब मुख के आकार के अनुसार व्यवस्थित किए गए हैं। अ, ह एवं क वर्ग कण्ठ से, इ, श एवं च वर्ग तालु से, ऊ आदि होठों से उच्चारित किए जाते हैं। विश्व की किसी भाषा की वर्णमाला इस प्रकार के क्रम से व्यवस्थित नहीं हैं। तथा जब हम देखते हैं कि कितनी गहराई से हमारे पूर्वजों ने आसान तरीके से वर्णों को व्यवस्थित किया।

यहाँ न्याय एवं वैशेषिक पद्धतियों के बारे में बताना अत्यावश्यक है जिसने वैज्ञानिक दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया। न्याय दर्शन यह बताता है कि कुछ भी स्वीकार्य नहीं है जब तक कि यह तर्क और अनुभव के अनुसार न हो तथा यह स्पष्ट रूप से वैज्ञानिक मूल्य है। इस विषय में 'डी0 पी0 चट्टोपाध्याय' की पुस्तक 'what is living & what is Dead in Indian Philosophy' देखें जो कि भारतीय दर्शन शास्त्र पर एक प्रभावी कार्य है। वैशेषिक एक परमाणु सिद्धान्त है जो प्राचीन भारत का भौतिक विज्ञान है। मौलिक रूप से न्याय एवं वैशेषिक एक ही पद्धति से सम्बन्धित थे परन्तु भौतिक विज्ञान सभी विज्ञानो का मूलाधार है। वैशेषिक को बाद में न्याय से पृथक करके इसकी अलग पद्धति बनाई गई।

सांख्य दर्शन प्रायः इन दोनों से प्राचीन है परन्तु यह पद्धति अल्प आयु वाली रही अर्थात कहा जा सकता है कि निश्चित ही सांख्य दर्शन ने भौतिक वादी दर्शन की नीव रखी जिस पर न्याय एवं वैशेषिक दर्शन खड़े किए गये। यही नियम आइन्सटीन ने अपने $E=mc^2$ सिद्धान्त में प्रयोग किया जैसे 'शब्द प्रमाण' है।

न्याय दर्शन वैशेषिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। तथा यह प्रत्यक्ष प्रमाण पर अधिक बल देता है।(भले ही कुछ समय के लिए धोखा देने वाला होता है जैसे भ्रम या मृगतृष्णां) यह भी विज्ञान के समान है क्योंकि हम पूर्व से निरीक्षण, प्रयोग तथा तर्कों पर विश्वास करते हैं। प्रत्येक स्थिति में यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्यक्ष प्रमाण हमें सत्यज्ञान ही बताए–जैसे, हम देखते हैं कि प्रातः सूर्य पूर्व में उगता है दोपहर के समय ठीक हमारे ऊपर होता है तथा शाम को पश्चिम में अस्त हो जाता है यदि हम प्रत्यक्ष प्रमाण पर निर्भर है तो इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि सूर्य पृथ्वी के चक्कर लगाता है। यही महान गणितज्ञ 'आर्यभट्ट' ने अपने ग्रन्थ 'आर्यभट्टीयम्' में लिखा है कि यदि हम यह माने कि धरती अपनी धुरी पर चक्कर लगाती है तो उसी तरह का दृष्टिगत प्रभाव उत्पन्न होता ।

यह कहा जा सकता है कि न्याय दर्शन ने तर्क अत्यधिक विकसित किया तथा यह अरस्तू एवं ग्रीक के अन्य विचारकों से कही आगे था। तार्किक विचार विज्ञान के लिए परमावश्यक हैं अत : हम कह सकते हैं कि न्याय दर्शन नें भारत में विज्ञान को अधिक सम्बल एवं प्रेरणा प्रदान की तथा वह एक विशेष दर्शन के रूप में विख्यात हुआ। इस प्रकार हमारे महान वैज्ञानिकों को कष्ट नही पहुंचाना चाहिए। प्राचीन भारत में हर ओर वाद–विवाद एवं शास्त्रार्थ होते थे जिन्होंने लोगों की भीड़ में मुक्त विचारों को व्यक्त करने की आज्ञा दी तथा अपने विरोधी के प्रति आलोचना करने का तथा मुक्त रूप से विचारों में मतभेद करने का भी अवसर दिया विचारों को ऐसी स्वतन्त्रता तथा वर्णन ने विज्ञान के विकास को आगे बढ़ाया, इस प्रकार विज्ञान को भी विचारों की स्वतन्त्रता की आवश्यकता है, व्यक्ति को अपने विचारों को व्यक्त करने एवं मतभेद करने की स्वतन्त्रता हैं। महान वैज्ञानिक चरक ने अपनी पुस्तक 'चरक संहिता' में यह बताया है कि "विज्ञान के विकास के लिए वाद–विवाद आवश्यक है" विशेषकर व्यक्ति की मानसिकता के साथ वाद–विवाद करना।

अतः स्पष्ट है कि संस्कृत समस्त भाषाओं की जननी होते हुए सम्पूर्ण वैज्ञानिक वाङ्मय की धात्री भी है। विश्व का कोई भी विज्ञान संस्कृत के गर्भ या गोद से ही पोषित पल्लवित होकर समाज में व्याप्त होता है।

संदर्भ

1. अवस्थी, प्रेमा(1968) लघु सिद्धान्त कौमुदी(संज्ञा सन्धि प्रकरण), अष्टम संस्करण, भारतीय प्रकाशन, चौक, कानपुर।
2. उपाध्याय, बलदेव(1997) भारतीय दर्शन, शारदा मन्दिर, वाराणसी।
3. द्विवेदी, कपिल देव(2004) संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, रामनारायण लाल विजयकुमार, 2 कटरा रोड, इलाहाबाद।
4. आर्यभट्ट(2008) आर्यभट्टीयम्, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी।
5. बाहरी, चित्रा(1985) नीतिशतकम, प्रथम संस्करण, साहित्य सदन प्रकाशन, चित्रकूट धाम, कर्वी, बांदा।
6. चौधरी, रामविलास(1996) वैदिक साहित्य का समालोचनात्मक इतिहास, प्रथम संस्करण, मोतीलाल बनारसीदास, बैंग्लो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली।
7. जैमिनी(1987) मीमांसा दर्शनम्, प्रथम संस्करण, तारा प्रिन्टिंग प्रेस, वाराणसी।
8. पुरी, जी0 के0(1997) अर्थशास्त्रम्, प्रथम संस्करण नेशनल बुक ट्रस्ट ऑफ इंडिया ए–5 ग्रीन पार्क, नई दिल्ली।
9. मिश्र, राजेश्वर(2008) नीतिशतकम्, प्रथम संस्करण, अक्षयवट प्रकाशन, इलाहाबाद।
10. शर्मा, विष्णु(1935) पंचतन्त्रम्, मार्गव पुस्तकालय, गया घाट, काशी।
11. शर्मा, विष्णु(सम्वत् 2034) शान्तिपर्व महाभारत, पंचम् संस्करण, गीता प्रेस, गोरखपुर।
12. शर्मा, विष्णु(सम्वत् 2067) श्रीमद्भागवतमहापुराण, पंचम् संस्करण, गीता प्रेस, गोरखपुर।
13. शास्त्री, जनार्दन(1984) मनुस्मृति, प्रथम संस्करण, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी।

मानव में लैंगिक व्यवधान–वास्तविक या मनोवैज्ञानिक

एस0 सी0 शुक्ल
अ0प्र0 विभागाध्यक्ष, प्राणि विज्ञान विभाग
बी0एस0एन0वी0 पी0जी0 कॉलेज, लखनऊ–226001
पत्राचार हेतु पता: ए–114, इन्दिरा नगर, लखनऊ–226016

प्राप्त तिथि: 10.04.2015, स्वीकृत तिथि: 23.09.2015

मानव में आदि काल से ही लिंग/काम/यौन संबंधी चर्चा, ज्ञान न केवल जिज्ञासा, कौतूहल का ही विषय न होकर रूचि का भी विषय रहा है। हालाँकि मानव में लिंग का कार्य प्रारम्भिक सन्तानोत्पत्ति से हटकर आनन्द की अनुभूति प्राप्त कराकर उसे प्रसन्नचित, तनावमुक्त, चिन्ता के निवारण के साथ व्यवहार, आपसी व्यवहार, तथा उसके व्यक्तित्व के निर्माण में ज्यादा योगदान देता दिखाई देता है व प्रमुख भूमिका का निर्वाहक हो गया है। यही कारण है कि मनुष्य सदैव से सजग रहा कि उसकी लैंगिकता/यौनता/कामशक्ति सदैव सामान्य बनी रहे व इसमें कोई भी व्यवधान न आने पाये। राजा, महाराजा, नवाब, धनाड्य व्यक्ति इस शक्ति को बनाये रखने के लिए अनेक प्रकार की औषधियों जैसे रस–रसायनों, भस्मों व महँगी जड़ी बूटियों के ऊपर अच्छी धनराशि खर्च करते रहे हैं जिनका प्रभाव वास्तव में कितना असरदायक होता है यह केवल विक्रेता या उपभोक्ता ही भली–भाँति जानते होंगे या बता सकते हैं।

मनुष्य जाति में लैंगिक व्यवधान(डिस्फंक्शन्स) किसी शारीरिक, शरीर क्रिया(कार्यिकी), मनोविज्ञान या सामाजिक कारकों द्वारा जनित हो सकते हैं जो उनका व्यवहार, आचरण, दृष्टिकोण, स्वअन्योन्यक्रिया(आटो इन्टरेक्शन), पारस्परिक व्यवहार से सम्बद्ध अन्योन्य प्रक्रिया(इन्टर–पर्सनल इन्टरेक्शन) स्त्री व पुरुष दोनों ही में प्रभावित करते रहते हैं। इन सभी समस्याओं को तीन प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है जो निम्नलिखित होती हैं:–

1. कार्यिकी सम्बद्ध समस्यायें, 2. मनोवैज्ञानिक समस्यायें, 3. सामाजिक समस्यायें।

यहाँ यह स्पष्ट रूप से जानना आवश्यक होगा कि किसी भी समस्या से ये तीनों समस्यायें जुड़ी होती हैं उदाहरणार्थ– शरीर के किसी भी भाग में उत्पन्न समस्या द्वारा कार्यिकी में अवरोध उत्पन्न हो सकता है जिसके मनोवैज्ञानिक प्रभाव की दशा सामाजिक समस्याओं को जन्म दे सकती हैं।

कार्यिकी सम्बद्ध समस्यायें

इस प्रकार की समस्याओं को निम्नलिखित रूप से समझाया जा सकता है। ये समस्यायें, जो विशेषकर योनता या लैंगिक रूप की होती हैं, सामान्यतः उन लोगों में देखी जा सकती हैं जिनमें वाह्य लैंगिक अंगों(इक्सटरनल जेनिटोलिया) का विकास कम होता है या फिर लैंगिक प्रजनन से जुड़ा हुआ शारीरिक तंत्रिका प्रणाली तंत्र(न्यूरोफिजिओलॉजिक सिस्टम) जो लैंगिक कार्यिकी का नियंत्रण करता है कुछ अवरुद्ध होता है। ये समस्यायें किसी प्रकार के शारीरिक क्रिया प्रणाली से जुड़े हुए कारकों से सम्बद्ध होती देखी गई हैं।

(अ) पुरुषों में इस प्रकार की लैंगिक समस्यायें निम्नलिखित हो सकती हैं:–

शुक्राणुओं की संख्या– सामान्य पुरुष में शुक्राणुओं की संख्या 100 मिलियन/एम0 एल0 वीर्य हुआ करती है। कभी–कभी विकृति की अवस्था में यह 20 मिलियन/एम0 एल0 वीर्य तक पहुँच जाती है जिसको अशुक्रणुता या शुक्राणुहीनता कहा जाता है। इस प्रकार की दशा में पुरुष के निःसंतान होने की संभावना हो सकती है।

वृषण हार्मोन(टेस्टेस्टेरॉन) का स्राव– बहुत से पुरुषों में 40 वर्ष की आयु के बाद वृषण हार्मोन का बनना घटने लगता है जिससे पुरुषों में स्त्रियों के रजोनिवृत्ति(मीनोपॉज) की भाँति पुःनिवृत्ति(एण्ड्रोपॉज) के लक्षण 60 वर्ष की आयु पर दिखने लगते हैं। इस हार्मोन की कमी से पुरुषों में स्त्रियों की रजोनिवृत्ति से मिलते–जुलते लक्षण जैसे अधिक परीना आना, अवसाद की स्थिति(डिप्रेशन), कार्यक्षमता में गिरावट, एकाग्रता का ह्रास दिखाई देने लगते हैं। हार्मोन की कमी होने से मनुष्य की कार्य प्रणाली में होने वाले परिवर्तन उसके लैंगिक व्यवहार में दिखाई देने लगते हैं जिसका प्रथम स्वरूप उसकी काम इच्छा(सेक्सुअल डिजायर) की गिरावट के रूप में देखा जा सकता है। फलतः पुरुष अपनी पत्नी की ओर कम आकर्षित होना प्रारम्भ करने लगता है। रति क्रीड़ा की शुरुआत में भी कमी होने लगती है। जिससे वह अपनी पत्नी के इस प्रकार की उसकी इच्छा के इशारों को भी नजरअंदाज करना प्रारम्भ करने लगता है। इसके अतिरिक्त पौरुष ग्रन्थि का प्रवाह(प्रोस्टेटाइटिस),

उच्च रक्तचाप भी इस दिशा में अपना प्रभाव डाल सकते हैं। यह भी देखा गया है कि अत्याधिक धूम्रपान, अत्यधिक मद्यपान, तनाव(स्ट्रेस) आदि भी काम इच्छा में कमी लाते हैं।

शिश्न तन्यता का व्यवधान/उच्छायी शिथिलता(इरेक्टाइल डिसफंक्शन)– यह स्थिति आयु के कारण कम परन्तु सामान्यतः किसी बीमारी के कारण अवश्य होती देखी गई है। अध्ययनों से स्पष्ट है कि 75% इस प्रकार की समस्याएं शारीरिक कमियों/क्षमताओं के कारण हो सकती हैं परन्तु 25% विशुद्ध मनोवैज्ञानिक कारणों द्वारा उत्पन्न होती हैं। आमतौर पर मधुमेह के रोग से पीड़ित व्यक्तियों, उच्च चाप वाले रोगियों व हृदय–रोगों के व्यक्तियों में भी ऐसी स्थिति देखी जा सकती है, साथ ही जीवन शैली से सम्बद्ध समस्यारं, अधिक धूम्रपान, अधिक मद्यपान, तनाव आदि भी काम इच्छा में कमी उत्पन्न करते देखे गये हैं।

रक्त संचरण में कमी– आयु के साथ जननांगों में रक्त संचरण की कमी से इनकी संवेदनशीलता घटने लगती है जिससे लैंगिक चर्मोत्कर्ष(ऑर्गेज्म) की स्थिति बहुधा नहीं आने पाती। यह विकार शिश्न मुण्ड(गलान्स) की संवेदनशीलता में कमी के कारण भी होना माना जा सकता है। कुछ व्यक्ति ऐसा न हो पाने पर चिन्तित होने लगते हैं परन्तु कुछ इस प्रकार की स्थिति में अधिक आनंद प्राप्त करते हैं। यह भी देखा गया है कि वृद्ध पुरुषों में लिंग चर्मोत्कर्ष की स्थिति नये अनुभव करने वाले से भिन्न होती है।

पारस्परिक लैंगिक व्यवहार का अभाव– कुछ दम्पतियों में, जिनमें अनेकों वर्षों का अलगाव रहा है, ऐसी स्थिति में पुरुष को अवसर मिलने पर भी संसर्ग आनन्ददायक नहीं होता क्योंकि उनमें शिश्न के खड़े रहने की समस्या(उच्छायी समस्या) प्रभावित हो जाती है जिससे वे आनन्द से वंचित हो जाते हैं।

बहुस्नायी विक्षति(मल्टीपल स्क्लीरोसिस)– मस्तिष्क व सुषुम्ना रज्जु पर छोटी–छोटी विक्षतियों का बन जाना जिससे मस्तिष्क, सुषुम्ना व तंत्रिका तंत्र प्रभावित होते हैं, ये दुष्प्रभाव जनन तंत्र को भी प्रभावित कर देते हैं जिससे लैंगिक कार्य प्रणाली व योनता प्रभादित हो सकते हैं तथा काम इच्छा के अनुभव होने में कमी आ सकती है।

आघात, पेशीय व्यवधान आदि– कोई आघात, मेरुदण्ड भाग में पेशीय जनित चोट आदि शारीरिक नियंत्रण को प्रभावित करते देखे जाते हैं। जिससे काम इच्छा प्रभावित हो सकती है। किसी बीमारी के चलते पत्नी से दूर रहने का यह अर्थ कतई न लगाया जाना चाहिए कि व्यक्ति लैंगिक आचरण ही भूल जाय या छोड़ दे। ऐसी परिस्थितियों में दम्पत्तियों के लिए यह आवश्यक है कि वे खुले मन से व पूर्ण ईमानदारी से एक दूसरे को बतायें कि उनकी इस दिशा में क्या इच्छा है तथा वे क्या करना चाहते हैं

पत्नी की मृत्यु हो जाना– पत्नी की अचानक मृत्यु हो जाने या फिर उसे कोई असाध्य शारीरिक रोग हो जाने के कारण अनेक पतियों को एकल रहना उनकी योनता को प्रभावित कर सकता है। ऐसी परिस्थिति नें यदि किन्हीं अपरिहार्य कारणों से पुनर्विवाह की स्थिति में न हो तथा उसे अधिक काम इच्छा अनुभव होती है तो निःसंकोच हस्तमैथुन का सहारा ले सकता है। किसी भी व्यक्ति, जो अपनी परिस्थितियों से संतुष्ट है, के बारे में अपसामान्य की अवधारण न बनाई जाय(यह आवश्यक है)। स्त्रियों में इस प्रकार की सम्बद्ध समस्यायें निम्नवत हो सकती हैं–

1. **मासिक धर्म सम्बन्धी व्यवधानों से जुड़ी समस्याएं**– जैसा कि हमें ज्ञात है कि मानव जाति में प्रजनन चक्र मासिक(आर्तव) प्रकार का होता है। स्त्री की शारीरिक कार्यिकी के अनुसार उसका मासिक धर्म चक्र भी प्रभावित हो सकता है जो अनेकों प्रकार की समस्याओं को पैदा कर सकता है, उदाहरणार्थ, अनार्तव/एमीनोरिया(अर्थात् मासिक धर्म का न होना जो प्रारम्भ ही से शुरू नहीं हुआ या गर्भावस्था के कारण बंद हो गया। यह विकार पीयूष ग्रन्थि या अण्डाशयों में मूलभूत विकृतियों के कारण होता देखा गया है। भावनात्मक तनाव भी कभी–कभी इसमें योगदान दे सकता है।), अपर्याप्त आर्तव/ओलाइगोमिनोरिया(जिस परिस्थिति में थोड़ा मासिक धर्म होता देखा जाता है), असामान्य आर्तव/मीनोरीजिया(जिसका अर्थ होता है सामान्य से अधिक मासिक धर्म होने की अवस्था), अति रक्त आर्तव(अत्यार्तव)/मीनोरीजिया(अर्थात् बहुत अधिक रक्त स्राव वाला मासिक धर्म), अनियमित अत्यार्तव(अनियमित अधिमासिक स्राव)/मीनोमेट्रोरीजिया(अत्याधिक एवं अनियमित मासिक धर्म होने की स्थिति), गर्भाशयी रक्तस्राव/मीट्रोरीजिया(जिसमें मासिक धर्म के समय गर्भाशय से भी रक्तस्राव हुआ करता है), अस्थाई रजोवरोध/मीनोलिपसिस(अर्थात् मासिक धर्म का अस्थायी रूप से रुक जाना), रजोधर्म अवरोधन/मीनोस्कीसिस(अर्थात् मासिक धर्म का रुक जाना), रजोधर्म आवर्तन वृद्धि। मीनोस्टैक्सिस(अर्थात् मासिक धर्म का समय बढ़ जाना), मासिक धर्मीपूरिता/मीनोसेप्सिस(अर्थात् मासिक धर्म के रक्त का विषाक्तन हो जाना), मूत्राशयी रज/मीनोयूरिया(अर्थात् मूत्राशय के मार्ग से रज होना), कष्टप्रद आर्तव/डिसमीनोरिया(ऐसा मासिक धर्म जिसमें स्त्री को अत्याधिक कष्ट का अनुभव करना पड़ता है), इत्यादि।

2. बहुपुटी अण्डाशय(पॉलिसिस्टिक ओवरी)– स्टीन–लिवेथॉल संलक्षण के कारण अण्डाशय में अनेक पुटियों(सिस्ट्स) बन जाने के फलस्वरूप स्त्री में अनार्तव की दशा देखी जा सकती है और यह भी देखा गया है कि इस प्रकार की स्त्री बहुधा संतान नहीं उत्पन्न कर सकती। इस संलक्षण से ग्रस्त महिलाओं में अतिरोमता(हिरुसिटिज्म) भी देखा गया है जिससे उनमें पुरुषों के लक्षण(दाढ़ी, मूँछ, रोम, भारी आवाज) आदि भी उत्पन्न होते देखे गये हैं। इन महिलाओं में टेस्टेस्टेरॉन(वृषण हार्मोन) के स्तर की अधिकता रक्त में देखी जाती है।

3. चियारी–फ्रोमेल संलक्षण– यह रोचक परन्तु बहुत कम पाई जाने वाली स्थिति होती है जिसमें, विशेषकर उन महिलाओं में जो प्रसव के बाद स्तनपान नहीं कराती हैं इस दशा में अनवरत दुग्ध प्रवाह(गैलेक्टोरिया) तथा अनार्तव की परिस्थितियाँ देखी जाती हैं। यह संलक्षण जननांगों की अपुष्टि(एट्रोफी) तथा उनमें आकार व क्रियाविधि में क्षीणता आने की दशा में उत्पन्न होता देखा गया है। इस संलक्षण में स्त्री की अग्र पीयूष ग्रन्थि से फोलिकिल स्क्रीटिंग हार्मोन(एफ0एस0एच0), जो डिम्ब ग्रन्थि में कूप की वृद्धि(कोशाओं का समूह जो अंडाशय से निकले अण्डे के चारों ओर घेरे होता है) तथा शुक्र ग्रन्थि में शुक्रजनन को उत्तेजित करता है, के स्रावण के बजाय स्तन प्रेरक हार्मोन(पोलैक्टिन) का स्रावण बना रहता है। अनगर्भवती महिलाओं में, पीयूष ग्रन्थि की अनअभिरंजित कोशिकाओं(क्रोमोफोब सेल्स) में अर्बुद पाये जाने के कारण तथा कैंसर की चिकित्सा के दौरान पीयूष ग्रन्थि के स्टेम कट जाने के कारण भी यह स्थिति देखी जा सकती है।

4. कभी–कभी अत्यार्तव(मीनोरीजिया) इस्ट्रोजेन बनाने वाली अण्डाशयों में स्थित कोशिकाओं में बचपन ही में अर्बुदों(ट्यूमर) के कारण हो सकता है तथा ऐसे में समय पूर्व लैंगिक विकास भी देखा जाता है।

5. मिथ्या गर्भ(स्यूडोसाईसिस) कभी–कभी स्त्रियों को गर्भावस्था जैसी स्थिति की अनुभूति होती है परन्तु वे वास्तव में गर्भवती नहीं होतीं। ऐसी दशा में उनमें गर्भावस्था के अनेक लक्षण जैसे अनार्तव की दशा, उदर का बढ़ना, स्तनों में परिवर्तन, प्रातः कालीन समय में आलस्य, निद्रा आदि की दशा(मॉर्निंग सिकनेस) उत्पन्न होने लगती है, जो भावनात्मक प्रभावों द्वारा प्रेरित अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के द्वारा स्रावित हार्मोनों के कारण हो सकता है।

6. रजोनिवृत्ति(मीनोपॉस)– इस दशा में इस्ट्रोजेन हार्मोन के स्रावण के घटने के साथ–साथ अन्ततः उसकी समाप्ति देखी जाती है परन्तु इसमें उस महिला की काम इच्छा पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं देखा जाता। कभी–कभी विपरीत स्थिति भी देखी गई है जिसमें अण्डाशयों से टेस्टेस्टेरॉन का बनना जारी रहता है जिससे काम इच्छा में वृद्धि देखी जाती है व उस महिला के पति को बहुत आश्चर्य होता है कि उसकी पत्नी काम इच्छा की दिशा में अभूतपूर्व सक्रियता दिखा रही है। आमतौर पर रजोनिवृत्ति के बाद महिलायें काम इच्छा के संदर्भ में निष्क्रिय ही देखी गई हैं।

7. योनि श्लेष्मा का सूखने लगना– योनि की श्लेष्मा द्वारा स्रावण संसर्ग की क्रिया में सुविधा व आनन्द देता है इसके सूखने(स्राव में कमी) के कारण दम्पत्तियों में संसर्ग अत्यन्त वेदनापूर्ण हो जाता है। योनि मार्ग में इस्ट्रोजेन के स्राव की कमी द्वारा सूजन की दशा उत्पन्न होने लगती है जिससे संसर्ग के दौरान न केवल आनन्द की अनुभूति ही नहीं रुक जाती है यद्यपि अनुरागहीन साथी के साथ भी सहवास कभी–कभी कष्टदायक देखा गया है।

मनोवैज्ञानिक समस्याएं

काम शक्ति व्यवधानों में इस प्रकार की समस्याओं का योगदान अत्याधिक महत्वपूर्ण होता है। समाज में इस क्षेत्र में व्याप्त मिथ्या विचार, भ्रम व ज्ञान की कमी इन समस्याओं के मूल जनक हैं। इनका अनेक पत्र–पत्रिकाओं, वैवाहिक जीवन की गाइडों तथा सामान्य संप्रेषण की बातों से भी काफी घना सम्बन्ध है। उदाहरणार्थ– एक सुदृढ़ काम शक्ति का तात्पर्य लिंग के शीघ्र व सुचारु रूप से खड़े होने, देर तक सहवास का चलना फिर काम चर्मोत्कर्ष की स्थिति से आंकलित किया जाता है जिनका वास्तविकता से लेशमात्र का लेना–देना नहीं होता वरन ये मनुष्य में हीन भावना, चिन्ता, सामर्थ्यहीनता जैसी अनावश्यक चीजों को उत्पन्न करने में सहायक हो सकती हैं।

(अ) पुरुष वर्ग में इस प्रकार की समस्याएं निम्नवत देखी जा सकती हैं–

1. शीघ्र पतन/शीघ्र स्खलन(प्रीमेच्योर इजेक्यूलेशन)– यह समस्या युवाओं में अत्याधिक सामान्य रूप से देखी जाती है जो कभी–कभी मनोवैज्ञानिक समस्याओं का क्रम न होकर काफी समय से काम इच्छा पूरी न हो पाने से अत्याधिक तनाव का कारण भी हो सकती है। सहवास या संसर्ग द्वारा इसे दूर किया जा सकता है जिसमें विभिन्न उपायों का प्रयोग बताया गया है जैसे पत्नी को रति क्रिया के दौरान अत्याधिक उत्तेजित करना जिससे वह संसर्ग करते ही काम चर्मोत्कर्ष पर पहुँच जाय(कभी–कभी यह पुरुषों में अधिक उत्तेजना पैदा कर देता है जिससे मकसद की पूर्ति नहीं होती अतः पुरुष को इस दिशा में सजग रहना आवश्यक है)। मास्टर्स एण्ड जॉनसन ने यह भी सुझाया है कि स्त्री को पुरुष के शिश्न को मुण्ड के नीचे

अँगुलियों से कस कर दबाना चाहिए जिससे स्खलन रुक सके। एक बार दम्पत्ति यह समझ सकें कि इसे रोका जा सकता है तो उनकी इस ओर से समस्त चिन्तायें दूर हो जाती हैं तथा वे सहवास का आनन्द इस क्रिया के बिना भी उठा सकते हैं।

2. **उत्थान/हर्षण सम्बद्ध नपुंसकता(इरेक्टाइल इम्पोटेन्सी)**–चालीस वर्ष से कम आयु के मनुष्यों में लिंग हर्षण एक मनोवैज्ञानिक समस्या हो सकती है परन्तु अधिक आयु के मनुष्यों में यह शारीरिक समस्या भी हो सकता है क्योंकि पुरुष अपने ही कुविचारों के जाल में इतना फँस जाता है कि वह अपने आप को नपुंसक समझने लगता है। इसे दूर करने का एक मात्र उपाय है कि मनुष्य सफलतापूर्वक सहवास के अभ्यास पर अपने को केन्द्रित करे जिससे उसका असामान्य भ्रम दूर हो जाय। इस प्रकार के रोगियों को कोई औषधि की आवश्यकता नहीं होती है। थोड़ी बहुत मनोचिकित्सा या व्यावहारिक चिकित्सा की आवश्यकता केवल उन परिस्थितियों में ही पड़ सकती है जिनमें कोई जाने अंजाने शत्रुता/नाराजगी, भ्रम, ग्लानि, अपर्याप्तता आदि की मन में कोई गहरी गाँठ पड़ गई हो। प्राथमिक नपुंसकता की चिकित्सा काफी कठिन है क्योंकि व्यक्ति में वह हर्षण की स्थिति नहीं बन पाती जो संभोग के लिए आवश्यक होती है।

3. **स्खलन–सम्बद्ध नपुंसकता**– किसी भी मनुष्य में सहवास के दौरान वीर्य स्खलन न हो पाने की अक्षमता को इस प्रकार की नपुंसकता से जुड़ा हुआ माना जा सकता है। किसी हद तक यह चिन्ता का विषय नहीं होती क्योंकि लैंगिक उद्दीपनों के प्रति संवेदना की सीमा तंत्रिका कार्यिकी(न्यूरोफिजियोलॉजी) पर निर्भर करती है।

(ब) महिलाओं में इस श्रेणी की समस्यायें निम्नलिखित हो सकती हैं–

1. **योनि–आकर्ष(वेजाइनिज्मस)**– यह दशा स्त्री के श्रोणि भाग में उत्पन्न आकस्मिक तेज ऐंठन/उद्वेष्ट(पेल्विक स्पाज्म) से पैदा योनि मार्ग के अत्याधिक संकुचन हो जाने के कारण होती है जिसके कारण उसके लिए सहवास वेदनादायक, कष्टप्रद तथा कभी–कभी असंभव हो सकता है। काम इच्छा के प्रति विपरीत भावना या किसी मनोवैज्ञानिक आघात से यह समस्या सम्बद्ध हो सकती है जिसके कारण सहवास के प्रति एक प्रतिरोधी भावना स्थायी रूप से स्त्री में उत्पन्न हो जाती है। मनोचिकित्सा द्वारा या फिर शल्य द्वारा योनि मार्ग को चौड़ा करके इससे मुक्ति पायी जा सकती है।

2. **पीड़ामय लैंगिक संसर्ग(डेसपेरुनिया)**– ऐसी स्थिति में लैंगिक संसर्ग अत्यन्त पीड़ादायक होता है तथा यह दशा शारीरिक ज्यादा व मनोवैज्ञानिक कम होती है। अनुभवहीन महिलाओं में यह भय व्याप्त होता है कि योनि में वे इतने बड़े शिश्न का प्रवेश कैसे सहन कर पायेंगी। यह भय बेकार की बात है तथा वास्तविकता से इसका कोई लेना–देना नहीं क्योंकि कामोत्तेजना के दौरान योनि मार्ग अत्याधिक लचीला हो जाता है जिससे एक छोटी से छोटी स्त्री भी अत्याधिक बड़े आकार के शिश्न का प्रवेश अपनी योनि में बिना पीड़ा के करवा सकती है।

3. **लैंगिक चर्मोत्कर्ष प्राप्त न होना(एनॉरगेज्मी)**– कुछ महिलाओं में लैंगिक चर्मोत्कर्ष पर न पहुँच पाने की कमी देखी जाती है। यहाँ उस स्त्री में जो कामोत्तेजित तो हो जाती हैं परन्तु लैंगिक चर्मोत्कर्ष तक नहीं पहुँचती तथा दूसरी जो कामोत्तेजित होती ही नहीं दोनों में स्पष्ट अंतर जानना आवश्यक है। अधिकांश महिलाओं को लैंगिक चर्मोत्कर्ष का ज्ञान ही नहीं होता परन्तु उन्हें यह जानना आवश्यक है कि इसे कैसे प्राप्त किया जा सकता है क्योंकि एक बार उन्हें यदि इस स्थिति का पता लग जाता है तो इस दिशा में अनुभव प्राप्त होने के बाद उसे प्राप्त करने की दिशा में उनकी आवृत्ति बढ़ी देखी गई है। ऐसा भी देखा गया है कि कई स्त्रियों में कारगर संसर्ग के ज्ञान का अभाव होता है तथा वे पलंग पर मात्र निष्क्रिय लेटकर अपने पति से अपेक्षा करती हैं कि वह उनको संतोषजनक संसर्ग व उसके बाद लैंगिक चर्मोत्कर्ष की अवस्था तक ले जाय। कुछ स्त्रियाँ इस अवस्था को ज्यादा पसंद नहीं करती क्योंकि उन्हें पूर्वाग्रह द्वारा जनित यह भय होता है कि वे अपने पति के पूरी तरह वश में हो जायेंगी व उनका अपना अहम कम हो जायेगा(वैसे यह स्थिति भयावह भी हो सकती है)। अन्ततः यह कहा जा सकता है कि लैंगिक चर्मोत्कर्षतक न पहुँच पाने की स्थिति मनोवैज्ञानिक कारणों से ही सम्बद्ध है जो बचपन से ही लैंगिक उद्दीपनों के प्रति दूर रखने की सीख, शिक्षा का प्रभाव हो सकता है जो उनके अपने अहम् को बनाये रखेगा। कुछ महिलाओं में इस क्रिया से सम्बद्ध तंत्रिका–स्रावी कार्यिकी(न्यूरो सिक्रटरी फिजियोलॉजी) का अभाव हो सकता है। इस स्थिति में उनके मन से विषमताओं की भावना निकालकर, उन्हें संसर्ग की तकनीक(बिना संसर्ग) सिखाकर लैंगिक चर्मोत्कर्ष तक लाने का प्रयास करना चाहिए। इस चिकित्सा का सही असर तब होता है जब स्त्री के मन में यह बात बैठ जाय कि चर्मोत्कर्ष तक न पहुँचने की स्थिति उनके पति में कोई कमजोरी के कारण नहीं है। ऐसा भी लोगों का मत है कि लैंगिक चर्मोत्कर्ष के बिना भी संसर्ग अत्याधिक आनन्ददायक हो सकता है क्योंकि कुछ महिलाएं इसके बिना ही संसर्ग में अधिक आनन्द प्राप्त करती हैं पर इस बात को इनके चिन्तित पतियों को भली–भांति जान लेना अति आवश्यक है।

4. **अवरुद्ध काम इच्छा(इनहिबिटेड सेक्सुअल डिजायर)**– लगभग 30–50% रजोनिवृत्ति वाली महिलाओं में मनोयोनीय अवरोध से योन भावना अवरुद्ध हो जाती है क्योंकि इस स्तर तक पहुँची महिलाओं में पारिवारिक दायित्व, मातृत्व का भार,

गृहणी व बहू आदि की जिम्मेदारी का भार सदैव मानसिक तनाव के रूप में बना रहता है जिससे वे पति की इच्छा होने के बावजूद भी संसर्ग हेतु आसानी से राजी नहीं होती।

5. **ढलती उम्र**– महिलाओं में ढलती उम्र के साथ–साथ अपना गिरता हुआ सौंदर्य देखकर एक विचित्र स्थिति उत्पन्न हो जाती है कि उनका पति अब उन्हें क्या चाहेगा अतः यह कुविचार उनके लिए विषम समस्या बन सकता है विशेषकर उस समस्या के युग में जहाँ यौवना का शरीर व उसका सौंदर्य खूबसूरती का पैमाना माना जाता हो। इनके लिए यह आवश्यक सुझाव है कि वे अपने शरीर व सुंदरता(बिना उम्र की ओर ध्यान दिये) का पूरा आनन्द लें। जिससे हो सकता है उनमें काम इच्छा जागृत हो जाय।

सामाजिक समस्याएं

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है अतः उसका सामाजिक परिवेश भी उसकी योनता(सेक्सुअलिटी) को काफी हद तक प्रभावित कर सकता है। देखा गया है कि इस दिशा में अनेक प्रकार की सामाजिक मान्यतायें, बंधन, भ्रम, कुविचार/कल्पनाएं, धारणाएं, अनेक लैंगिक व्यवधानों का कारक हो सकती हैं जिन्हें निम्न प्रकार से समझाया जा सकता है–

(अ) **सामाजिक व पारिवारिक बंधन**– पारिवारिक धारणाओं, सामाजिक स्तर, दायित्वों, कुविचारों, भ्रमों के कारण पति और पत्नी स्वयं में संप्रेक्षण ठीक से नहीं कर पाते हैं कि उन्हें अपने आनन्द के लिए क्या करना चाहिए व क्या नहीं करना चाहिए।

(ब) **गलत संकल्पनाएं व भावनाएं**– बहुधा 50 वर्ष की आयु के बाद पति–पत्नी में ऐसी भावना आ जाती है कि उनके लिए अब लैंगिक इच्छा व जीवन की कल्पना भी ठीक नहीं तथा उन्हें यह काम अब शोभा नहीं देता(लोग क्या कहेंगे?) उनका यह भी विचार बनने लगता है कि ये सारी बातें जवानों के लिए हैं व हम खूसट बुड्ढों का इनसे क्या सरोकार?

(स) **सामाजिक दायित्व/अधिकार**– इस प्रकार के अनावश्यक बन्धनों का सामान्य यौन जीवन में कोई स्थान नहीं होना चाहिए। क्योंकि देखा गया है कि इनमें दुष्प्रभाव से सामान्य इच्छुक दम्पत्तियों में भी काम इच्छा घटने लगती है जब ये कारक उनके जीवन में प्रबल स्थान बना लेते हैं।

अन्ततः यह कहा जा सकता है कि अनेक लैंगिक समस्याओं पर काबू पाया जा सकता है यदि हममें आपस में कारगर संप्रेषण होता रहे जिससे हम चारों ओर की अनावश्यक चीजों पर ध्यान न दे पायें।

संदर्भ

1. हेस्टाक, एम0(1967) फिजियोलॉजी ऑफ कोर्टशिप एण्ड मेटिंग बिहेवियर, एडवांसेज इन रिप्रोडक्टिव फिजियोलॉजी, खण्ड 2, मु0पृ0 9–51।
2. वैन्डर, एच0(1955) सेक्स लाइफ ऑफ एनीमल्स, जी0 सी0 विलियम्स।
3. रेजिलियनेन, रीनो(2007) सेवेन मिथ्स एबाउट सीनियर सेक्स, रीडर्स डाइजेस्ट, मु0पृ0 47–53।
4. शुक्ला, एस0 सी0 एवं गर्ग, पी0 के0(1984) मेन्स्ट्रुअल डिसऑर्डर एण्ड प्रीमेन्स्ट्रुअल सिन्ड्रोम, हेराल्ड ऑफ हेल्थ, खण्ड 61, अंक 3।
5. शुक्ला, एस0 सी0 एवं गर्ग पी0के0(1985) साइकोफिजियोलॉजी ऑफ ह्यूमन सेक्सुअलिटी, हेराल्ड ऑफ हेल्थ, खण्ड 61, अंक 4।

प्लास्टिक

ए0 के0 चतुर्वेदी
अ0 प्र0 उपाचार्य, रसायन विज्ञान विभाग
डी0 एस0 कॉलेज, अलीगढ़, उ0प्र0, भारत
पत्राचार हेतु पता–28, कावेरी एन्क्लेव, फेज दो
निकट स्वर्ण जयन्ती नगर, रामघाट रोड, अलीगढ़–202001, उ0प्र0, भारत

प्राप्त तिथि–10.04.2015, स्वीकृत तिथि–10.05.2015

आवश्यकता आविष्कार की जननी होती है। जनसंख्या विस्फोट शहरीकरण, वाहनों की संख्या में वृद्धि, अत्यधिक औद्योगीकरण के कारण जंगलों की कटाई और सफाई की जा रही है। फिर भी प्राकृतिक कच्चे माल की कमी हो जा रही है। उदाहरण स्वरूप लकड़ी की मात्रा कम हो रही है और फर्नीचर की मांग बढ़ रही है। इस मांग को पूरा करने के लिए कृत्रिम पदार्थों का उत्पादन शुरु हुआ। इस कृत्रिम पदार्थ को प्लास्टिक नाम से जाना जाता है।

प्लास्टिक शब्द लेटिन भाषा के प्लास्टिकस तथा ग्रीक भाषा के शब्द प्लास्टीकोस से लिया गया है। दैनिक जीवन से लेकर आरामदेय वस्तुओं में प्लास्टिक का उपयोग किया जा रहा है। आज प्रत्येक क्षेत्र में प्लास्टिक का उपयोग किया जा रहा है। बच्चों के खिलौनों से लेकर रसोई, बाथरूम, इलेक्ट्रिक उपकरणों, कारों एरोप्लेन में, क्रॉकरी, फर्नीचर, कन्टेनर, बोतलें, पर्दे, दरवाजे, दवाईयों के रैपर तथा बोतलें, डिस्पोजिबिल सिरिंजों का उपयोग बहुत बढ़ गया है। प्लास्टिक के कुछ विशेष गुण होते हैं, जैसे प्लास्टिक हल्की होती है। इस पर जल, अम्ल व क्षार का प्रभाव नहीं होता है तथा यह सरलता से साफ हो जाती है। देखनें में सुन्दर लगने के साथ ही इस पर दीमक का प्रभाव नहीं होता है जबकि लकड़ी को दीमक खा जाती है। अतः फर्नीचर बनाने में इसका अत्यधिक उपयोग किया जा रहा है। इलेक्ट्रिकल उपकरणों, टी0वी0 की बॉडी, रसोई के सामान, डिनर सेट, पाइप आदि में प्लास्टिक का उपयोग किया जाता है।

प्लास्टिक के कुछ दोष भी हैं। इसका विखण्डन सरलता से नहीं होता है तथा जलने पर विषैली गैसें उत्पन्न करती हैं जो पर्यावरण को प्रभावित करता है। इसका स्वास्थ्य पर भी प्रभाव पड़ता है। जिस स्थान पर प्लास्टिक होगी उस स्थान पर पानी और हवा नहीं पहुँच पाती है। अतः उस स्थान पर जीवन समाप्त हो जाता है, इस प्रकार प्लास्टिक हानि भी पहुँचाती है। प्लास्टिक का निर्माण सर्वप्रथम अमेरिका में वैज्ञानिक जॉन वेसली हयात ने किया था। व्यवहारिक रूप में फोटोग्राफिक फिल्म बनाइ गई। धीरे–धीरे कार और एयरोप्लेन के पुर्जे बनाये जाने लगे। विंड स्क्रीन, स्वचालित वाहनों की खिड़कियों के पर्दे आदि बनाये जाने लगे। सन् 1930 में एथिलीन और प्रोपेलीन से पोलीथीन और पोलीप्रोपीन का निर्माण किया गया। कृत्रिम रबड़ और रेशे या धागे भी बनाये जाने लगें। सन् 1960 में प्लास्टिक उद्योग का विकास शुरू हुआ तथा सन् 1973 में प्लास्टिक उद्योग अपने चरम पर पहुँच गया। सन् 1990 में उत्पादन 88 मिलियन टन तक पहुँच गया था। जो आज बढ़कर 120 मिलियन टन तक हो गया है। आज के युग को प्लास्टिक युग कहें तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। आज बटन, खिलौने से लेकर रसोईघर, बाथरूम, पर्दे, फर्नीचर, दरवाजे विभिन्न पुर्जे काम में आ रहे हैं। सन् 1900 में जर्मनी, फ्रांस में प्लास्टिक का व्यवसायिक उत्पादन प्रारम्भ किया जो आज जीवन का अभिन्न अंग बन गया है।

प्लास्टिक दो प्रकार की होती है–

1. थर्मोप्लास्टिक– यह वह प्लास्टिक होती है जो गर्म करने पर विभिन्न रूपों में बदल जाती है। जैसे– पोलीथीन, पोली प्रोपीलीन, पोली विनायल क्लोरायड।
2. थर्मोसेटिंग– यह वह प्लास्टिक होती है जो गर्म करने पर सेट हो जाती है, जैसे– यूरिया, फॉर्मेल्डिहाइड, पोली यूरेथेन।

उपयोग के आधार पर भी प्लास्टिक को दो समूहों में विभाजित करते हैं।

1. कन घनत्व वाली, 2. उच्च घनत्व वाली।

इनका उपयोग कवरिंग मैटेरियल के रूप में, केरी बैग के रूप में किया जाता हैं कम भार उठाने के लिए कम घनत्व वाली प्लास्टिक का उपयोग करते हैं। अधिक भार तथा सुन्दर बैग या कन्टेनर के लिए उच्च घनत्व वाली प्लास्टिक का उपयोग करते हैं। कम घनत्व वाली पोलीथीन(एल0डी0पी0ई0), उच्च घनत्व वाली पोलीथीन(एच0डी0पी0ई0), पोली विनायल क्लोरायड(पी0वी0सी0), पोली–प्रोपीलीन(पी0पी0), पोली स्टायरीन ये सब थर्मोप्लास्टिक हैं। इनका पुनः चक्रण कर प्रयोग में लाते हैं।

प्लास्टिक का निर्माण बहुलीकरण तथा संघनन अभिक्रिया द्वारा होता है। बहुलीकरण वह क्रिया है जिसमें एक ही पदार्थ के बहुत से अणु या भिन्न पदार्थ के बहुत से अणु मिलकर बहुलक बनाते हैं। बहुलक का अणुभार पदार्थों के अणुभार का गुणक होता है। सामान्यतया यह प्रक्रिया असंतृप्त पदार्थ दर्शाते हैं। संघनन वह क्रिया है जिसमें एक ही या भिन्न पदार्थ के दो या अधिक अणु आपस में मिलकर बहुलक बनाते हैं। साथ ही जल, अमोनिया इत्यादि उपजात पदार्थों का निर्माण करते हैं। भिन्न पदार्थों से विभिन्न प्लास्टिक का निर्माण करते हैं जिनका उपयोग विभिन्न उपयोगों में होता है। विभिन्न प्लास्टिकों का निर्माण इस प्रकार होता है।

1. **पौली एथिलीन**– उच्च ताप और दबाव पर एथिलीन के बहुत से अणु आपस में मिलकर पौलीथीन के बहुलक का निर्माण करते हैं।

ये दो प्रकार की होती है– 1. कम घनत्व वाली पौलीथीन– यह पतली, कम भार वाली होती है। इसका उपयोग हल्के थैले, पैकिंग सीट बनाने में किया जाता है। 2. उच्च घनत्व वाली पौलीथीन– इसका भार अधिक तथा मोटी होती है। इसका उपयोग सुन्दर, मजबूत थैले, ट्यूब, बोतल के ढक्कन आदि बनाने में किया जाता है।

2. **पौली प्रोपीलीन**– उच्च ताप और दाब पर प्रोपीलीन के बहुत से अणु आपस में मिलकर पौली प्रोपीलीन का निर्माण करते हैं।

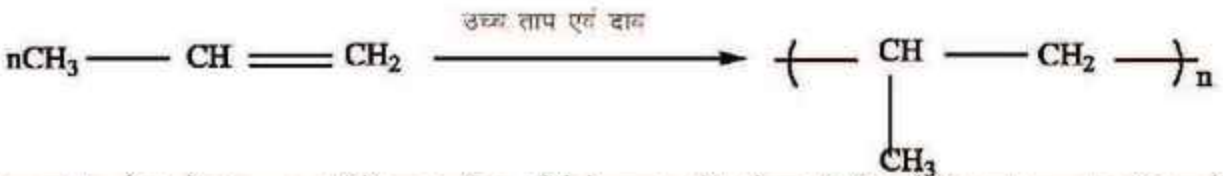

इसका उपयोग घरेलू सामान, बगीचे का फर्नीचर, औटोमोबाइल पार्ट्स, बोतल, सिरिंज, पैकिंग का सामान आदि बनाने में किया जाता है।

3. **पौली विनायल क्लोरायड(पी0वी0सी0)**– उच्च ताप और दाब पर विनायल क्लोरायड के बहुत से अणु आपस में मिलकर पौली विनायल क्लोरायड का निर्माण करते हैं।

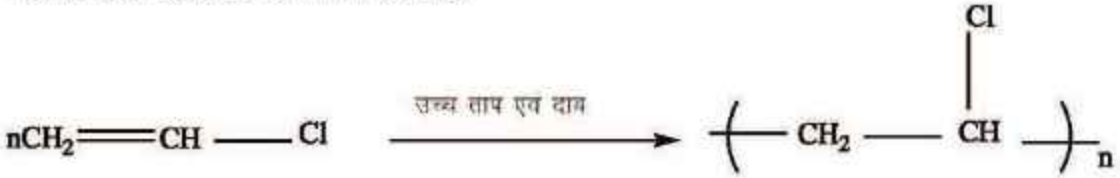

इसका उपयोग पाइप, फर्श, दरवाजे, खिड़की की कवरिंग, टोटी आदि बनाने में किया जाता है।

4. **पौली स्टायरीन**– उच्च ताप और दाब पर फिनायल एथिलीन के बहुत से अणु आपस में मिलकर पौली स्टायरीन बनाते हैं।

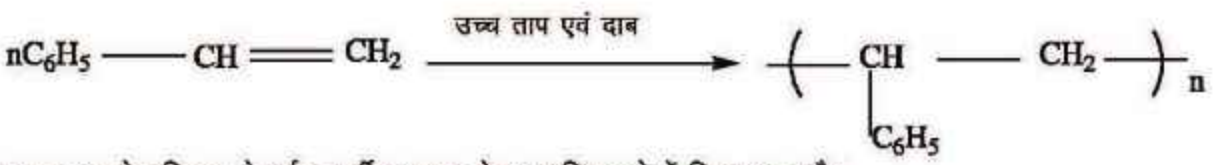

इसका उपयोग किचन के बर्तन, फर्नीचर कवर, रेजर आदि बनाने में किया जाता है।

5. **पौली विनायल ऐसीटेट**– उच्च ताप ओर दाब पर विनायल ऐसीटेट के बहुत से अणु आपस में मिलकर पौली विनायल ऐसीटेट का निर्माण करते हैं। इसका उपयोग फिल्म बनाने में करते हैं।

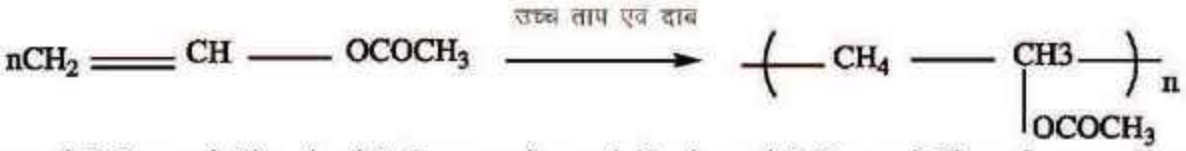

जब पौली विनायल ऐसीटेट और पौली विनायल क्लोरायड के मिलाने पर पौली विनायल ऐसीटेट क्लोरायड प्लास्टिक बनती है। इसका उपयोग फिल्म सीट, कठोर चादर आदि बनाने में किया जाता है।

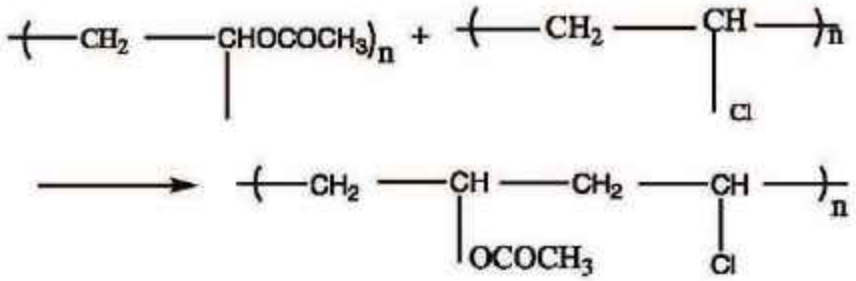

6. **पौली टेट्रा फ्लोरो एथिलीन या टेफलॉन**– उच्च ताप और दाब पर टेट्रा फ्लोरो एथिलीन के बहुत से अणु आपस में मिलकर पौली टेट्रा फ्लोरो एथिलीन का निर्माण करते हैं।

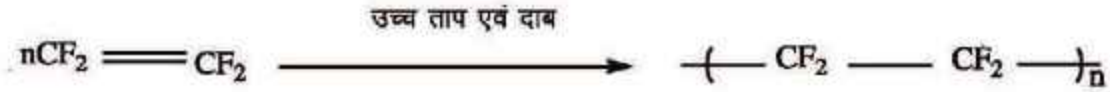

इसका उपयोग नॉन स्टिक किचन वेयर, जैसे फ्राई पेन, तवा, कढाई, सुनने की मशीन, प्रोसथेटिक एपलाइन्स, इलेक्ट्रिक इनश्यूलेशन में किया जाता है।

7. **पौली एस्टर**– जब थैलिक एन्हाइड्राइड और ग्लिसरॉल को मिलाकर गर्म करते हैं तो संघनन की क्रिया होगी, साथ ही जल का निष्कासन होगा।

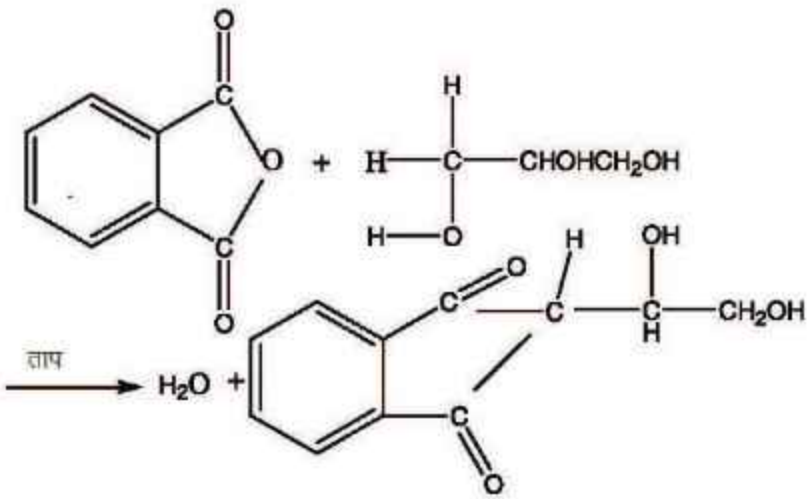

8. **पौली एमाइड**– जब एसिडिक एसिड और हेग्जा मिथिलीन डाई एनीन के अणु संघनन क्रिया द्वारा पौली एमाइड का निर्माण करते हैं। इसका उपयोग जूते का सोल, साइकिल सीट, ईंधन पाइप, काउन्टर, कपड़ा बनाने में किया जाता है।

$$HOCO(CH_2)_4COOH + HNH(CH_2)_6NH_2 \longrightarrow H_2O + nHOCO(CH_2)_4CONH(CH_2)_6NH_2$$

एडिपिक एसिड

$$\downarrow \text{ताप}$$

$$-\!\!\left(CO(CH_2)_4CONH(CH_2)_6NH(CH_2)_6 - NH - \right)_n$$

प्लास्टिक बहुत ही उपयोगी है। आजकल अधिकांश वस्तुएं प्लास्टिक से बनाई जा रही हैं। इसीलिए आज के युग को प्लास्टिक युग कहते हैं। प्लास्टिक के अधिक उपयोग के कारण कूड़ा भी प्लास्टिक का होता है। प्लास्टिक को कूड़े में ऐसे ही नहीं फेकना चाहिए क्योंकि प्लास्टिक पृथ्वी के जिस भाग पर पड़ती है उस भाग को ढक लेती है। पृथ्वी के उस भाग को जल और वायु आदि नहीं मिल पाते हैं जिससे इनकी कमी हो जाती है। प्लास्टिक का विखण्डन सरलता से नहीं हो पाता है। अतः प्लास्टिक हानिप्रद होती है। खाद्य पदार्थों को पौलीथीन बैग में भरकर नहीं डालना चाहिए क्योंकि इसके खाने से पौलीथीन पशुओं के पेट नें इकट्ठी हो जाती है। कभी–कभी तो पशु की इस कारण से मृत्यु भी हो जाती है। सन् 2000 में ऑस्ट्रेलिया के समुद्र के किनारे व्हेल मछली का शव मिला। शव के पोस्टमार्टम से ज्ञात हुआ कि व्हेल के पेट में प्लास्टिक बैग, फूड पैकेज पाये गये। प्लास्टिक के जलाने पर दूषित गैसें उत्पन्न होती हैं जो पर्यावरण को अत्यधिक प्रदूषित करती हैं। प्लास्टिक का पुनः चक्रण कर अन्य वस्तुएं बना सकते हैं। प्लास्टिक को पुनः चक्रण करने के लिए नम्बर दिये जाते हैं। जैसे पौली एथिलीन टरथेलेट को नम्बर एक, उच्च घनत्व वाली पौलीथीन को दो, पौली स्टायरीन को छः दिया गया है। प्लास्टिक का पुनः चक्रण कर कबाड़ की मात्रा को कम करते हैं। गुणों के आधार पर प्लास्टिक का उपयोग सीमित कर हानि से बचा जा सकता है। प्लास्टिक की अधिकता को कम करने से प्रकृति की सुन्दरता बनी रहती है। जीवन में उमंग, उत्साह, स्फूर्ती बनी रहेगी। यदि प्लास्टिक का उपयोग कम नहीं किया तो विकास विनाश में परिवर्तित हो जायेगा तब जीवन नीरस व अभिशाप होगा।

संदर्भ

1. धवन, एस0 एन0 एवं अन्य(2014) कार्बनिक रसायन, भाग–3, प्रदीप प्रकाशन, जालन्धर।
2. फिनार, आई0 एल0(1963) कार्बनिक रसायन, भाग–1, लौंगमेन।
3. मोरीसन, आर0 टी0 एण्ड बॉयड, आर0 एन0(1992) कार्बनिक रसायन, छठा संस्करण, प्रेन्टिस हॉल ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली।
4. नाटा, जी0(1961) प्रीजियस कन्सट्रक्टेड पोलीमर, साइंस अमेरिकन।

सिलिकोसिस–धूल में मौजूद सिलिका के कारण होने वाला व्यवसायजनित रोग

सचिन नरवड़िया
वैज्ञानिक बी, विज्ञान प्रसार
सी–24, कुतुब संस्थागत क्षेत्र, नई दिल्ली–110016
sachin@vigyanprasar.gov.in

प्राप्त तिथिः 17.04.2015, स्वीकृत तिथिः 07.05.2015

यह कल्पना करना कितना असहज कर देता है कि कोई रोग व्यवसाय से सम्बन्धित होता है। लेकिन यह सच है 'सिलिकोसिस' नामक रोग व्यवसाय से सम्बन्धित होता है जो कि धूल में मौजूद सिलिका के कणों के कारण मनुष्यों में हो सकता है। भले ही इस रोग के बारे में आज बात की जा रही हो परन्तु यह रोग अत्यन्त पुराना है। यह रोग क्षेत्र विशेष में नहीं सिमटा होता है, बल्कि यह पूरे विश्व में व्याप्त है और हर साल इसके चलते हजारों लोगों की जानें जाती हैं।

सिलिकोसिस रोग की भयावहता– सिलिकोसिस पुरातन समय से अनेक नामों से जाना गया है, जिसमें माइनर्स थेसिस, ग्राइंडर्स अस्थमा, पॉटर्स रॉट कुछ प्रमुख नाम हैं। यह फेफड़ों से जुड़ा एक रोग होता है। सिलिकोसिस नाम का सर्वप्रथम प्रयोग 1870 में अचिले विस्कोन्ती (जो की एक वकील थे) ने किया था। इस रोग के इतिहास पर नजर डालें तो यह पता चलता है कि 16वीं शताब्दी में अग्रिकोला ने लिखा था, कि यूरोप के कर्पेथेइओन नामक पर्वत की खदानों में कई महिलाओं ने 7–7 पतियों से शादी की और वे सभी पुरुष सिलिको–तपेदिक के कारण कम उम्र में मर गए थे। उत्तरी थाइलैंड में एक पूरे गाँव को विधवाओं का गाँव कहा जाता है, क्योंकि यहाँ पर बहुत लोग इस बीमारी की वजह से मर गए थे। सिलिकोसिस फेफड़ों की एक लाइलाज बीमारी है, जो धूल में मौजूद मुक्त सिलिका के कणों को अंतःश्वसन करने के कारण होती है। यह बीमारी होने के बाद इसमें सुधार होने की संभावना नहीं रहती मगर इस रोग पर नियंत्रण पाया जा सकता है। यह रोग सिलिका मिश्रित धूल के संपर्क के कारण होता है। इसलिए व्यक्ति जितने लम्बे समय तक सिलिका मिश्रित धूल के संपर्क में रहता है, उतना ही अधिक इस रोग के चपेट में आता है। ऐसा तभी होता है जब उनका कार्य स्थल ऐसा हो, जहाँ पर उन्हें चट्टानों को तोड़ना हो, रेत एकत्रित करना हो, पत्थर, अयस्क आदि को तोड़ना या बारीक चूरा करना शामिल होता है। इन सभी कार्यों में सिलिका उत्सर्जित होती है। इसके अतिरिक्त खदानों, कांच के कारखानों, मृत्तिका आदि जगहों पर होने वाले कार्यों में भी सिलिका मिश्रित धूल के कणों के संपर्क में आते हैं। बालू विस्फोट एक सबसे खतरनाक प्रक्रिया है, जिसमें सिलिकोसिस होने का सबसे अधिक खतरा रहता है। तीव्र विस्फोट में अगर निकलने वाले मलबे में सिलिका हो तो सिलिकोसिस होने की संभावना रहती है। सूखी खुदाई, रेत या कंक्रीट को साफ करना, दबाव में वायु का प्रयोग आदि जैसी प्रक्रियाएं धूल के बादलों का निर्माण करते हैं। ये धूल के बादल श्वसन से फेफड़ों तक सिलिका पहुँचाने में सहायक होते हैं। सिलिका के 3 स्वरूप होते हैं – स्फटिक, सूक्ष्म स्फटिक और अक्रिस्टलीय। मुक्त सिलिका शुद्ध सिलिकॉन डाइऑक्साइड होता है।

सिलिकोसिस के कारण फेफड़ों में तन्तुमयता और वातस्फिति होती है। सिलिकोसिस का प्रकार और उसकी उग्रता इस बात पर निर्भर करती है कि सिलिका के संपर्क में रोगी कितने समय तक रहा है। सिलिकोसिस जीर्ण, त्वरित और तीक्ष्ण आदि रूप में पहचाना जाता है। सिलिकोसिस से ग्रसित व्यक्तियों को तपेदिक होने की संभावना भी होती है, तब इसे सिलिको तपेदिक कहते हैं। श्वसन के कार्यों की क्षमता में कमी बड़े पैमाने पर तन्तुमयता और वातस्फिति होने से होती है। इसके साथ कभी–कभी दिल का दौरा भी मौत का कारण बनता है। हमारे देश में राष्ट्रीय खनिक स्वास्थ्य संस्थान सिलोकोसिस के रोगियों की पहचान और रोग का निदान करने में अग्रणी भूमिका निभा रहा है। हाल ही में इस संस्थान ने राजस्थान के करौली जिले में 101 लोगों की जांच में पाया कि उनमें से 76.5 प्रतिशत लोग सिलोकोसिस पॉजिटिव थे। माइन लेबर प्रोटेक्शन कम्पैग्न ट्रस्ट ने भी जोधपुर में 987 सिलोकोसिस पॉजिटिव मामलों को चिह्नांकित किया था। सिलोकोसिस का शीघ्र निदान कर पाना डॉक्टरों के लिए कठिनाई का विषय होता है, क्योंकि इसके लिए उन्हें प्रशिक्षण और विशिष्टता की जरुरत होती है और सिलिकोसिस के लक्षण तपेदिक से बहुत ज्यादा मिलते–जुलते होने से गलत निदान होने की संभावना बनी रहती है।

सिलिकोसिस की रोकथाम के लिए नियोक्ता द्वारा किये जाने वाले उपाय–

1. वायु में स्फटिक सिलिका की नियमित जांच करना जिसके संपर्क में खनिक रहते हैं।
2. स्फटिक सिलिका के संपर्क को कम करने के लिए गीली खुदाई करवाना, सिलिका के निकास के लिए स्थानीय खुलाव करना तथा धूल के उत्सर्जन को कम करना।
3. कर्मचारियों को सुरक्षात्मक कपड़े, मास्क, फव्वारे आदि मुहैया कराना।

4. कर्मचारियों को सिलिका और उसके स्वास्थ्य पर होने वाले खतरे से आगाह करना।
5. कर्मचारियों को सुरक्षा के सामान के सही उपयोग हेतु प्रशिक्षण देना।
6. निर्देश चिह्नों का प्रयोग कर कर्मचारियों को सिलिका और उसके जोखिम से अवगत कराना।
7. समय–समय पर कर्मचारियों की स्वास्थ्य जांच करवाना। सारे सिलिकोसिस पॉजिटिव मामलों की सूचना स्वास्थ्य विभाग को देना।

इन उपायों को यदि हर नियोक्ता अपनाये तो हम सब मिलकर इस खतरनाक रोग को अपने समाज से दूर हटा पाएंगे और एक स्वस्थ समाज के निर्माण में अपनी भूमिका का निर्वहन कर सकेंगे।

संदर्भ

1. प्लांट, जेन ए0; वाउलवोलिस, निक एवं रग्नार्सदोत्तिर, के0 वाला(2012) पॉल्यूटेंट्स, ह्यूमन हेल्थ एण्ड द इन्वायरमेंटः ए रिस्क बेज्ड एप्रोच, जॉन वाइली एण्ड सन्स, पृ0 273।
2. यूनायटेड स्टेट्स ब्यूरो ऑफ माइन्स, बुलेटिन, यू0 एस0 जी0पी0ओ0, 1995, खण्ड–476–478, पृ0 63
3. रोजेन, जी0(1943) द हिस्ट्री ऑफ माइनर्स डिसीजेजः ए मेडिकल एण्ड सोशल इंटरप्रेटेशन, न्यूयॉर्क, शॉनन, मु0पृ0 459–476
4. निओश हेजार्ड रिव्यू, हेल्थ इफेक्ट्स ऑफ ऑक्यूपेशनल एक्सपोजर टू रिस्पायरेबल क्रिस्टलाइन सिलिका, डी.एच.एच.एस. 2002–129, पृ0 23।
5. वाइजगैन, डी0 एन0 एण्ड बैक्स, डी0 ई0(2003) सिलिकोसिस, इण्टररिटिशियल लंग डिसीज, चतुर्थ संस्करण, लंदन, बी.सी. डेकर इंक, पृ0 391
6. वेग्नर, जी0 आर0(1997) एज्बेस्टोसिस एण्ड सिलिकॉसिस, लान्सेट, खण्ड–349(9061), मु0पृ0 1311–1315।

औषधीय पौधों की पौध सामग्री एवं रोपण तकनीकी से लाभ

राकेश कुमार उपाध्याय[1], जे0 आर0 बहल[2] एवं एस0 के0 तिवारी[3]
[1]वैज्ञानिक सी0एस0आई0आर0–केन्द्रीय औषधीय एवं सगंध पौधा संस्थान, अनुसंधान केन्द्र
पन्तनगर, उधम सिंह नगर–262405, उत्तराखण्ड, भारत
[2]वरिष्ठ प्रधान वैज्ञानिक, सीमैप, लखनऊ–226015, उ0प्र0, भारत
[3]वरिष्ठ प्रधान वैज्ञानिक, एन0बी0आर0आई0, लखनऊ–226001, उ0प्र0, भारत
rkupadhyayfzd@yahoo.com

प्राप्त तिथि–27.04.2015, स्वीकृत तिथि–19.06.2015

सामान्य परिचय

मानव प्राचीन काल से ही औषधीय पौधों पर निर्भर रहा है, आज भी है, और भविष्य में भी रहेगा। क्योंकि जो भी औषधि रसायनिक तत्व हैं, वो इन्हीं औषधीय पेड़–पौधों से प्राप्त होता है। औषधीय पौधों की खेती में, वर्तमान परम्परागत कृषि फसलों से अधिक लाभ प्राप्त होता है। वर्तमान समय में परम्परागत कृषि कम लाभकारी हो रही है, जिससे किसानों का खेती से मोह भंग हो रहा है। अतः इस वर्तमान दौर में किसान औषधीय पौधों की खेती को अपना करके अधिक लाभ प्राप्त करके अपनी आर्थिक दशा में और सुधार ला सकते हैं। जिस तरह किसी मकान की मजबूती उसकी नीव पर निर्भर करती है, ठीक उसी तरह सफल औषधीय पौधों की खेती, उसकी पौध सामाग्री, रोपण एवं सस्य तकनीक पर निर्भर करती है। जिसका संक्षिप्त विवरण यहाँ दिया गया है।

औषधीय पौधों की सार्थकता

औषधीय गुण, रोगाणु से लड़ने की क्षमता, पाचन में लाभकारी, प्रतिरोधक क्षमता, स्वस्थता प्रदान करना, निरोगता प्रदान करना, कुप्रभाव रहित, प्रभावकारी।

औषधीय पौधों की पौध सामग्री– औषधीय पौधों की पौध सामग्री पौधे के विभिन्न भागों द्वारा तैयार की जाती है, जैसे–बीज, तना आदि जो कि निम्नलिखित हैः

1. **बीजः** अश्वगन्धा, कालमेघ, सतावर, सर्पगन्धा, तुलसी आदि की पौध इसके बीज द्वारा तैयार की जाती है।
2. **कलिकाः** जिरेनियम आदि की पौध कलिका की कटिंग द्वारा की जाती है।
3. **तनाः** सर्पगन्ध, लवेण्डर, रोजमैरी आदि की पौध तना की कटिंग द्वारा तैयार की जाती है।
4. **जड़ः** मेन्था की पौध सामग्री मुख्यतः जड़ से तैयार की जाती है।
5. **स्लिपः** नीबू घास, एलोवेरा आदि की पौध स्लिप द्वारा तैयार होती है।

रोपड़ से लाभ

1. **खेत की उपयोग क्षमता में बढ़ोत्तरीः** रोपण करने में बहुत ही कम क्षेत्र में पौध तैयार कर सकते हैं, जिससे अधिक क्षेत्र में रोपण किया जा सकता है। इस समय में बाकी खेत में और अन्य फसल ले करके हम लोग खेत की उपयोग क्षमता में बढ़ोत्तरी कर सकते हैं।
2. **लागत में कमीः** पौध की नर्सरी तैयार करने में लागत कम लगती है। क्योंकि शुरूआत में पौध की बढ़ोत्तरी कम होती है, यदि सीधी बुवाई करते हैं तो खरपतवार और रोग नियन्त्रण में अधिक लागत आयेगी। अतः यदि नर्सरी तैयार करते हैं तब कम क्षेत्र में पौध तैयार करने की लागत कम हो जाती है।
3. **कम बीज दरः** पौध तैयार करने में सीधी बुवाई की तुलना में कम बीज लगता है।
4. **सुगम और ठीक तरह से देख–भालः** पौध का कम क्षेत्र होने के कारण पौध की सही और ठीक तरह से देख–भाल हो जाती है।
5. **समय से रोपणः** यदि खेत में कोई दूसरी फसल लगी है और उसकी कटाई में 30–45 दिन बाकी है तब आगे वाली फसल की पौध डालकर, इस फसल को उसी खेत की फसल कटने के बाद समय पर लगा सकते हैं।
6. **अच्छा बीज जमावः** नर्सरी का कम क्षेत्र होने के कारण और सही देख–भाल से बीज का जमाव और बढ़ोत्तरी अच्छी होती है।
7. **पौध जीविवता में बढ़ोत्तरीः** नर्सरी में तैयार की गई पौध सीधी बुवाई की अपेक्षा अधिक अच्छी और स्वस्थ होती है, जिसके कारण इसकी जीविवता अधिक हो जाती है।

जिरेनियम

मेन्था

तुलसी

नीबू घास

कालमेघ

रोजमैरी

सर्पगन्धा

स्टीविया

अश्वगन्धा

सामान्य नाम	वानस्पतिक नाम	उन्नत प्रजाति	बीज दर	पौध सामग्री	रोपड़ का समय व रोपाई दूरी	खाद उर्वरक	कटाई	उपज
जिरेनियम	पेलार्गोनियम ग्रेवियोलेंस	बोरवॉन, सिम–पवन	40000–50000 कटिंग/है0	कटिंग	नवम्बर 50X50 सेमी0	10 टन गोबर खाद,120:80:60 किग्रा एन पी के/है0	120–130 दिन की फसल होने पर	25–30 किग्रा तेल/है0
मेन्था	मेन्था आरवेनसिस	सिम–क्रान्ति, सिम–सरयू, कोसी	रोपाई 60–70 किग्रा/है0/सीधी बुवाई 200 किग्रा/है0	सर्कस	जनवरी–फरवरी 50X50 सेमी.	10 टन गोबर की खाद 100:50:50 किग्रा एन पी के/है0	100–120 दिन की फसल होने पर	160–200 किग्रा/है0
तुलसी	ऑसिमम बेसिलकम	सिम–सौम्या	1 किग्रा बीज/है0	बीज	जून–जुलाई 45X30 सेमी. से 50X50 सेमी.	5 टन गोबर की खाद, 120:80:60 किग्रा एन पी के/है0	100–110 दिन की फसल होने पर	100–150 किग्रा/है0
नीबू घास	सिम्बोपोगान फ्लेक्सूओसस	कृष्णा, चिरहरित, नीमा, सिम–स्वर्णा	55000–60000 स्लिप/है0	स्लिप	जून–जुलाई 45–60X30 सेमी.	5 टन गोबर की खाद 150:50:50 किग्रा एन पी के/है0	3–4 माह पर काटते रहना चाहिए 4–5 वर्ष तक	250 किग्रा तेल/है0/वर्ष
कालमेघ	एन्डोग्रेफिश पेनिकुलाटा	सिम–मेघा	400–500 बीज/है0	बीज	जून–जुलाई 40–50X40–50 सेमी	5 टन गोबर की खाद 100:60:40 किग्रा एन पी के/है0	90–100 दिन की अवस्था पर	25–30 कुन्तल/है0 सूखा हर्ब
रोजमैरी	रोजमेरिनस आफिसिनलिस	सिम–हरियाली	40000–50000 कटिंग	कटिंग	अक्टूबर–नवम्बर 45–50X45–50 सेमी.	5 टन गोबर की खाद 120:80:60 किग्रा एन पी के/है0	3–4 माह पर काटते रहना चाहिए 3–4 साल तक	100–150 किग्रा तेल/है0/वर्ष शाक 100–150 कु0/है0
सर्पगंधा	राउल्फिया सर्पेन्टिना	सिम–शील	80–100 किग्रा/है0 ताजी जड़	ताजी जड़ कटिंग 5 सेमी के टुकड़े	जून–जुलाई 40–50 सेमी × 40–50 सेमी	10 टन गोबर की खाद 120:80:60 किग्रा एन पी के/है0	1.5–2 वर्ष की अवस्था पर	12–15 कु0/है0 सूखी जड़
स्टीविया मीठी पत्ती	स्टीविया रेबुडियाना	सीमैप –मीठी, सीमैप–मधु	10,00,00 से 1,20,000 कटिंग	कटिंग वनस्पतिक कल्लों द्वारा	अक्टूबर–नवम्बर 30X30 सेमी	5 से 6 टन गोबर की खाद 100:40:40 किग्रा एन पी के/है0	2–3 माह के अन्तराल पर 1 साल तक पत्तियों की तुड़ाई	12–15 कुन्तल/है0

अश्वगंधा	विधानिया सोम्नीफेरा	पोषिता, प्रताप, चेतक	रोपाई 5–6 किग्रा सीधी / बुवाई 12–15 किग्रा	बीज	जून–जुलाई 50X50 सेमी	5 टन गोबर की खाद 100:60:40 किग्रा एन पी के / है0	6–8 माह बाद फरवरी–मार्च में जड़ की खुदाई	8 कुन्तल / है0 सूखी जड़

(विभिन्न औषधीय पौधों की रोपण / सस्य तकनीक)

संदर्भ

1. औस झान्या 2012 सी.एस.आई.आर. केन्द्रीय औषधीय एवं सगंध पौधा संस्थान, लखनऊ।
2. मेन्थाल मिन्ट की खेती हेतु नवीन कृषि पद्वति 2013, सी.एस.आई.आर. .केन्द्रीय औषधीय एवं सगंध पौधा संस्थान, लखनऊ।
3. औषधीय एवं सगंध पौधो के उत्पादन एवं प्रसंस्करण की उन्नत प्रौद्योगिकी पर कौशल–सह–तकनीकी कार्यक्रम, 27–29 सितम्बर 2014, सी.एस.आई.आर. केन्द्रीय औषधीय एवं सगंध पौधा संस्थान, पन्तनगर, उत्तराखण्ड।

फील्ड्स पदक संक्षिप्त परिचय

सत्य देव वर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर, गणित विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद–211002, भारत

प्राप्त तिथि: 28.04.2015, स्वीकृत तिथि: 08.06.2015

फील्ड्स पदक अंतर्राष्ट्रीय गणितीय संघ(आई0एम0यू0) के अंतर्राष्ट्रीय कांग्रेस, जो प्रत्येक साल के अंतराल में आयोजित होती है, द्वारा 40 वर्ष से कम उम्र के दो से चार गणितज्ञों को सम्मानित किया जाने वाला पुरस्कार है। फील्ड्स मेडल गणितज्ञों को प्राप्त होने वाले सर्वोच्च सम्मान के रूप में देखा जाता है। फील्ड्स मेडल अक्सर **गणित के नोबेल पुरस्कार** के रूप में वर्णित किया गया है। वर्तमान में यह पुरस्कार राशि, वर्ष 2006 के बाद से (कनाडाई डॉलर में) सी 15,000 कर दिया गया है। जॉन चार्ल्स फील्ड्स, एफ.आर.एस. एक प्रसिद्ध कनाडाई गणितज्ञ और गणित के क्षेत्र में उत्कृष्ट उपलब्धि के लिए फील्ड्स पदक के संस्थापक थे। उन्होंने शैक्षणिक और सार्वजनिक हलकों में गणित का कद बढ़ाने के लिए अथक प्रयास किया। फील्ड्स पदक सन् 1913 में लंदन की रॉयल सोसायटी, सन् 1907 में कनाडा की रॉयल सोसाइटी को फैलो और साथी चुना गया।

जॉन चार्ल्स फील्ड्स
(14 मई 1863 – 09 अगस्त 1932)

फील्ड्स पदक का अग्रभाग

पहले फील्ड्स पदक से फिनिश गणितज्ञ लार्स अह्लफोर्स और अमेरिकी गणितज्ञ जेसी डगलस को 1936 में सम्मानित किया गया था, और 1950 से हर चार साल के अंतराल में इस पदक से सम्मानित किया जाता है। फील्ड्स पदक का उद्देश्य युवा गणितीय शोधकर्ताओं को मान्यता देने और समर्थन देने के लिए है, जिन्होंने गणित के विकास के लिए प्रमुख योगदान दिया हो। वर्ष 2010 में हैदराबाद, भारत में पहली बार अंतर्राष्ट्रीय गणित कांग्रेस(आई0 सी0 एम0) का सफल आयोजन किया गया। वर्ष 2014 में सियोल, दक्षिण कोरिया में अंतर्राष्ट्रीय गणित कांग्रेस(आई0 सी0 एम0) का सफल आयोजन किया गया। वर्ष 2018 में रियो डि जनेरियो, ब्राजील में अंतर्राष्ट्रीय गणित कांग्रेस का आयोजन किया जायेगा ।

फील्ड्स पदक विजेता गणितज्ञ वर्ष 2014

प्रो0 आर्तर अविला
(जन्म– 29 जून 1979,रियो डी–जनेरो, ब्राजील)

प्रो0 मंजुल भार्गव
(जन्म– 8 अगस्त 1974, हैमिल्टन, ओंटारियो, कनाडा)

प्रो0 मार्टिन हैरर
(जन्म– 14 नवंबर 1975, जिनेवा)

प्रो0 मरियम मिरजाखानी
(जन्म– मई 1977, तेहरान, ईरान)

प्रो0 आर्तर अविला फ्रांस के विश्वविद्यालय, पेरिस सातवीं, फ्रांस और संघीय विश्वविद्यालय, रियो डी जनेरियो, ब्राजील को एकीकृत सिद्धांत के रूप में पुनः प्रसामान्यीकरण के शक्तिशाली विचार का उपयोग, क्षेत्र का चेहरा बदल दिया है जो गतिकीय प्रणालियों के सिद्धांत के उनके उत्कृष्ट योगदान के लिए फील्ड्स पदक से सम्मानित किया गया। भारतीय मूल के **प्रो0 मंजुल मार्गव**, प्रिंसटन विश्वविद्यालय, प्रिंसटन, अमेरिका को वह छोटे रैंक के छल्ले गिनती करने के लिए अनुप्रयोग किया है और औसत के लिए दीर्घवृत्तीय वक्र के रैंक को बाध्य करने के लिए जो ज्यामिति की संख्या में शक्तिशाली नए तरीकों को विकसित करने के लिए फील्ड्स पदक से सम्मानित किया गया। **प्रो0 मार्टिन हैरर**, वारविक विश्वविद्यालय, वारविक, ब्रिटेन को स्टोकेस्टिक आंशिक अंतर समीकरणों के सिद्धांत और विशेष रूप से इस तरह के समीकरण के लिए नियमितता संरचनाओं का एक सिद्धांत के निर्माण के लिए उनके उत्कृष्ट योगदान के लिए फील्ड्स पदक से सम्मानित किया गया। वर्ष 2014 में, ईरान की **प्रो0 मरियम मिरजाखानी**, फील्ड्स पदक जीतने वाली पहली महिला और ब्राजील के **प्रो0 आर्तर अविला** पहले दक्षिण अमेरिकी बन गए। अब तक प्रिंसटन विश्वविद्यालय, प्रिंसटन, अमेरिका के गणितज्ञों को सबसे ज्यादा 8 बार फील्ड्स पदक से सम्मानित किया गया है।

संदर्भ

1. विकिपीडिया मुक्त ज्ञान कोष।
2. सिंगे, जे0 एल0(1933) जॉन चार्ल्स फील्ड्स (1863–1932), रॉयल सोसाइटी के अध्येताओं के मृत्युलेख नोटिस, खण्ड–1, अंक–2, पृ0 131।

कर्क रोग(कैंसर)

सुधीर मैहरोत्रा[1] एवं स्मिता मिश्रा[2]
[1]प्रोफेसर, [2]शोध छात्रा, जीव–रसायन विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ–226007, उ0प्र0, भारत
sudhirankush@yahoo.com; venacava8888@gmail.com

प्राप्त तिथि–29.04.2015, स्वीकृत तिथि–06.08.2015

कैंसर एक प्रमुख हत्यारे के रूप में उभरा है। वर्ल्ड हेल्थ ऑर्गेनाइजेशन(डब्ल्यू0एच0ओ0) के अनुसार कैंसर नियंत्रण करने के लिए चार प्रमुख घटक हैं– कैंसर की रोकथाम, जल्दी पता लगाना, निदान, उपचार और उपशमन। विकासशील देशों में कैंसर के इन चार क्षेत्रों में प्रमुख चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। इन सभी प्रकार के कैंसर में शरीर की कोशिकाओं में से कुछ कोशिका विभाजित होना शुरू कर देती हैं तथा आस–पास के कोशिकाओं में फैलने लगती हैं। कैंसर लगभग किसी भी कोशिका में शुरू हो सकता है। आमतौर पर, मानव कोशिकाओं का विकास और विभाजन तब ही शुरू होता है जब शरीर को नई कोशिका की आवश्यकता होती है। जब कोशिका पुरानी, क्षतिग्रस्त अथवा मर जाती है, तब नई कोशिका उत्पन्न होती हैं। मगर जब कैंसर विकसित होता है, तब यह प्रक्रिया टूट जाती है। कोशिका अधिक से अधिक असामान्य हो जाती हैं, पुरानी व क्षतिग्रस्त कोशिकाएं जीवित रहती हैं। ये अतिरिक्त कोशिकाएं बिना रुके विभाजित होती रहती हैं इन्हें ट्यूमर कहा जाता है। आमतौर पर ठोस ट्यूमर कैंसर के ऊतकों के रूप में जाना जाता है। खून का कैंसर(ल्यूकेमिया) ठोस ट्यूमर नहीं होता है। कैंसर पास के ऊतकों में फैल सकते हैं या पास के ऊतकों पर आक्रमण कर सकते हैं, जिसका असर घातक होता है। इसके अलावा ट्यूमर बढ़ने के रूप में कुछ कैंसर की कोशिकाएं टूट जाती हैं और रक्त या लसीका प्रणाली के माध्यम से शरीर में दूर के स्थानों के लिए यात्रा करती हैं और मूल ट्यूमर के रूप में फैलने लगती हैं। घातक ट्यूमर(मैलीग्नैंट) से भिन्न सौम्य ट्यूमर फैलते नहीं पर कभी–कभी काफी बड़े हो सकते हैं। सौम्य मस्तिष्क ट्यूमर घातक होते हैं। कैंसर एक आनुवंशिक रोग हो सकता है। कैंसर हमारे नियंत्रण जीन की कोशिकाओं में आनुवंशिक परिवर्तन करते हैं ये परिवर्तन कभी–कभी सामान्य कोशिका के विकास और विभाजन में शामिल रहे होते हैं। आनुवंशिक परिवर्तन जीन–आद्य–ओन्कोजीन(प्रोटोओन्कोजीन), ट्यूमर शमन करने वाले जीन(ट्यूमर सप्रेशन जीन), और डी0एन0ए0 रिपेयर जीन को प्रभावित करते हैं। इन्हें कैंसर का "चालक" कहा जाता है। यह सभी जीन कुछ मायनों में बदल जाते हैं या सामान्य से अधिक सक्रिय हो जाते हैं। ट्यूमर शमन करने वाले जीन कोशिकाओं को बढ़ने और जीवित रहने के लिए अनुमति देता है, इनमें कुछ परिवर्तन के कारण कोशिकाएं अनियंत्रित ढंग ये बढ़ने लगती हैं। इन जीनों में परिवर्तन के साथ कोशिकाएं अन्य जीन में अतिरिक्त म्यूटेशन विकसित करती हैं। साथ में, कोशिकाओं के कैंसर कारण बन सकती हैं।

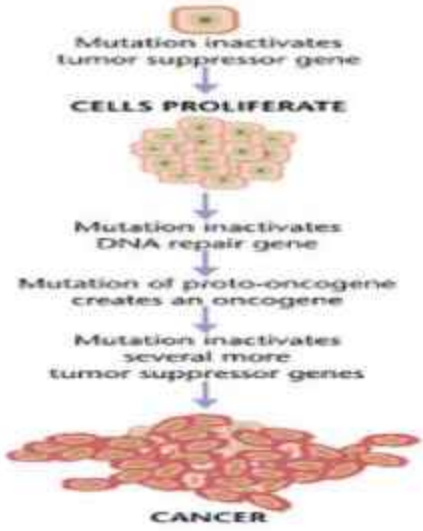

कैंसर के कारण

1. पर्यावरण सम्बन्धी– कैंसर का खतरा कैंसर के कारकों या कार्सिनोजीन्स के माध्यम से बढ़ सकता है। कई कार्सीनोजन के दुष्प्रभावों को अच्छी तरह से जाना जाता है और लोगों तक पहुँचने से रोका जा रहा है, जैसे आग्रक या तम्बाकू के धुएं। कुछ रसायन कम अच्छी तरह से जाने गये हैं, जैसे शराब। अलग–अलग जीवन शैली के विकल्पों के रूप में, कार्सीनोजन का दुष्प्रभाव नियंत्रण से बाहर हो सकता है। कार्सीनोजन का प्रभाव कार्यस्थल में, वायु, जल या भूमि प्रदूषण के माध्यम से व्यापक माहौल में हो सकता है हम भी उपभोक्ता उत्पादों के माध्यम से विशेष रसायनों के संपर्क में आ सकते हैं।

2. छः विभिन्न परिवार के जन्तु विषाणु के सदस्यों को ट्यूमर विषाणु कहा जाता है। जो कि मनुष्य या प्रयोगात्मक पशुओं में कैंसर पैदा करने में सक्षम है। इनमें से पाँच परिवार के विषाणुओं में डी0एन0ए0 जीनोम होता है, अतः उन्हें डी0एन0ए0 ट्यूमर विषाणु कहते हैं। ट्यूमर विषाणु के छठे परिवार के सदस्य रेटोवायरस के कणों में आर0एन0ए0 जीनोम हैं, लेकिन संक्रमित कोशिकाओं में डी0एन0ए0 प्राग्विषाणु(प्रोवायरस) के संश्लेषण के माध्यम से पैदा होता है। मानव कैंसर का कारण हेपेटाइटिस बी विषाणु(यकृत कैंसर), मानव पैपिलोमा विषाणु(ग्रीवा, मुँह एवं जननांग के कैंसर), एपस्टीन बार वायरस(बर्किट लिंफोमा और नासाग्रसनी कार्सिनोमा), कैपोसी सारकोमा और मानव टी सेल लिम्फोट्रोपिक विषाणु(एडल्ट टी सैल ल्यूकोमिया) इसके अलावा, एच0आई0वी0 विषाणु एड्स रोगियों में कैंसर के लिए परोक्ष रूप से जिम्मेदार है, और हेपेटाइटिस सी विषाणु(एक आर0एन0ए0 वायरस) पुरानी ऊतकों के नुकसान से उत्पन्न जिगर के कैंसर का एक अप्रत्यक्ष कारण है। हेपेटाइटिस बी विषाणु के असामान्य कोशिका संक्रमण से कोशिकीय जीन की असामान्य प्रसार और अस्तित्व की एक किस्म की अभिव्यक्ति को प्रभावित करता है(एक्स जीन कहा जाता है) इसकी एक वायरल जीन द्वारा मध्यस्थता है। इसके अलावा, हेपेटाइटिस बी वायरस से उत्पन्न कैंसर के नुकसान का परिणाम है कि जिगर की कोशिकाओं को पड़ता है।

3. रासायनिक कार्सिनोजेनेसिस– नेत्थलीन कई औद्योगिक रसायनों के संश्लेषण में एक मध्यवर्ती के रूप में प्रयोग किया जाता है, और कुछ कीटनाशक और डिओडोरेंट में एक घटक के रूप में इस्तेमाल किया गया है। "यथोचित एक मानव कैंसरजन है" यह मादा में चूहों में फेफड़ें के सौम्य ट्यूमर का कारण बनता है। MeIQ, MeIQx, और Phip हीट्रोसाइक्लिक एमाइन यौगिक हैं जो मांस और अंडे को पकाने या उच्च तापमान पर ग्रिल करने पर बनते हैं। यह यौगिक सिगरेट के धुएं में भी पाये जाते हैं। वे पशुओं में पेट, जिगर, मौखिक गुहा, स्तन ग्रन्थि, त्वचा और उण्डुक सहित कई अंगों में कैंसर का कारण है क्योंकि यह एक "पूर्वानुमानित कार्सिनोजन" है। इसी प्रकार के मानव अध्ययन में इसी प्रकार के अन्य यौगिक शामिल होते हैं। तले हुए भोजन की अधिक खपत से स्तन और कोलोरेक्टल कैंसर का जोखिम हो सकता है।

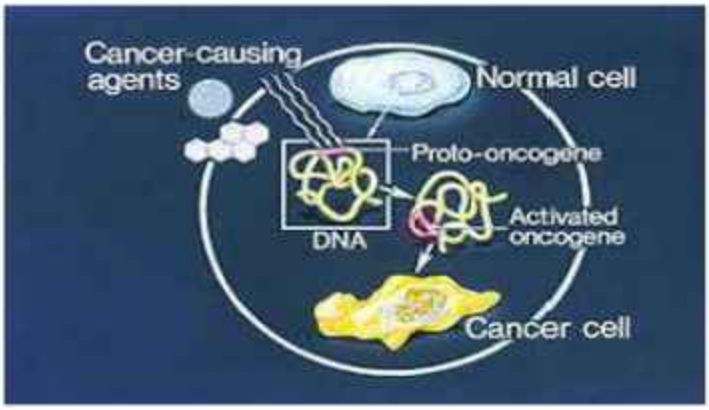

4. लेड– एसिड स्टोरेज बैट्री, गोला बारूद, और केबल कवरिंग बनाने के लिए प्रयोग किया जाता है। लेड यौगिकों का पेंट कांच और मिट्टी के बरन, ईंधन योजकों में प्रयोग किया जाता है, और कुछ जातीय और औपचारिक सौंदर्य प्रसाधनों में हो रहा है। रिपोर्ट बताते हैं कि लेड यथोचित मानव कार्सिनोजन है, यह मानव में फेफड़े या पेट के कैंसर के लिए जिम्मेदार है।

5. कोबाल्ट सल्फेट– मिट्टी के पात्र को रंगने तथा सुखाने में काम आता है, विद्युत और स्याही में प्रयोग किया जाता है। यह अधिवृक्क ग्रन्थि और फेफड़ों के ट्यूमर का कारण बनता है। प्रयोगशाला पशुओं के अध्ययन के आधार पर "पूर्वानुमानित एक मानव कैंसरजन" के रूप में कोबाल्ट सल्फेट सूचीबद्ध किया गया है।

डायजोएमीनोबेंजीन, नाइट्रोबेंजीन, 1–एमीनो–2, 4–डायनाइट्रोएंथ्राक्वीनोन और नाइट्रोमीथेन यथोचित मानव कैंसरजन हैं।

प्रोटो–ऑंकोजेनेसिस– एक सामान्य जीन, एक आद्य ऑंकोजीन म्यूटेशन या वृद्धि की अभिव्यक्ति की वजह से एक ऑंकोजीन बन सकता है। एक ऑंकोजीन द्वारा इनकोडिंग परिणामी प्रोटीन को ऑंकोप्रोटीन करार दिया गया है। एक सामान्य जीन, म्यूटेशन से परिवर्तित होकर एक ऑंकोजीन हो जाता है। प्रोटो ऑंकोजीन के उदाहरणों में आर.ए.एस., डब्ल्यू.एन.टी., एम.वाई.सी., ई.आर.के., और टी.आर.के. शामिल हैं।
एक्टिवेशन– प्रोटो–ऑंकोजीन अपने मूल रूप से परिवर्तित होकर ऑंकोजीन बन सकता है। इसके तीन बुनियादी तरीके हैं–

1. एक–एक आद्य ऑंकोजीन के भीतर उत्परिवर्तन, या एक नियामक क्षेत्र के भीतर।
2. जीन दोहराव, एक सेल के प्रोटीन की मात्रा में वृद्धि हो जाती है।
3. गुणसूत्र स्थानान्तरण।

कीमोथेरेपी– कीमोथेरेपी लगभग हमेशा अन्य उपचार के साथ संयोजन में उपयोग किया जाता है, किसी भी शेष कैंसर की कोशिकाओं को नष्ट करने के लिए सर्जरी या विकिरण, चिकित्सा के बाद दी जा सकती है।

विकिरण चिकित्सा– कैंसर की कोशिकाओं को घायल करने के लिए एक्स–रे का उपयोग करते हैं। विकिरण चिकित्सा प्राथमिक कैंसर के इलाज के लिए उपयोग किया जा सकता है या उन्नत कैंसर, विकिरण चिकित्सा बाहर(बाहरी बीम) से या शरीर(ब्रैकीथेरेपी) के अंदर दिया जाता है। बाहरी बीम विकिरण चिकित्सा में, एक मशीन कैंसर और आस–पास के ऊतकों में विकिरण का निर्देशन करती है।

सर्जरी– शरीर में शेष किसी भी कैंसर की कोशिकाओं को सर्जरी करके हटाया जाता है। सर्जरी अक्सर सुनिश्चित करने के लिए रेडियोथेरेपी या कीमोथेरेपी के साथ संयोजन में इस्तेमाल किया जाता है। यह अंगों में बाधा डालने या खून बहा कर ट्यूमर की बेचैनी से राहत दिलाता है।

संदर्भ

1. http://www.cancer.gov/about-cancer/what-is-cancer
2. Journal of Cancer Science & Therapy
3. http://www.omicsonline.org/cancer-science-therapy.php
4. http://www.medicalnewstoday.com/info/cancer-oncology/
5. https://en.wikipedia.org/wiki/Cancer
6. http://www.webmd.com/cancer/
7. http://www.medicinenet.com/cancer/focus.htm
8. कुशमैन, डी0 एवं हार्गेसेन, एम0 डी0(1931) ऑक्यूपेशनल नियोप्लास्टिक डिजीज, खण्ड–15, पृ0 641।
9. http://journals.lww.com/joem/Abstract/2000/03000/Identification_of_Occupational_Cancer_Risks_in.10.aspx

सेहत और स्वास्थ्य के लिये सब्जियाँ खाइये

रश्मि गुप्ता
एसोसिएट प्रोफेसर, वनस्पति विज्ञान विभाग
बी0एस0एन0वी0 पी0जी0 कॉलेज, लखनऊ–226001, उ0प्र0, भारत
rashmi_bsnv@rediffmail.com

प्राप्त तिथि–30.04.2015, स्वीकृत तिथि–25.07.2015

शाकाहारी मनुष्यों के लिए सब्जियों का महत्व बहुत अधिक है। आहार विशेषज्ञों के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को प्रतिदिन तीन सौ ग्राम सब्जी खानी चाहिये। परन्तु हमारे देश में प्रति व्यक्ति केवल तीस ग्राम के लगभग ही सब्जी उपलब्ध हो पाती है। मांस, पनीर तथा अन्य वसीय खाद्य पदार्थों के पाचन के दौरान बने अम्लों को निष्प्रभावित करने के लिये सब्जियों का सेवन आवश्यक है। सब्जियां पाचन में मदद करती हैं। ये कार्बोहाइड्रेट, वसा, प्रोटीन, विटामिन और खनिज तत्वों की पूर्ति भी करती हैं। स्वास्थ्य की बेहतरी के लिये सब्जियां अत्यंत आवश्यक हैं। टमाटर, गाजर, पत्तागोभी, शकरकंद, शलजम, हरी मिर्च आदि सब्जियों में विटामिन 'ए' प्रचुर मात्रा में प्राप्त किया जा सकता है। यह विटामिन शरीर की वृद्धि के लिये आवश्यक है। इसकी कमी से त्वचा का सूखापन, रतौंधी, आंखों में जलन, मुहांसे, पेट में पथरी, बच्चों में वृद्धि का रुकना आदि विकार उत्पन्न हो जाते हैं। पाचन क्रिया को सामान्य रखने में इसका बहुत योगदान होता है। पत्तागोभी, टमाटर, मटर, सेम, बैंगन, प्याज, गाजर एवं शकरकंद से विटामिन 'बी' प्रचुर मात्रा में प्राप्त किया जा सकता है। इसकी कमी से बेरी–बेरी नामक रोग, भूख में कमी, वजन में कमी तथा शरीर के तापमान में गिरावट आदि विकार उत्पन्न हो जाते हैं। टमाटर, आलू, हरी मिर्च, शकरकंद, पत्तागोभी, सेन, गाजर आदि सब्जियों में विटामिन 'सी' प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। निरोग एवं स्वस्थ रहने के लिये इस विटामिन की बहुत आवश्यकता होती है। इसकी कमी से स्कर्वी रोग, गठिया, दांत व मसूड़ों का कमजोर हो जाना आदि रोग उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार विटामिन डी की कमी से बच्चों में सूखा रोग हो जाता है। हड्डियों की उचित रचना व दांतों की मजबूती के लिये विटामिन 'डी' की अनिवार्यता होती है। पत्तागोभी, सलाद, मटर तथा प्याज में विटामिन 'ई' पाया जाता है। यह प्रजनन कार्य के लिये बहुत ही आवश्यक है। विटामिनों के पश्चात् मानव शरीर की वृद्धि एवं रख–रखाव में खनिज पदार्थों का भी महत्वपूर्ण योगदान है। शरीर की वृद्धि एवं विकास के लिये कैल्शियम, लौह, आयोडीन, सोडियम, फास्फोरस आदि की आवश्यकता होती है। इन्हें भी भोजन के साथ उचित मात्रा में लेना आवश्यक होता है। कैल्शियम की कमी से बच्चों में सूखा रोग तथा पीजन चेस्ट की बीमारी हो जाती है। गर्भवती स्त्रियों के भोजन में कैल्शियन की कमी से आस्टोमैलेशिया हो जाने के कारण बच्चा जनने में काफी कष्ट होता है। सेम, गाजर, पत्तागोभी, टमाटर, मटर, फूलगोभी, पालक आदि में कैल्शियन प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। लौह तत्व लाल रुधिर कणिकाओं का एक आवश्यक अंग है। इसकी मात्रा पत्ती वाली सब्जियों में अधिक पायी जाती है। पालक, सलाद, पत्तागोभी, मटर, फ्रेंचबीन तथा टमाटर में लौह तत्व का भंडार होता है। प्याज में आयोडीन की मात्रा पायी जाती है। इसके सेवन से गलगण्ड नहीं होता। सनी सब्जियों में सोडियम की मात्रा पायी जाती है। फॉस्फोरस शरीर के सक्रिय ऊतकों तथा कोशिकाओं के लिये आवश्यक है। इसका मुख्य काम कार्बोहाइड्रेट के ऑक्सीजन में सहायक होकर ऊर्जा पैदा करना है। यह टमाटर, आलू, गाजर, पालक, सलाद, खीरा आदि में पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। सब्जियों के पोषक तत्व नष्ट न हों, इसके लिये उसमें पकाते समय पानी की मात्रा का कम प्रयोग करना चाहिये। हमेशा ताजी सब्जियों का ही प्रयोग करना चाहिये। सब्जियों को हमेशा धीमी आंच पर ही पकाना चाहिये। पत्ती वाली सब्जियों को अधिक समय तक पानी से नहीं धोना चाहिये। सब्जी को कम से कम छीलना चाहिये। सब्जियों को पकाने से कुछ ही देर पहले काटना चाहिये। सब्जी का सही प्रयोग करके तन्दुरुस्ती बनायी रखी जा सकती है। प्रस्तुत लेख में विभिन्न सब्जिओं के सेवन से हमारी सेहत और स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभाव को वर्णित किया गया है।

पालक– पालक हमारी सेहत के लिए काफी फायदेमंद होता हैं। पालक का सेवन सब्जी के रूप में, सलाद के रूप में, सूप बनाकर या जूस बनाकर कर सकते हैं। कच्चा पालक गुणकारी होता है। पूरे पाचन–तंत्र की प्रणाली को ठीक करता है। डॉक्टरों के मुताबिक पालक में शरीर के लिए आवश्यक अनेक अमीनो अम्ल, विटामिन ए, फोलिक अम्ल, प्रोटीन, मैंगनीज, मैगनीशियम, आयरन, विटामिन सी, विटामिन बी–2 , विटामिन ई, कैल्शियम और लौह तत्व भरपूर मात्रा में पाए जाते हैं।

पालक खाने के कुछ लाभ

- पालक में विटागिन ए भरपूर गात्रा में पाया जाता है जो हमारे आँखों की रोशनी के लिए काफी फायदेगंद होता है।
- पालक में फोलिक एसिड और कैल्शियम पाया जाता है जो गर्भवती महिलाओं के लिए काफी फायदेमंद होता है।
- पालक आयरन का अच्छा स्त्रोत हैं जो हमारे शरीर में खून की कमी को दूर करता है और हिमोग्लोबिन बढ़ाता है।
- पालक मांसपेशियों को नजबूत बनाए रखने में मदद करता है।
- पालक में काफी कम कैलोरी और वसा होता है जो वजन कम करने में मदद करता है।

- पालक का जूस पीने से रूखी त्वचा नर्म और मुलायम हो जाती है।
- पालक बालों के लिए भी बहुत फायदेमंद होता है। इसमें आयरन होता है जो बालों को झड़ने से रोकता है।
- पालक दिल के दौरे को रोकने और रक्तचाप कम करने में मदद करता है।
- इसमें जिंक और मैग्नीशियम भारी मात्रा में होता है जो शरीर को आराम और पूरी तरह से तनाव मुक्त रखता है। मैगनीशियम खोये हुए ऊर्जा की भरपाई में मदद करता है।

मेथी– वैसे तो मेथी का स्वाद थोड़ा कड़वा होता है लेकिन यह अपने महक और स्वाद के द्वारा पूरे व्यंजन के स्वाद को बदल देने की क्षमता रखती है। भारतीय रसोईघरों में मेथी का इस्तेमाल साधारणतः करी, सब्जियों से बने व्यंजन, दाल आदि के स्वाद को बढ़ाने के लिए किया जाता है। मेथी के दानों का प्रयोग मसाले के रूप में भी किया जाता है। इसका स्वाद बेहद कड़वा और तीखी खुशबु वाला होता है। इसकी थोड़ी सी मात्रा ही डालने पर पूरे भोजन में जायका आ जाता है। मेथी को साग, सूखी सब्जी, आलू की सब्जी, चीला आदि बनाने में उपयोग में लाया जाता है। बहुत सारे राज्यों में इसे दाल में भी डाला जाता है। मेथी में भरपूर मात्रा में प्रोटीन, फाइबर, विटामिन सी, नैसिन, पौटेशियम, आयरन और एल्कलॉयड होते हैं। इसमें डाइसोजेनिन भी होता है जो ऑस्ट्रियोजेन जैसे गुणों से भरपूर होता है। इन सबके अलावा मेथी के बहुत सारे औषधीय और स्वास्थ्यवर्धक गुण होते हैं जो कई शारीरिक समस्याओं को दूर भगा देते हैं।

मेथी के उपयोग

- ब्लड शुगर लेवल संतुलन– शोधों के अनुसार यह जानकारी प्राप्त हुई है कि यह टाइप–2 के मधुमेह रोगियों के लिए काफी लाभकारी होता है। अगर रोगी रोज दिन में 6–7 मेथी के दानों का या फिर मेथी के पानी का सेवन करे तो उसका ब्लड शुगर लेवल कम हो सकता है।
- कोलेस्ट्रॉल संतुलन– डॉक्टरों का कहना है कि यह हार्ट रोगियों के लिए एक वरदान के समान है जिसे वह रोज अपने भोजन में खा कर अपने बढे हुए कोलेस्ट्रॉल लेवल को कम कर सकता है। अगर मेथी के दाने ज्यादा कड़ुवे हों तो उन्हें कैप्सूल के रूप में भी खाया जा सकता है।
- त्वचा सम्बन्धी रोगों से निजात– अगर आपको खुजली, जलन, फोड़े–फुंसी और गांठ की समस्या है तो आपको कुछ ग्राम मेथी खाने की आवश्यक्ता है। न सिर्फ खाने से बल्कि इसके पेस्ट को लगाने से भी फायदा होता है। अगर रूसी की समस्या है तो बालों में मेथी और दही मिला कर लगाने से यह समस्या जल्द दूर हो जाएगी।
- पाचन उपचार– डायरिया और हीटबर्न के अलावा मेथी के रस से पेट और आंत की सभी समस्याएं दूर होती हैं। अगर आप अल्सर और एसिडिटी को ठीक करना चाहते हैं तो मेथी और मठ्ठे को घोल कर पीयें। सिर्फ यही नहीं अगर आप रोज सुबह खाली पेट कुछ मेथी के दानें खाएंगे तो पेट के सभी रोग दूर होंगे।
- मौसमी बीमारियां– कहा जाता है कि अगर बुखार या कोई भी अन्य बीमारी में मेथी का उपयोग किया जाए तो वह तुरंत ही ठीक हो जाती है। और अगर आप स्वयं को रिफ्रैश करना चाहते हैं तो मेथी के पत्तों से बनी हर्बल चाय पियें।

नींबू– नींबू एक रसीला फल है जो आता तो फल की श्रेणी में है लेकिन काम करता है सब्जियों में। नींबू के रस से किसी भी सब्जी का स्वाद और ज्यादा बढ़ जाता है। यह फल स्वादिष्ट होने के साथ–साथ विटामिन सी से भी भरपूर है। नींबू में और भी कई तत्व पाए जाते हैं जिनकी वजह से नींबू कई रोगों में दवा की तरह भी काम करता है। खासतौर से पेट से संबंधित परेशानियों के लिए नींबू का प्रयोग कई तरीकों से किया जाता है। नींबू सेवन करने के कुछ फायदे:

- एक गिलास पानी में एक नींबू निचोड़ कर रात को सोते समय पीने से पेट साफ हो जाता है।
- एक गिलास गुनगुने पानी में एक नींबू का रस व एक चम्मच शहद मिलाकर पीने से कब्ज दूर होती है और शरीर का वजन घटने लगता है।
- नींबू के रस के सेवन से पेट के कीड़े मर जाते हैं।
- नींबू के रस में जैतून का तेल मिलाकर चेहरे पर मलने से दाग–धब्बे, मुहांसे तथा झाईयां समाप्त होती हैं।
- हैजा के रोगी को नींबू का पानी ज्यादा से ज्यादा पीना चाहिए, इसकी वजह से शरीर में पानी की कमी नहीं होती है।
- लगभग आधा कप गाजर के रस में नींबू का रस मिलाकर पीने से शरीर में खून की कमी दूर होती है।
- यदि किसी को खांसी–जुकाम अधिक परेशान करता हो तो आधे नींबू के रस को दो चम्मच शहद के साथ मिलकर पीने से लाभ होता है।
- आधे नींबू का रस व थोड़ा सा सेंधा नमक 100 मिलीलीटर पानी में डालकर पीने से पेट दर्द में आराम मिलता है।

प्याज– प्याज खाने को स्वादिष्ट बनाने का काम तो करता ही है साथ ही यह एक बेहतरीन औषधि भी है। कई बीमारियों में यह रामबाण दवा के रूप में काम करता है। प्याज सेहत के लिए बहुत फायदेमंद है। प्याज लू की रामबाण दवा है। आंखों के लिए यह बेहतरीन औषधि है। प्याज में केलिरिन और रायबोफ्लेविन(विटागिन बी) पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। प्याज खाने के फायदे निम्न हैं।

- प्याज काट कर रखने से यह वातावरण में मौजूद बैक्टीरिया सोख लेता है।
- गर्मियों के मौसम में प्याज खाने से लू नहीं लगती है। लू लगने पर प्याज के दो चम्मच रस को पीना चाहिए और सीने पर रस की कुछ बूंदों से मालिश करने पर फायदा होता है। एक छोटा प्याज साथ में रखने पर भी लू नहीं लगती है।
- बाल गिरने की समस्या से निजात पाने के लिए प्याज बहुत ही असरकारी है। गिरते हुए बालों के स्थान पर प्याज का रस रगडने से बाल गिरना बंद हो जाएंगे।
- अगर पेशाब होना बंद हो जाए तो दो चम्मच प्याज का रस और गेहूं का आटा लेकर हलुवा बना लीजिए। इसको गर्म करके पेट पर इसका लेप लगाने से पेशाब आना शुरू हो जाता है। पानी में उबालकर पीने से भी पेशाब संबंधित परेशानी समाप्त हो जाती है।
- प्याज गर्म होता है इसलिए सर्दी के लिए बहुत फायदेमंद होता है। सर्दी या जुकाम होने पर प्याज खाने से फायदा होता है। सफेद प्याज के रस में शहद मिलाकर सेवन करना दमा रोग में बहुत लाभदायक है।
- प्याज खाने से कई शारीरिक बीमारियां नहीं होती हैं। इसके आलावा प्याज कई बीमारियों को दूर भगाता है। इसलिए यह कहा जाता है कि प्याज खाने से उम्र बढती है, क्योंकि इसके सेवन से कोई बीमारी नहीं होती और शरीर स्वस्थ्य रहता है।
- प्याज के रस को चीनी में मिलाकर शरबत बनाकर पीने से पथरी की समस्या से निजात मिलता है। प्याज का रस सुबह खाली पेट पीने से पथरी अपने-आप कटकर बाहर निकल जाती है।
- गठिया में प्याज बहुत ही फायदेमंद होता है। गठिया में सरसों का तेल व प्याज का रस मिलाकर मालिश करें, फायदा होगा।
- इसके अलावा प्याज कई अन्य सामान्य शारीरिक समस्याओं जैसे मोतियाबिंद, सिर दर्द, कान दर्द में भी प्रयोग किया जाता है। प्याज गर्म राख में भूनकर उसका पानी निचोड़कर कान में डालें दर्द में तुरंत लाभ होगा। प्याज का रस एक तोला, असली शहद एक तोला, भीमसेनी कपूर तीन माशे सबको खूब मिलाकर लगाने से मोतियाबिन्द का असर नहीं होता। प्याज का पेस्ट लगाने से फटी एडियों को राहत मिलती है।
- पेट के कीड़े–प्याज का कच्चा रस पिलाने से पेट के कीड़े नष्ट हो जाते हैं।
- गले की खराश मिटाए– यदि आप सर्दी, कफ या खराश से पीडित हैं तो आप ताजे प्याज का रस पीजिये। इमसें गुड या फिर शहद मिलाया जा सकता है।
- ब्लीडिंग समस्या दूर करे– नाक से खून बह रहा हो तो कच्चा प्याज काट कर सूघ लीजिये।
- पाइल्स की समस्या में सफेद प्याज खाना शुरु कर दें। कब्ज दूर करता है।
- मधुमेह करे कंट्रोल– कच्चा प्याज खाया जाए तो यह शरीर में इंसुलिन उत्पन्न करेगा।
- दिल की सुरक्षा– कच्चा प्याज हाई ब्लड प्रेशर को नार्मल करता है और बंद खून की धमनियों को खोलता है जिससे दिल की कोई बीमारी नहीं होती।
- कोलेस्ट्रॉल कंट्रोल करे– इसमें मिथाइल सल्फाइड और अमीनो एसिड होता है जो कि खराब कोलेस्ट्रॉल को घटा कर अच्छे कोलेस्ट्रॉल को बढ़ाता है।
- कैंसर सेल की ग्रोथ रोके– प्याज में सल्फर तत्व अधिक होते हैं। सल्फर शरीर को पेट, कोलोन, ब्रेस्ट, फेफड़े और प्रोस्टेट कैंसर से बचाता है।
- एनीमिया ठीक करे– प्याज काटते वक्त आंखों से आंसू टपकते हैं, ऐसा प्याज में मौजूद सल्फर की वजह से होता है। इस सल्फर में एक तेल मौजूद होता है जो कि एनीमिया को ठीक करने में सहायक होता है। खाना पकाते वक्त यही सल्फर जल जाता है, तो ऐसे में कच्चा प्याज खाइये।
- दांत में पायरिया है, तो प्याज के टुकड़ों को तवे पर गर्म कीजिए और दांतों के नीचे दबाकर मुंह बंद कर लीजिए। इस प्रकार 10–12 मिनट में लार मुंह में इकट्ठी हो जाएगी। उसे मुंह में चारों ओर घुमाइए फिर निकाल फेंकिए। दिन में 4–5 बार 8–10 दिन करें, पायरिया जड़ से खत्म हो जाएगा, दांत के कीड़े भी मर जाएंगे और मसूड़ों को भी मजबूती प्राप्त होगी ।
- प्याज के सेवन से आंखों की ज्योति बढ़ती है।
- प्याज के रस का नाभि पर लेप करने से पतले दस्त में लाभ होता है। अपच की शिकायत होने पर प्याज के रस में थोड़ा–सा नमक मिलाकर सेवन करें।

खीरा– आयुर्वेद के अनुसार खीरा स्वादिष्ट, शीतल, प्यास, दाहपित्त तथा रक्तपित्त दूर करने वाला रक्त विकार नाशक है। खीरा व ककड़ी एक ही प्रजाति के फल हैं। खीरे में विटामिन बी व सी, पोटेशियम, फास्फोरस, आयरन आदि तत्व विद्यमान होते हैं।

खीरा खाने के कुछ लाभः

- पेट की गैस, एसिडिटी, छाती की जलन में नियमित रूप से खीरा खाना बेहद लाभप्रद होता है।
- जो लोग मोटापे से परेशान रहते हैं उन्हें सवेरे इसका सेवन करना चाहिये। इससे वे पूरे दिन अपने आपको चुस्त महसूस करेंगे। खीरा हमारी रोग प्रतिरोधक क्षमता को भी बढ़ाता है।
- खीरे को भोजन में सलाद के रूप में अवश्य लेना चाहिये। नमक, काली मिर्च व नींबू डालकर खाने से भोजन आसानी से पचता है व भूख भी बढ़ती है।
- खीरे का सेवन घुटनों के दर्द को भी दूर भगाता है । घुटनों के दर्द वाले व्यक्ति को खीरे अधिक खाने चाहिये तथा साथ में एक लहसुन की कली भी खा लेनी चाहिये।
- पथरी के रोगी को खीरे का रस दिन में दो–तीन बार जरूर पीना चाहिये। इससे पेशाब में होने वाली जलन व रुकावट दूर होती है।
- खीरा रक्तचाप को भी काबू में रखने में कारगर है। इसमें मौजूद पोटैशियम ज्यादा और कम दोनों तरह के रक्तचाप को नियंत्रित रखता है।
- खीरे का सेवन नाखूनों को मजबूती देता है। अगर आप किडनी या लीवर की समस्या से परेशान हैं तो खीरे का नियमित रूप से सेवन करने से आपके बालों को भी फायदा होगा।
- अपने बालों को सेहतमंद रखने के लिए खीरे के जूस का सेवन करें। इसके नियमित इस्तेमाल से बाल लंबे और घने होते हैं। दांतों और मसूढ़ों से जुड़ी समस्या और पायरिया जैसे रोग में भी खीरा फायदेमंद है।
- खीरे का उपयोग करते समय कुछ सावधानियां भी बरतें जैसे खीरा कभी भी बासी न खाएं। जब भी खीरा खरीदें यह जरूर देख लें कि वह कहीं से गला हुआ न हो। खीरे का सेवन रात में न करें। जहाँ तक हो सके, दिन में ही इसे खायें। खीरे के सेवन के तुरंत बाद पानी न पियें।

ककड़ी– ककड़ी बेल पर लगने वाला फल है। कच्ची ककड़ी में आयोडीन पाया जाता है। गर्मी में पैदा होने वाली ककड़ी स्वास्थ्यवर्धक तथा वर्षा व शरद ऋतु की ककड़ी रोगकारक मानी जाती है। ककड़ी स्वाद में मधुर, मूत्रकारक, वातकारक, स्वादिष्ट तथा पित्त का शमन करने वाली होती है। उल्टी, जलन, थकान, प्यास, रक्तविकार, मधुमेह में ककड़ी फायदेमंद है। ककड़ी के अत्यधिक सेवन से अजीर्ण होने की शंका रहती है, परन्तु भोजन के साथ ककड़ी का सेवन करने से अजीर्ण का शमन होता है। ककड़ी में खीरे की अपेक्षा जल की मात्रा ज्यादा पायी जाती है। ककड़ी के बीजों का भी चिकित्सा में प्रयोग किया जाता है।

- ककड़ी का रस निकालकर मुंह, हाथ व पैर पर लेप करने से वे फटते नहीं हैं तथा सौंदर्य की वृद्धि होती है।
- बेहोशी में ककड़ी काटकर सुंघाने से बेहोशी दूर होती है।
- ककड़ी के बीजों को ठंडाई में पीसकर पीने से ग्रीष्म ऋतु में गर्मीजन्य विकारों से छुटकारा प्राप्त होता है।
- ककड़ी के बीज पानी के साथ पीसकर चेहरे पर लेप करने से चेहरे की त्वचा स्वस्थ व चमकदार हो जाती है।
- ककड़ी के रस में शक्कर या मिश्री मिलाकर सेवन करने से पेशाब की रुकावट दूर होती है।
- ककड़ी की मींगी मिश्री के साथ घोटकर पिलाने से पथरी रोग में लाभ पहुंचता है।

चुकंदर– चुकंदर के रस को पीने से न केवल शरीर में रक्त में हीमोग्लोबिन की मात्रा बढ़ती है बल्कि कई अन्य स्वास्थ्य लाभ भी होते हैं। शायद कम लोग ही जानते हैं कि चुकंदर में लौह तत्त्व की मात्रा अधिक नहीं होती है। किंतु इससे प्राप्त होने वाला लौह तत्व उच्च गुणवत्ता का होता है, जो रक्त निर्माण के लिए विशेष महत्वपूर्ण है। चुकंदर का सेवन शरीर से अनेक हानिकारक पदार्थों को बाहर निकालने में बेहद लाभदायी है। ऐसा समझा जाता है कि चुकंदर का गहरा लाल रंग, इसमें लौह तत्त्व की प्रचुरता के कारण है, बल्कि सच यह है कि चुकंदर का गहरा लाल रंग इसमें पाए जाने वाले एक रंगकण(बीटा सायनिन) के कारण होता है। एंटी ऑक्सीडेंट गुणों के कारण ये रंगकण स्वास्थ्य के लिए अच्छे माने जाते हैं।

चुकंदर खाने के कुछ लाभ

- यदि आपको आलस्य महसूस हो रहा हो या फिर थकान लगे तो चुकंदर का जूस पी लीजिये, इसमें कार्बोहाइड्रेट होते हैं जो शरीर को स्फूर्ति देते हैं ।

- यह प्राकृतिक शर्करा का स्रोत होता है। इसमें कैल्शियम, मिनरल, मैग्नीशियम, आयरन, सोडियम, पोटेशियम, फॉस्फोरस, क्लोरीन, आयोडीन, और अन्य महत्वपूर्ण विटामिन पाये जाते हैं।
- चुकंदर का रस हाइपरटेंशन और हृदय संबंधी समस्याओं को दूर रखता है। खासकर के चुंकदर के रस का सेवन करने से व्यक्ति में रक्त संचार बहुत बढ़ जाता है। रक्त की धमनियों में जमी हुई चर्बी को भी इसमें मौजूद बेटेन नामक तत्त्व जमने से रोकता है।
- जो लोग जिम में वर्कआउट करते हैं उनके लिये चुकंदर का जूस बहुत फायदेमंद है। इसको पीने से शरीर में ऊर्जा आती है और थकान दूर होती है। साथ ही अगर उच्च रक्तचाप हो गया हो तो इसे पीने से केवल 1 घंटे में शरीर नार्मल हो जाता है.

शिमला मिर्च– हर भारतीय रसोई में शिमला मिर्च को देखा जा सकता है। इसे बड़े चाव से सब्जी के तौर पर खाया जाता है। शिमला मिर्च को अन्य सब्जियों में मिलाकर न सिर्फ उनकी रंगत बेहतर की जाती है, बल्कि इसे अन्य सब्जियों में मिलाने पर उनका जायका भी अच्छा हो जाता है।

शिमला मिर्च खाने के कुछ लाभ

- वैज्ञानिकों के अनुसार शिमला मिर्च की सब्जी खाने से वजन कम होता है। इसमें कार्बोहाइड्रेट और वसा कम मात्रा में पाए जाते हैं। इसलिए यह शरीर को फिट रखने में मददगार होती है।
- जो लोग अक्सर शिमला मिर्च का सेवन करते हैं, उन्हें कमर दर्द, सायटिका और जोड़ों के दर्द जैसी समस्याएं कम होती हैं। शिमला मिर्च में पाया जाने वाला प्रमुख रसायन केप्सायसिन दर्द निवारक माना जाता है।
- शिमला मिर्च में भरपूर मात्रा में, विटामिन ए, बी और सी पाए जाते हैं। इसीलिए यह एक टॉनिक की तरह काम करता है।
- शिमला मिर्च को आदिवासी कोलेस्ट्रॉल की अचूक दवा मानते हैं। आधुनिक शोधों से ज्ञात हुआ है कि शिमला मिर्च शरीर की मेटाबॉलिक क्रियाओं को सुनियोजित करके ट्रायग्लिसेराईड को कम करने में मदद करती है।
- आधुनिक शोधों के अनुसार शिमला मिर्च में बीटा केरोटीन, ल्युटीन और जिएक्सेन्थिन और विटामिन सी जैसे महत्वपूर्ण रसायन पाए जाते हैं। शिमला मिर्च के लगातार सेवन से शरीर बीटा केरोटीन को रेटिनोल में परिवर्तित कर देता है। रेटिनोल वास्तव में विटामिन ए का ही एक रूप है। इन सभी रसायनों के संयुक्त प्रभाव से दिल से संबंधित बीमारियों, ओस्टियोआर्थरायटिस, ब्रोंकायटिस, अस्थमा जैसी समस्याओं में जबरदस्त फायदा होता है।
- शिमला मिर्च में लाइकोपिन भी पाया जाता है। यह तनाव और डिप्रेशन जैसी समस्या को दूर करने में बहुत कारगर होता है।
- शिमला निर्च उच्च रक्त चाप के रोगियों के लिए बेहद फायदेमंद होती है।

उपसंहार– हरी सब्जियाँ खाना सेहत के लिए बहुत फायदेमंद है। ये शरीर के लिए एक तरह से शक्तिस्रोत का काम करती हैं। सब्जियों में फाईबर तथा पानी की मात्रा काफी ज्यादा होती है और कैलोरी की मात्रा काफी कम। बस सब्जियाँ खरीदते हुए ध्यान रखें कि ये पीली तथा मुरझाई हुई न हों तथा यह भी याद रखें कि सब्जियों को धोकर फ्रिज में न रखें इससे इनके भीतर उपस्थित मिनरल खत्म होने लगते हैं। जब भी सब्जियों का उपयोग करना चाहें, उसे फ्रिज से निकाल कर तुरंत अच्छी तरह से धोकर काम में लें।

सन्दर्भ

1. चूई, ओ० एच०(2008) वेजिटेबल्स फॉर हैल्थ एण्ड हीलिंग, उतुसन पब्लिकेशन्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, कुआलालम्पुर (मलेशिया) द्वारा प्रकाशित, 249 पृष्ठ।
2. शर्मा, राजीव(2005) इम्प्रूव योर हैल्थ विद वेजिटेबल्स, द बुक फैक्ट्री, नोएडा द्वारा प्रकाशित, 97 पृष्ठ।
3. टेरी एल०(2011) हैल्थ प्रमोटिंग प्रॉपर्टीज ऑफ़ फ्रूट्स एण्ड वेजिटेबल्स, सी० ए० बी० आई० इंटरनेशनल, वॉलिंगफोर्ड(यू०के०) द्वारा प्रकाशित, 416 पृष्ठ।
4. डब्लू० एच० ओ०(2005) फ्रूट्स एण्ड वेजिटेबल्स फॉर हैल्थ: रिपोर्ट ऑफ़ ए जॉइंट एफ० ए० ओ०– डब्लू० एच० ओ० वर्कशॉप। कोबे, जापान, में 1 से 3 सितम्बर, 2003 के दौरान आयोजित, 42 पृष्ठ।

अक्षौहिणी सेना, महाभारत का युद्ध, चतुर्युग और मूलांक 09 के आभासी अन्तर्सम्बन्ध

महेन्द्र पाठक
कार्यक्रम अधिशाषी, आकाशवाणी, लखनऊ–226001, उ0प्र0, भारत
drpathakmp@gmail.com

प्राप्त तिथि–09.05.2015, स्वीकृत तिथि–09.09.2015

संख्याओं 18, 108, 1008, ... को भारतीय संस्कृति में विशेष महत्व दिया गया है। जिस प्रकार सात स्वरों सा, रे, ग, म, प, ध, नि, में से चुने गए एकाधिक सुरों के विस्तार और संयोजन से ही रागों का निर्माण होता है। उसी तरह से समस्त संख्यायें कुल दस संख्याकों 0, 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9 में से किसी एक या एकाधिक के क्रमचय व संचय से बनती हैं। किसी भी संख्या के इकाई, दहाई, सैकड़ा,... आदि स्थानों पर स्थित सभी संख्याकों को जोड़ने पर जो संख्यांक प्राप्त होता है उसे मूलांक कहते हैं। उदाहरण के लिए संख्या 2,147,807 का मूलांक निकालते हैं। इस संख्या के सभी अंकों को जोड़ने पर 29 प्राप्त होता है। 29 दो अंको की संख्या है इसलिए दो और नौ को फिर आपस में जोड़ा जायेगा तो 11 प्राप्त होता है। अब चूंकि 11 भी दो अंको की संख्या है। अतः एक फिर प्राप्त संख्या 11 के दोनो अंको को जोड़ा जायेगा तो 2 प्राप्त होता है। अन्ततः 2,147,807 का मूलांक 2 प्राप्त होता है।

इस प्रकार अंकगणितीय दृष्टि से 18, 108, 1008, ... आदि सभी संख्याओं का मूलांक 9 है। आध्यात्मिक, दार्शनिक और धार्मिक दृष्टि से इन विशेष संख्याओं का क्या महत्व है? इस संदर्भ में विद्वानों के विचार भिन्न हो सकते हैं पर अंकगणितीय दृष्टि से इन सभी संख्याओं में एक साम्य है कि इन सभी का मूलांक 9 है।

अब अक्षौहिणी सेना की संरचना पर दृष्टि डालते हैं। महाभारत के अनुसार सेना का विभाजन निम्नवत् किया गया है–

पत्ति–1 रथ, 1 हाथी, 5 पैदल, एवं 3 घोड़े
उपत्ति = 1 सेनामुख
3 सेनामुख = 1 गुल्म
3 गुल्म = 1 गण
3 गण = 1 वाहिनी
3 वाहिनी = 1 पृतना
3 पृतना = 1 चमू
3 चमू = 1 अनीकिनी
10 अनीकिनी = 1 अक्षौहिणी

इस प्रकार उपर्युक्त गणनानुसार एक अक्षौहिणी सेना में 21,870 रथ, 21,870 हाथी, 65,610 घोड़े तथा 109,350 पैदल सैनिक होते थे। यदि हाथियों, घोड़ों तथा पैदल सैनिकों की संख्याओं के सभी अंकों को आपस में जोड़ा जाये तो उन सभी का योग 18(मूलांक 9) ही आता है।

रथ	21,870	2+1+8+7+0	= 18 (1+8 = 9)
हाथी	21,870	2+1+8+7+0	= 18 (1+8 = 9)
घोड़े	65,610	6+5+6+1+0	= 18 (1+8 = 9)
पैदल सैनिक	109,350	1+0+9+3+5+0	= 18 (1+8 = 9)

यदि हम महाभारत के युद्ध में कौरवों और पाण्डवों की सेनाओं के गठन को देखें तो अंक 18 की आवृति अनेक बार होती है। महाभारत के युद्ध में कुल 18 अक्षौहिणी सेनाओं(कौरवों की ओर से 11 अक्षौहिणी तथा पाण्डवों की ओर से 07 अक्षौहिणी सेना) ने भाग लिया और महाभारत का युद्ध भी कुल 18 दिन तक ही चला। महाभारत के युद्ध के पूर्व योगेश्वर श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को दिये गये उपदेशों को महर्षि वेद व्यास जी ने श्रीमद्भगवतगीता के रूप में कुल 18 अध्यायों में वर्णित किया। अपने ग्रन्थ महाभारत को भी महर्षि व्यास ने कुल 18 पर्वों में विभक्त किया है। इतनी बार संख्या 18 की आवृत्ति अनायास तो नहीं होना चाहिए। इसे मात्र संयोग भी नहीं कहा जा सकता है। संख्या 18 की आवृति यहीं समाप्त नहीं हो जाती है, कौरवों और पाण्डवों की सैन्य शक्ति का अलग–अलग विश्लेषण करने पर भी निम्नलिखित तथ्य स्पष्ट होते हैं–

कौरव सेना (11 अक्षौहिणी)	पाण्डव सेना(7 अक्षौहिणी)
1. रथ 21,870 × 11 = 240570	1. रथ 21,870 × 7 = 153090
2. हाथी 21,870 × 11 = 240570 संख्या 240,570 के अंको का योग 2+4+0+5+7+0 = 18 (1+8=9)	2. हाथी 21,870 × 7 = 153090 संख्या 153090 के अंको का योग 1+5+3+0+9+0= 18 (1+8=9)
3. घोड़े 65,610 × 11 = 721,710 संख्या 721,710 के अंको का योग 7+2+1+7+1+0 = 18 (1+8=9)	3. घोड़े 65,610 × 7 = 459270 संख्या 459270 के अंको का योग 4+5+9+2+7+0 = 27 (2+7=9)
4. पैदल सैनिक 109350 × 11 = 1,202,850 संख्या 1,202,850 के अंको का योग 1+2+0+2+8+5+0 = 18 (1+8=9)	4. पैदल सैनिक 109350 × 7 = 765450 संख्या 765450 के अंको का योग 7+6+5+4+5+0= 27 (2+7=9)

उपर्युक्त पद्धति से ही यदि कुल 18 अक्षौहिणी सेना के रथों, हाथियों, घोड़ों और पैदल सैनिकों की संख्यायें लिखी जायें तो वे क्रमशः 3,93,660, 3,93,660, 1,18,0980, 1,96,8300 प्राप्त होती हैं। इन संख्याओं के अंकों को योग 27(मूलांक 9) आता है। यहाँ पर यह बात ध्यान देने योग्य है कि वहीं संयुक्त सेनाओं के संदर्भ में यह योग 27 आता है। जबकि पाण्डव सेना के संदर्भ में रथों और हाथियों का योग 18 आता है। लेकिन घोड़ों और पैदल सैनिकों की संख्याओं का योग 27 आता है। किन्तु सभी का मूलांक 9 ही आता है।

इसी प्रकार यदि हम मनुस्मृति में वर्णित चतुर्युग की गणना पर ध्यान दें तो प्रत्येक संख्या का मूलांक 09 ही प्राप्त होता है।

1. कल्प 1,008 चतुर्युग = (1+0+0+8= 9)
   1008 × 12000 = 12,096,000 दिव्य वर्ष(1+2+0+9+6+0+0+0 = 18
   12096000 दिव्य वर्ष × 360 = 4,354,560,000 मानव वर्ष (4+3+5+4+5+6= 27)
   ब्रह्मा एक अहोरात्र = 8,640,000,000 मानव वर्ष
   (अर्थात एक दिन व एक रात) (8+6+4=18)

उपर्युक्त सभी प्रक्रियाओं में मूलांक 09 ही प्राप्त होना महज संयोग है या इसके पीछे कोई गूढ रहस्य है। इसकी पृष्ठभूमि में जाकर सभी दृष्टियों से अन्तर्विषयी गहन शोध करने की आवश्यकता है। इस संदर्भ में विद्वानों के विचार आमंत्रित हैं।

संदर्भ

1. भारत(किताब–उल–हिन्द) अलरूनी नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली।

प्राचीन भारत का विश्वकोष 'अर्थशास्त्र'

अनुराधा विनायक
एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग
बी0एस0एन0वी0 पी0जी0 कॉलेज, लखनऊ–226001, उ0प्र0, भारत

प्राप्त तिथि–09.05.2015, स्वीकृत तिथि–17.07.2015

भारतीय सभ्यता–संस्कृति का इतिहास घटना प्रधान न होकर विचार प्रधान रहा है, जिसके प्रवाह में निरन्तरता बनी रही है। अनुकूल–प्रतिकूल सभी प्रकार की परिस्थितियों में एकमात्र विचारों की धारा सतत प्रवहमान् रही जिसका प्रभाव विशाल भूमण्डल पर आज भी विद्यमान है। इतिहास निर्माण के क्षेत्र में लिखने की आधार सामग्री को साहित्यिक सामग्री की संज्ञा प्रदान की जाती है जो दो रूपों में उपलब्ध होती है–

1. इतिहासेतर।
2. इतिहास परक।

इतिहासेतर सामग्री वेदों में सुरक्षित है। इतिहास परक सामग्री में ब्राह्मण ग्रन्थ, बौद्ध त्रिपिटक, जैन ग्रन्थ, पाणिनी की अष्टाध्यायी पतंजलि का महाभाष्य, पुराज, रामायण, महाभारत समस्त मानवता के विकास क्रम को बताने वाले बहुमूल्य प्रयत्न हैं। इतिहास गणना के भारतीय दृष्टिकोण में सर्वाधिक उल्लेखनीय चन्द्रगुप्त मौर्य (321–297 ई0पू0) के महामंत्री कौटिल्य के अर्थशास्त्र को माना जाता है। प्राचीन भारत के विश्वकोष के रूप में इसको जाना जाता है। राजतंत्र और इसके संचालन के बारे में मुख्य स्रोत सामग्री है अर्थशास्त्र कई सदियों तक पूर्णतः लुप्त रहने के बाद 1905 में पुनः खोजा गया यह संस्कृत ग्रन्थ अपने में बृहद निधि संजोये हुये है। इसके लेखक चाणक्य या कौटिल्य नामक ब्राह्मण थे। इस मूल ग्रन्थ का काफी अंश पंचमाश से चतुर्थांश तक नष्ट हो गया है। पूरा कोई प्रकरण गायब नहीं है। प्रतिलिपियाँ तैयार करते समय अधिकरण (खण्ड) में छोटे–छोटे अंश छूट गये हैं। अर्थशास्त्र का अर्थ है, "आर्थिक लाभ का शास्त्र" व्यक्ति के नहीं एक विशेष प्रकार के राज्य के आर्थिक लाभ का शास्त्र । प्राचीन भारत के संघ राज्यों का विशद इतिहास बताने में 'अर्थशास्त्र' ही एकमात्र आधार है। ये संघ राज्य आधुनिक प्रजातंत्र की परम्परा के आधार स्तम्भ थे। अर्थ शास्त्र में राजतंत्र के सिद्धान्तों का विवरण है। "यह ग्रन्थ, पूर्वाचार्यों की राजतंत्र–विषयक विविध कृतियों को देखने के बाद, समस्त पृथ्वी पर स्थापित करने और इस पर शासन करने के उद्देश्य से रचा गया है ' (पृथिव्या लाभे पालने चा यावन्त्यर्थशास्त्राणि पूर्वाचार्यैः प्रस्ताविढानि प्रायशस्तानि संहृत्यैकमिदमर्थशास्त्रं कृतम्। – अर्थशास्त्र 1.1.1)

अर्थशास्त्र में वर्णित शासक वर्ग का महत्व दृष्टिगोचर होता है जिनमें उच्च और निम्न अधिकारी वर्ग थे। ये राज्य के मुख्य आधार स्तम्भ थे। अधिकारी वर्ग के दोनों भाग संख्या की दृष्टि से भी बहुत बड़े थे। अर्थशास्त्र में विशाल स्तर पर गुप्तचरों का उपयोग करने का सुझाव प्रस्तुत किया गया है जिसका उद्देश्य था राज्य को सुरक्षा और लाभ। गुप्तचरों को अपनी आवश्कता की पूर्ति हेतु किसी भी प्रकार का व्यवहार करने की स्वतन्त्रता थी परन्तु मूल में राज्य की सुरक्षा को ही सर्वोपरि माना जाता था जिससे राज्य सुदृढ़ हो एवं प्रशासनिक ढाँचा सुचारू रूप से कार्य करता रहे।

अर्थशास्त्र के वर्णन के अनुसार राज्य का सर्वोच्च अधिनायक राजा था। इसमें वर्णित राजा अपने राज्य का सर्वाधिक व्यस्त व्यक्ति होता था। राजा को विष प्रयोग और हत्यारे से बचने के लिए बहुत बन्दोबस्त रखना पड़ता था। राजा में असाधारण गुणों का होना आवश्यक बताया गया है। राजा की सहायतार्थ मन्त्री–परिषद राजकोष और सेना के प्रधान होते थे। अर्थशास्त्र में पूर्ववर्ती आचार्यों के विविध मतों पर निष्पक्षता से विचार–विमर्श किया गया है–

1. राजपुत्र की शिक्षा के उपाय, 2. राजपुत्र की महत्वाकांक्षा की परीक्षा, 3. राजपुत्र के दुर्गुणों का पता लगाना, 4. नियन्त्रण करना या पदच्युत करना। उपरोक्त सभी बिन्दुओं पर विस्तार से विवेचना की गई है जिससे राज्य को कोई हानि न हो। अर्थशास्त्र में राज्य के सुनियोजित होने का विवरण उपलब्ध होता है। अर्थशास्त्र के ग्यारहवें अधिकरण में कबीलों के नेताओं को भ्रष्ट करने, उनमें परस्पर फूट डालने की कोशिशों को सफल बनाने के लिये चर्चा की गई है। आन्तरिक स्तर पर राजा के प्रतिनिधियों द्वारा कबीलों में सही बँटवारों को लेकर माँग करने की स्थिति को उकसाने की प्रक्रिया पर बल दिया गया है। जिससे कबीले पर कब्जा किया जा सके। अर्थशास्त्र में लिच्छवियों को नष्ट करने के लिये अजातशत्रु के ब्राह्मण मंत्री

वस्सकार द्वारा लिच्छवियों के विरूद्ध उपाय किये जाने का उल्लेख मिलता है। प्रशासन की एक इकाई जनपद भी आधुनिक जिले के समान समझी जा सकती है। प्रत्येक जनपद में एक सी शासन व्यवस्था थी। सर्वोच्च अधिकारी राजा के मन्त्री होते थे, इनके नीचे अधिकारियों की एक परिषद होती थी। चुनाव के समय इनकी बुद्धिमत्ता, साहस, निष्ठा, ईमानदारी तथा स्वामीभक्ति की परीक्षा होती थी। प्रत्येक अधिकरी के पूरे कार्यकाल में उसकी गतिविधियों पर गुप्त रूप से नजर रखी जाती थी। अधिकारी तन्त्र का निम्न छोर या कड़ी शहर अथवा गाँव के प्रत्येक मुहल्ले तक पहुँचता था। जिसका सरक्षक गोप कहलाता था जो अपने क्षेत्र में प्रत्येक व्यक्ति के जन्म–मृत्यु तथा आवागमन का पूरा ब्योरा रखता था। व्यापारी सार्थ में गुप्तचर होते थे।

जनपद की भूमि के दो स्पष्ट वर्ग थे–

1. राष्ट्र– राजस्ववाली भूमि।
2. जोती जाने वाली सीता भूमि।

कर निर्धारण उपज का छठा हिस्सा होता था। राज्य उद्यानों पर भी कर लेता था। राजा को भेंट उपहार देने की पारम्परिक प्रथा से बलि कर का विकास हुआ। कृषि अन्य भूमि में सीता भूमि का भाग बहुत बढ़ा हुआ था। यह भूमि जोतने वाले को उसके जीवन भर के लिये दी जाती थी। तत्पश्चात उसके उत्तराधिकारियों को दी जाती थी। लम्बी अवधि के लिये कृषि भूमि के खाली हो जाने पर, राज्य भूमि मंत्री सीताध्यक्ष उसे जोतने की व्यवस्था करता था। सीता भूमि में किसी प्रकार के सभा–समूह के आयोजन की अनुमति नहीं थी। चाणक्य के वर्णन के अनुसार– "ग्रामवासियों की निराक्षयता से और पुरूषों के अपने काम में जुटे रहने से ही राजकोष, बेगारी के श्रम(विष्टि), धान्य, तैल आदि की वृद्धि होती है।[2]

अर्थशास्त्र में अन्तर्राष्ट्रीय गठबन्धन, युद्ध, विष–प्रयोग, विद्रोह को प्रोत्साहन देना इत्यादि का वर्णन है। सन्धियाँ संविधानुसार तोड़ी जा सकती थी अर्थशास्त्र के राज्य में खनिकर्म तथा सिंचाई व्यवस्था उच्च स्तर की थी। इसी प्रकार पुण्य संग्रह सम्बन्धी सभी प्रक्रियाओं का पूरा विवरण दिया गया है। राज्य के प्रत्येक कर्मचारी को नकद वेतन मिलता था।[3] सबसे अधिक वेतन–प्रतिवर्ष 48,000 पण(चाँदी का सिक्का) राजा के पुरोहित, मंत्री राजमहिसी, राजमाता, युवराज, सेनापति को दिया जाता था। सबसे कम वेतन– प्रतिवर्ष 60 पण सैनिकों तथा मजदूरों को मिलता था। यह वेतन प्रतिनाह 17.5 ग्राम चाँदी के तुल्य था। बढ़इयों और शिल्पियों को राज्य की ओर से 120 पण वेतन मिलता था। प्रशिक्षित पदाति को 500 पण वेतन मिलता था। कुशल अभियन्ता को 1000 पण मिलते थे। अर्थशास्त्र का पण चाँदी का था। राज्य के एकाधिपत्य के बारे में चाणक्य के विचार हैं– "राजकोष का स्रोत खनिकर्म में है और सेना का स्रोत राजकोष में। जिसके पास कोष और सेना है वह सारी पृथ्वी पर विजय प्राप्त कर सकता है।" अर्थशास्त्र के एक प्रामाणिक अनुवाद की अनुक्रमणिका में अर्थदण्डों की सूची साढ़े नौ कालमों में दी गई है। गणिका वृत्ति के लिये नियमपण्य व्यापार सेवाओं की ही भांति थे। एक सीमा तक धन अर्जित करने के उपरान्त गणिकायें अपना पेशा त्यागकर सम्भ्रान्त जीवन व्यतीत कर सकती थीं। वयोवृद्धा गणिका राज्य की सेवा में अधीक्षिक(मातृका) भी बन सकती थी। वस्तुतः यह चित्र तत्कालीन समाज में स्त्रियो की सुरक्षा और सम्मान पर प्रचुर प्रकाश डालता है। यहाँ तक वर्णन प्राप्त होता है कि दास के बच्चे भी स्वतंत्र होते थे, उन्हें बेचा नहीं जा सकता था। कोई भी दास स्त्री या पुरूष अपने श्रम की वैधानिक मूल्य में गणना करके अपनी स्वतंत्रता खरीद सकता था।

अतएव यह सुस्पष्ट है कि 'अर्थशास्त्र' का महत्व केवल चन्द्रगुप्त मौर्य के इतिहास का ही वर्णन मात्र नहीं करता वरन संस्कृत साहित्य तथा समस्त भारतीय वाङमय को प्रभावित करता हुआ भी दृष्टिगोचर होता है। एक बृहत्तर राष्ट्र के निर्माण और संचालन के लिये आवश्यक समस्त बिन्दुओं पर कौटिल्य ने विस्तार पूर्वक विचार किया है। इसके साथ ही भारत की सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक और प्रशासनिक व्यवस्था का विशद निरूपण भी हुआ है। कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' के हस्तलेख को खोज निकालने और उस पर प्रानाणिक प्रकाश डालने का श्रेय आचार्य शाम शास्त्री को है। इस के माध्यन से भारतीय जन–जीवन का विस्तार से वर्णन प्राप्त होता है। 'अर्थशास्त्र' को आज भी भारतीय अर्धविद्या का एकमात्र ग्रन्थ माना गया है।

संदर्भ

1. शास्त्री, आर0 शाम(आचार्य)(अनुवादक) "कौटिल्य का अर्थशास्त्र" ।
2. जयचन्द्र विद्यालंकार(1933) भारतीय इतिहास की रूपरेखा, प्रयाग।
3. वाचस्पति गैरोला(1973) भारतीय संस्कृति और कला, उ0प्र0 ग्रन्थ अकादमी, लखनऊ।
4. कौशाम्बी, डी0 डी0(1977) प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
5. उपाध्याय, रामजी(1966) प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, इलाहाबाद, उ0प्र0।
6. शर्मा, मनमोहन लाल(1967) भारतीय संस्कृति और साहित्य, अजमेर, राजस्थान।
7. मुखर्जी, राधा कुमुद(अनुवादक, 1962) चन्द्रगुप्त मौर्य और उसका काल, दिल्ली।

ऐलन ट्यूरिंग व उनका विज्ञान के क्षेत्र में योगदान

सौम्या अवस्थी[1], एवं प्रीति बाजपेयी[2]
[1]किंग्स कालेज, लंदन, यू0के0
[2]डीन, स्टूडेंट वेलफेयर, बी0आई0टी0एस0 दुबई, यू0ए0ई0

प्राप्त तिथि–11.05.2015, स्वीकृत तिथि–26.05.2015

"एक कम्प्यूटर को बुद्धिमान तभी कहा जा सकता है जब वो मानव को अपने मानव होने का भुलावा दे सके।"
(ऐलन एम ट्यूरिंग)

ऐलन एम ट्यूरिंग कौन थे ? उन्हें गणित के श्रेत्र में इतना महान व्यक्ति क्यों माना जाता है ? कम्प्यूटर सांइस का अगुआ क्यों कहा जाता है ? और एनिगमा क्या है ? ऐसे कई प्रश्न मन में उठते हैं।

ऐलन ट्यूरिंग का जन्म 1912 में लंदन में हुआ था। उनके माता पिता ने यह कभी भी न सोचा होगा कि एक दिन कम्प्यूटर विज्ञान के क्षेत्र में उनके पुत्र को इतनी प्रतिगा प्राप्त होगी। ऐलन ट्यूरिंग का भारत के साथ भी कुछ नाता था। अंग्रेजों के राज्य में उनके पिता ने भारतीय सिविल सर्विस में सफल होने के बाद मद्रास प्रैसिडन्सी में काम किया। बहुत कम उम्र में ऐलन ट्यूरिंग का गहन रुझान विज्ञान, थ्योरी ऑफ रिलेटिविटी व क्वान्टम मैकेनिक्स की तरफ था। ऐलन ट्यूरिंग ने 1931 में किंग्स कॉलेज कैम्ब्रिज में गणित की आगे पढ़ाई करने के लिये दाखिला लिया और 1932 में उन्हें किंग्स कॉलेज की फैलोशिप भी गिली। इसी दौरान उनका गणितीय लौजिक से परिचय हुआ[1]। 1936 में उनका एक शोध पत्र कम्प्यूटेबल नंम्बरों पर छपा जिसमें उन्होंने कम्प्यूटेबल नम्बरों को एन्टशीडंग्स समस्या में प्रयोग किया। यहीं से युनिर्वसल ट्यूरिंग मशीन की शुरुआत हुई। यह डेविड हिलर्बट की एक गणितीय समस्या का सैद्धांतिक तरीका था[2]। युनिर्वसल ट्यूरिंग मशीन की संकलपना ने कम्प्यूटर के क्षेत्र में एक जबरदस्त बदलाव लाया क्योंकि सभी जानते हैं कि उस समय के कम्प्यूटर सिंफ किसी एक उपदेश को ले कर बनते थे।

सन 1938 से 1939 तक ऐलन ट्यूरिंग किंग्स कॉलेज की फैलोशिप पर एक लौजीशियन और नम्बर थियोरिस्ट के रूप में कार्यरत थे। वो गुप्त रूप से ब्रिटिश क्रिप्टोनॉटिक विभाग में, जिसको गर्वन्मेन्ट कोड और सायफर स्कूल के नाम से जाना जाता है, काम करते रहे। उनकी इस विभाग में उपस्थिति ने पूर्व वैज्ञानिक तरीकों से विश्व युद्ध के दौरान जर्मन्स द्वारा बनाई गई एक साइफर मशीन एनिगमा को समझने में एक नई वैज्ञानिक दिशा दी। कहते हैं कि यह मशीन एक डच के विचार पर जर्मनी में डॉ0 आर्थर शरबाअस ने बनाई, जिसका उद्देश्य व्यापार में काम लाने के लिये था। जर्मन्स ने इस मशीन को सुरक्षित व्यापारिक संचार के उद्देश्य से खरीदा। बाद में जर्मन आर्मी ने खुद इसका उत्पादन शुरू किया। इस मशीन में संदेश टाइप किया जाता और फिर मशीन पर बने रोटर या पहियों को घुमा कर शब्दों का क्रम बिगाड़ दिया जाता यानि संदेश साइफर हो जाता। दूसरी तरफ संदेश पाने वाला इसको एक कुंजी के माध्यम से सही क्रम में कर लेता। अंग्रेजों को इस मशीन एनिगमा का बहुत बाद में पता चला। 1939 मे एक जर्मन जासूस फ्रांस के द्वारा पकड़ा गया। फ्रांस ने एनिगमा की नियामावली की एक तस्वीर ले कर उसे पोलिश ब्यूरो को दिया। सन् 1939 में पोलिश लोगों ने भी अपनी मशीन बनाई। पर जब उनके सर पर खुद लड़ाई का खतरा मन्डराया तब उन्होंने उसके बारे में अंग्रेजों को बताया।

शुरू के दिनो में साइफर कुछ महीनो में बदला जाता पर युद्ध के दौरान हर दिन बदला जाता था। इससे 15 लाख सेटिंग बनती। जब अंग्रेज युद्ध में उतरे तो ऐलन ट्यूरिंग पूरे समय ब्रिटिश क्रिप्टोनॉटिक विभाग ब्लेचले पार्क में काम करने लगे। पोलिश लोगों के द्वारा किया गया काम बहुत सीमित था और वह जर्मन्स जिस प्रकार काम करते थे, उस पर निर्धारित था। ऐलन ट्यूरिंग ने उसे एक नई दिशा दी। उनके प्रयत्न से एक मशीन बौमबी में कुछ ऐसे सुधार लाये गये जिससे अगर किसी संदेश के कुछ शब्दों का मायने निकाला जा सकता तो मशीन पूरे संदेश का मतलब निकालने में कई गुना शक्तिशाली हो गई। इसमें एक कैम्ब्रिज के गणितज्ञ का भी महत्वर्पूण योगदान था पर ऐलन ट्यूरिंग का बुद्धिमान तरीके से लौजिक को मशीन से हल कराना बहुत महत्वर्पूण था। बाद मे ऐलन ट्यूरिंग और वेल्चमैन ने बौमबी मे संशोधन किया जिससे सिगनल को रिकार्ड भी किया जा सकता था। इतने सब के बाद भी एनिगमा जर्मन नौसेना के गुप्त संचारों को नही तोड़ सका। एक समय ऐसा भी आया जब ऐलन ट्यूरिंग के सहकर्मियों ने उनका साथ छोड़ दिया पर ऐलन ट्यूरिंग फिर भी बिना विचलित हुए उनके सहयोग के बिना भी लगे रहे। सन् 1939 में ऐलन ट्यूरिंग की मेहनत रंग लाई और वह एनिगमा को समझने में सफल हुए। पर नियमित रूप से डिक्रिप्शिन करने के लिये अभी भी सांख्यकीय प्रक्रियाओं पर काम बाकी था। 1941 के मध्य में एनिगमा पूर्ण रूप से कार्यरत हो गयी।

चित्र 1: एनिगमा मशीन

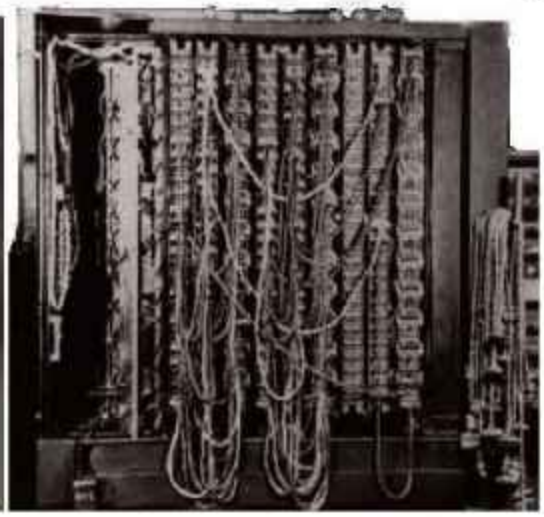

चित्र 2: टयूरिंग वेल्चमैन बौमबी

ब्लेचले पार्क में जहाँ ऐलन ट्यूरिंग ने जर्मन नौसेना के गुप्त संचारों पर काम किया, खासकर यू बोट संचार पर, वह एक प्रमुख स्थान बन गया और आज वह हट नम्बर 8 के नाम से प्रसिद्ध है। इस जगह पर जो भी काम हो रहा था वह सारी दुनिया से गोपनीय रखा जाता था। ब्लेचले पार्क की सुरक्षा व्यवस्था बहुत तगड़ी थी। अंग्रेज सरकार हर समय सर्तक थी कि कोई नाज़ी घुसपैठिया ना घुस जाये और सारी मेहनत पर पानी फिर जाये। कहते हैं कि सुरक्षा व्यवस्था इतनी दुरूस्त थी कि एक शादी शुदा जोड़ा जो कि यहाँ काम कर रहा था और उनसे गोपनियता की शर्त ले ली गई थी उन्हें भी 1970 मे पता चला कि वो दोनों उसी समय वहाँ कोड ब्रेकर थे। विश्व युद्ध के समाप्त होने के 20 वर्षों के बाद 1970 में हट नम्बर 8 में क्या काम हुआ और क्या हासिल हुआ इसका दुनिया को पता चला।

चित्र 3: ब्लेचले पार्क

चित्र 4: हट नम्बर 8 ब्लेचले पार्क

सन् 1941 के अन्त में जब अमेरिका विश्व युद्ध में शामिल हुआ तो अटलांटिक की लड़ाई का फायदा अलाइड फोर्सेस को मिला। फरवरी 1, 1942 में हट नम्बर 8 को एक जबरदस्त झटका लगा जब भूमध्यसागर की यू बोट के साईफर को डिकोड करने के लिये एक नई मशीन एम 4 जिसका नाम शार्क था, को प्रयोग में शामिल किया गया। इसी समय इलेक्ट्रॉनिक प्रौद्योगिकी का प्रयोग ब्लेचले पार्क में शुरू हुआ और यू बोट प्रणाली में जो कमियां थी सुधारी गई। हट नम्बर 8, ब्लेचले पार्क में हुए काम का अलाईड फोर्सेस को विश्व युद्ध में विजय दिलाने में पूरा योगदान था और विश्व युद्ध के समय को भी काफी हद तक कम कराने में था। नहीं तो विश्व युद्ध कुछ वर्ष और चलता और पता नही कितनी जाने और जातीं। ऐलन ट्यूरिंग मानते थे कि अगर एक मशीन से कोडेड संदेश भेजे जा सकते हैं तो डिकोडिंग के लिये भी मशीन की जरूरत है[3]। ट्यूरिंग वेल्चमैन बौमबी बनने का यही कारण था। विश्व युद्ध के खत्म होने के समय 200 बौमबी नाज़ी संदेशों की डिक्रोडिंग में इस्तमाल हो रही थीं।

युद्ध के समाप्त होने के बाद ऐलन ट्यूरिंग मैनचस्टर युनिवर्सिटी में कार्यरत हो गये और युद्ध से पहले जिस काम को कर रहे थे उस पर संलग्न हो गये। हट नम्बर 8 में हुए काम की इतनी गोपनियता थी कि ऐलन ट्यूरिंग का उससे क्या सम्बन्ध था और विश्व युद्ध में उनका क्या योगदान था कोई नही जानता था। सन् 1952 में ऐलन ट्यूरिंग का कम्प्यूटिंग मशीनरी एण्ड इनटैलिजैन्स नामक प्रसिद्ध पर्चा छपा। बहुतों का मानना है कि यही आज की कम्प्यूटिग की दुनिया का आधार बना। पर

उनकी निजी जिदगी में बडी उथल पुथल आयी[4]। 8 जून, 1954 में उनके घर की देखभाल करने वाले एक व्यक्ति ने ऐलन ट्यूरिगं के शव को बिस्तर पर पड़ा हुआ पाया। कहते हैं कि ऐलन ट्यूरिंग ने साइनाइड खा कर आत्महत्या की। दुख कि बात तो यह है, कि ऐलन ट्यूरिंग के अपूर्व योगदान के बाद भी उन्हें जीते जी कोई सराहना नहीं मिली।

संदर्भ

1. होजेस, एंड्रयू(2014) एलन ट्यूरिंग, द एनिगमा, विन्टेज रैंडम हाउज, लंदन, ब्रिटिश संस्करण।
2. http://www.sciencemuseum.org.uk/onlinestuff/people/alan%20turing.aspx
3. http://en.wikipedia.org/wiki/Entscheidungsproblem
4. http://www.historylearningsite.co.uk/alan_turing.htm

वायु का काला जहर

डी0 के0 अवस्थी[1], एवं सरिता चौहान[2]
[1,2]एसोसिएट प्रोफेसर, रसायन विज्ञान विभाग
श्री जे0एन0 पी0जी0 कॉलेज, लखनऊ–226001, उ0प्र0, भारत
dkawasthi5@gmail.com

प्राप्त तिथि–14.05.2015, स्वीकृत तिथि–26.07.2015

मनुष्य के जीवन में स्थानीय वायु की गुणवत्ता का विशेष प्रभाव पड़ता है। मुख्यतः उसकी श्वसन प्रणाली पर दूषित वायु जब आपके शरीर के अन्दर प्रवेश करती है तो वह शरीर पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्लू.एच.ओ.) की एक रिपोर्ट 2014 के अनुसार दुनिया के शहरों की वायु तीव्रगति से प्रदूषित हो रही है। भारत के शहर भी इस प्रदूषण से नहीं बचे हैं विश्व के 20 सबसे प्रदूषित शहरों में से 13 भारतीय शहर भी हैं। 9 देशों के 1100 शहरों पर किए गये इस अध्ययन में यह बात सामने आयी है कि भारतीय शहर प्रदूषित हवा के चलते श्वसन सम्बन्धी रोगों और श्वसन अंगों के कैंसर से ग्रसित हो रहे हैं 6 प्रदूषकों पीएम 2.5, पीएम 10 नाईट्रोजन ऑक्साईड, सल्फर डाई ऑक्साईड, ओजोन और कार्बन मोनो ऑक्साईड की स्थित का आकलन करने के लिए ए.क्यू.आई. को विकसित किया गया है सेन्टर फॉर साइंस एण्ड एनवायरन्मेंट के अनुसार दो अन्य विषैले प्रदूषकों–सीसा और अमोनिया के स्तर के बारे में भी जानकारी रखना अति आवश्यक है। सी.एस.ई. ने पाया कि बीती सर्दियों में 12 बार दिल्ली में धुंध छाने की घटना हुई है। यह एक बहुत खरतरनाक स्थिति है। ए.क्यू.आई. जारी करने के साथ भारत चुनिंदा वैश्विक देशों में जैसे अमेरिका, चीन, मैक्सिको, फ्रांस और हांगकांग की श्रेणी में शामिल हो गया है। उन देशों में धुंध के विषय अलर्ट तंत्र का क्रियान्वयन किया है तथा प्रदूषण स्तर गिराने के लिए आपात प्रबंध भी किये हैं। केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड ने हाल में नेशनल एनवायरन्मेंट एयर क्वालिटी स्टैण्डर्ड(एन.एक्यू.एस.) रिपोर्ट में 175 शहरों की वायु गुणवत्ता की निगरानी कर आंकड़े प्रस्तुत किए हैं। इसके अनुसार पीएम 10 स्तर 78 प्रतिशत यानी 137 शहरों में निर्धारित मानकों से अधिक पाया गया। इनके 53 प्रतिशत शहर अत्याधिक प्रदूषित पाये गये हैं। 7 प्रतिशत शहरों में यानी 13 शहरों में नाइट्रोजन डाईऑक्साईड का स्तर अधिक है केवल सल्फर डाईऑक्साईड का स्तर बेहतर स्थिति में है।

मुख्य प्रदूषक– ओजोन फेफड़ों के रोगी जैसे अस्थमा क्रोनिक ब्रोंकाइटिस और इंफी सीमा से पीड़ित लोगों के लिए यह हानिकारक है इसके कारण सांस लेने में समस्या उत्पन्न हो सकती है श्वांस गले में खराश, जलन, सीने में तनाव या लंबी सांस लेने पर सीने में दर्द भी महसूस हो सकता है, फेफड़ों की कार्य क्षमता घट जाती है। फेफड़ों के उतकों को नुकसान पहुंचता है।

पीएम 2.5, पीएम 10– ये ठोस और तरल बूंदों के मिश्रण होते हैं कुछ सूक्ष्म कण सीधे उत्सार्जित किये जाते हैं तो कुछ तमाम तरह के उत्सर्जनों के वातावरण में परस्पर क्रिया द्वारा अस्तित्व में आते हैं यह इंसान के स्वास्थ के लिए बहुत घातक होते हैं।

पीएम 2.5– इन कणों के आकार का व्यास 2.5 माईक्रोमीटर या इससे भी बहुत कम होता है यह इतने अधिक छोटे होते हैं कि इन्हें केवल इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी से ही देखा जा सकता है। इन कणों के स्रोत मोटर वाहन, पॉवर प्लान्ट, लकड़ियों का जलना, जंगल की आग और कृषि उत्पादों का जलना है।

पीएम 10– ऐसे सूक्ष्म कण जिनका व्यास 2.5 से 10 माइक्रोमीटर तक होता है इन कणों के स्त्रोत वाहनों से उड़ने वाली धूल निर्माण कार्य इत्यादि से निकलने वाली धूल है। 10 माइक्रोमीटर से कम सूक्ष्म कण से हृदय और फेफड़ों की बीमारी तथा मौत तक हो सकती है। ये मानव में फेफड़ों और रक्त प्रवाह में प्रवेश कर सकते हैं इनसे हृदय संबंधी रोग, फेफड़ों का कैंसर, अस्थमा और श्वसन संबंधी संक्रमण का खतरा होता है। विश्व में प्रत्येक वर्ष लगभग 20 लाख होने वाली मौतों का कारण पीएम 10 पार्टीकल्स होते हैं। डब्लू0एच0ओ0 के मानक के अनुसार वायु में पीएम 10 सूक्ष्म कणों की कणों की मौजूदगी 20 माईक्रोग्राम प्रति घन मीटर होनी चाहिए लेकिन कई शहरों में ये 300 माईक्रोग्राम प्रति घन मीटर हो चुकी है।

भारतीय शहरों में पीएम 10 की मात्रा(सालाना औसत माईक्रोग्राम प्रति घन मीटर)

शहर	मात्रा	शहर	मात्रा
लुधियाना	251	जयपुर	112
कानपुर	209	वाराणसी	106
दिल्ली	198	पुणे	99
लखनऊ	186	नागपुर	98
इन्दौर	174	विजयवाड़ा	91
आगरा	165	राजकोट	89
फरीदाबाद	139	विशाखापत्तनम	87
जबलपुर	136	हैदराबाद	87
मुम्बई	132	सूरत	81
धनबाद	132	नासिक	80
इलाहाबाद	128	बड़ौदरा	57
पटना	120	कोयम्बटूर	55
मेरठ	115	चैन्नई	48
मदुरै	41	अमृतसर	36

सल्फर डाईऑक्साईड– ये रंगहीन क्रियाशील गैस है ये सल्फर युक्त कोयले के जलने पर उत्पन्न होती है। ये अधिक मात्रा में औद्योगिक संयत्रों के पास मिलती है। इसके प्रमुख स्रोत उर्जा संयन्त्र रिफाईनरीज औद्योगिक भटिठयाँ हैं। ये सांस लेने में जलन पैदा करती है, अस्थमा पीड़ित व्यक्ति के लिए अधिक हानिकारक होती हैं।

कार्बन मोनो ऑक्साईड– ये रंग हीन, गंध हीन गैस है। ईंधन के पूर्ण रूप से न जलने पर ये उत्पन्न होती हैं। वाहनों से निकलने वाले धुएं इस गैस से कुल उत्सर्जन में 75 प्रतिशत भागीदारी रखते हैं शहरों में ये भागीदारी 95 प्रतिशत हो जाती है। फेफड़ों के माध्यम से ये गैर परिसंचरण तत्र में मिल जाती है, रक्त में ऑक्सीजन के वाहन तत्व हीमोग्लोबिन के साथ मिल जाती है। ये शरीर के अंगों के उतकों तक पहुँचने वाली ऑक्सीजन की मात्रा को बेहद कम कर देती है। इसके कारण व्यक्ति कार्डियोवैस्क्यूलर रोगों से पीड़ित हो जाता है ऐसे लोग इस घातक प्रदूषण की चपेट में आने पर सीने में दर्द महसूस करने लगते हैं।

राष्ट्रीय गुणवत्ता सूचकांक(एन.क्यू.आई.)–भारत– सूचकांक में वायु की शुद्धता का मूल्यांकन 0 से 500 अंक के दायरे में किया जाता है। उदाहरणार्थ– यदि वायु की गुणवत्ता 50 तक है तो यह शुद्ध वायु है, जितना इसके उपर आंकड़े होते जायेंगे, हवा की स्थिति खराब होती जायेगी। रंगों के आधार पर यह ज्ञात किया जा सकता है कि आपके शहर की वायु कितनी प्रदूषित है अगर रंग हरा है तो अच्छी है और स्वस्थ पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। परन्तु लाल रंग है तो यह स्वस्थ व्यक्ति को भी बीमार कर देगी।

एन.क्यू.आई.	मतलब	रंग कोड	स्वास्थ्य पर असर
1–50	अच्छी	हरा	मामूली असर
51–100	सन्तोषजनक	हल्का हरा	संवेदनशील लोगों को सांस लेने में तकलीफ
101–200	मध्यम	पीला	फेफड़े, अस्थमा और दिल के मरीजों को सांस लेने में परेशानी
201–300	खराब	नारंगी	अधिकांश लोगों को सांस लेने में परेशानी
300–400	बहुत	लाल	अधिक समय तक ऐसे क्षेत्र में रहने से सांस की बीमारी
401–500	खतरनाक	गहरा लाल	स्वस्थ लोगों पर भी प्रभाव पड़ता है।

6 प्रदूषकों पीएम 2.5, पीएम 10 नाईट्रोऑक्साइड, सल्फर डाईऑक्साइ, ओजोन और कार्बन डाईऑक्साइड के स्तर का आंकलन करने के लिए एयर क्वालिटी इन्डेक्स(एक्यूआई) को विकसित किया गया है। वायु प्रदूषण को बढ़ने का कारण

भारत में सड़कों पर बढ़ते वाहनों की संख्या तेजी से एक बड़े वर्ग में रूप में उभरते मध्यम वर्ग के लिए वाहन रखना उनकी प्रतिष्ठा का प्रतीक बन चुका है। तेजी से विकास होने के कारण इस देश में उद्योग धन्धों से निकलने वाले धुएं जानलेवा साबित हो रहे हैं खाना पकाने के लिए उपयोग की जा रही लकड़ी और कोयले से निकला हुआ धुआं हवा को जहरीला बना रहा है। विकसित देश बनने को आकुल इस विकासशील देश को ऊर्जा की सर्वाधिक आवश्यकता है। अतः इस उर्जा को पूरा करने के लिए अधिकांश बिजली–कोयला आधरित पॉवर संयत्रों से तैयार की जा रही है। तेज शहरीकरण और वहाँ बढ़ते वायु प्रदूषण ने लोगों का जीना दूभर कर दिया है। सांस रोगी जैसे कैंसर, सांस रोगी के लिए ये प्रदूषक बड़ी चिन्ता का विषय है। अगर आम जनता वायू प्रदूषण के प्रति जागरूक हो गयी और इसके दुष्प्रभावों की प्रवाह करने लगी तो निश्चय दे लोग जो अपनी सांसों पर पड़ रही संकट से बेहिचक सक्रिय भागीदारी निभाऐंगे। प्रदूषित हवा क्षेत्र में थोड़े–थोड़े अन्तराल पर यदि आपको लम्बे समय तक रहना पड़े तो उसकी तुलना में ज्यादा गहरी सांस लेनी पड़ेगी तो ऐसे में अपनी मौजूदगी के घन्टों में कम करके इससे बच सकते हैं। ऐसी स्थिति दूषित वायू क्षेत्र में घंटों कठिन मेहनत करनी पडे जिसके चलते आपको गहरी सांसे लेनी पड़ रही हैं तो ऐसे में भी आपको अपनी गतिविधि को सीमित करते हुए वहाँ से निकलने में समझदारी दिखानी चाहिए।

शहरों में प्रदूषण नियंत्रण के लिए समयबद्ध कार्यवाही करने की आवश्यकता है ताकि लोगों का स्वच्छ वायु के साथ स्वास्थ्य पर पड़ने वाले इसके दुष्प्रभाव को कम किया जा सके। वायु प्रदूषण पर लगाम लगाने के लिए आपात प्रबन्धन किये जाने चाहिए। 2014 के एन्वायरमेंट परफारमेन्स इन्डेक्स में भारत का स्थान 178 देशों में 174वां स्थान है।

संदर्भ

1. सेन्टर फार साईंस एनवायरमेंट (सीएसई) की रिपोर्ट 2014–15।
2. केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड की वेबसाईट।
3. विश्व स्वास्थ संगठन की रिपोर्ट 2014–2015।
4. एनवायरमेंट परफारमेंस 2014–15।

भारत में कृषि जैव–विविधता में क्षति

नीरजा मिश्रा
असिस्टेंट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग
बी0एस0एन0वी0 पी0जी0 कॉलेज, लखनऊ–226001, उ0प्र0, भारत
nmisra09@gmail.com

प्राप्त तिथि–14.02.2015, स्वीकृत तिथि–24.02.2015

खाद्यान्न के बाजारीकरण का प्रत्यक्ष प्रभाव मानव जाति को भोजन तथा जीवकोपार्जन का तथा समस्त खाद्य उत्पादन के विकास का सशक्त आधार "कृषि जैव–विविधता" पर पड़ रहा है। प्रस्तुत लेख में जैव–विविधता के ह्रास के कारणों एवं निदान का विश्लेषण किया गया है जिससे भारत में कृषि जैव–विविधता के संरक्षण द्वारा कृषि को स्थायित्व एवं निरन्तरता प्रदान की जा सके। समस्त खाद्य प्रजातियों की कृषि जैव–विविधता(जो कि सामान्य जैव–विविधता का एक महत्वपूर्ण उपांग है) के समक्ष खाद्य बाजार के भूमण्डलीकरण के कारण गम्भीर संकट आसन्न है। जबकि वस्तु स्थिति यह है कि यह अरबों लोगों के भोजन, जीविकोपार्जन तथा समस्त खाद्य उत्पादन को एक सशक्त आधार प्रदान करती है। प्रस्तुत लेख में हरित क्रांति अथवा खाद्य उत्पाद के बाजारीकरण के कारण भारत की कृषि जैव–विविधता पर पड़ने वाले प्रभाव का विश्लेषण किया गया है। इसके लिए सर्वप्रथम कृषि जैव–विविधता का अर्थ समझना आवश्यक है।

कृषि जैव–विविधता क्या है ?

यद्यपि कृषि जैव–विविधता शब्द नया है परन्तु इसकी अभिधारणा पुरानी है। यह किसानों, चरवाहों तथा मत्स्य पालनकर्ताओं द्वारा सावधानीपूर्वक किये गये चयन एवं खोजपूर्ण विकास का परिणाम है। यह मानव जाति द्वारा भोजन तथा कृषि के लिए महत्वपूर्ण विभिन्न जैविक सम्पदा के निरन्तर रखरखाव द्वारा सृजित होती है। इस प्रकार कृषि जैव–विविधता, जिसे एग्रो बायो–डायवर्सिटी भी कहते हैं, के अंतर्गत निम्नांकित सम्मिलित हैं–

फसलों की किस्में, पालतू जानवरों तथा मछलियों की प्रजातियों, जंगलों में उपलब्ध प्राकृतिक सम्पदा, जंगली क्षेत्र तथा जलीय पारिस्थितिक तंत्र।

उत्पादन पारिस्थितिक तंत्र की खाद्यान्न उत्पादन में सहायक स्वतः उत्पन्न प्रजातियां जैसे– मिट्टी के सूक्ष्म जीव, परागण करने वाले जीव आदि।

वृहद् वातावरण की स्वतः उत्पन्न प्रजातियां जो खाद्य उत्पादन पारिस्थितिक तंत्र का अंग हैं(कृषि, चारागाह, जंगल तथा जलीय पारिस्थितिक तंत्र)।

इस प्रकार कृषि जैव–विविधता केवल मनुष्य के कार्यकलापों का परिणाम नहीं है तथा मानव जीवन न सिर्फ खाद्य एवं अन्य पदार्थों के लिए इस पर निर्भर है अपितु भूमि के उन क्षेत्रों के रखरखाव के लिए भी है, जो उत्पादन के वृहद् वातावरण के संरक्षण हेतु आवश्यक हैं। इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है कि प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से खाद्य एवं कृषि(यथा फसलें, मवेशी, जंगल तथा मत्स्य पालन आदि) को प्रभावित करने वाले जीव–जन्तुओं, वनस्पतियों तथा सूक्ष्म जीवों के प्रकार एवं नई किस्में सभी कृषि जैव–विविधता का अंग हैं। इसमें जैविक सम्पदा की किस्में(प्रजाति एवं प्रकार आदि) तथा भोजन, चारा, रेशा, ईंधन एवं औषधि आदि सम्मिलित हैं। इसमें स्वतः स्फूर्त प्रजातियां जैसे– सूक्ष्म जीव, परागण करने वाले जीव आदि जो उत्पादन को प्रभावित करते हैं, सम्मिलित हैं तथा वृहद् वातावरण के कृषि–पारिस्थितिक तंत्र के उपांग(कृषि, चारागाह, जंगली क्षेत्र, जलीय क्षेत्र) के साथ ही स्वयं कृषि–पारिस्थितिक तंत्र भी सम्मिलित है।

भारत की कृषि जैव–विविधता– ऊष्ण कटिबंधीय वर्षा वनों से लेकर अल्पाइन वनस्पतियों और शीतोष्ण वनों से तटीय नममूमि तक भारत समृद्ध और वैविध्य पूर्ण जैव–विविधता से युक्त है। 80 के दशक में 18 प्रमुख जैव–विविधता केन्द्रों की पहचान किये जाने पर भारत में दो प्रमुख केन्द्र पाये गये– पश्चिमी घाट तथा पूर्वी हिमालय। हाल में किये गये वर्गीकरण में आठ महत्वपूर्ण स्थानों में यह दो केन्द्र प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त भारत में 26 देशज केन्द्रों की पहचान की है, जो अब तक पहचाने गये एक तिहाई पुष्प प्रजातियों का घर है। भारत का यह क्षेत्र धरती का मात्र 2.4 प्रतिशत है जबकि यहाँ विश्व की 7. 31 प्रतिशत प्रजातियां पायी जाती हैं, जिनकी कुल संख्या 89,451 है। भारतीय जैव–विविधता में देशजता की बहुलता है। देश की 33 प्रतिशत वनस्पतियां देशज हैं और अधिकांशतः उत्तर–पूर्व, पश्चिमी घाट, उत्तर–पश्चिमी हिमालय और अंडमान व निकोबार द्वीपों में सीमित हैं। देश की 30 प्रतिशत वनस्पतियां स्थानीय हैं। भारत की जैव–विविधता का रिकॉर्ड भी इतना ही

प्रभावशाली है। जिनमें 167 फसली प्रजातियां एवं उनके जंगली सम्बन्धी शामिल हैं। भारत को चावल, अरहर, आम, हल्दी, अदरख, गन्ना आदि की 30,000–50,000 किस्मों का केन्द्र माना जाता है। विश्व की कृषि में सहयोग के आधार पर भारत को सातवें स्थान पर रखा गया है।

भारत में जैव–विविधता के क्षय के कारण– जैव–विविधता वातावरण में क्षय के अनेक कारणों में प्रमुख इस प्रकार हैं–

औद्योगिक और हरित क्रान्ति का तेजी से विस्तार, अत्यधिक पशुधन उत्पादन, औद्योगिक मत्स्य पालन तथा एक्वाकल्चर(जलीय संवर्धन)। कुछ फसलें एक फसली रूप से पैदा की जाती है। पालतू पशुओं की संख्या सीमित रखी जाती है तथा कुछेक मछली की एवं जलीय प्रजातियों का संवर्धन किया जाना।

खाद्य प्रणाली और विपणन, और जीवों के औद्योगिक पेटेंट के वैश्वीकरण ने ऐसे उत्पादन के लिए प्रेरित किया है जिसमें उत्पाद एक समान, कम भिन्नता वाला परन्तु वैश्विक बाजार में अधिक प्रतिस्पर्धी है।

कृषि जैव–विविधता के क्षय ने भारतीय कृषि की दीर्घकालिक स्थिरता और चिरन्तनता के लिए अनेक तरह से संकट पैदा किया है–

1. इस क्षय ने उस आनुवंशिक आधार को कमजोर कर दिया है जिसकी आवश्यकता हमारे वैज्ञानिकों को फसलों ओर पशुओं और पशुओं में सतत् सुधार के लिए है। 90 प्रतिशत से अधिक फसलों की किस्में आज खेतों से लुप्त हो चुकी हैं। एचवाईवी$_s$(हाई यील्ड वेरायटी/उच्च उपज किस्म) की अधिकांश किस्में पारम्परिक किस्मों एवं उनके जंगली प्रकारों के अनुवंशिक भागों से विकसित किये गये हैं। यह विशेषतः संकर एचवाईवी$_s$ बहुत दीघ्रजीवी नहीं हैं। ये अपनी व्यवहारिकता और उत्पादकता खो देते हैं या कीटों के लिए अत्यन्त संवेदनशील हो जाते हैं। कुछ वर्षों में इन पर बीमारी आक्रमण करती है और उस स्थिति में यह आवश्यक हो जाता है कि इनमें ताजा जैविक पदार्थ डाला जाय जो केवल उपलब्ध पारम्परिक या जंगली पौधों से ही मिल सकता है। परन्तु एचवाईवी[5] के बहुतायत से पारम्परिक फसलों का क्षय होता जा रहा है। इस प्रकार नयी प्रजातियां विकसित करने के लिए अनुवांशिक निर्माण हेतु आधार ही नहीं है।
2. एचवाईवी$_s$ फसल की किसी आपदा के कारण बरबादी कृषक के लिए गम्भीर झटका होती है क्योंकि उसका बहुत सारा धन सिंचाई, कीटनाशक और बीज आदि में व्यय हो चुका होता है।
3. कृषि के व्यवसायीकरण ने कृषक को उद्योग संचालित बाजार और सरकार पर अत्याधिक निर्भर बना दिया है। आज भूमि और मजदूरी के अतिरिक्त कृषक को आवश्यकता की सारी वस्तुएं बाजार से प्राप्त होती हैं जैसे बीज, सिंचाई, उर्वरक, कीटनाशक और ऋण आदि। अनेकों अनुदान के बावजूद इन सबकी कीमत लगातार बढ़ रही है।
4. इस व्यवसायीकरण ने भी कृषक के जीवन में बहुत एकरसता और असुरक्षा उत्पन्न की है। पारम्परिक धान के खेतों में केवल धान ही नहीं, वरन् मछलियां, मेढ़क जैसी अनेक जैव–विविधताएं पायी जाती थीं जो कई समुदायों, विशेषकर आदिवासियों के आहार का हिस्सा थीं आधुनिक धान के खेतों में बहुत से रासायनिक उर्वरक और कीटनाशकों का प्रयोग इस जैव–विविधता को समाप्त देता है।
5. आज कई घरेलू जीवों की लगभग आधी प्रजातियां समाप्त हो चुकी हैं।
6. मछली पकड़ने के विश्व के 17 मुख्य स्थानों का या तो पूर्ण दोहन कर लिया गया है या उनके ने रहने की क्षमता से अधिक शोषण कर लिया गया है। जिसके कारण आज जाने कितनी मत्स्य प्रजातियां विलुप्त हो चुकी हैं।

खाद्य उत्पादन के व्यवसायीकरण के प्रभाव– हरित क्रान्ति ने खाद्यान्न उत्पादन के तरीके में क्रान्ति ला दी। हालांकि आरम्भ में जो कृषक इसका विरोध कर रहे थे, एचवाईवी द्वारा दिखाई गयी नाटकीय खाद्यान्न उत्पादकता के परिणामों के प्रलोभन में आ गये। कृषकों ने अपने पारम्परिक बीज और खेती के तौर तरीकों को छोड़ दिया है और स्वयं सरकार तथा निजी क्षेत्र के मार्गदर्शन पर निर्भर हो गये हैं। पारम्परिक रूप से कृषि हमारी संस्कृति का हिस्सा रही है। परिश्रम और बुद्धि के अतिरिक्त कृषक को मात्र बीज और उर्वरक की आवश्यकता थी, जो उसे अपनी कृषि प्रणाली से ही प्राप्त हो जाया करते थे। सामाजिक प्रणाली से ही प्राप्त हो जाया करते थे। सामाजिक प्रथायें, अनुष्ठान और सम्बन्ध, सब स्वयं ही कृषि से जुड़े थे। जबकि नयी कृषि हरित क्रान्ति ने सारी प्रणाली को ही बदल दिया है। कृषि आज एक व्यापार बन गई है, जिसके मूल में निवेश करना और लाभ अर्जित करना है। घरेलू खपत के लिए होने वाली कृषि ने मुद्रा–बाजार का रुख कर लिया है। जैसे–जैसे गोबर की जगह रासायनिक उर्वरकों ने ले ली है, और मवेशी, दूध, ऊन और मांस के लिए पाले जा रहे हैं, पशुपालन जो कभी कृषि का अभिन्न अंग हुआ करता था, आज दोयम दर्जे का पर आ गया है। एचवाईवी बहुत कम चारे का उत्पादन करते हैं बल्कि कुछ किस्मों जैसे सोयाबीन और बौना गेहूँ में तो ये लगभग नगण्य हैं, जबकि बाजरा जैसी पारम्परिक फसलें लगभग 25 प्रतिशत चारे की आवश्यकता को पूरा कर देती थीं। इस प्रकार का अकार्बोनिक और जैविक रूप से वैविध्यपूर्ण कृषक केन्द्रित कृषि का क्षय हुआ है। मिट्टी की ऊपरी सतह के पोषक तत्वों का क्षय रासायनिक उर्वरकों से बदले

नहीं जा सकते। जलनराव, सिंचित भूमि का खारा होना, व्यापक रासायनिक विषाक्तता, अनुवांशिक क्षय आदि कृषि के व्यवसायीकरण के दुष्परिणाम हैं।

इन सबके अतिरिक्त हरित क्रान्ति से होने वाली सबसे बड़ी हानि जैविक रूप से वैविध्य पूर्ण प्रजातियों का क्षय, जिन पर कृषि निर्भर करती है। दुर्भाग्य से भारत में इस प्रकार के कुल नुकसान का कोई सही आंकलन उपलब्ध नहीं हैं। इस नुकसान का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि आज देश में एचवाईवी 70 प्रतिशत धान और 90 प्रतिशत गेहूँ का स्थान ले चुके हैं। मात्र कुछ स्थानीय अध्ययन बताते हैं कि आन्ध्र के गोदावरी जनपद की 95 प्रतिशत धान की प्रजातियाँ विलुप्त हो चुकी हैं। धान, कपास, बाजरा, दालों की हजारों किस्में अब प्रयोग में नहीं लायी जातीं।

भारत में कृषि जैव–विविधता का संरक्षण– जैव–विविधता के संरक्षण हेतु यह समझाना आवश्यक है कि मनुष्य की विभिन्न आवश्यकताओं को पूरा करने वाले जैविक वैविध्यपूर्ण कृषक वातावरण के विभिन्न अंग कृषि–उत्पादकता को बढ़ाने के लिए नितान्त आवश्यक है।

उत्पादन एवं विविधता के संगम हेतु कुछ सुझाव– थोड़े समय के लिए, क्योंकि जैव–वैविधिक्य ऑर्गेनिक(अकार्बनिक व कार्बनिक) कृषि प्रत्येक स्थान पर संभव नहीं हो सकती, भौगोलिक रूप से चलन में एचवाईवी खेती के क्षेत्रों में पारम्परिक फसलों के क्षेत्रों में सम्मिलित करने को बढ़ावा देना चाहिए। सिंचित क्षेत्रों में एचवाईवी खेती सफल रहती है जबकि परम्परागत फसलों की खेती वर्षा द्वारा सिंचित मैदानों तथा पहाड़ी या दलदली इलाकों के लिए ज्यादा उपयुक्त हैं। देशज जैव–विविधता को बनाये रखना चाहिए। देशज फसलों एवं उनके प्रकारों, मवेशियों आदि पर उनके वांछित लक्षणों जैसे उत्पादकता तथा प्रतिरोधकता आदि पर शोध कार्य किये जाने चाहियें। बीज बचाओ आन्दोलन से जुड़े कृषकों की रिपोर्ट/आख्या बताती है कि गढ़वाल में परम्परागत रूप से उगाई जाने वाली थापाचीनी धान की किस्म कम लागत में आधुनिक एचवाईवी के समान उत्पादन देती है।

जैव–वैविधिक ऑर्गेनिक कृषि को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। इस प्रकार की कृषि को बढ़ावा देने के लिए ऑर्गेनिक लागत, बैंक ऋण, कृषक प्रशिक्षण कार्यक्रम आदि पर छूट दी जानी चाहिए। कृषक एवं उपभोक्ता, जो सुरक्षित तथा विविधतापूर्ण खाद्यान्न चाहते हैं, के बीच सम्बन्ध स्थापित किया जाना चाहिए। शहरी उपभोक्ता कीटनाशकों के अंश से परिपूर्ण खाद्य के हानिकारक प्रभावों के प्रति जागरूक हैं। इस जागरुकता के कारण खाद्यान्न को कुछ बढ़े हुये मूल्य पर आसानी से उपभोक्ता खरीद लेंगे।

सरकार अथवा प्राइवेट एजेन्सियों द्वारा स्थापित विभिन्न जीन बैंकों में कृषकों द्वारा प्रयुक्त न की जा रही देशज फसलों के वैविध्य का उचित संरक्षण किया जाना चाहिये। संरक्षित नमूनों के स्वदेश आगमन तथा वितरणों की प्रभावी प्रक्रिया होनी चाहिये जिससे कृषक नई किस्मों तथा ऑर्गेनिक कृषि के तरीकों पर प्रयोग कर सकें।

कृषकों एवं कृषक समाजों को दूर–दराज के इलाकों में स्थानांतरित करके भी ऑर्गेनिक फसलों की विविधता बनाये रखने की दिशा में सहायक हो सकता है।

कृषकों के ज्ञान अथवा प्रयोगों द्वारा विकसित जैविक लक्षणों के आधार पर काफी उन्नति कृषि के क्षेत्र में की गई है परन्तु इनसे प्राप्त सरकारी अथवा कॉर्पोरेट सेन्टर तक ही सीमित रह जाते हैं। कृषक समाज को इस लाभ का हिस्सा देकर संरक्षण एवं खोज करने के लिए उन्हें प्रेरित किया जाना चाहिये। उन्हें रॉयल्टी के रूप में धन अथवा विकास के साधन या सामाजिक सम्मान आदि दिया जा सकता है।

संरक्षण हेतु क्षेत्रों को चिन्हित किया जाना चाहिये एवं उनके दोहन की सीमा निर्धारित होनी चाहिये। इन क्षेत्रों के कृषकों को संरक्षण प्रक्रिया के केन्द्र में रखा जाना चाहिये। अंतर्राष्ट्रीय संधियों में जैव–विविधता पर सम्मेलनों एवं पौधों की आनुवंशिक सम्पदा के उपक्रमों द्वारा संरक्षण एवं स्थानीय समुदायों के अधिकारों के प्रति जागरुकता बढ़ी है। भारत में संरक्षण के सिद्धांतों एवं समुदायों को लाभ पहुँचाने के तरीकों को जैव–विविधता संरक्षण कानून में प्रस्तावित किया गया है, जो भारत सरकार के स्तर पर विचाराधीन है।

संदर्भ

1. शर्मा, अंजू(2004) ए बायो पाइरेसी कूप, डाउन टू अर्थ, खण्ड–12, अंक–22, पृ0 55।
2. प्रसाद, पी0 एन0(2004) इनवायरन्मेंटल प्रोटेक्शनः द रोल ऑफ लायबिलिटी सिस्टेम इन इण्डिया, स्पेशल आर्टिकल, इकोनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली, खण्ड–39, अंक–3, मु0पृ0 17–23।
3. सेठी, नितिन(2004) इट्स ए प्रोग्राम आउट देयर, डाउन टू अर्थ, खण्ड–12, अंक–19, मु0पृ0 27–28।
4. गुप्ता, रितु(2004) ओल्ड इज गोल्ड, डाउन टू अर्थ, खण्ड–12, अंक–16, मु0पृ0 50–51।
5. पॉलीक्रैप, क्लिफ्फोर्ड(2004) ऑन द फ्रंट बर्नर, डाउन टू अर्थ, खण्ड–12, अंक–21, मु0पृ0 24–26।
6. 6. ब्रिजेस, ई0 माइकेल एवं अन्य(संपा0)(2001) रेस्पॉन्स टु लैंड डिग्रेडेशन, ऑक्सफोर्ड एण्ड आई0बी0एच0 पब्लिशिंग कं0 प्रा0 लि0, नई दिल्ली।
7. जरधारी, वी0 एवं कोठारी, ए0; यूजिंग डायवर्सिटी, www.idrc.ca

यूरोपीय यान्त्रिक क्रान्ति

नीलिमा गुप्ता
एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग
बी0एस0एन0वी0 पी0जी0 कॉलेज, लखनऊ–226001, उ0प्र0, भारत
drnilimahistory@gmail.com

प्राप्त तिथिः 18.05.2015, स्वीकृत तिथिः 12.10.2015

क्रान्ति शब्द का प्रयोग सामान्यतः राजनीतिक क्षेत्र में एकाएक हुये परिवर्तनों के लिये किया जाता है। यहाँ यान्त्रिक क्रान्ति का अर्थ बिना रक्त–पात के औद्योगिक क्षेत्र में होने वाले परिवर्तनों से है। 18 वीं सदी के उत्तरार्द्ध में इसका प्रारम्भ इंग्लैण्ड से हुआ। अज्ञात व सतत् रूप से अनेक अंग्रेज अन्वेशकों और वैज्ञानिकों के द्वारा वस्तु उत्पादन, कृषि सिल्क उद्योग के साधनों के लिये किये गये प्रयासों से है जिससे नये मौलिक और क्रान्तिकारी परिवर्तन हुये। उन्होंने उत्पादन व्यवस्था और व्यापारिक व्यवस्था को पूरी तरह से बदल दिया। इस परिवर्तन ने राष्ट्रीय और अर्न्तराष्ट्रीय स्तर पर राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन को प्रभावित किया। इसे औद्योगिक क्रान्ति या यान्त्रिक क्रान्ति कहा गया। औद्योगिक क्रान्ति का प्रयोग सर्वप्रथम फ्रान्सिसी नेता ब्लॉकी ने 1833 में किया। टायनबी द्वारा इसका प्रयोग किये जाने पर यह शब्द लोकप्रिय हुआ। हेजन ने औद्योगिक क्रान्ति को परिभाषित करते हुये लिखा– "औद्योगिक क्रान्ति का अर्थ है घरेलू उत्पादन प्रणाली को कारखानों की उत्पादन प्रणाली में बदल देना[1]।" वास्तव में औद्योगिक क्रान्ति ने मशीनी युग का प्रारम्भ किया।

औद्योगिक क्रान्ति का प्रारम्भ इंग्लैण्ड से हुआ। वास्तव में 1750 के बाद इंग्लैण्ड की राजनीतिक व आर्थिक स्थिति औद्योगिक परिवर्तन के अनुरूप थी। जिसके कारण इंग्लैण्ड ने अन्य यूरोपीय देशों की तुलना में अधिक समृद्धि प्राप्त की। इसीलिए इंग्लैण्ड के औद्योगिक क्रान्ति के लगभग पचास साल बाद यह क्रान्ति यूरोप व अन्य देशों में फैली। 1815 के बाद यह क्रान्ति बेल्जियम तत्पश्चात फ्रान्स, अमेरिका, जर्मनी व अन्य देशो में फैली।[2] जहाँ इंग्लैण्ड में अन्य यूरोपीय देशों की तुलना में शिल्पियों और उद्योगपतियों को प्राप्त आर्थिक स्वतन्त्रता तथा समुद्रिक उद्योग, व्यापार व उपनिवेशों की स्थापना द्वारा उद्योगों के प्रबन्धन में महारत हासिल की, वहीं प्रायोगिक विज्ञान व अध्ययन ने नवीन आविष्कारों को सुगमता एवं प्रोत्साहन प्रदान किया है। वास्तव में इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति से पहले कृषि क्रान्ति आयी। जैथरो टल(1674–1741) ने एक ड्रिल मशीन का आविष्कार किया जो सीधी लाइनों में स्थान छोड़–छोड़ कर बीज डालती थी। जैथरो टल को वैज्ञानिक ढंग से खेती करने का जन्मदाता कहा जाता है। टाउनशैन्ड ने (1674–1738) ने प्रथम कृषि प्रयोगशाला बनायी और सिद्ध किया की यदि एक खेत में एक वर्ष में जड़ों वाली, दूसरे साल घास वाली निली जुली खेती और तीसरी बार अनाज की खेती की जाय तो भूमि में आवश्यक खनिज व लवण की कमी नहीं होगी। इस प्रकार टाउनशैन्ड ने चार वर्षों में अलग–अलग फसल बोने की सलाह दी। 1750 में रॉबर्ट बैकबेल ने पशुओं की नस्ल सुधारने के प्रयोग किये। जिससे सस्ते भाव में अच्छे किस्म का मांस खाने को मिलने लगा। 18 वीं सदी के अन्त में लकड़ी हल व बैलों का स्थान लोहे के हल और घोड़ों ने ले लिया। 1834 में मैककोरमिक ने फसल काटने वाली मशीन बनाई इसी समय खेतों में बाड़ लगाने और साँझी भूमि में खेती शुरू की गयी।[3] वास्तव में कृषि क्रान्ति ने औद्योगिक क्रान्ति की पृष्ठभूमि तैयार कर दी।

यान्त्रिक क्रान्ति का आरम्भ इंग्लैण्ड से हुआं। इंग्लैण्ड में लोहे और कोयले के बड़े–बड़े प्राकृतिक भण्डार थे। जो उद्योगों को जीवन शक्ति देने वाले प्रमाणित हुये। लंकाशायर एवं यार्कशायर के आस–पास ये क्षेत्र बड़ी संख्या में मौजूद थे। वहीं सूती कपड़ों के लिये इंग्लैण्ड की नम वायु समयुक्त थी। सर्वप्रथन यान्त्रिक क्रान्ति का प्रारम्भ कपड़ा उद्योग से हुआ। उन दिनों इंग्लैण्ड का वस्त्र उद्योग सबसे आगे था। कपड़ों की अत्यधिक खपत श्रमिकों की कमी तथा हाथकरघा से सीमित उत्पादन ने अंग्रेज अन्वेशकों का ध्यान वस्त्र उत्पादन वृद्धि की ओर खींचा। फलतः अनेकों यन्त्रों का आविष्कार हुआ। अंग्रेज आविष्कारक जॉन के ने 1733 में "फ्लाईंग शटल" का आविष्कार किया। इसके द्वारा एक व्यक्ति कम समय में बहुत सा कपड़ा बुनने लगा। जुलाहों को इससे विशेष लाभ मिला। जेम्स हारग्रीब्ज ने 1775 में एक लकड़ी का करघा तैयार किया उसमें तकुवे लगाये। इस यन्त्र से एक व्यक्ति आठ व्यक्तियों का कार्य कर सकता था। इसे "स्पिनिगं जैनी" का नाम दिया गया। आगे चल कर इस यन्त्र में सौ तकुवे लगा दिये गये। यह पहिया घुमाने से चलती थी। स्पिनिंग जैनी में कच्चे सूत का प्रयोग होता था। जिससे बुनते समय बार–बार सूत टूटता था अतः रिचर्ड आर्कराइट ने 1769 में एक ऐसी मशीन का आविश्कार किया जिसमें बेलन लगे रहते थे। इससे पक्का सूत काता जाता था। इसमे खास बात यह थी की इसे पानी की शक्ति से चलाया जाता था। इसीलिये इसे वाटरफ्रेम कहा गया। आर्कराइट के वाटर फ्रेम से कारखाना पद्धति का आरम्भ हुआ। आर्कराइट को फैक्ट्री प्रथा का जन्मदाता कहा जाता है।[4]

1779 में सैमुअल क्राम्पटन (1763–1827) ने एक ऐसे चरखे का आविष्कार किया जिसमें हारग्रीब्ज की स्पिनिंग जैनी तथा आर्कराइट के वाटर फ्रेम को मिलाकर तैयार किया था। इस मशीन से उत्तम प्रकार का कपड़ा तैयार होने लगा। तत्पश्चात्

1785 में एडमन्ड कार्टराइट ने पावर लूम का आविष्कार किया जिससे बुनाई के कार्य को गति मिली 1785 में ही सिलेण्डर प्रिन्टिंग का आविष्कार हुआ। इसमें एक रोलर में नमूना बनाकर कागज पर चलाया जाता था। कपड़े को सूखाने और साफ करने के लिये एक रसायन का आविष्कार हुआ। अब कपड़ों को धूप में सुखाने की आवश्यकता नहीं रही। 1793 में बिटनी ने रूई से बिनौले अलग करने की मशीन का आविष्कार किया।[5]

टॉमस न्यूकामन(1663–1729) ने भाप के इंजन का आविष्कार किया जिसका प्रयोग सर्वप्रथम खान से पानी निकालने के लिये किया गया। इस यन्त्र में शक्ति एवं ईंधन का अधिक प्रयोग होता था। जेम्स वाट ने न्यूकामन के बनाए हुये इंजन के दोषों को दूर किया। जेम्स वाट (1736–1819) ने इस इंजन के दोषों को दूर करके एक नये कन्डैन्सर के इंजन को तैयार किया। इसे बीलजैबब नाम दिया गया। इसका प्रयोग पहली बार खान में किया गया । जेम्स वाट ने वोल्टन की आर्थिक सहायता से उद्योगों के लिये भाप के इंजन बनाए। 1885 में वस्त्र–व्यवसाय में सबसे पहले स्टीम इंजन का प्रयोग हुआ। जार्ज स्टीफेन्सन(1781–1848) ने 1830 में भाप का इंजन बनाया। लोहे की पटरी के ऊपर कोयला खींचने के लिये पहला लोकोमोटिव इंजन बनाया गया। इसकी गति 3 मील प्रति घंटा थी। यह रेल गाड़ी की सहायता के लिये महान आविष्कार था। जिसने यातायात को सुलभ कर दिया। न्यूकासल में पहला लोकोमोटिव कारखाना लगाया गया। लिवरपूल से मैनचेस्टर तक रेलवे लाइन बनाई गयी। इंग्लैण्ड की पहली रेल लाइन बिछाई गयी थी जो 12 मील लम्बी थी। इस रेल की गति 30 मील प्रति घंटा थी। जब यह चलाई गयी तो इसे देखने के लिये लोगों में इतनी उत्सुकता थी कि रेल लाइन से भीड़ हटाने के लिये कुछ घुड़सवार आगे–आगे चलने के लिये नियुक्त किये गये थे। इंजन बनाने वाले औजारों की कमी को दूर करने के लिये माउसले ने स्लाइड रेस्ट का आविष्कार किया। जिससे आवश्यक औजार बनने लगे। वहीं भाप का प्रयोग समुद्री यातायात के लिये सिद्ध हुआ। 1807 में राबर्ट फलटन द्वारा बनायी गयी स्टीम बोट न्यूयार्क से एलबनी तक 150 मील की यात्रा 32 घंटे में तय कर के पहुँची। 1812 में कॉमेट नाम की नाव पहली बार क्लाइड नदी में चली। 1819 में सावन्ना नामक भाप के इंजन वाला पहला जहाज अटलांटिक पार करके अमेरिका पहुँचा। 1843 के बाद लोहे के जहाज बनने लगे। 1838 में पहला बिना पाल वाला जहाज अन्ध महासागर को 18 व 15 दिनों में पार कर सका।[6]

जब तक रेल एवं हवाई जहाज का आविष्कार नहीं हुआ था। नदियों का यातायात में विशेष स्थान था। लेकिन इससे व्यापार की गति बड़ी धीमी थी। ऐसे में जॉन मैकडम, जान मैटकॉफ और टॉमस टैलफोर्ड ने सड़क सुधार के लिये महत्वपूर्ण कार्य किये। पत्थर और टार को मिलाकर पक्की सड़के बनाई गयीं जिससे यातायात की गति बढ़ गयी। वास्तव में भाप के इंजन ने उद्योग और खानों में क्रान्ति लाने की भूमिका निभायी तो संचार के साधनों में क्रान्ति लाने का श्रेय चार्ल्स ह्विट स्टोन व उसके अमेरिकी सहयोगी सैम्युल मोर्स और एल्फ्रेड बेल को है। उन्होंने 1866 में विद्युत टेलीग्राफ बनाया। और पहला संन्देश चार्ल्स ब्राइट और साइरस फिल्ड के प्रयत्नों से अन्ध महासागर के पार पहुँचा। जर्मनी के फिलिप रीस ने टेलीफोन का आविष्कार किया। तो खानों में काम करने के लिये डेबी द्वारा बनाया गया सेफ्टी लैम्प वरदान सिद्ध हुआ। वहीं के विद्युत प्रकाश के आविष्कार ने मानव जीवन को रोशनी से भर दिया। 1800 में फ्रान्सिसी एम्पियर ने बिजली और चुम्बकत्व में घनिष्ठ सम्बन्ध का पता लगाया तो 1831 में अंग्रेज फैरैडे ने चुम्बक के दो सिरों के मध्य तांबे का प्रयोग करके बिजली की धारा प्रवाहित करने में सफलता पायी तो जर्मनी के टॉमस एल्वा एडीसन ने बिजली के बल्ब का आविष्कार किया।[8]

1884 में फिल्म रोल का आविष्कार हुआ। 1885 में न्यूयॉर्क के रोचेस्टर नगर में जॉर्ज ईस्टमैन ने फोटो ग्राफी की नींव डाली और फिल्म बनाने की मशीन बनायी। 1888 में ईस्टमैन कम्पनी ने पहला छोटा और बाहर ले जाने वाला कोडक कैमरा बेचना शुरू किया और 1900 तक फोटोग्राफी का प्रसिद्ध उद्योग फैल गया। 1895 में दो फ्रान्सीसीयों ने सिनेमाआटोग्राफ बनायी। जिसमें मोबाइल मशीन व कैमरा फिल्म प्रिन्टिंग के साधन प्रोजेक्टर सब एक साथ मिला दिये गये। जिससे मोशन पिक्चर उद्योग का आरम्भ हुआ। 1900 के बाद मोशन पिक्चर मनोरंजन का साधन बन गया। 1905 में पिट्सबर्ग में पहला थियेटर मोशन पिक्चर के लिये बनाया गया।[9] 1885–86 में एक छोटा आसानी से इधर–उधर ले जाने वाला तथा पतले तेल से चलने वाला क्रम्बसन इंजन बनाया गया। यह गैसोलिन इंजन था। यह गाड़ियों को चला सकता था। 1886 में डेमलर ने गैसोलिन इंजन को बाईसिकल में लगाया और 1887 में इसका प्रयोग मोटर गाड़ी को चलाने के लिये किया गया। गैसोलिन के इंजन से हवाई यात्रा की शुरूआत हुई। 1890 में डेमलर का इंजन हवाई जहाज उड़ाने लगा। 1903 में राईट ने पहला विमान उड़या। 1906 मे पहली सफल वायु यात्रा की गयी। 1892 में डीजल इंजन का आविष्कार हुआ। 1910 में बिजली के कारखानों में एवं सामुद्रिक जहाजों और रेल में डीजल इंजन का प्रयोग किया जाने लगा।[10]

इस प्रकार 18 वीं एवं 19 वीं शताब्दी में अनेक छोटे–बड़े आविष्कार हुये। इस यान्त्रिक क्रान्ति ने मनुष्य के कार्य करने के तरीकों ने क्रान्ति ला दी। इंग्लैण्ड में हुये यान्त्रिक क्रान्ति से अन्य यूरोपीय देश अछूते नहीं रहे। अन्य यूरोपीय देशों ने इसे अपनाने में देर नहीं लगायी। 1815 में फ्रान्स ने इसका प्रारम्भ पहला कपड़े का कारखाना लगाकर किया, तो जर्मनी में 1845 यान्त्रिक क्रान्ति का प्रवेश हुआ। तत्पश्चात् बेल्जियम, डेनमार्क, हॉलैण्ड और स्वीडन में यान्त्रिक क्रान्ति का प्रभाव पड़ा। स्पेन, इटली, ऑस्ट्रिया, रूस 19 वीं सदी के अन्त तक इसके प्रभाव से अछूते नहीं रह सके। वास्तव में जितना महत्व फ्रान्स के राज क्रान्ति व उससे उत्पन्न लहर का है उससे भी अधिक इंग्लैण्ड की यान्त्रिक क्रान्ति का प्रभाव यूरोपीय देशों पर पड़ा। यान्त्रिक

क्रान्ति ने वैज्ञानिक अनुसंधानों को बढ़ावा दिया। इस क्रान्ति ने मानव को खाद्य सामग्री, कपड़ा, बिजली, तीव्र गति से चलने वाले वाहन और मनोरंजन के आधुनिक संसाधन व सुविधायें प्रदान की। विज्ञान का प्रयोग शिल्प की उन्नति के लिये करके यूरोप ने एक ऐसे युग का शुभारम्भ किया जिससे मनुष्य प्रकृति की शक्तियों एव भौतिक जगत पर निरन्तर विजय प्राप्त करता रहेगा।

सन्दर्भ

1. मित्तल, ए0 के0(2012) 'आधुनिक यूरोप का इतिहास', साहित्य भवन पब्लिकेशंस, आगरा, पृ0 160–161।
2. महाजन, वी0 डी0(1993) 'यूरोप का इतिहास', एस0 चांद एण्ड कं0, नई दिल्ली, पृ0 871।
3. विद्यालंकार, सत्यकेतु(1996) 'यूरोप का आधुनिक इतिहास', दिल्ली, मु0पृ0 246–247; बी0 डी0 महाजन 'यूरोप का इतिहास', मु0पृ0 871–872।
4. विद्यालंकार, सत्यकेतु(1996) 'यूरोप का आधुनिक इतिहास', मु0पृ0 247–248; उदयवीर विराज 'विश्व का इतिहास', नई दिल्ली, पृ0 475–476; सत्यकेतु विद्यालंकार 'यूरोप का आधुनिक इतिहास', मु0पृ0 247–248; वी0 डी0 महाजन, 'यूरोप का इतिहास', पृ0 874।
5. मित्तल, ए0 के0(2012) 'आधुनिक यूरोप का इतिहास', साहित्य भवन पब्लिकेशंस, आगरा, पृ0 164; वी0 डी0 महाजन, 'यूरोप का इतिहास', पृ0 248; उदयवीर विराज 'विश्व का इतिहास', पृ0 476।
6. महाजन, वी0 डी0(1993) 'यूरोप का इतिहास', एस0 चांद एण्ड कं0, नई दिल्ली, मु0पृ0 875–876; सत्यकेतु विद्यालंकार 'यूरोप का आधुनिक इतिहास', मु0पृ0 249–250; उदयवीर विराज 'विश्व का इतिहास', पृ0 477–478।
7. महाजन, वी0 डी0(1993) 'यूरोप का इतिहास', एस0 चांद एण्ड कं0, नई दिल्ली, पृ0 875; उदयवीर विराज 'विश्व का इतिहास', एस0 चांद एण्ड कं0, नई दिल्ली, पृ0 477।
8. महाजन, वी0 डी0(1993) 'यूरोप का इतिहास', एस0 चांद एण्ड कं0, नई दिल्ली, मु0पृ0 876–877; उदयवीर विराज 'विश्व का इतिहास', एस0 चांद एण्ड कं0, नई दिल्ली, मु0पृ0 479–480।
9. महाजन, वी0 डी0(1993) 'यूरोप का इतिहास', एस0 चांद एण्ड कं0, नई दिल्ली, मु0पृ0 887–888।
10. महाजन, वी0 डी0(1993) 'यूरोप का इतिहास', एस0 चांद एण्ड कं0, नई दिल्ली, पृ0 888; उदयवीर विराज, 'विश्व का इतिहास', एस0 चांद एण्ड कं0, नई दिल्ली, पृ0 478।

भूगर्भ जल संरक्षण

दीप्ति सिंह
रीडर एवं विभागाध्यक्ष, गणित विभाग
महिला विद्यालय पी0जी0 कॉलेज, अमीनाबाद, लखनऊ–226003, उ0प्र0, भारत
deeptisingh1967@gmail.com

प्राप्त तिथि–20.05.2015, स्वीकृत तिथि–09.09.2015

यद्यपि जल इस ग्रह का सर्वाधिक उपलब्ध साधन है तदापि मानव उपयोग के लिये यह तेजी से दुर्लभ होता जा रहा है। पृथ्वी का दो तिहाई भाग जल और एक तिहाई भाग थल है। इस अपार जल राशि का लगभग 97.5 प्रतिशत भाग खारा है और शेष 2.5 प्रतिशत भाग मीठा है। इस मीठे जल का 75 प्रतिशत भाग हिमखण्डों के रूप में, 24.5 प्रतिशत भाग भूजल, 0.03 प्रतिशत भाग नदियों, 0.34 प्रतिशत झीलों एवं 0.06 प्रतिशत भाग वायुमण्डल में विद्यमान है। पृथ्वी पर उपलब्ध जल का 0.3 प्रतिशत भाग ही साफ एवं शुद्ध है। लोकनायक तुलसीदास जी ने अपने महान ग्रंथ "रामचरितमानस" में लिखा है:–

"क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा। पंच तत्व मिलि रचा शरीरा।।"

स्पष्ट है कि बिना जल के शरीर की रचना संभव नहीं है। जब रचना ही संभव नहीं है तो जीवन का तो प्रश्न ही नहीं उठता। इसीलिए जल को जीवन कहा जाता है। जल मनुष्य ही नहीं अपितु समस्त जीव जन्तुओं एवं वनस्पतियों के लिये एक जीवनदायी तत्व है। इस संसार की कल्पना जल के बिना नहीं की जा सकती है। किसी जीव व वनस्पति को हवा के बाद पानी जीवन रक्षा के रूप में सबसे ज्यादा जरूरी है। हमारे शरीर में 60 प्रतिशत एवं वनस्पतियों में 95 प्रतिशत जल पाया जाता है तथा लगभग 5700 लाख वर्ष पूर्व पृथ्वी पर जल की उत्पत्ति हुई थी। ऋग्वेद में भी लिखा गया है कि "सलिल सर्वमाइदम" अर्थात जल सृष्टि के आरम्भ से ही है। जब से पृथ्वी बनी है पानी का उपयोग हो रहा है। ज्यो–ज्यों पृथ्वी की आबादी में वृद्धि एवं सभ्यता का विकास होता जा रहा है पानी का खर्च बढ़ता जा रहा है। आधुनिक शहरी परिवार प्राचीन खेतिहर परिवार के मुकाबले छः गुना पानी अधिक खर्च करता है। संयुक्त राष्ट्र संगठन का मानना है कि विश्व के 20 प्रतिशत लोगों को पानी उपलब्ध नहीं है और लगभग 50 प्रतिशत लोगों को स्वच्छ पानी उपलब्ध नहीं है। मानव जिस तीव्र गति से जल स्रोतो को अनुचित शैली में दोहन कर रहा है वह भविष्य के लिये खतरे का संकेत है। इसलिये मानव जाति को वर्तमान एवं भावी पीढ़ी को इस खतरे से बचाने के लिये जल संरक्षण के उपायों पर सबसे अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है।

वर्षा जल का संरक्षण

बोरिंग अथवा नलकूपों के माध्यम से अत्यधिक पानी निकालकर हम कुदरती भूगर्भ जल भण्डार को लगातार खाली कर रहे है। शहरों में कंक्रीट का जाल बिछ जाने के कारण बारिश के पानी के रिसकर भूगर्भ में पहुचने की संभावना कम होती जा रही है। इन परिस्थितियों में हम वर्षा के जल को भूगर्भ जल स्रोतो में पहुँचाकर जल की भूमिगत रिचार्जिंग कर सकते हैं। वर्षा जल को एकत्रित करने की प्रणाली चार हजार वर्ष पुरानी है। इस तकनीक को आज वैज्ञानिक मापदण्डों के आधार पर फिर पुनर्जीवित किया जा सकता है। भूगर्भ जल रिचार्जिंग की विधियां निम्नलिखित है:–

1. रिचार्ज पिट
2. रिचार्ज ट्रेंच
3. रिचार्ज ट्रेंच कम बोरवेल
4. तालाब/पोखर/सूखा कुआँ/बावली
5. सतही जल संग्रहण, छोटे–छोटे चेक डेम

यह तकनीक स्थानीय हाइड्रोजियोलॉजी पर निर्भर करती है। भूगर्भ जल रिचार्जिंग की कोई भी विधि अपनाने के लिये निर्माण कार्य महीने से सवा–महीने में पूरा हो जाता है। छोटे अथवा मध्यम वर्ग के घरों की छत पर गिरने वाले बारिश के पानी को सिर्फ एक बार कुछ हजार रुपये खर्च करके भूगर्भीय जल स्रोतों में पहुंचाया जा सकता है। इस कार्य को करने के लिये यह जानकारी होना आवश्यक है कि किस इलाके में कौन सी विधि वैज्ञानिक पैमाने पर उपयुक्त रहेगी और छत का क्षेत्रफल कितना है। उदाहरण स्वरूप 1000 मिलीमीटर वर्षा होने पर घर की तकरीबन 100 वर्गमीटर क्षेत्रफल की छत पर, हर वर्ष बरसात में एक लाख लीटर जल गिरता है जो सीवरों व नालों में बहकर व्यर्थ चला जाता है। वर्षा जल संचयन की विधि अपनाकर इसमें से 80000 लीटर पानी को भू–जल भण्डारों में जल की भावी पूंजी के रूप में जमा किया जा सकता है। यदि घर ऐसे क्षेत्र में है जहाँ सतह से थोड़ी गहराई पर ही बालू का संस्तर मौजूद है अर्थात् उथले संस्तर वाले क्षेत्र हैं, तो रिचार्ज पिट फिल्टर मीडिया से भरा 02 से 03 मीटर गहरा गड्ढा बनाकर छतों पर गिरने वाले वर्षा जल को जमीन के भीतर डायवर्ट

किया जा सकता है। यदि छत का क्षेत्रफल 200 वर्गमीटर हो तो रिचार्ज पिट के बजाय बगीचे के किनारे ट्रेंच बनाकर बारिश के पानी को रिचार्ज किया जा सकता है। इसमें भी ट्रेंच में फिल्टर मीडिया (विभिन्न साइज के ग्रेवल) भरा जायेगा। जिन इलाकों में बालू का संस्तर 10 से 15 मीटर या अधिक गहराई पर मौजूद है अर्थात् गहरे संस्तर वाले क्षेत्र में वर्षा जल संरक्षण के लिये एक रिचार्ज चैम्बर बनाकर बोरवेल के जरिये रिचार्जिंग कराई जा सकती है।

कौन सी छत कितना पानी एकत्रित करेगी

घर का क्षेत्रफल "वर्गमीटर"	रिचार्ज हेतु उपलब्ध वर्षा जल "ली0 प्रतिवर्ष"
100	80000
200	1.60 लाख
300	2.40 लाख
500	4.00 लाख
1000	8.00 लाख

जल संरक्षण के छोटे व आसान तरीके

1. घर के लॉन को कच्चा रखें।
2. घर के बाहर सड़कों के किनारे कच्चा रखें अथवा लूज स्टोन पेवमेंट का निर्माण करें।
3. पार्कों में रिचार्ज ट्रेंच बनाई जाये।

किसानों द्वारा जल संरक्षण के उपाय

1. फसलों की सिचाई क्यारी बनाकर करें।
2. सिंचाई की नालियों को पक्का करें।
3. बागवानी की सिचाई हेतु ड्रिप विधि व फसलों हेतु स्प्रिंकलर विधि अपनायें।
4. बगीचों में पानी सुबह ही दें जिससे वाष्पीकरण से होने वाले नुकसान कम किया जा सके।
5. जल की कमी वाले क्षेत्रों में ऐसी फसलें बोयें जिसमें कम पानी की आवश्यकता हो।
6. अत्यधिक भूगर्भ जल गिरावट वाले क्षेत्र में फसल चक्र में परिवर्तन कर अधिक जल खपत वाली फसल न उगाई जाये।
7. खेतों की मेड़ों को मजबूत व ऊँचा करके खेत का पानी खेत में रिचार्ज होने दें।

उद्योग एवं व्यावसायिक क्षेत्र में जल संरक्षण

1. औद्योगिक प्रयोग में लाये गये जल का शोधन करके उसका पुनः उपयोग करें।
2. मोटर गैराज में गाड़ियों की धुलाई से निकलने वाले जल की सफाई करके पुनः प्रयोग में लायें।
3. वाटर पार्क और होटल में प्रयुक्त होने वाले जल का उपचार करके बार–बार प्रयोग में लायें।
4. होटल, निजी अस्पताल, नर्सिंग होम्स व उद्योग आदि में वर्षा जल का संग्रहण कर टॉयलेट, बागवानी में उस पानी का प्रयोग करें।

भूगर्भ जल रिचार्ज के लाभ

1. भू–जल स्तर गिरावट की वार्षिक दर को कम किया जा सकता है।
2. भू–गर्भ जल उपलब्धता व पेय जल आपूर्ति की मांग के अंतर को कम किया जा सकता है।
3. दबाव ग्रस्त एक्विफर(भूगर्भीय जल संस्तर) को पुनः जीवित किया जा सकता है।
4. भू–गर्भ जल गुणवत्ता में सुधार हो सकता है।
5. सड़कों पर जल प्लावन की समस्या से निजात मिल सकता है।
6. वृक्षों को पर्याप्त जल की आपूर्ति स्वतः संभव हो सकेगी।

कुछ सावधानियां

1. केवल छतों पर गिरने वाले जल को ही सीधे एक्विफर में रिचार्ज कराया जाये।
2. यथा संभव रिचार्ज पिट/ट्रेंच विधियों को ही प्रोत्साहित किया जाये।
3. रिचार्ज परियोजना में किसी तरीके के प्रदूषित तत्व भूगर्भ जल में न पहुंचे।

4. छतों को साफ रखा जाये और किसी प्रकार के रसायन, कीटनाशक न रखे जाये।
5. जल प्लावन से प्रभावित क्षेत्रों में रिचार्ज विधा न अपनाई जाये।
6. वर्षा जल संचयन एव रिचार्ज शिरटग के निर्माण के साथ ही उसके आस–पास के क्षेत्र में वृक्षारोपण किया जाये।
7. वन विभाग के नियंत्रणाधीन छोटी पहाड़ियों तथा वन क्षेत्र में वृहद स्तर पर कंदूर बंध व वृक्षारोपण का कार्य किया जाये।
8. उपलब्ध परंपरागत जल स्रोतों की डिसिल्टिंग व मरम्मत का कार्य कराया जाये।
9. सूखे कुओं की सफाई करके उन्हें रिचार्ज सिस्टम के रूप में प्रयोग में लाया जाये।

जल संरक्षण के सरकारी प्रयास

1. 300 वर्गमीटर से अधिक क्षेत्रफल के निजी मकानों एवं 200 वर्गमीटर से अधिक क्षेत्रफल के सरकारी/गैर सरकारी ग्रुप हाउसिंग मकानों, सभी सरकारी इमारतो में रूफ टॉप रेन हार्वेस्टिंग की व्यवस्था करना अनिवार्य किया गया है।
2. जहाँ–जहाँ पर रेन हार्वेस्टिंग की व्यवस्था की गयी है उनके प्रभावी अनुरक्षण का कार्य।
3. तालाबों व पोखरों की नियमित डिसिल्टिंग का कार्य।
4. कक्षा 5–6 व अन्य कक्षाओं में रेन वाटर हार्वेस्टिंग विषय को पाठ्यक्रम में सम्मिलित करना।

जल संरक्षण के प्रति सरकारी प्रयासों एवं हमारी जागरूकता ही भू–गर्भ जल के संरक्षण में महत्वपर्ण भूमिका निभा सकते हैं एवं विलुप्त होते भूगर्भ जल स्तर को पुनर्जीवित कर सकता है।

संदर्भ

1. भूगर्भ जल विभाग, लखनऊ, उ0प्र0।
2. उ0प्र0 प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड, लखनऊ उ0प्र0।

अध्यापक शिक्षा में संचार माध्यमों की प्रासंगिकता

धर्मेन्द्र प्रताप सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर, बी0एड0 विभाग
पी0बी0 पी0जी0 कॉलेज, प्रतापगढ–312606, उ0प्र0, भारत
dps@gmail.com

प्राप्त तिथि 22.05.2015, स्वीकृत तिथि 10.09.2015

देश की भौगोलिक संरचना ही इसकी विभिन्न विविधताओं का मूल कारण है। यह भौगोलिक संरचना ही है जिसके परिणामस्वरूप इस देश के नागरिकों की जीवन शैली तथा संस्कृति व सामाजिक स्वरूप अलग–अलग हैं। कहीं पर समतल मैदानी क्षेत्र तो कहीं पर पहाड़ी क्षेत्र हैं। जिसके कारण मानव अपने–अपने तरीके से जीवन यापन के अनुरूप विकल्पों का चयन करता है। मानव समुदाय क्षेत्र के अनुरूप सर्वोत्कृष्ट विकल्पों का उपयोग करता है और उन्ही विकल्पों के परिवहन हेतु तत्पर रहता है। मानव समुदाय क्षेत्र के विकल्पों का उचित उपयोग करते हुए अपने जीवन स्तर में सुधार के लिए सदैव तत्पर रहता है तथा उपलब्ध साधनों का बेहतर उपयोग करता है। इन्हीं प्रयासों का प्रतिफल मानव जीवन स्तर में सुधार के रूप में मिलता है। मानव जीवन इन्हीं संगत साधनों के आधार पर ही अपनी उत्कृष्टता पर पहुँचता है। मानवीय प्रगति एवं उसमें चिन्तन के नवीनतम दृष्टिकोण के विकास हेतु शिक्षा एक उपयोगी एवं महत्वपूर्ण साधन है। अध्यापक शैक्षिक संरचना का एक महत्वपूर्ण ध्रुव है। शिक्षा की प्रक्रिया की सफल संचालन में शिक्षक सबसे महत्वपूर्ण कड़ी है। शिक्षा की प्रभावशीलता एवं शिक्षार्थी की कुशलता में शिक्षक की दक्षता और शिक्षण प्रभावशीलता महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यदि किसी राष्ट्र ने उन्नति के चरम को छुआ है तो इसमें उसकी शैक्षिक व्यवस्था की सबसे महत्वपूर्ण भूमिका रही है। शिक्षा न केवल राष्ट्र की प्रगति की सूचक है, बल्कि यह व्यक्ति एवं समाज की भी दशा एवं दिशा निर्धारित करती है। समाज को उन्नति के शिखर तक पहुँचाने में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका शिक्षक की होती है। शिक्षक अपने ज्ञान को जिस सीमा तक बढ़ा सकता है। तथा उसे जितनी मात्रा तक अद्यतन रख सकता है वही उसकी शिक्षण कुशलता का मूल मंत्र होता है।

वर्तमान में वैश्वीकरण के दौर में ज्ञान को अद्यतन रखने में सूचना एवं संचार तकनीकी की महत्वपूर्ण भूमिका है। अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में सूचना तकनीकी ने स्वतंत्र बाजार निर्मित किया है। जिसमें विद्यार्थी अपनी रूचि एवं आवश्यकता के अनुरूप ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। तथा अपने कौशलों का विकास कर सकते हैं। विषय से सम्बन्धित अद्यतन शोधों, सुदूर बैठे प्रबुद्ध विशेषज्ञों से राय प्राप्त करने हेतु सूचना तकनीकी अत्यन्त उपयोगी माध्यन है। इसके अतिरिक्त शिक्षण के लिए अनुकूल वातावरण बनाने, उपयोगी एवं व्यवहारिक मॉड्यूल का विकास करने में विद्यालय में प्रबंधतंत्र का संचारतंत्र से संयोजन करने हेतु सूचना तकनीकी अत्यन्त उपयोगी माध्यम है।

शैक्षिक संरचना के मात्रात्मक गुणात्मक आवश्यकता के अनुरूप अध्यापक शिक्षण संस्थाओं में तकनीकी माध्यम का प्रयोग करके शैक्षिक लक्ष्यों की प्राप्ति की जा सकती है। तकनीकी शिक्षा के विस्तार और प्रशिक्षित जनशक्ति के निर्माण हेतु सूचना और प्रौद्योगिकी के द्वारा कम लागत की कम्प्यूटर प्रणाली ओपन सोर्स सॉफ्टवेयर, कैम्पस में तीव्रगति से कार्य करने वाले इन्टरनेट सुविधा, भरोसेमंद तथा किफायती कनेक्टिविटी, सूचना प्रौद्योगिकी के पाठ्क्रमों पर आधारित उपकरणों का प्रयोग, प्रबंधन टूल्स, माइक्रो इलेक्ट्रॉनिक सिस्टम पैकेजिंग आदि नवीन कार्यक्रमों को शिक्षक शिक्षा से जोड़कर प्रस्तुत किया जाना चाहिए। जिससे छात्रों में एक प्रयोगात्मक मस्तिष्क का विकास हो सके तथा उनकी कार्यशीलता एवं कौशल का समुचित विकास हो सके। अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में मुख्यतः दूरसंचार तकनीकी अधिक प्रभावी एवं उपयोगी हो सकती है। उसे दो भागों में विभाजित किया जा सकता है– 1. एकांगी संचार तकनीकी, 2. द्विमुखी संचार तकनीकी।

एकांगी संचार तकनीकी के अन्तर्गत ऑडियो/वीडियो ग्राफिक्स ऑडियों, वीडियो कैसेट, रेडियो, टेलीविजन, लेजर वीडियो आदि आते हैं। द्विमुखी संचार तकनीकी के अन्तर्गत पत्राचार एवं टेली कान्फ्रेंसिंग मुख्य रूप से आते हैं। रेडियो तथा टेलीविजन अध्यापक शिक्षा में अनुप्रयोग होने वाला एक सशक्त संचार माध्यम है। इसका प्रयोग दूरस्थ शिक्षा के विकास में सुदूर क्षेत्रों अध्यापक शिक्षा को प्रभावशाली ढंग से ग्रहण करने हेतु किया जा सकता है। टेली कान्फ्रेंसिंग अलग–अलग समूहों एवं स्थानों पर रहने वालें लोगो के मध्य आमने–सामने का संवाद उत्पन्न करने का प्रभावशाली एवं उपयोगी माध्यम है। इसके द्वारा सुदूर एवं विदेशों में बैठे शिक्षा विशेषज्ञों से किसी समस्या पर राय एवं जानकारी ली जा सकती है। अध्यापक शिक्षा में टेली कॉन्फ्रेंसिंग का प्रयोग गुणवत्ता संवर्धन अत्यन्त उपयोगी एवं महत्वपूर्ण है। आधुनिक संचार तकनीकी के प्रयोग से अध्यापक शिक्षा को नवीनतम एवं उपयोगी तथा रुचिकर बनाया जा सकता है। इन तकनीकियों का प्रभाव केवल मात्रात्मक एवं गुणात्मक रूप से ही नहीं पड़ता बल्कि मनोवैज्ञानिक रूप से छात्रों की सोच को सकारात्मक बनाता है । नवीन ज्ञान प्राप्त करना और उसका मानवीय हित में अनुप्रयोग करना सृजनात्मकता एवं कौतूहल का परिणाम है। मुद्रित सामग्री छात्रों में यह कौतूहल उत्पन्न नहीं कर पाती। अतः संचार माध्यम अधिक प्रभावी एवं कारगर हो सकते हैं। अध्यापक शिक्षा की गुणवत्ता में

संचार माध्यम की उपयोगिता मानकीकृत अध्यापक शिक्षा के लिए अत्यन्त उपयोगी एवं महत्वपूर्ण है। सूचना एवं संचार तकनीकी के प्रयोग से अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम में नवीनता लाने छात्रों में शिक्षा के प्रति सकारात्मक चिन्तन विकास करने तथा वैश्विक मानसिकता का विकास करने में संचार माध्यम अत्यन्त उपयोगी हैं।

संचार माध्यमों की उपयोगिता वर्तमान में अध्यापक शिक्षा के अध्यापन से लेकर मूल्यांकन तक अपनी भूमिका निभाता है। शिक्षण में नवीनता, उत्पादकता एवं प्रभावशीलता हेतु संचार माध्यमों का उपयोग अत्यन्त आवश्यक है। इसके अतिरिक्त पाठ्यक्रम को निर्धारित समयावधि के अन्दर पूर्ण करने तथा छात्रों की क्रियाओं का समुचित निरीक्षण करने एवं उसका मूल्यांकन करने हेतु अध्यापक शिक्षा में संचार माध्यमों का अनुप्रयोग अनिवार्य रूप से किया जाना चाहिए। प्रशिक्षण महाविद्यालयों में छात्रों को प्रयोगात्मक कार्यों में रूचि उत्पन्न करने एवं सामुदायिक कार्यक्रमों में सहभाग करने एवं बी0एड0 कार्यक्रम के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण का विकास करने हेतु संचार माध्यमों की उपयोगिता महत्वपूर्ण है। जैसे– शिक्षक द्वारा मौखिक व्याख्यान के स्थान पर ओवर हेड प्रोजेक्टर के माध्यम से शिक्षण करने पर छात्रों की ग्रहणशीलता एवं ध्यान अधिक आकर्षित होता है। इसी प्रकार रेडियो एवं टेलीविजन के माध्यम से तथा वीडियो से तथा वीडियो एवं शैक्षिक सी0डी0 आदि के प्रयोग से छात्रों में ज्ञान प्राप्त करने की रूचि एवं जिज्ञासा का विकास होता है। यद्यपि अध्यापक शिक्षा में संचार माध्यम की उपयोगिता अत्यन्त महत्वपूर्ण है किन्तु इसके प्रति सकारात्मक मानसिकता के अनाव में इसका अनुप्रयोग अत्यन्त सीमित मात्रा में ही हो पाता है। अधिकांश शिक्षकों द्वारा इसकी औपचारिक प्रकृति को आधार बनाकर इसका विरोध किया जाता है। किन्तु वर्तमान वैश्विक शैक्षिक संरचना के दौर में उपयोगी एवं प्रतिस्पर्धी शैक्षिक व्यवस्था का विकास करने में संचार माध्यम अत्यन्त उपयोगी है। इसके लिए शैक्षिक संचार कार्यक्रमों के प्रति शिक्षकों एवं प्रशासकों में विश्वास एवं आस्था पैदा करने आवश्यकता है तभी अध्यापक शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त किया जाना सम्भव है। भूमण्डलीकरण के इस दौर में विश्व में अपना मानक स्थापित करने हेतु गुणवत्तापूर्ण अध्यापक शिक्षा की व्यवस्था करना अनिवार्य है। क्योंकि शिक्षा ही एक ऐसा शस्त्र है जो प्रतिस्पर्धा के दौर में विजय दिला सकता है। यदि 21वीं सदी में हम किसी विपत्ति से घिरना नहीं चाहते तो अध्यापक शिक्षा को मजबूत गुणवत्तापरक एवं तकनीकी दृष्टिकोण से सशक्त बनाना होगा, क्योंकि तकनीकी एवं संचार माध्यम के प्रयोग से ही अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम को सरल, रूचिपूर्ण, सर्वसुलभ एवं गुणात्मक बनाया जा सकता है। संचार माध्यमों की उपयोगिता को दृष्टि में रखकर एक सार्थक एवं उपयोगी शैक्षिक नीति का निर्माण कर अध्यापक शिक्षा के विस्तार एवं गुणात्मक सुचार हेतु प्रभारी उपाय किये जाने की आवश्यकता है।

संदर्भ

1. पाण्डेय, रामशकल एवं मिश्र, करूणाशंकर, भारतीय शिक्षा की समसामयिक समस्यायें, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
2. गुप्ता, एस0 पी0, भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्यायें, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
3. भारत–2007, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।
4. योजना(सितम्बर–2007), प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।
5. कुरूक्षेत्र(2005), प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।
6. सिंह, सुनील प्रताप एवं सिंह, दिनेश(2006) अध्यापक शिक्षा की चुनौती, शोध प्रपत्र, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।
7. भदौरिया, मृदुला(2004) वर्तमान संदर्भों में भारतीय उच्च शिक्षा, नीपा, दिसम्बर–2004, अंक–3।

भूकम्प के प्रभाव–झटके और भूमि का फटना

राजीव कुमार सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर, गणित विभाग
पी0बी0 पी0जी0 कॉलेज, प्रतापगढ़–230143, उ0प्र0, भारत
dr.rajeevthakur2012@gmail.com

प्राप्त तिथि–22.05.2015, स्वीकृत तिथि–05.08.2015

पृथ्वी की सतह पर, भूकम्प अपने आप को, भूमि को हिलाकर या विस्थापित कर के प्रकट करता है। जब एक बड़ा भूकम्प अधिकेन्द्र(एपीसेन्टर) अपतटीय स्थिति में होता है, यह समुद्र के किनारे पर पर्याप्त मात्रा में विस्थापन का कारण बनता है, जो सुनामी का कारण है। भूकम्प के झटके कभी–कभी भूस्खलन और ज्वालामुखी गतिविधियों को भी पैदा कर सकते हैं। भूकम्प पृथ्वी की परत(क्रस्ट) से ऊर्जा के अचानक उत्पादन के परिणामस्वरूप आता है जो भूकम्प तरंगों(सीज्मिक वेव) को उत्पन्न करता है। भूकंप का रिकार्ड एक सीज्मोमीटर के साथ रखा जाता है, जो सीस्मोग्राफ भी कहलाता है। एक भूकम्प का क्षण परिमाण(मूमैंट मैग्नीट्यूड) पारम्परिक रूप से मापा जाता है, या सम्बन्धित और अप्रचलित रिक्टर परिमाण लिया जाता है, 3 या कम परिमाण की रिक्टर तीव्रता का भूकम्प अक्सर इम्परसेप्टिबल होता है और 7 रिक्टर की तीव्रता का भूकम्प बड़े क्षेत्रों में गम्भीर क्षति का कारण होता है। झटकों की तीव्रता का मापन विकसित मरकैली पैमाने पर किया जाता है। सर्वाधिक सामान्य अर्थ में, किसी भी सीज्मिक घटना का वर्णन करने के लिए भूकम्प शब्द का प्रयोग किया जाता है। अक्सर भूकंप भूगर्भीय दोषों के कारण आते हैं, भारी मात्रा में गैस प्रयास, पृथ्वी के भीतर मुख्यतः गहरी मीथेन, ज्वालामुखी, भूस्खलन और नाभिकीय परिक्षण ऐसे मुख्य दोष हैं।

प्लेट सीमाओं से दूर भूकम्प – टेक्टोनिक भूकम्प भूमि के ऐसे किसी भी स्थान पर आ सकता है, जहाँ पर्याप्त मात्रा में संग्रहीत प्रत्यास्थता तनाव उर्जा होती है जो समतल दोष(फॉल्ट प्लेन) के साथ भू–भंग उत्पन्न करती है। रूपांतरित या अभिकेंद्रित प्रकार की प्लेट सीमाओं के गामलों में, जो धरती पर सबसे बड़ी दोष सतह बनते हैं, वे एक दूसरे को सामान्य रूप से और एसीस्मिकली रूप से हिलाते हैं, ऐसा केवल तभी होता है जब सीमा के साथ किसी प्रकार की अनियमितता न हो जो घर्षण के कारण प्रतिरोध को बढ़ाती है। अधिकांश सतहों में इस प्रकार की अनियमितताएं होती है और यह स्टिक–स्लिप व्यवहार का कारण बनती हैं। एक बार जब सीमा बंद हो जाती है, प्लेटों के बीच में सतत सापेक्ष गति तनाव को बढ़ा देती है, इसलिए, दोष सतह के चारों ओर के स्थान में तनाव उर्जा संगृहीत हो जाती है। यह तब तक जारी रहता है जब तनाव पर्याप्त मात्रा में बढ़कर अनियमितता को उत्पन्न करता है और दोष सतह की बंद सीमा के ऊपर अचानक भूमि खिसकने लगती है, तथा संग्रहीत ऊर्जा मुक्त होने लगती है। यह ऊर्जा विकिरित प्रत्यास्थ तनाव भूकंपीय तरंगों, दोष सतह पर घर्षण की ऊष्मा और चट्टानों में दरार पड़ने के सम्मिलित प्रभाव के कारण मुक्त होती है और इस प्रकार भूकम्प का करण बनती है। तनाव के बनने की यह क्रमिक प्रक्रिया, अचानक भूकम्प की विफलता के कारण होती है। इसे प्रत्यास्थता–पुनर्बंधन सिद्धांत(इलास्टि रिबाउंड सिद्धांत) कहते हैं। यह अनुमान लगाया गया है कि भूकम्प की कुल ऊर्जा का 10 प्रतिशत या इससे भी कम सीज्मिक ऊर्जा के रूप में विकिरित होता है। भूकम्प की अधिकांश ऊर्जा या तो भू भंग(फ्रैक्चर) की वृद्धि को शक्ति प्रदान करने के लिए काम में आती है या घर्षण के कारण उत्पन्न ऊष्मा में बदल जाती है। इसलिए भूकम्प पृथ्वी की उपलब्ध प्रत्यास्थ स्थितिज ऊर्जा को कम करता है और इसका तापमान बढ़ाता है, हालांकि ये परिवर्तन पृथ्वी की गहराई में से बाहर आने वाली ऊष्मा संचरण और संवहन की तुलना में नगण्य होते हैं। फॉल्ट/सैन एण्ड्रियाज फॉल्ट के मामले में बहुत से भूकम्प, प्लेट सीमा से दूर उत्पन्न होते हैं और विरूपण के व्यापक क्षेत्र में विकसित तनाव से सम्बंधित होते हैं, ये विरूपण दोष क्षेत्र (उदा0– "बिग बंद" क्षेत्र) में प्रमुख अनियमितताओं के कारण होते हैं, नॉर्थरिज भूकम्प) ऐसे ही एक क्षेत्र में अंध दबाव गति से सम्बन्धित था। एक अन्य उदाहरण है अरब और यूरेशियन प्लेट्स के बीच तिर्यक अभिकेंद्रित प्लेट सीमा जहाँ यह जाग्रोस पहाड़ों के पश्चिमोत्तर हिस्से से होकर जाती हैं। इस प्लेट सीमा से सम्बंधित विरूपण, एक बड़े पश्चिम–दक्षिण सीमा के लम्बवत लगभग शुद्ध दबाव गति तथा वास्तविक प्लेट सीमा के नजदीक हाल ही में हुए मुख्य दोष के किनारे हुए लगभग शुद्ध स्ट्रीक–स्लिप गति में विभाजित है। इसका प्रदर्शन भूकम्प की केन्द्रीय क्रियाविधि(फोकल मिकेनिज्म) के द्वारा किया जाता है। सभी टेक्टोनिक प्लेट्स में आंतरिक दबाव क्षेत्र होते हैं जो अपनी पड़ोसी प्लेटों के साथ अंतर्क्रिया के कारण या तलछटी लदान या उतराई के कारण होते हैं(जैसे डेग्लेसिशन) ये तनाव उपस्थित दोष सतहों के किनारे विफलता का पर्याप्त करण हो सकते हैं, ये अन्तःप्लेट भूकम्प को जन्म देते हैं।

उथला और गहरे केन्द्र का भूकम्प– अधिकांश टेक्टोनिक भूकंप 10 किलोमीटर से अधिक की गहराई से उत्पन्न नहीं होते हैं। 70 किलोमीटर से कम की गहराई पर उत्पन्न होने वाले भूकंप–'पिछले–केन्द्र' के भूकंप कहलाते हैं, जबकि 70–300 किलोमीटर के बीच की गहराई से उत्पन्न होने वाले भूकंप 'मध्य–केन्द्रीय' या 'अन्तर मध्य–केन्द्रीय' भूकंप कहलाते हैं।

सबडक्शन क्षेत्रों में जहाँ पुरानी और ठंडी समुद्री परत(ओशिआनिक क्रस्ट) अन्य टेक्टोनिक प्लेट के नीचे खिसक जाती है, गहरे केंद्रित भूकंप(डीप–फोकस अर्थक्वेक) अधिक गहराई पर (300 से लेकर 700 किलोमीटर तक) आ सकते हैं। सीज्मिक रूप से सबडक्शन के ये सक्रीय क्षेत्र, बडाटी–बेनिऑफ क्षेत्र कहलाते हैं। गहरे केन्द्र के भूकम्प उस गहराई पर उत्पन्न होते हैं जहाँ उच्च तापमान और दबाव के कारण सबडक्टेड स्थलमंडल भंगुर नहीं होने चाहिए। गहरे केन्द्र के भूकंप के उत्पन्न होने के लिए एक संभावित क्रियाविधि है आलीवाइन के कारण उत्पन्न दोष जो स्पाइनेल संरचना में एक अवस्था संक्रमण के दौरान होता है।

झटके और भूमि का फटना– झटके और भूमि का फटना भूकम्प के मुख्य प्रभाव हैं, जो मुख्य रूप से इमारतों व अन्य कठोर संरचनाओं को कम या अधिक गम्भीर हानि पहुँचाती है। स्थानीय प्रभाव, कि गंभीरता भूकंप के परिमाण के जटिल संयोजन पर, एपिसेन्टर से दूरी पर और स्थानीय भू वैज्ञानिक व भू आकारिकीय स्थितियों पर निर्भर करती है, जो तरंग के प्रसार को कम या अधिक कर सकती है। भूमि के झटकों को भूमि त्वरण से नापा जाता है। विशिष्ट भूवैज्ञानिक, भू आकारिकीय और भू संरचनात्मक लक्षण भू सतह पर उच्च स्तरीय झटके पैदा कर सकते हैं, यहाँ तक कि कम तीव्रता के भूकम्प भी ऐसा करने में सक्षम हैं। यह प्रभाव स्थानीय प्रवर्धन कहलाता है। यह मुख्यतः कठोर गहरी मृदा से सतही कोमल मृदा तक भूकम्पीय गति के स्थानांतरण के कारण है और भूकम्पीय उर्जा के केन्द्रीकरण का प्रभाव जमावों की प्रारूपिक ज्यामितीय सेटिंग करता है। दोष सतह के किनारे पर भूमि कि सतह का विस्थापन व भूमि का फटना दृश्य है, ये मुख्य भूकम्पों के मामलों में कुछ मीटर तक हो सकता है। भूमि का फटना प्रमुख अभियांत्रिकी संरचनाओं जैसे बांधों, पुल और परमाणु शक्ति स्टेशनों के लिए बहुत बड़ा जोखिम है, सावधानीपूर्वक इनमें आए दोषों या संभावित भू–स्फतन को पहचानना बहुत जरूरी है।

भूस्खलन और हिम स्खलन– भूकम्प, भूस्खलन और हिमस्खलन पैदा कर सकता है, जो पहाड़ी और पर्वतीय इलाकों में क्षति का कारण हो सकता है। एक भूकम्प के बाद, किसी लाइन या विद्युत शक्ति के टूट जाने से आग लग सकती है। यदि जल का मुख्य स्त्रोत फट जाए या दबाव कम हो जाए, तो एक बार आग शुरू हो जाने के बाद इसे फैलने से रोकना कठिन हो जाता है।

मिट्टी द्रवीकरण– मिट्टी द्रवीकरण तब होता है जब झटकों के कारण जल संतृप्त दानेदार पदार्थ अस्थायी रूप से अपनी क्षमता को खो देता है और एक ठोस से तरल में रूपांतरित हो जाता है। मिट्टी द्रवीकरण कठोर संरचनाओं जैसे इमारतों और पुलों को द्रवीभूत में झुका सकता है या डुबा सकता है।

सुनामी– समुद्र के भीतर भूकम्प से या भूकम्प के कारण हुए भूस्खलन के समुद्र में टकराने से सुनामी आ सकती हैं उदाहरण के लिए 2004 हिन्द महासागर में आयी सुनामी।

बाढ़– यदि बाँध क्षतिग्रस्त हो जाएं तो बाढ भूकम्प का द्वितीयक प्रभाव हो सकता है। भूकम्प के कारण भूमि फिसल कर बाँध की नदी में टकरा सकती है, जिसके कारण बाँध टूट सकता है और बाढ़ आ सकती है।

मानव प्रभाव– भूकम्प रोग, मूलभूत आवश्यकताओं की कमी, जीवन की हानि, उच्च बीमा प्रीमियन, सामान्य सम्पत्ति की क्षति, सड़क और पुल का नुकसान और इमारतों का ध्वस्त होना, या इमारतों के आधार का कमजोर हो जाना, इन सब का कारण हो सकता है, जो भविष्य में फिर से भूकंप का कारण बनता है।

संदर्भ

1. जैक्सन, एम0(2004) भूकम्प की केन्द्रीय क्रियाविधि का पुनर्मूल्यांकन और ईरान के जाग्रोस पहाडों में सक्रीय लघुकरण, भू–भौतिकीय जर्नल इंटरनेशनल, खण्ड–156, गु0पृ0 506–526।
2.. अस्थिर मैदान पर, एसोसिएशन ऑफ खाड़ी क्षेत्र, सैनफ्रांसिस्को, सरकारी रिपोर्ट 1775,1776 (अद्यतन 2003)।

इच्छामृत्युः भारत में वर्तमान विधिक स्थिति

प्रशान्त मिश्र
विधि परास्नातक प्रथम वर्ष छात्र
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी–221005, उ0प्र0, भारत
prashantpandit88@gmail.com

प्राप्त तिथि–02.06.2015, स्वीकृत तिथि–10.08.2015

हाल ही में 42 वर्षों तक अचेतन अवस्था में रहने के बाद अरूणा शानबाग की मृत्यु ने एक बार पुनः इस विधिक अवधारणा पर बहस करने को विवश कर दिया है, कि क्या अनुच्छेद 21 के अंतर्गत, जीने के अधिकार के साथ–साथ, मरने का भी सम्मिलित है? प्रत्येक व्यक्ति अपनी उम्रदराजी की कामना करता है। वह दवाएँ लेता है, खतरे से बचकर चलता है कि किसी लापरवाही या दुर्घटनावश उसकी मृत्यु ना हो जाए। ईश्वर के द्वारा प्रदत्त मानव जीवन को हर इंसान पूरी खुशी और जिंदादिली से जीना चाहता है, और इसके लिए हर संभव कोशिश करता है। जीवन और मृत्यु का चक्र विधाता के हाथ में है और इसमें भी जीवन तो पूर्णतः विधाता के हाथ में है, किसी के लिए भी अपनी इच्छा के अनुरूप मृत्यु लेना सम्भव नहीं है।

यह सर्वविदित है कि प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन को बचाने हेतु सभी प्रयास करता रहता है, परन्तु यदि कोई व्यक्ति मृत्यु ही मांगने लगे तो क्या सोचा जाय। परन्तु कुछ परिस्थितियों में ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है, जैसे–असाध्य कष्ट, ठीक न हो सकने वाली बीमारी, अत्यन्त कठोर पीड़ा के साथ ऐसी परिस्थितियों में व्यक्ति अपने मृत्यु की कामना करने लगता है। इस संबंध में इन पंक्तियों का उल्लेख समीचीन होगा कि–

"जिस दिन लाचारी मुझपे तरस दिखाएगी, उस दिन जीवन से मौत कहीं बढ़ जायेगी।[1]"

[1]जाहिर सी बात है कि यदि कोई जीवन की जगह मौत ही माँग बैठे और वह भी कानून से तो फिर सरकार, न्यायालय या कानून क्या करें?

इच्छा मृत्यु/स्वेच्छा मृत्यु क्या है ?

इच्छा मृत्यु की वैधानिकता तथा भारत के साथ–साथ विश्व के अन्य देशों में इसकी स्थिति के बारे में चर्चा करने से पूर्व हमें यह जानना आवश्यक है कि "इच्छा मृत्यु" का अर्थ क्या है, और समय–समय पर होने वाली इसकी माँग के पीछे कौन सी परिस्थितियां जिम्मेदार होती हैं। यूथेनेशिया(Euthanasia) शब्द की उत्पत्ति ग्रीक भाषा के दो शब्द Eu = Good अर्थात् सुखद एवं Thantos = death(मृत्यु) शब्द से मिलकर बना है जिसका हिन्दी भावार्थ "सुखद मृत्यु" है। जब किसी व्यक्ति का जीवन इतना अधिक कष्टप्रद हो जाता है कि वह उस जीवन से मुक्ति पाने हेतु मृत्यु की कामना करने लगता है। ऐसा कष्टप्रद जीवन जीने के स्थान पर उसे मृत्यु सुखद प्रतीत होती है, इसलिए इस अवधारणा को सुखद मृत्यु कहा जाता है। यूथेनेशिया किसी व्यक्ति या प्राणी के जीवन को समाप्त करने का एक तरीका है, जिसके अन्तर्गत ऐसे व्यक्ति या प्राणी को उसके असहनीय जीवन से छुटकारा दिलाने के लिए ऐसा तरीका अपनाया जाता है जो पीड़ा रहित या न्यूनतम पीड़ा कारक हो। मृत्यु की प्राप्ति के बाद मनुष्य की जिंदगी समाप्त हो जाती है। मृत्यु कई प्रकार की होती है, जैसे–स्वाभाविक मृत्यु, अकाल मृत्यु, हत्या, आत्महत्या और इच्छा मृत्यु।

इच्छा मृत्यु की भारत में विधिक स्थिति– यदि राज्य किसी को सुखपूर्वक जीने की गारण्टी नहीं दे सकता है तो किसी व्यक्ति से अपने जीवन को अंत करने का अधिकार भी नहीं छीन सकता है। शारीरिक एवं मानसिक रूप से असाध्य रूप से पीडित व्यक्तियों की मृत्यु मुक्ति के समान है। मृत्यु न केवल प्रकृति का अनिवार्य नियम है बल्कि परम सत्य भी है। परन्तु हमारे देश में जहाँ कानून की अवहेलना करने में और कानून से बच निकलने में अपराधी माहिर हैं, वहाँ 'स्वेच्छा मृत्य' की आड़ में हत्या के अपराध बढ़ सकते हैं। भारत में इसकी वैधानिक स्थिति पर प्रकाश डालें तो भारत में इच्छा मृत्यु को वैधता प्राप्त नहीं है। भारतीय दण्ड संहिता की धारा 309[2] के अन्तर्गत आत्महत्या का प्रयास दण्डनीय अपराध है और धारा 306[3] के अन्तर्गत किसी अन्य व्यक्ति को आत्महत्या के लिए दुष्प्रेरित करने वाला व्यक्ति भी दण्ड का भागी होगा और यदि कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति को सुख प्रदान करने के उद्देश्य से उसके जीवन का अन्त करता है तो वह धारा 302[4] के अंतर्गत हत्या के अपराध का दोषी होगा।

सबसे पहले 1987 में बॉम्बे होईकोर्ट ने महाराष्ट्र राज्य बनाम श्रीपति दूबल[5] के वाद में यह अभिनिर्धारित किया कि भारतीय दण्ड संहिता की धारा 309 आत्महत्या को एक अपराध मानती है, संविधान के अनुच्छेद 21 का उल्लंघन करती है। अनुच्छेद 21 में जीवन के अधिकार के अन्तर्गत मरने का अधिकार स्वयं मिला हुआ है। प्रोफेसर वी0 वी0 पाण्डेय[6] ने अपने विचारात्मक लेख में उक्त निर्णय की आलोचना की है। उनका मत है कि "मरने के अधिकार" की अपेक्षा अन्य अधिकार जैसे भोजन, आश्रय, कपड़ा, चिकित्सा सुविधा और पीने का शुद्ध पानी आदि जो मानव के लिए अधिक उपयोगी है, क्या एक व्यक्ति के मरने का अधिकार इन अधिकारों से ऊपर है। परन्तु सर्वोच्च न्यायालय ने पी0 रतीनाम बनाम भारत संघ[7] के वाद में कहा, "दण्ड विधि को मानवतावादी बनाने के लिए दण्ड संहिता की धारा 309 विलोपित की जानी चाहिए। यह एक क्रूर और अविवेकी उपबन्ध है। इसका परिणाम ऐसे व्यक्ति को, जिसने यंत्रणा झेली है और आत्महत्या करने में असफलता के बाद उसे बदनामी झेलनी पड़ी है, जो पुनः दण्ड देने के तुल्य है। यदि आत्महत्या का कार्य धर्म, नैतिकता या लोकनीति के विरूद्ध नहीं है तो आत्महत्या के प्रयास के कार्य से समाज पर कोई हानिकारक प्रभाव नहीं पड़ता है। इसके अतिरिक्त आत्महत्या का प्रयास करने वाले व्यक्ति को इलाज व देखभाल की आवश्यकता है न कि दण्ड की। किन्तु ज्ञान और बनाम पंजाब राज्य[8] के वाद में **उच्चतम न्यायालय ने पी0 रतीनाम** के वाद में दिये गये अपने निर्णय को उलटते हुए विपरीत निर्णय दिया और पाँच सदस्यीय खण्ड पीठ का सर्वसम्मति से निर्णय सुनाते हुए न्यायमूर्ति जे0 एस0 वर्मा ने कहा कि, "भारतीय दण्ड संहिता की धारा 309 पूर्ण संवैधानिक है। इसके अन्तर्गत आत्महत्या का प्रयत्न दण्डनीय है। अनुच्छेद 21 के अंतर्गत आत्महत्या प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता में मरने का अधिकार सम्मिलित नहीं है क्योंकि मुनष्य का शरीर राष्ट्र की व समाज की सम्पत्ति है तथा राष्ट्र और समाज के प्रति व्यक्ति का कुछ न कुछ कर्तव्य एवं दायित्व होते हैं। अपने जीवन को समाप्त करके मनुष्य अपने इन कर्तव्यों तथा दायित्वों से बच नहीं सकता। अतः व्यक्ति को धारा 309 के अंतर्गत दण्डित किया जाना चाहिए। भारतीय विधि आयोन ने अपनी 210वीं रिपोर्ट में धारा 309 को दण्ड संहिता से हटाने की सिफारिश की थी। उसका सुझाव था कि आत्महत्या के प्रयास का अपराध की श्रेणी से हटा दिया जाना चाहिए।

10 दिसम्बर 2014 को भारत सरकार ने आत्महत्या के प्रयास को अपराध की श्रेणी से हटाने का, तथा धारा 309 को दण्डसंहिता से हटाने का निर्णय लिया। गृह राज्य मंत्री ने कहा कि 18 राज्यों ने तथा 4 संघ क्षेत्रों ने निर्णय का समर्थन किया है।[9] परन्तु 'आत्महत्या का प्रयास' को अपराध की श्रेणी से हटाने के कुछ दूसरे पहलू भी हो सकते हैं। उनमें से प्रमुख है कि यदि कोई व्यक्ति आमरण अनशन करता है या अपने आपको जलाने का प्रयास करता है, सरकार पर दबाव डालने के लिए, तो सरकारी मशीनरी के पास कोई विधिक आधार नहीं रह जायेगा उसको ऐसा करने से रोकने के लिए। अतः आज की परिस्थितियों जैसे भारत की साक्षरता, जनसंख्या आदि को देखते हुए इस विषय पर कानून बनाना चाहिए। भारत में जहाँ हत्या के मामले पहले से ही अधिक हैं, धारा 309 को समाप्त करने से इसके दुरूपयोग की सम्भावनायें अधिक बढ जायेंगी। अतएव मानवीय दृष्टिकोण रखते हुए तथा सार्वजनिक हित में विरलतम से विरलतम मामलों के अलावा इच्छा मृत्यु की अनुमति नहीं मिलनी चाहिए।

संदर्भ

1. जनवादी कवि, 'शिवमंगल सिंह सुनन'
2. धारा 309, भारतीय दण्ड संहिता, 1860।
3. धारा 306, भारतीय दण्ड संहिता, 1860।
4. धारा 302 भारतीय दण्ड संहिता, 1860।
5. 1987 क्रिमिनल लॉ जर्नल।
6. प्रोफेसर, विधि संकाय, दिल्ली विश्वविद्यालय, राइट टू लाइफ आर डेथः फॉर भारत कैन नाट राइट" (1994)[4] एस0सी0सी0(जर्नल) पृ0 1।
7. (1994)3 एस0 सी0 सी0 394
8. (1994)2 एस0 सी0 सी0 694
9. टाइम्स ऑफ इण्डिया, 10–12–2014

दुर्खीम का समाजशास्त्रीय पद्धतिशास्त्र

वन्दना
असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग
बी0एस0एन0वी0 पी0जी0 कॉलेज, लखनऊ–226001, उ0प्र0, भारत
vandana7620@gmail.com

प्राप्त तिथि–03.06.2015, स्वीकृत तिथि–28.06.2015

फ्रांसीसी समाजशास्त्री इमाईल दुर्खीम समाजशास्त्र जगत में, समाजशास्त्र के जन्मदाता काम्ट के उत्तराधिकारी के रूप में प्रतिष्ठित हैं। समाजशास्त्रीय अध्ययन पद्धति एवं सिद्धान्तों को एक निश्चित वैज्ञानिक स्तर पर ले जाने में इनका स्थान अप्रतिम है। काम्ट और दुर्खीम के बौद्धिक विकास की पार्श्वभूमि में बड़ी समानता है। फ्रान्स की राजक्रान्ति के बाद की सामाजिक परिस्थितियों ने काम्ट के चिंतन को प्रभावित किया। सन् 1870 के फ्रान्स और जर्मनी के युद्ध तथा इससे फ्रान्स की पराजय दुर्खीम के समाजशास्त्र को प्रभावित करती है। सन् 1895 में प्रकाशित दुर्खीम की प्रसिद्ध पुस्तक "द रूल्स ऑफ सोशियोलॉजिकल मेथड" के अन्तर्गत समाजशास्त्र को एक सकारात्मक विज्ञान के रूप में स्थापित करने का कार्य प्रारम्भ हुआ।

दुर्खीम का पद्धति शास्त्र– दुर्खीम ने अपनी पुस्तक "द रूल्स ऑफ सोशियालोजिकल मेथड" में सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में वैज्ञानिक प्रविधियों का प्रयोग किया है ।

"समाजशास्त्र के जन्मदाता काम्ट एक समर्पित सकारात्मकतावादी थे किन्तु समाजशास्त्र विषय में सकारात्मक पद्धति के प्रतिष्ठाता दुर्खीम ही माने जाते हैं। समाज विज्ञान में प्रयोग की जाने वाली सकारात्मक धारणायें इस प्रकार हैं–
1. प्राकृतिक विज्ञानों में प्रचलित पद्धतियों एवं धारणाओं को मानव समाज के अध्ययन के लिए प्रत्यक्षतः प्रयुक्त किया जा सकता है।
2. समाज विज्ञानों में होने वाले अनुसंधान कार्यकारी नियमों में घटित किये जा सकते हैं तथा अनुसंधान का उद्देश्य नियमों का निर्माण तथा समाज के नियमों जैसे– सामान्यीकरण विकसित करना है।
3. सामाजिक अनुसंधान ऐसे प्राविधिक ज्ञान का विकास करने में सक्षम है जो पद्धति में सहायक हो परन्तु सामाजिक मूल्यों के प्रति तटस्थ हो।"

दुर्खीम का मानना था कि सामान्य समाजशास्त्र विशेष विज्ञानों का समन्वय हो सकता है क्योंकि यह उनके सर्वाधिक सामान्यीकृत परिणामों में निहित है। समाजशास्त्र के समन्वयात्मक एवं विशिष्टात्मक दृष्टिकोण को सम्मिलित करते हुए एक सामान्य दृष्टिकोण विकसित किया। दुर्खीम ने समाजशास्त्र को प्राकृतिक विज्ञानों से कहीं अधिक जटिल माना है। अन्य सामाजिक विज्ञानों से भी पृथक समाजशास्त्र का अपना स्वतन्त्र क्षेत्र है। मनुष्य द्वारा अनेक तरह की सम्पन्न की जाने वाली क्रियायें अन्य सामाजिक विज्ञानों के विषय क्षेत्र के अन्तर्गत आती हैं। समाज में रहते हुए व्यक्ति कुछ क्रियायें स्वयं सम्पन्न करता है किन्तु उसका आधार व्यक्तिगत न होकर सामाजिक अर्थात् ऐसी परिस्थितियों उसे विशिष्ट क्रियायें करने के लिए प्रेरित एवं बाध्य करती हैं। समाज में कानून, धर्म, नीति, प्रथा, रूढ़ियाँ आदि तथ्य सामूहिकता से उत्पन्न वास्तविकतायें हैं जिसके कारण व्यक्ति अपनी मनोवैज्ञानिक व्यक्तिगत विशेषताओं से प्रभावित होकर कार्य नहीं करता जितना कि समूह से। दुर्खीम ने अपनी आत्महत्या के सिद्धांत के अन्तर्गत आत्महत्या और उसके सामाजिक पक्ष के अध्ययन पर बल दिया है। एक से अधिक व्यक्ति और एक से अधिक समय पर होने वाला व्यवहार व्यक्तिगत न रहकर सामूहिक हो जाता है, आत्महत्या के सामूहिक पक्ष की माप की जा सकती है। उदाहरण के लिए यदि एक साल में 120 आत्महत्याएं हुई, अगले साल 125 व तीसरे साल 128 तो अब हम कह सकते हैं कि आत्महत्या उक्त समाज में 120–128 के बीच प्रतिवर्ष हो रही हैं इसी तरह से हम आज कल जन्मदर, मृत्युदर, स्वास्थ्य कल्याणकारी सेवाओं से सम्बन्धित प्रतिशत को देखकर विभिन्न सामाजिक तत्वों की समय एवं समाज के अनुसार तुलना कर निष्कर्ष निकालते हैं। दुर्खीम ने समाजशास्त्र के विषय वस्तु के अन्तर्गत समूह की क्रियाओं, प्रक्रियाओं को सम्मिलित किया है। सामूहिक व्यवहार या सामूहिक प्रेरणा से व्यक्ति जो क्रियायें करता है वे समाजशास्त्र के अध्ययन क्षेत्र मे आता है ।

दुर्खीम के पद्धतिशास्त्र के अध्ययन का लक्ष्य

1. दुर्खीम के पद्धतिशास्त्र के अध्ययन का लक्ष्य अपने इस विषय को विज्ञान बनाना ।
2. इस नवीन विज्ञान में वैज्ञानिक प्रविधियों का प्रयोग करना ।

दुर्खीम ने समाजशास्त्रीय चिंतन के क्षेत्र में सामाजिक घटना का अध्ययन आगमन पद्धति से करने की अपेक्षा सामाजिक तथ्यों का निरीक्षण व परीक्षण करके पूर्ण वस्तुनिष्ठता के साथ ऐसे नियमों को खोज निकालना था जो सामूहिक जीवन को संचालित करते हैं। दुर्खीम ने समाजशास्त्र की अध्ययन पद्धति, विषयवस्तु की दृष्टि से एक स्वतन्त्र विज्ञान के रूप में प्रतिष्ठित किया। समाजशास्त्रीय अध्ययन में सामूहिक क्रिया, व्यवहारों को सम्मिलित करते हुए एक नई समूहवादी परम्परा को जन्म दिया । दुर्खीम ने समाजशास्त्रीय अध्ययन पद्धति के द्वारा सामाजिक तथ्यों के अध्ययन पर बल दिया।

दुर्खीम के पद्धति शास्त्र की विशेषताएं– सामाजिक तथ्य, काम करने, और महसूस करने की ऐसी पद्धति है जिसका अस्तित्व व्यक्ति की चेतना के बाहर है। सामाजिक तथ्य की दो विशेषतायें हैं– 1. बाह्यता, 2. बाध्यता। सामाजिक तथ्य व्यक्ति के मस्तिष्क और उसकी चेतना के बाहर की उपज है जिसके निर्देशों के पालन के लिए हम बाध्य हैं तथा नियमों के भंग करने पर समाज विरोधी प्रतिक्रिया के रूप में दण्ड की व्यवस्था करता है। दुर्खीम ने समाजशास्त्रीय अध्ययन के लिए श्रम विभाजन, सामाजिक एकता, कानून नैतिकता, धर्म, आत्महत्या, शिक्षा, व्यवसायिक पेशेवर समूह, आर्थिक सामाजिक संगठन आदि सामाजिक तथ्यों को महत्वपूर्ण माना है। दुर्खीम के अनुसार समूह की सत्ता व्यक्ति की सत्ता से ऊपर है। सामाजिक घटनायें व्यक्तिगत प्रेरणाओं से नहीं अपितु सामूहिक मन अर्थात सामूहिक चेतना द्वारा संचालित होती हैं। दुर्खीम के अनुसार सामाजिक तथ्यों के अवलोकन, परीक्षण, प्रणालियों के आधार, प्रयोग पर आधारित ज्ञान ही समाजशास्त्र का अन्तिम लक्ष्य है। सामाजिक तथ्यों के अध्ययन के हर स्तर पर आदर्शात्मक प्रतिमानों वैयक्तिक भावनाओं से बचते हुए तटस्थ व वैज्ञानिक भावना, निरीक्षण, परीक्षण द्वारा वास्तविक तथ्यों को खोजा जाता है। दुर्खीम का मानना है कि सामाजिक तथ्यों का अध्ययन कार्य–कारण सम्बन्धों के आधार पर होना चाहिए, एक सामाजिक घटना दूसरे सामाजिक घटना को जन्म देने, प्रभावित करने, या किसी न किसी प्रकार से सम्बन्धित रहता है। प्रत्येक सामाजिक तथ्य अपने पूर्ववर्ती सामाजिक तथ्यों का परिणाम होता है। समाजशास्त्रीय अध्ययनों में दुर्खीम ने ऐतिहासिक पद्धति की जगह सहगामी रूपान्तर पद्धति(Method of concomitant variations) को अपनाते हैं जो तुलनात्मक पद्धति का एक रूप है। सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्ष निरन्तर क्रियाशील एवं परिवर्तनशील होते हैं किन्तु सभी कारकों की क्रियाशीलता, परिवर्तनशीलता की गति एक जैसी नहीं पाई जाती है। सहगामी रूपान्तर पद्धति से विभिन्न कारकों के आपसी सम्बन्धों का अनुपात निकालने से विभिन्न सामाजिक तथ्यों के आपसी सम्बन्धों का पता लगा लिया जाता है। साथ ही साथ सामाजिक घटना के निर्धारण में कारकों के योगदान का वास्तविक रूप में पता चल जाता है। **उदाहरणार्थ–** आधुनिक समाज में युवावर्ग, परिवार एवं विवाह के प्रति बदलते दृष्टिकोण के प्रति विभिन्न कारकों जैसे शिक्षा, मूल्यों के प्रति बदलाव, तार्किकता, पश्चिमीकरण, नगरीकरण, लौकिकीकरण आदि कारक उत्तरदायी हैं।

निष्कर्ष– दुर्खीम ने समाजशास्त्रीय अध्ययन को सामाजिक उपादेयता के लिए जरूरी माना है। समाजशास्त्र को वैज्ञानिक निरीक्षण के आधार पर ऐसे सामाजिक उद्देश्यों की खोज करना है जो समाज के लिए उपयोगी हों। दुर्खीम के उपरोक्त पद्धतिशास्त्रीय विवेचना से स्पष्ट होता है कि दुर्खीम सामाजिक तथ्यों को वस्तुओं के समान निरीक्षण योग्य पदार्थों के रूप में स्वीकार करते हुए सामाजिक तथ्यों के अध्ययन में कार्य–कारण सम्बन्धों के अध्ययन में सहगामी रूपान्तर पद्धति को अपनाने पर बल देते हैं। समाजशास्त्र को वैज्ञानिक स्तर पर ले जाने हेतु प्राकृतिक विज्ञानों में प्रयुक्त प्रणालियों को समाजशास्त्र में अपनाने पर जोर देते हैं ।

सन्दर्भ

1. ब्रजराज, चौहान(1994) समाज विज्ञान के प्रेरक श्रोत, ए0सी0 ब्रदर्स, उदयपुर, पृ0 155।
2. "द स्टडी ऑफ सोसाइटी", इग्नू ई0एस0ओ0–2005, पृ0 14।
3. गुप्ता, एम0एल0 एवं शर्मा, डी0 डी0(1998) समाजशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, पृ0 20।
4. वर्मा, ओम प्रकाश(1995) दुर्खीम–एक अध्ययन, विवेक प्रकाशन, जवाहरनगर, दिल्ली, पृ0–22।
5. सिंह, जे0 पी0(2010) समाजशास्त्र, अवधारणायें एवं सिद्धान्त, पी0एच0आई0 लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, पृ0–11।

संकटग्रस्त सोंस–शारीरिक विशेषताएं एवं व्यवहार

अरविन्द सिंह
वनस्पति विज्ञान विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी–221005, उ0प्र0, भारत
dr.arvindsingh@gmail.com; arvindsingh_bhu@hotmail.com

प्राप्त तिथि–16.06.2015, स्वीकृत तिथि–22.07.2015

सोंस स्तनपायीयों की एक अत्यन्त ही दुर्लभ उपप्रजाति है जो भारत, बांगलादेश तथा नेपाल में गंगा और ब्रह्मपुत्र एवं उनकी सहायक नदियों में पायी जाती है। पाकिस्तान में यह सिन्धु नदी में पायी जाती है। *सोंस* का वैज्ञानिक नाम *प्लटैनिस्टा गैंजेटिका गैंजेटिका* है जिसे भारत में *गंगा डॉल्फिन* तथा *सुसु* नामों से जानी जाती है। पश्चिम बंगाल में इसे *शुशुक*, असम में *हिहु* एवं सिंध में *भूलन* नाम से जाना जाता है जबकि संस्कृत में इसे *शिशुमार* नाम से जाना जाता है। मछली की तरह पूंछ वाली *सोंस* भारत की नदियों में पायी जाने वाली एकमात्र स्तनपायी है। *सोंस* स्तनपायी जीव होने के कारण जल के अन्दर श्वास नहीं ले सकती अतः प्रत्येक 30–120 सेकेण्ड में एक बार जल के सतह पर आकर के श्वास लेती है। श्वास के दौरान इसके थूथन से निकलने वाली सूंसूं के आवाज के कारण ही इसे *सुसु* कहा जाता है। *सोंस* को *'मीठे जल का बाघ'* भी कहा जाता है। इन्हें नदी जल के स्वच्छता का प्रतीक माना जाता है। *सोंस* मनुष्यों एवं मीठे जल के बीच की कड़ी हैं। यह पृथ्वी पर घड़ियाल, शार्क एवं कुछ कछुओं की प्रजातियों के साथ विश्व के प्राचीनतम जीवों का प्रतिनिधित्व करती है। भारत में सभी नदियों की जननी पवित्र गंगा नदी देश में मीठे जल की एक मात्र प्रजाति *सोंस* की जनसंख्या को संभालने में अक्षम साबित हो रही है। आज *सोंस* भारतीय नदियों में दयनीय जीवन जीने को मजबूर हैं और अपने अस्तित्व के लिए कड़ा संघर्ष कर रही हैं।

सोंस की लगातार गिरती जनसंख्या के कारण वर्ष 1994 में अन्तर्राष्ट्रीय प्रकृति एवं प्राकृतिक संसाधन संघ (आई0यू0सी0एन) ने इसे *असहाय* (वलनरेबुल) जीव घोषित कर दिया। तत्पश्चात् 1996 में इसे संकटग्रस्त (इण्डेंजर्ड) जीव घोषित कर *लाल आंकड़ा पुस्तक*(रेड डाटा बुक) में संकटग्रस्त जीवों की सूची में डाल दिया गया जबकि विश्व प्राकृतिक निधि ने इसे *पताका प्रजाति* (फ्लैगसिप स्पिशीज) के रूप में सूचीबद्ध किया है। *सोंस* का प्रमाणिक उल्लेख सम्राट अशोक के स्तम्भ लेख संख्या 5 में देखने को मिलता है। 246 ई0 पू0 अपने शासन काल के बीस वर्ष पूरे होने पर प्रियदर्शी राजा ने एक राज्यादेश के द्वारा विभिन्न प्रकार के जीवों जैसे *चमगादड़, जंगली हंस, मैना, तोता, सारस, बारहसिंगा, गिलहरी,* गंगा की *पपुता* आदि की हत्या पर पूर्णतः रोक लगा दी थी। प्राकृत भाषा में *पपुता* का तात्पर्य *सोंस* से है। *अकबरनामा* एवं भारतीय पशु–पक्षियों पर जहांगीर के लेखों में भी सोंस का सचित्र वर्णन मिलता है।

सोंस का वैज्ञानिक अध्ययन सबसे पहले कलकत्ता के वानस्पतिक उद्यान के अधीक्षक विलियम राक्सबर्ग ने 1801 में किया था। उन्होंने ही सोंस का वैज्ञानिक नाम *प्लटैनिस्टा गैंजेटिका* रखा था। वर्ष 1878 में भारतीय संग्रहालय के अध्यक्ष डॉ0 जान एण्डरसन ने हुगली नदी से एक *सोंस* को पकड़कर उसे एक पोखरी में दस दिनों तक जिन्दा रखकर इसके स्वभाव एवं व्यवहार का अध्ययन किया और शोध पत्रों के माध्यम से उसकी शारीरिक संरचना का विस्तार से वर्णन किया। वर्तमान में पटना विश्वविद्यालय बिहार के डॉ आर0 के0 सिन्हा तथा तिलका मांझी विश्वविद्यालय, भागलपुर, बिहार के डॉ0 एस0 के0 चौधरी *सोंस* पर विशेष अध्ययन कर रहे हैं। डॉ0 आर0 के0 सिन्हा जो वर्तमान में बिहार राज्य से राज्य सभा सदस्य भी हैं को 'डॉल्फिन सिन्हा' के नाम से भी जाना जाता है।

सोंस को बचाने के लिए भारत सरकार ने इसे राष्ट्रीय जलीय जीव घोषित कर दिया है। *सोंस* को राष्ट्रीय जलीय जीव घोषित करने का निर्णय 5 अक्टूबर 2009 को भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री डॉ0 मनमोहन सिंह की अध्यक्षता में राष्ट्रीय गंगा नदी बेसिन प्राधिकरण की प्रथम बैठक में लिया गया जिसकी औपचारिक घोषणा 5 मई, 2010 में विधिवत् अधिसूचना के जरिए की गई। प्राधिकरण की बैठक में भारत सरकार के तत्कालीन केन्द्रीय वन एवं पर्यावरण मंत्री श्री जयराम रमेश ने कहा था कि *"जिस प्रकार बाघ वन की सेहत का प्रतीक है ठीक उसी प्रकार सोंस गंगा नदी की स्वच्छता का प्रतीक है। लिहाजा सरकार गंगा की सफाई का अभियान तब तक जारी रखेगी जब तक विलुप्ति के कगार पर पहुंची सोंसे फिर से आबाद नहीं हो जाती हैं"*।

सोंस की नदी जल में उपस्थिति एक स्वस्थ पारितंत्र की संकेतक है। चूंकि *सोंस* खाद्य श्रृंखला के शीर्ष पर होती है इसलिए इनकी पर्याप्त संख्या में उपस्थिति नदी को जैव–विविधता संपन्न बनाती है और पारितंत्र को संतुलित रखने में सहायता प्रदान करती है। अतः *सोंस* की उपस्थिति नदी जल को प्रदूषण मुक्त रखती है। *सोंस* को *वरीयता प्रजाति* की संज्ञा दी गयी है।

विश्व प्राकृतिक निधि वरीयता प्रजाति को पारिस्तिथिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक रूप से इस ग्रह पर सबसे महत्वपूर्ण प्रजाति मानता है। इसलिए इनका संरक्षण अति आवश्यक है।

आवास एवं पारिस्थितिकी

सोंस केवल मीठे जल में पायी जाती हैं। इनके आवास का विस्तार दुनिया की सबसे घनी आबादी वाले क्षेत्र में है। भारत एवं बंगलादेश में *सोंस* उन नदियों में रहती हैं जिनका बहाव मैदानों में धीमा होता है जबकि नेपाल में वे तेज बहाव वाली स्वच्छ जल धारा में निवास करती हैं। *सोंस* आमतौर से नदी के गहरे जल में निवास करती हैं जिसका तापमान 8 से 33° सेल्सियस के बीच होता है। *सोंस* नदी में अपने आप को उन स्थानों में केन्द्रित करती हैं जहां अधिक भोजन की उपलब्धता होती है। *सोंस* घड़ियालों, कछुओं एवं नमभूमि पक्षियों के साथ आवास की साझेदारी करती हैं जिनमें से बहुत सी प्रजातियाँ मछली भक्षक होने के कारण *सोंस* की दमदार प्रतियोगी होती हैं।

वितरण क्षेत्र

सोंस भारत में उत्तर प्रदेश, उत्तराखण्ड, बिहार, झारखण्ड, मध्य प्रदेश, राजस्थान, पश्चिम बंगाल तथा असम राज्यों के गंगा एवं ब्रह्मपुत्र नदियों में पायी जाती है। गंगा घाटी में *सोंस* सभी प्रमुख धाराओं एवं उनकी सहायक नदियों जैसे *सोन, यमुना, चंबल, गोमती, घाघरा* एवं *कोसी* नदियों में पायी जाती हैं। ब्रह्मपुत्र घाटी में *सोंस* सभी प्रमुख सहायक नदियों जैसे *तीस्ता, गदाधर, चंपावत, मानस, मराली, डिहांग, डिबांग, लोहित, दिसांग, डिख्रो* एवं *कापिली* में पायी जाती हैं। *सोंस* मुख्य धारा में रहने के साथ–साथ बाढ़ के मौसम में मौसमी सहायक नदियों एवं बाढ़युक्त नीचले क्षेत्रों में भी रहती हैं। उनका वितरण जल की कमी एवं चट्टानी बाधाओं से सीमित होता है। नेपाल में *सोंस* करनाली नदी एवं बंगलादेश में कर्णफूली नदी में पायी जाती है जबकि पाकिस्तान में ये सिन्धु नदी में पायी जाती है। भूटान में सोंस पूर्णतः विलुप्त हो चुकी है। सोंस आमतौर से नदियों एवं नदियों के संगम के आसपास गहरे जल में पायी जाती हैं।

शारीरिक विशेषताएं

गोलाकार उदर, गठीला शरीर एवं लम्बा पतला थूथन *सोंस* की प्रमुख विशेषताएं होती हैं। मुख बन्द रहने के बावजूद भी उपरी एवं निचले जबड़ों के दंत दिखायी देते हैं। युवा सोंस के दंत एक इंच लम्बे, पतले एवं मुड़े हुए होते हैं। दोनों जबड़ों में लगभग 134–136 दंत पाये जाते हैं। शरीर आमतौर से हल्के भूरे रंग का होता है और बीच से गठीला होता है। युवा *सोंस* गहरे रंग की होती हैं लेकिन आकार में वृद्धि के साथ रंग हल्का हो जाता है। परिपक्व मादा नर से बड़ी होती है। *सोंस* का औसत भार लगभग 85 किलोग्राम होता है। चमकदार लेन्स के अभाव में *सोंस* अंधी होती हैं। अंधी होने के बावजूद भी *सोंस* अपने आँख का उपयोग सही स्थान का पता लगाने में करती हैं। यह आमतौर से 'सोनार' (साउण्ड नैविगेशन एण्ड रेंजिंग) एवं प्रतिध्वनिनिर्धारण (इकोलोकेशन) का उपयोग तैरने के दौरान करती हैं। इस अनुपम विशेषता के कारण *सोंस* विज्ञान जगत के लिए अनूल्य हैं।

सोंस स्तनपायीयों में सबसे कम सोने वाली जीव हैं। वे जल में दिन रात सक्रिय रहते हुए 'सोनार' तरंगों को छोड़ती रहती हैं। *सोंस* अपने सिर के उभरे हुए भाग एवं गले के एक विशेष क्षेत्र से एक सेकेण्ड में कई सौ बार ध्वनि तरंगों को जल में छोड़ती रहती है। ये तरंगे सामने की किसी भी वस्तु से टकराकर जब *सोंस* के पास लौटती हैं तो उस वस्तु के रूप, आकार और चरित्र के विषय में समस्त सूचनायें एकत्र कर लेती हैं। इस विधि को प्रतिध्वनिनिर्धारण (इकोलोकेशन) नाम से जाना जाता है। मादा प्रत्येक 2 से 3 वर्ष में एक बार एक बच्चे को जन्म देती है। गर्भधारण की अवधि 9 से 11 माह के बीच होती है। मादा *सोंस* आमतौर से वर्ष के अक्टूबर से मार्च महीने के बीच बच्चा जनती है और बच्चा जनने की क्रिया दिसम्बर और जनवरी माह में शीर्ष पर होती है जब शुष्क ऋतु का आगमन होता है। मादा बच्चे को एक वर्ष तक दुग्ध पिलाती है और लगभग 10 वर्ष में बच्चे लैंगिक रूप से परिपक्व हो जाते हैं।

सोंस में एक तरफा तैरने की विचित्रता होती है। ऐसा समझा जाता है कि उनका यह बर्ताव भोजन के तलाश हेतु होता है। *सोंस* का मुख्य भोजन छोटी मछलियां, घोंघे, झींगें तथा जलीय पौधे होते हैं। इनके शिकार में 'कैटफिश' प्रमुख होती है। नदी की तलहटी पर पायी जाने वाली मछलियों का शिकार *सोंस* अपने लम्बे थूथन की मदद से करती हैं। वे आमतौर से अपने शिकार को निगल जाती हैं। *सोंस* का लम्बा थूथन संभवतः नदी की तलहटी में गाद आदि में छिपे शिकार को खींचने हेतु एक प्रकार का अनुकूलन है। उन्नीसवीं सदी में *सोंस* बड़े समूहों में शहरी क्षेत्रों के समीप नदी किनारे पायी जाती थी जबकि आज ये छोटे समूहों या अकेले ही पायी जाती हैं। हॉलिया अध्ययन बताता है कि इनके समूहों की औसत संख्या मात्र दो है।

नदी जल स्तर में उतार चढ़ाव के कारण *सोंस* के वितरण एवं घनत्व में मौसमी परिवर्तन होता है। शुष्क ऋतु में अक्टूबर से अप्रैल तक बहुत सी *सोंस* गंगा–ब्रह्मपुत्र की सहायक नदियों को छोड़कर मुख्य नदी में एकत्र हो जाती हैं ताकि आने वाली वर्षा ऋतु में वो सहायक नदियों में लौट सके। इस प्रक्रिया के दौरान शुष्क ऋतु में बहुधा वे जलाशयों एवं नदी शाखाओं में अलग थलग पड़ जाती हैं।

सोंस के जीवन के मुख्य खतरें

नदी प्रदूषण, आवास क्षरण, शिकार, दुर्घटनावश मृत्यु, भोजन की कमी एवं नदी विखण्डन *सोंस* के जीवन के मुख्य खतरें हैं। विश्व प्राकृतिक निधि के अध्ययन के अनुसार 95% *सोंस* की मौत का कारण मनुष्य है। वर्ष 1982 में भारत की नदियों में *सोंस* की जनसंख्या 4,000–5,000 के बीच थी जबकि आज इनकी संख्या गंभीर स्तर तक घट चुकी है। एक अनुमान के अनुसार वर्तमान में गंगा एवं ब्रह्मपुत्र नदियों (6,000 किलोमीटर) में *सोंस* की कुल संख्या मात्र 1,200–1,800 के बीच है। इस प्रकार *सोंस* एक अत्यन्त ही जोखिमग्रस्त स्तनपायी जीव है जो विलुप्ति के संकट से जूझ रही है।

नदी प्रदूषण

हरित क्रान्ति के आगमन के पश्चात् जलोढ़ मैदानी क्षेत्रों में कृषि पैदावार बढ़ाने हेतु रासायनिक खादों एवं पीड़कनाशकों (पेस्टीसाइड्स) का अंधाधुन्ध प्रयोग हुआ है जिससे ये हानिकारक रसायन वर्षा जल के साथ नदी में पहुंच कर नदी जल को निरन्तर प्रदूषित कर रहे हैं। घातक आर्गेनोक्लोरीन एवं आर्गेनोफॉस्फेट पीड़कनाशकों ने सोंस के लिए जहर का काम किया है। *सोंस* के चर्बी(ब्लबर) में आर्गेनोक्लोरीन्स की उपस्थिति गंभीर चिंता का विषय है। नगरपालिका का बहने वाला जलमल गंगा नदी में पहुँचकर नदी को प्रदूषित कर रहा है। समुद्री प्रजाति संरक्षण (कंजरवेशन आफ मैरीन स्पिशीज) के अनुसार गंगा नदी में प्रत्येक वर्ष लगभग 1.15 मिलियन मेट्रिक टन रासायनिक खाद एवं 2,600 टन नाशिजीवनाशक छोड़े जाते हैं। उदाहरण के लिए कानपुर के चर्म शोधक संयंत्र से उत्सर्जित भारी धातुओं से युक्त जल गंगा नदी को प्रदूषित करता है। यहां के 400 से भी ज्यादा चर्म शोधक संयंत्र लगभग 3 करोड़ लीटर उत्प्रवाहित गंदा जल रोजाना गंगा में उड़ेल रहे हैं। कानपुर शहर इटावा के राष्ट्रीय चंबल अभ्यारण से मात्र 185 किलोमीटर दूर है जहां बड़ी संख्या में *सोंसें* पायी जाती हैं। सीसा, आर्सेनिक एवं पारा जैसे हानिकारक तत्वों के जैव–एकत्रण के कारण धीरे–धीरे सोंस की सेहत बिगड़ रही है।

आवास क्षरण

गंगा नदी बेसिन में *सोंस* की संख्या के साथ–साथ उनके आवास की गुणवत्ता में भी कमी आयी है। यह कमी 1950 के बाद से बांधों एवं बैराजों के निर्माण के परिणामस्वरूप आयी है। बैराजों के निर्माण ने *सोंस* की जनसंख्या को खण्डित कर दिया है। पचास से भी अधिक बांधों और सिंचाई से संबन्धित परियोजनाओं के कारण *सोंस* के आवास पर विपरीत प्रभाव पड़ा है जिससे उनकी संख्या में कमी आयी है। जल बहाव एवं जल की गुणवत्ता में परिवर्तन एवं गाद बोझ के कारण नदी जल *सोंस* के जीवन हेतु अनुकूल नहीं रहा। बांधों के निर्माण के फलस्वरूप *सोंस* जनसंख्या का छोटे–छोटे समूहों में अलगाव हो गया जिससे उनके प्रव्रजन, भोजन की उपलब्धता आदि पर विपरीत प्रभाव पड़ा है। *सोंस* के अलग थलग पड़े समूह मछुवारों के लिए आसान शिकार बन गये। बांध एवं बैराज *सोंस* जनसंख्या को खण्डित करने के अतिरिक्त उन्हें उपर एवं नीचे तैरने में अवरोध उत्पन्न करते हैं और नीचे की जलधारा को विघटित कर जलाशय को गाद युक्त बना देते हैं परिणामस्वरूप मछलियों एवं मेरूदण्डहीन प्रजातियाँ एकत्रित हो जाती है। फरक्का–बैराज के उपर जलीय पौधों की प्रचुरता एवं अत्यधिक गाद जमाव के कारण *सोंस* के आवास पर विपरीत प्रभाव पड़ा है।

नहर सिंचाई के फलस्वरूप जलोढ़ मैदानी क्षेत्रों में सम्पन्नता तो आई लेकिन यह *सोंस* के लिए अभिशाप साबित हुई। गंगा के नहर वाले क्षेत्रों में सिंचाई हेतु अत्यधिक जल निकास के कारण गंगा नदी में जल की कमी हो गयी जिसके कारण बड़े पैमाने पर *सोंस* की मृत्यु हुई है। वनविनाश के कारण भी नदियों की तलहटी में बड़े पैमाने पर गाद का जमाव हुआ है जिसके फलस्वरूप सोंस का आवास विघटित हो गया है जिससे इनकी जनसंख्या में गिरावट आई है। नदी की तलहटी से पत्थर एवं बालू निकालने की प्रक्रिया भी *सोंस* के आवास विघटन का एक कारण है।

शिकार

भारत में *सोंस* का शिकार आम बात है। इनका शिकार आमतौर से मांस और चर्बी के लिए किया जाता है। चर्बी (ब्लबर) से प्राप्त तेल का उपयोग कामोत्तेजक दवा और मछली पकड़ने हेतु चारे के रूप में होता है। बिहार राज्य के भागलपुर, कहलगांव एवं मुंगेर एवं झारखण्ड राज्य के साहिबगंज एवं इसके आसपास के क्षेत्रों में मछुवारे *सोंस* के तेल में कुछ अन्य पदार्थ मिलाकर मछली मारने का एक चारा तैयार करते हैं और इसके द्वारा वे कुछ विशेष प्रकार की मछलियां जैसे *सिलन,*

बचवा आदि का शिकार करते हैं। ये मछलियां इस तेल के गंध से दूर से ही आकर्षित हो जाती हैं। तेल प्राप्ति हेतु प्रत्येक वर्ष सैकड़ों *सोंस* का शिकार किया जाता है। चर्बी से प्राप्त तेल का उपयोग देसी औषधि के रूप में गठिया एवं वात रोग के उपचार में भी होता है। शिकारियों द्वारा *सोंस* का शिकार पटना के पास गध्य गंगा में और ब्रह्मपुत्र नदी के उपरी क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर किया जाता है। असम राज्य में *सोंस* का शिकार मांस के लिए किया जाता है जो वहां के बाजार में बेचा जाता है। पूर्वी भारत के मछुवारों के बीच ऐसी मान्यता है कि *सोंस* अपनी विशेष क्षमता द्वारा मछलियों को उनके जाल में लाकर फंसा देती हैं। इसी धारणा के कारण हर मछुवारा गाँव *सोंस* को विशेष सम्मान देता है। आज भी बंगलादेश तथा पूर्वी भारत के मछुवारे *सोंस* की आमतौर पर हत्या नहीं करते। ये घायल होकर अगर किनारें पर आ जाती हैं तभी उनको जलाकर तेल निकाला जाता है। मछुवारे तेल को बेंचने के बजाय एक दैवी उपहार के रूप में रिश्तेदारों एवं गांव वालों के बीच बांटते हैं।

दुर्घटनावश मृत्यु

मछुवारों द्वारा मछली पकड़ने के दौरान दुर्घटनावश *सोंस* की मछली पकड़ने वाले उपकरणों में फंसकर मृत्यु हो जाती है यह भी उनकी कम होती जनसंख्या का एक प्रमुख कारण है। मछुवारों द्वारा एकतन्तु नाइलन गिलनेट्स के बढ़ते उपयोग के कारण सोंस की बड़े पैमाने पर मृत्यु हुई है। गिलनेट्स आमतौर से अत्यन्त ही नहीन नाइलन धागे से बने होते हैं जिसका प्रतिध्वनिनिर्धारण करने में *सोंस* असफल रहती हैं। गिलनेट्स में फंसकर दुर्घनावश मृत्यु एवं तेल के लिए शिकार *सोंस* के अस्तित्व के लिए दो सबसे बड़े खतरे हैं।

भोजन की कमी

अत्याधुनिक गैर–चयनित मछली पकड़ने वाले उपकरणों के व्यापक उपयोग के कारण *सोंस* के लिए भोजन की कमी हो जाती है फलस्वरूप भोजन के अभाव से इनकी मृत्यु हो जाती है।

नदी विखण्डन

नदी विखण्डन भी सोंस की घटती जनसंख्या का एक कारण है। नदी विखण्डन का आशय नदी की कम होती गहरायी से है जिसमें बलुई ढ़ेर के कारण नदी का विभाजन छोटे खण्डों में हो जाता है। चम्बल नदी में निवास करने वाली *सोंस* जनसंख्या के लिए नदी विखण्डन एक प्रमुख खतरा है।

सोंस का संरक्षण

बिहार के भागलपुर जिला में स्थित विक्रमशिला सोंस अभ्यारण एशिया का एकमात्र सुरक्षित क्षेत्र है जिसे *सोंस* की सुरक्षा एवं संरक्षण हेतु स्थापित किया गया है। सुल्तानगंज से कहलगांव तक लगभग 50 किलोमीटर क्षेत्र में फैले इस अभ्यारण की स्थापना 1991 में की गयी थी। *सोंस* के अधिक घनत्व के अतिरिक्त यह अभ्यारण अन्य वन्य जीवों में भी जैव–विविधता सम्पन्न है जिनमें घड़ियाल, कठोर एवं मुलायम खोल कछुए एवं प्रवासी पक्षियां शामिल हैं। विक्रमशिला अन्यारण में वर्तमान में लगभग 150 सोंस हैं। भारतीय वन्यजीव सुरक्षा कानून 1972 के तहत इनके शिकार एवं इनसे प्राप्त किसी भी उत्पाद के घरेलू एवं आंतरिक व्यापार पर पूर्णतः रोक है। कन्वेन्शन आन द कन्जर्वेशन ऑफ माइग्रेटरी स्पिशीज आफ वाइल्ड एनिमल्स (सी0एम0एस0) के तहत *सोंस* को परिशिष्ट I एवं परिशिष्ट II में सूचीबद्ध किया गया है। इसे परिशिष्ट I में इसलिए सूचीबद्ध किया गया है क्योंकि यह अपने संम्पूर्ण क्षेत्र में विलुप्ति के खतरे का सामना कर रही है और सी0एम0एस0 दल इस जन्तु के सुरक्षा में प्रयासरत है। *सोंस* को परिशिष्ट II में इसलिए सूचीबद्ध किया गया है क्योंकि इसके संरक्षण का स्तर अनुकूल नहीं है।

उत्तर प्रदेश की सरकार जन–समुदाय के समर्थन प्राप्ति की आशा में *सोंस* के संरक्षण हेतु प्राचीन हिन्दू ग्रन्थों को प्रकाशित कर रही है। *वाल्मीकि रामायण* के एक श्लोक ने उस ओज को विशेष रूप से वर्णित किया है जिससे गंगा नदी भगवान् *शिव* की जटाओं से उत्पन्न हुई तथा इस ओज से विविध कोटि के जीव जैसे पशु, मछली, *शिशुमार* (*सोंस*) आदि उत्पन्न हुए। चूंकि सोंस पृथ्वी पर दुर्लभ जीव हैं और साथ ही ये गंगा की स्वच्छता में सहायक होती हैं अतः इनका संरक्षण आज समय की सबसे बड़ी आवश्यकता है। सोंस संरक्षण हेतु निम्नलिखित रणनीतियों को अपनायें जाने की आवश्यकता है।

1. जलमल प्रवाह को उपचार के बाद ही नदी में छोड़ा जाना चाहिए।
2. नदियों में मछलियों की पर्याप्त उपस्थिति को सुनिश्चित करना चाहिए जो मनुष्यों एवं सोंस की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके।
3. नदियों में पर्याप्त जल की उपस्थिति को सुनिश्चित किया जाना चाहिए।
4. *सोंस* के अधिक घनत्व वाले क्षेत्रों में मछली पकड़ने पर पूर्णतः रोक होनी चाहिए।

5. नदी जल को प्रदूषित होने से बचाना चाहिए।
6. *सोंस* के शिकार पर प्रभावी रोक लगायी जानी चाहिए।

सोंस के संरक्षण हेतु उपर्युक्त रणनीतियों को अपनाये जाने के साथ–साथ एक ठोस कार्रवाई योजना को भी विकसित किये जाने की आवश्यकता है। कार्रवाई योजना में निम्नलिखित को अनिवार्य रूप से शामिल किया जाना चाहिए :–

1. *सोंस* की जनसंख्या एवं उन खतरों का आकलन करना जिसका सामना वर्तमान में वे कर रही हैं।
2. मनुष्य एवं *सोंस* के बीच टकराव को कम करना।
3. सुरक्षित क्षेत्र की स्थापना के साथ–साथ विघटित आवास का पुर्नउत्थान करना।
4. गंगा नदी के किनारे निवास करने वाले समुदायों एवं तीर्थयात्रियों को *सोंस* के विषय में जागरूक करना तथा जनता को मुख्य सहयोगी के तौर पर सोंस के संरक्षण में शामिल करना।
5. *सोंस* के संरक्षण में समूहों की जागरूकता एवं भागीदारी को सुनिश्चित करना।
6. *सोंस* को स्वस्थ नदियों की *पताका प्रजाति* के रूप में प्रचारित करना।
7. *सोंस* की अधिकता वाले क्षेत्रों में उनके संरक्षण को सुनिश्चित करना।
8. मछलियों को पकड़ने हेतु चारे के रूप में मछलियों के रद्दी से बने तेल को *सोंस* के तेल के विकल्प के रूप में बढ़ावा देना।
9. भारतीय वन्यजीव कानून को दृढ़ता से लागू करना।

निष्कर्ष

अंततः इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि नदी जल के स्वच्छता की प्रतीक *सोंस* की नदी प्रदूषण, आवास विघटन, शिकार, दुर्घटनावश मृत्यु, भोजन की कमी एवं नदी विखण्डन के कारण घटती जनसंख्या गंभीर चिन्ता का विषय है। नदी में इनकी उपस्थिति अधिक जैव–विविधता को सुनिश्चित करती है जिससे पारिस्थितिक संतुलन बना रहता है। *सोंस* के पारिस्थितिक महत्व को देखते हुए इसका संरक्षण अति आवश्यक है। ऐसा करके हम न सिर्फ *सोंस* की सुरक्षा कर सकते है अपितु नदियों को स्वच्छ एवं स्वस्थ भी रख सकते हैं। अतः **"सोंस बचाओ नदी बचाओ"** नारे को अपनाना आज समय की सबसे बड़ी आवश्यकता है।

संदर्भ

1. मोहन, आर0 एस0 एल0; डे, एस0सी0; बैरागी, एस0 पी0 एवं रॉय, एस0(1997) ऑन ए सर्वे आफ गैंजेस रिवर डॉल्फिन *प्लटैनिस्टा गैंजेटिका* आफ ब्रह्मपुत्र रिवर, आसान *जर्नल ऑफ बॉम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसाइटी, खण्ड*– 94, मु0पृ0 483–495।
2. वाकिड, ए0(2009) स्टेटस एण्ड डिस्ट्रीब्यूशन आफ द इण्डेन्जर्ड गैंजेटिक डॉल्फिन(*प्लटैनिस्टा गैंजेटिका गैंजेटिका)* इन द ब्रह्मपुत्र रिवर विदिन इण्डिया इन 2005, *करेन्ट साइन्स, खण्ड*– 97, मु0पृ0 1143–1151।
3. सिन्हा, आर0 के0; स्मिथ, बी0डी0; शर्मा, जी0; प्रसाद, के0; चौधरी, बी0सी0; सैपकोटा, के0; शर्मा, आर0 के0 एवं बिहेरा, एस0 के0(2000) गैंगेस रिवर डॉल्फिन आर *सुसु(प्लटैनिस्टा गैंजेटिका)* इन : *बायोलाजी एण्ड कन्जरवेशन आफ फ्रेश वाटर सिटेसियन्स इन एशिया* (रिवस, आ0 आर0, स्मिथ, बी0डी0 तथा कसुआ, टी0 संपादक) आई यू सी एन स्पीशीज सरवाइवल कमीशन ओकेजनल पेपर, खण्ड–23, मु0पृ0 54–61।
4. स्मिथ, बी0 डी0(2002) *सुसु* एण्ड *मूलन–प्लटैनिस्टा गैंजेटिका गैंजेटिका* एण्ड *प्लटैनिस्टा गैंजेटिका माइनर* इन: *इन्साइक्लोपिडिया आफ मैरिन मैमल्स*(पेरिन, डब्लू, एफ0, बोरसिंग, बी0 तथा ध्वेत्तेन, जे0जी0एम0, संपादक) एकेडेमिक प्रेस, सेन डियागो, मु0पृ0 1208–1213।
5. सिन्हा, आर0 के0, बिहेरा, एस0 तथा चौधरी, बी0 सी0(2010) *द कनजर्वेशन एक्शन प्लान फॉर द गैंजेटिक डॉल्फिन 2010–2020,* मिनिस्ट्री ऑफ इन्वायरन्मेण्ट एण्ड फॉरेस्टस, गर्वनमेण्ट ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, पृ0 44।
6. स्मिथ, बी0 डी0 एवं ब्रालिक, जी0 टी0(2012) *प्लटैनिस्टा गैंजेटिका* द आ यू सी एन् रेड लिस्ट आफ, थ्रेटेन्ड स्पीशीज. वरजन 2015.1।

बाराबंकी–नवीन कृषि पद्धति से संवरता भविष्य

अर्चना राजन[1] एवं धर्मवीर[2]
[1]रीडर, वनस्पति विज्ञान, [2]प्रवक्ता, वाणिज्य विभाग
संत कवि बाबा बैजनाथ राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हरख, बाराबंकी–225121, उ0प्र0, भारत
rajanarchana2572@gmail.com, dvsgunja@gmail.com

प्राप्त तिथि–17.06.2015, स्वीकृत तिथि–20.08.2015

बाराबंकी, उत्तर प्रदेश के फैजाबाद मंडल के चार जिलों में से एक है। यह घाघरा व गोमती की सम्यान्तर धाराओं के बीच स्थित है। कृषि वातावरण तालिका में बाराबंकी को उत्तर प्रदेश पूर्वी समतल क्षेत्र में रखा गया है। बाराबंकी में औसत वार्षिक वर्षा 1002.7 मि0मि0 होती है, जो कि जून से लेकर अक्टूबर के बीच होती है(तालिका–1)।

तालिका–1: वर्षा की स्थिति(जिला बाराबंकी)

वर्षा	औसत वर्षा (मि0मि0)
जून से सितम्बर	883.3
अक्टूबर से दिसम्बर	54.8
जनवरी से मार्च	44.4
अप्रैल से मई	120.2
वार्षिक	1002.7

भू–उपयोग– बाराबंकी का कुल क्षेत्रफल 442.8 हेक्टेयर है जिसमें 258.4 हेक्टेयर क्षेत्र में फसल उगाई जाती है।(तालिका–2) जबकि 250.6 हेक्टेयर क्षेत्रफल में वर्ष में एक बार से अधिक बुआई की जाती है। जिले का 460.9 हेक्टेयर क्षेत्रफल विभिन्न साधनों द्वारा सिंचित है। जबकि 24.3 हेक्टेयर क्षेत्रफल सिंचाई के लिये वर्षा पर निर्भर है।

तालिका–2: भू उपयोग की स्थिति(जिला बाराबंकी)

बाराबंकी जिले में भूउपयोग की स्थिति (वर्तमान)	क्षेत्रफल (हेक्टेयर)
भौगोलिक क्षेत्रफल	442.8
कृषि कार्य हेतु	258.4
वन क्षेत्र	5.9
गैर कृषि हेतु	56.3
बंजर क्षेत्र	3.1

मृदा प्रकार– कुल कृषि भूमि का 39 प्रतिशत गहरी लोम मृदा है, 28 प्रतिशत गहरी नहीन मिट्टी जिसमें लोम मिट्टी थोड़ी क्षारीय है, 16 प्रतिशत मिट्टी गहरी स्लिट है जो कि थोड़ी क्षारीय मिट्टी है।

परम्परागत कृषि फसलें– पराम्परागत कृषि में यहाँ चावल, गेहूँ, मक्का, मसूर, सरसों, गन्ना, आलू, मटर, प्याज व सब्जियों को उत्पन्न किया जाता है(तालिका–3) जो कि अकसर सूखे, पाला व घाघरा नदी में आने वाली बाढ़ से क्षतिग्रस्त हो जाती है, और किसानों को अत्याधिक आर्थिक हानि होती है। जिले के कृषक अपनी आजीविका में होने वाले लगातार नुकसान से परेशान रहते हैं। भरपूर मेहनत के बाद भी उनको उगाई गई फसल से लाभ की आशा कम ही रहती है। अतः अब जिले के विभिन्न भागों के कुछ नवोन्मेषी कृषक कुछ नये तरीके से कृषि के क्षेत्र में प्रयोग करने लगे है।

इन विधियों में फसलों का चक्रिय क्रम, टपका पद्धति से सिंचाई व जैविक खाद का प्रयोग व तापमान नियंत्रण हेतु पॉली हाउस का प्रयोग मुख्य है। इनमें से कुछ कृषक अन्य कृषकों के लिये प्रेरणास्रोत के रूप में उभर कर सामने आये हैं। इन कृषकों में कुछ उच्च शिक्षित हैं तो कुछ अल्प शिक्षित हैं परन्तु कुछ नया करने की प्रयोगधर्मिता के कारण आज दोनों ही सफलता के सोपान पर खड़े हैं तथा अन्य कृषकों को भी अपनी तकनीक से लाभान्वित कर रहें हैं। इन कृषकों ने परम्परागत कृषि को त्याग कर फूलों, फलों व सब्जियों की खेती पर ध्यान दिया है, और इस क्षेत्र में अत्यधिक सफलता प्राप्त कर बाराबंकी का नाम न सिर्फ देश बल्कि विदेशों में भी अपने फूलों की खुशबू के कारण चर्चित किया है, कुछ ऐसे चर्चित कृषक हैं–

तालिका–3: महत्वपूर्ण फसलों/सब्जियों का उत्पादन(जिला बाराबंकी)

महत्वपूर्ण फसल व सब्जियाँ	कुल उत्पादन	
	उत्पादन (टन)	उत्पादकता (कि0ग्रा0/हेक्ट)
चावल	384.7	2207
मक्का	2.5	551
गेहूँ	516.8	3179
मसूर	13.0	802
सरसों	12.2	834
गन्ना	550.0	53693
(सब्जियाँ–कुल एकड़ औसत के आधार पर)		
आलू	182.40	13.20
प्याज	7.400	22.90
मटर	10.70	5.90
अन्य सब्जियाँ	30.20	29.80

1. राम शरण वर्मा–ग्राम दौलतपुर
2. अनिल कुमार–ग्राम मलूक पुर
3. राहुल व रचना मिश्रा–ग्राम सरैया
4. मुइनुद्दीन–ग्राम दफेदार पुरवा

दौलतपुर(बाराबंकी): रामशरण ईजाद करते हैं किसानी के नये–नये तरीके– लखनऊ–फैजाबाद हाइवे पर, बाराबंकी से पूर्व की ओर २० किमी दूर दौलतपुर गाँव का ये किसान अब लोगों का प्रेरणास्रोत बन चुका है। किसानों को हाईटेक खेती करने की सलाह देने के साथ ही खुद भी रामशरण उन्नत तरीकों को काफी अपनाते है, मिट्टी की जाँच, अच्छे किस्म के बीज, उन्नत तकनीक और उचित खाद का प्रयोग कर भरपूर सफलता पाई। रामशरण बताते हैं, शुरूआत धान, गेंहूँ की खेती से की लेकिन उसमें भी प्रयोगों को जारी रखा। खेती में कुछ नया करने की चाह हमेश ही बनी रही, फिर एक मैगजीन से केले की खेती के बारे में जानकारी मिली और केले की खेती करने की ठान ली"। केले की खेती के लिए साल 1990 में सबसे पहले एक कंपनी से पौध खरीदी और खेती शुरू की, बाद में टिश्यूकल्चर से ग्रीन हाऊस में पौध तैयार करनी भी शुरू कर दी जिसमें अपार सफलता मिली। मात्र 6 एकड़ पैत्रक भूमि पर उन्नत खेती शुरू करने वाले रामशरण आज करीब 90 एकड़ के कास्तकार हैं, जिसमें से 84 बीघा भूमि लीज पर ले रखी है इस समय 50 एकड़ केला, 10 एकड़ टमाटर, 15 एकड़ मेन्था और 25 एकड़ में आलू की खेती कर रहे हैं। रामशरण वेबसाइट के जरिए भी किसानों को खेती के नये प्रयोगों से अवगत कराते हैं। वेबसाइट को अपडेट करने में लखनऊ में बी.बी.ए. कर रहा उनका बेटा भी मदद करता है। उनकी तमन्ना है कि बेटा भी खेती से जुड़े और उसे आगे बढ़ाए। रामशरण बताते है, "बाहर जाने के लिए हमेशा हवाई जहाज में सफर करना और ब्रांडेड कपड़े पहनना मेरा शौक है। हवाई जहाज का टिकट खरीदना, मेरे लिए बस का टिकट खरीदने जैसा है मेरे परिवार का सालाना खर्च करीब 10 लाख रुपये है। खेती के साथ–साथ रामशरण सलाहकार की भूमिका में भी सक्रिय रहते हैं, आसपास के गाँवों के अलावा पूरे राज्य से लोग उनसे खेती के गुर सीखने के लिए आते रहते है, और वे भी उनसे खुशी–खुशी अपने अनुभवों को साझा करते हैं। जो निःशुल्क फोन पर जानकारी चाहते हैं उनकी फोन से मदद करते हैं।

रायबरेली से खेती के गुर सीखने आए विवेक सिंह बताते है, "रामशरण के बारे में जानकारी इंटरनेट से मिली जिसके बाद फोन पर बात होने के बाद उनसे मिलने आए हैं, मैं भी केले की खेती शुरू करना चाहता हूँ"। इतना ही नहीं रामशरण किसानों को पौध भी तैयार करके देते हैं जिसके लिए अग्रिम बुकिंग करनी पड़ती है। फार्म हाउस पर अपने संसाधनों से साल में एक बार किसान मेला भी आयोजित करते हैं जिसमें दूर–दूर से लोग आते हैं। जिला, राज्य व भारत सरकार की कई

कमेटियों के सदस्य रामशरण को समय–समय पर योजना आयोग की बैठक में भी शामिल होना होता है, साथ ही राज्य सरकार के लिए भी सलाहकार की भूमिका निभा रहे हैं। राज्यपाल बी0 एल0 जोशी समेत देश–विदेश के कई नेता और वैज्ञानिक उनकी सफलता का राज जानने उनके फार्म हाउस पर आ चुके हैं। कृषि में उनकी अपार सफलता के चलते उन्हें जगजीवन राम पुरस्कार समेत कई पुरस्कारों से नवाजा भी जा चुका है।**(चित्र–1)**

साल 2011–12 में जी.डी.पी. में कृषि का योगदान 12.9 फीसदी रहा, अगर आँकड़ों पर गौर करें तो 2001 की जनगणना के हिसाब से करीब 58 फीसदी को कृषि क्षेत्र से रोजगार मिलता है साफ है कि कृषि पर आश्रित लोगों की अपेक्षा जी.डी.पी. में अनुपात बहुत कम है। अगर उन्नत खेती को अपनाया जाए तो जी.डी.पी. में कृषि के अनुपात में काफी बढ़ोत्तरी हो सकती है। रामशरण चाहते हैं कि अधिक से अधिक लोग परंपरागत खेती को छोड़ कर उन्नत खेती के तरीके अपनाएँ ताकि इसे घाटे का सौदा न कहा जाए ऐसा नही है कि कम पढ़े–लिखे लोग इस तरह से खेती नही कर सकते हैं।

फसल चक्र अपनाने की सलाह– रामशरण अपने खेतों में फसल चक्र के हिसाब से खेती करते हैं। उनका मानना है कि इसे अपनाकर अगर खेती की जाए तो कम लागत में ज्यादा कमाया जा सकता है। यह चक्र तीन साल का होता है। फसल चक्र समझाते हुए कहते हैं कि अगर एक खेत में केले की खेती की जाती है और पेड़ी की फसल को मिलाकर 25 महीने खेत में फसल खड़ी रहती है उसके बाद आलू बो दिया जाता है जिसमें ४ माह का समय लगता है और खेत की जुताई भी ठीक से हो जाती है फिर मेथा लगा दिया जाता है जिसमें 3 माह लगते है बाकी समय में टमाटर या फिर हरित खाद के लिए धैन्चा बो देते है या परती छोड़ दिया जाता है, जिससे कम खाद और पानी से अधिक पैदावार की जा सकती है इस तरह से एक फसल चक्र पूरा हो जाता है।

पौधों पर करते हैं शोध– रामशरण कोई नई प्रजाति का बीज या पौध अपनाने से पहले उस पर शोध भी करते है जैसे अलग–अलग किस्म के पौधों को समान खाद और पानी दिया जाता है। इन पौधों को एक ही तापमान में भी रखा जाता है जिसमें सबसे ज्यादा पैदावार होती है, पौधे के उसी किस्म की आगे खेती की जाती है साथ ही इन्ही पौधों को दूसरे किसानों को भी खेती करने के लिए दिया जाता है।

मलूकपुर (बाराबंकी): बूंद–बूंद पानी से सिंचाई कर बढ़ा रहे मुनाफा– जिले के कई गाँवों में कई किसान खेती में सिंचाई के लिए टपका सिंचाई जैसी नवीन पद्धति को अपना रहे हैं, इससे न सिर्फ उनकी लागत घटी और मुनाफा भी बढ़ा। बाराबंकी जिला मुख्यालय के पश्चिम में मलूकपुर के अनिल कुमार, राजेश कुमार, शशिकांत व विमल कुमार जैसे कई किसान ड्रिप सिंचाई विधि से खेती कर रहे हैं। अनिल कुमार कहते हैं, "मैं केले व सब्जी की खेती ड्रिप सिंचाई विधि से करता हूँ, खरबूजे की खेती के ड्रिप के साथ–साथ मलचिंग भी की थी जिससे लगभग 1,00,000 रुपए प्रति एकड़ का शुद्ध लाभ केवल तीन माह की फसल में हुआ था।" प्राकृतिक पानी का 70 प्रतिशत उपयोग कृषि के लिए होता है। टपका तकनीक की मदद से सिंचाई के दौरान पानी की बर्बादी को रोका जा सकता है। ड्रिप प्रणाली या टपका सिंचाई प्रणाली में सीधे पौधे की जड़ के पास ड्रिप लगाकर बूंद–बूंद कर पानी दिया जाता है। फसलों की पैदावार बढने के साथ–साथ ड्रिप सिंचाई तकनीक की विधि से रसायन एवं उर्वरकों का दक्ष उपयोग करते हुए खरपतवारों की वृद्धि में कमी सुनिश्चित की जा सकती है। ड्रिप विधि की सिंचाई 80–90 प्रतिशत सफल होती है। यह विधि मृदा के प्रकार, खेत के ढाल, जल के स्रोत और किसान की दक्षता के अनुसार अधिकतर फसलों के लिए अपनाई जा सकती है। यह एक ऐसा सिंचाई तंत्र है जिसमें जल को पौधों के मूलक्षेत्र के आस–पास दिया जाता है।**(चित्र–2)**

ड्रिप सिंचाई से लाभ

1. जरूरत के अनुरूप पौधों को प्रतिदिन पानी मिलता है।
2. पानी को पूरे खेत में न भरकर केवल पौधों की जड़ के पास डाला जाता है जिससे पानी की 70 प्रतिशत तक की बचत होती है।
3. समय कम लगने से ईंधन अथवा बिजली की बचत होती है।
4. उर्वरकों व रसायनों का प्रयोग वेंचुरी द्वारा पूरे खेत में न करके केवल पौधों की जड़ में किया जाता है जिससे उर्वरक की लगभग 30 प्रतिशत तक की बचत होती है।
5. चूँकि इस पद्धति में पानी पूरे खेत में न देकर केवल पौधों के जड़ क्षेत्र में दिया जाता है इसलिए खर–पतवार न के बराबर होते हैं।
6. इस विधि में क्योंकि पानी पूरे खेत में नहीं भरा जाता है इसलिए खेत की मिट्टी भुरभुरी व उपजाऊ बनी रहती है तथा फसल की जड़ों में हवा पहुँचती रहती है और हमें गुड़ाई की जरूरत नहीं पड़ती है।
7. पानी लगाने में, खाद देने में, निराई करने व गुड़ाई करने आदि में 50 प्रतिशत तक की मजदूरी लागत की बचत होती है।

8. मलूकपुर के ही निवासी राजेश कुमार ने केले के खेत में ड्रिप सिंचाई तकनीक लगाई है। वो बताते हैं, "इससे पानी की तो बचत होती ही है साथ में लेबर व खाद में भी बचत होती है। खाद देने के लिए हमें खेत के अंदर नहीं जाना पड़ता है। बोरिंग से ही खाद बिना किसी लेबर के खेत के हर एक पेड़ को 15–20 मिनट में मिल जाती है।"

पास के गाँव सफीपुर के निवासी किसान पंकज वर्मा मुख्यतः सब्जियां उगा रहे हैं। वे कहते हैं, "मैंने खरबूजे व शिमला मिर्च, टमाटर व अन्य सब्जियों में ड्रिप सिंचाई अपनाई है। मेरे पास केवल 15 बीघे खेत हैं जिसमें मैंने पूरे खेत में ड्रिप सिंचाई तकनीक लगाई है। "मैं अपना बिजनेस भी करता हूं, जिसकी वजह से खेती को मैं ज्यादा समय नहीं दे पाता। ड्रिप सिंचाई विधि से खेती करने पर मेरा काम आसान हो जाता है।" मसौली ब्लॉक के सिसवारा गाँव के अनूप कुमार बताते हैं। अनूप ने केले के खेतों में ड्रिप सिंचाई तकनीक लगवाई हुई है।

फतेहपुर(बाराबंकी): विदेश जाकर समझ आई खेती की अहमियत

एक बहुराष्ट्रीय कंपनी से इस्तीफा देने के बाद 3 नवंबर 2008 को राहुल मिश्रा(40) ने अपनी गाड़ी में गैस चूल्हा और सिलेंडर, पानी की दो बड़ी बोतलें रखीं, दो पालतू कुत्तों को बैठाया और पत्नी बेटे के साथ दिल्ली से अपने गाँव पहुंचकर खेत में तम्बू गाड़ दिया। राहुल उत्तर प्रदेश के बाराबंकी जिले के गाँव सरैया में खेती करने पहुंचे थे। अपने गाँव लौटकर खेती करने का यह फैसला उन्होंने विदेश भ्रमण के दौरान लिया, जब वहाँ देखा कि कैसे खेती को व्यापारिक रूप दिया जा सकता है। इनोवेटिव फॉर्मर्स अवार्ड और उद्यान रतन अवार्ड पा चुके राहुल मिश्रा का अपने गाँव से लगाव बचपन से ही रहा है। वह बताते हैं पिताजी सेना में थे और इस कारण हम पूरे देश में घूमते रहते थे, पर गर्मियों की छुट्टियों में गाँव जरूर आते थे। जिससे गाँव से लगाव शुरू से ही था। पढ़ाई लिखाई पूरी करने के बाद 15 साल चार बड़ी कंपनियों में नौकरी भी की, पर अपने गाँव की मिट्टी की खुशबू कभी भूल नहीं सका। यही कारण है जब मौका मिला तुरंत ही गाँव पहुंच गया। एमबीए पास मैनेजर से किसान बनने का राहुल का सफर बड़ा ही रोचक रहा। वह यादों को ताजा करते हुए बताते हैं, जब मैं गाँव पहुँचा तो लोग बड़े अचंभे में थे, यह सोच रहे थे कि मैं कर पाऊंगा भी कि नहीं, लेकिन मैंने अपने इरादों से साफ जता दिया कि भइया पीठ तो नहीं दिखाऊंगा। गाँव पहुंचने पर मैंने तालाब भरवाया और दो एकड़ जमीन पर खेती शुरू की। एक पॉली हाउस लगाया और बाकी खुले में खेती करना शुरू कर दिया। जरबरो की खेती पॉली हाउस में और रजनी गंधा की खुले में शुरू की। कभी खेती तो की नहीं थी, इसके लिए भी अलग तजुर्बा है इनका, कहते हैं, हमने पूरी खेती इंटरनेट से सीख–सीख कर ही की। जहाँ कहीं भी फंसते थे इंटरनेट पर सर्च कर लेते थे। राहुल आज विदेशों को फूल सप्लाई करते हैं, और उनके देश में बड़े–बड़े क्लस्टनर भी हैं, जैसे– बड़ी कंपनियों में और होटलों में इनके खेत के फूल खुशबू बिखेर रहे हैं। लोगों के ड्राइंग रूम में खुशबू बिखेरने के बाद अब राहुल फल और सब्जी की खेती के जरिए रसोईघर तक पहुँचने की तैयारी में हैं। जिसकी तैयारी उन्होंने कर ली है, और बहुत इसे शुरू कर देंगे। राहुल के इस मिशन में उनकी पत्नी रचना मिश्रा का पूरा साथ मिला। अपने नाम के अनुरूप आठ किताबों की रचना कर चुकी रचना को कभी गाँव जाने से परहेज नहीं रहा। वह अकेले ही खेतों में जाकर वहाँ से फूल और पौधे ले आती हैं। हालांकि गाँव तक पक्की सड़क न होने की वजह से कार नहीं जाती। यह पूछने पर कि वह कैसे जाती हैं? तो दुकान के बाहर माल ढोने की गाड़ी की ओर इशारा करते हुए रचना कहती हैं, मैं इससे ही जाती हूं, क्योंकि कार नहीं जा सकती वहाँ तक।**(चित्र–3)**

दफेदार पुरवा (बाराबंकी): फूलों की खेती

फूलों की मनमोहक खुशबू और कुदरती डिजाइन पर शायद ही कोई ऐसा होगा जो फिदा न हो। लेकिन कमाल की बात तो तब है जब खूबसूरती के साथ अच्छी कमाई भी हो। ऐसे ही एक शख्स हैं मुइनुद्दीन जिन्होंने महज 35 साल की उम्र में फूलों की खेती में वो मुकाम हासिल किया है जो अन्य किसानों के लिए मिसाल है। लखनऊ से करीब 20 किमी0 की दूरी पर बाराबंकी जिले में दफेदार पुरवा गाँव है। यहाँ लगभग 25 एकड़ के क्षेत्र में मुइनुद्दीन ने फूलों की खेती को एक नया आयाम दिया है। सिर्फ फूल ही नहीं साथ में ऐसी कई और फसलें भी मुइनुद्दीन उगाते हैं जिनकी बाजार में भारी मांग होती है यानि काफी अच्छे पैसे मिल जाते हैं। सामान्य खेती को करोबार में बदलने वाले मुइनुद्दीन ने कई रोचक बातों से रूबरू कराया। मुइनुद्दीन बताते हैं "मैंने सन् 2000 में डिग्री के तौर पर एल.एल.बी. तो कर ली लेकिन मेरा मन वकालत मे नहीं लगता था। हमेशा से कुछ नया और अलग करने की चाह रहती थी। मुझे फूल बहुत अच्छे लगते थे तो मैने सोचा कि अगर इनकी खेती की जाए तो कैसा रहेगा। फिर मैने एक बीघा जमीन में ग्लाइडोलस जो कि हॉलैण्ड का फूल है उसकी खेती की। ये मेरी शुरुआत थी। पहली फसल में कोई ज्यादा फायदा नहीं हुआ लेकिन एक नया बाजार तैयार होता नजर आने लगा। मैने फिर ग्लाइडोलस, जरवेरा, रजनीगंधा जैसे फूलों की उपज शुरू कर दी। आज ये आलम है कि मेरा सालाना टर्नओवर लगभग 50 लाख रु0 का हो चुका है और लगातार बढ़ रहा है।"**(चित्र–4)**

आज पूरे देश में ग्लाइडोलस की सबसे ज्यादा पैदावार उनके पास होती है। विधानसभा से लेकर संसद भवन तक इन्हीं के फूलों की खुशबू है। उत्तर प्रदेश के अलावा मुंबई, गुजरात, दिल्ली सहित कई प्रदेशों में मुइनुद्दीन के फूलों का जलवा कायम

है। इसके साथ ही साथ मुइनुद्दीन के फूलों कुवैत, शारजाह आदि देशों में भी अपनी खुशबू फैलाते हैं। उनका कहना है जिले के अधिकारियों से भी खेती के संबध में काफी मदद मिलती है। फूलों की ये सफल दुनिया बसाने में मुइनुद्दीन की जी तोड़ मेहनत शामिल है। मुइनुद्दीन लखनऊ में रहते हैं और इनके खेत बाराबंकी जिले में हैं। यानि घर से खेत तक की दूरी करीब 35 किमी है जो की रोज ही इनको तय करनी होती है। खेत में लगभग 100 लोगों का समूह काम करता है। साथ में कभी–कभी खुद भी लगना पड़ता है। दूसरे शहरों तक इन फूलों के भेजने के लिए उनकी पैकिंग, भेजने के साधन का इंतजाम मुइनुद्दीन को खुद ही दुरुस्त करना होता है। अब जरबेरा को ही ले लीजिए हॉलैण्ड का फूल होने के कारण इसको कम तापमान की जरूरत होती है जो कि गर्मियों में सबसे बड़ी चुनौती है। इसका हल मुइनुद्दीन ने पॉलीहाउस से निकाला है। ये वो तकनीक है जिससे इजरायल में खेती की जाती है। उसी तर्ज पर मुइनुद्दीन ने यहाँ करीब 11000 वर्ग फुट में एक खास तरह की प्लास्टिक और जाल से पॉली हाउस बनाया गया है। जो कि इजराइल से मंगाई जाती है। इसमें पानी को प्रेशर पंप के जरिए महीन फुहारों और बूंद–बूंद के रूप में छोड़ा जाता है। पॉली हाउस में बाहर के मुकाबले तापमान कम होता है जिसको तापमान मीटर से नियंत्रित किया जाता है। इसमें थोड़ी भी लापरवाही हुई तो फूलों का सूखना तय है और भारी नुकसान भी। इतनी मेहनत का ही नतीजा है कि मुइनुद्दीन का नाम बाबू जगजीवन राम पुरस्कार के लिए नामांकित किया गया है। ये पुरस्कार किसानों को फसल की सर्वश्रेष्ठ पैदावार के लिए दिया जाता है।

आज गाँव के ज्यादातर किसान पारंपरिक फसलों को छोड़ कर जरबेरा और ग्लाइडोलस उगा रहे हैं और अच्छे पैसे भी कमा रहे हैं। कुछ अलग करने की चाह ने ही एक वकील को किसान और किसान को व्यापारी बना दिया। इस क्षेत्र में जो मुकाम मुइनुद्दीन ने हासिल किया है वो एक मिसाल है पूरे देश के किसानो के लिए। अगर वे भी इस राह को अपनाते हैं तो वो दिन दूर नहीं जब हर गाँव में मुइनुद्दीन जैसे कई किसान बाबू जगजीवन राम की दौड़ में शामिल होंगे।

इनकी खेती है फायदे का सौदा

	केला	मेंथा	संकर टमाटर	आलू
क्षेत्रफल	1 एकड़	1 एकड़	1 एकड़	1 एकड़
पैदावार	400 क्विंटल	1 क्विंटल	450 क्विंटल	250 क्विंटल
खर्च	70,000 रु.	20,000 रु.	62,000 रु.	45,000 रु.
बिक्री मूल्य	615 रु. प्रति क्विंटल	1200 रु. प्रति क्विंटल	500 रु. प्रति क्विंटल	700 रु. प्रति क्विंटल
कुल लाभ	2,46,000 रु.	1,20,000 रु.	2,25,000 रु.	1,75,000 रु.
शुद्ध लाभ	1,76,000 रु.	100,000 रु.	1,63,000 रु.	1,30,000 रु.

सन्दर्भ

१. जागरण.कॉम
२. यात्रा.कॉम
३. बाराबंकी–भारतकोश ज्ञान का महासागर
४. बाराबंकी–विकिपीडिआ

चित्र–1 दौलतपुर(बाराबंकी): रामशरण ईजाद करते है किसानी के नये–नये तरीके

चित्र–2 टपका तकनीक की मदद से सिंचाई

चित्र–3 राहुल मिश्रा और रचना मिश्रा की पॉली हाउस खेती

चित्र–4 मुइनुद्दीन की फूलों की खेती

मौसमः प्राकृतिक या कृत्रिम

प्रेक्षा राजन[1] एवं कौशल कुमार बाजपेई[2]
[1]छात्रा, बी0टेक0, एस0 आर0 एम0 यूनिवर्सिटी, गाजियाबाद, उ0प्र0, भारत
[2]अध्यक्ष, गणित विभाग, बी0एस0एन0वी0 पी0जी0 कॉलेज, लखनऊ–226001, उ0प्र0, भारत
prekrajan@rediffmail.com; kkbajpai.hodm@gmail.com

प्राप्त तिथि 18.06.2015, स्वीकृत तिथि 16.08.2015

स्वीडन मूल के वैज्ञानिक स्वांते आरहेनियस ने मत रखा था कि जीवाश्म ईंधन के प्रज्जवलन से ग्लोबल वार्मिंग संभव है। परन्तु इसका मत सन् 1980 में उस समय सत्यापित हो सका जब तीव्रता से अनियमित हो रहे मौसम ने पूरे विश्व को जकड़ लिया था। मनुष्य ने अंजाने में ही विकास और औद्योगिकीकरण के नाम पर अपने माइक्रो तथा मैक्रो इंवायरन्मेंट को परिवर्तित कर दिया था।

सन् 1965 में स्पेशल कमीशन ऑन वेदर मॉडिफिकेशन द्वारा साइंस फाउंडेशन को प्रस्तुत की गई रिपोर्ट के अनुसार विश्व की बढ़ती जनसंख्या और प्रकृति पर इसके दुष्प्रभावों के कारण मनुष्य लापरवाही से अपनी आवश्यकताओं को पूरी करने हेतु प्रकृति का शोषण नहीं कर सकता। आधुनिक मनुष्य अब आदिमानव नहीं रहा जिसे जंगली जानवरों से अपने अस्तित्व की रक्षा करने की जरूरत हो, परन्तु बड़े पैमाने पर प्रलयंकर युद्ध तथा वेस्ट डिस्पोजल से होने वाले प्राकृतिक बदलाव हमारे अस्तित्व के लिए समस्या बन चुके हैं। इसके मद्देनजर वेदर एण्ड क्लाइमेट मॉडिफिकेशन अर्थात् मौसमी संशोधन की संभावनाओं का मूल्यांकन किया जाना चाहिए।

वेदर एण्ड क्लाइमेट मॉडिफिकेशन का अर्थ है अप्राकृतिक प्रणाली द्वारा वातावरण के संयोजन, गति व गतिकी में परिवर्तन करना। यह परिवर्तन पूर्वकथनीय, स्थायी या अस्थायी हो सकते हैं। मौसम के इस संशोधन को जियो इंजीनियरिंग भी कहते हैं। आधुनिक समय में जियो इंजीनियरिंग की कई तकनीकें उपलब्ध हैं। इस लेख में दो तकनीकों का उल्लेख किया जायेगा। 1. क्लाउड सीडिंग, 2. हार्प।

1. **क्लाउड सीडिंग**– इस सिद्धांत की खोज अमेरिकी केमिस्ट विन्सेन्ट जोजेफ शैफर ने जुलाई 1946 में की थी। हालाँकि इस तकनीक का पेटेंट डॉ0 बर्नार्ड वोनेग्ट के नाम है जिन्होंने सफलतापूर्वक सुपर कूल्ड क्लाउड वाटर की तकनीक का आविष्कार सन् 1946 में जनरल इलेक्ट्रॉनिक्स कॉरपोरेशन न्यूयॉर्क में किया। इस प्रणाली द्वारा मेघ बनना व वर्षा की विभिन्न रसायनों जैसे सिल्वर आयोडायड, पोटेशियम आयोडायड, ड्राई आइस तथा लिक्विड प्रोपेन की बौछार प्लेन द्वारा वातावरण में करके, संशोधित किया जाता है। यह पदार्थ वातावरण में मौजूद जल वाष्प का(वाटर वेपर) का संघनन करके वर्षा का निर्माण करता है। इस तकनीक के माध्यम से वर्षा, बर्फ तथा ओलों की मात्रा तथा आकार नियंत्रित किया जा सकता है।**(चित्र–1)**

वर्तमान में यही कार्य सुविधा जनक तरीके से आयन जेनेरेशन मेथड से किया जा रहा है। इस प्रक्रिया में भूमि पर आयन एमीटर टॉवर की श्रंखला खड़ी की जाती है। इस श्रंखला का प्रत्येक टॉवर 33 फीट/33 फीट लम्बा होता है तथा 500 वॉट बिजली की खपत करता है। इन्हें वातावरण में 30% नमी होने पर उत्तेजित किया जाता है जिससे वातावरण में नेगेटिवली चार्ज्ड आयन बढ़ जाते हैं। ये आयन बादल के कन्डेन्शेशन न्यूक्लीआई से जुड़ जाते हैं जहाँ वर्षा का निर्माण होता है। यह आयन वर्षा कारक न्यूक्लीआई की आयु बढ़ाने में सहायक होते हैं। मिटियो सिस्टम्स नामक कम्पनी ने अबूधाबी में पाँच स्थानों पर ऐसे दस टॉवर लगाये हैं।**(चित्र–2)**

मिटियो सिस्टम्स के अलावा पूरे विश्व में कई प्राइवेट व सरकारी कम्पनियाँ हैं जो कई सरकारी व गैर सरकारी प्रोजेक्ट चला रहे हैं। वेदर मॉडिफिकेशन इंकॉरपोरेटेड नामक अमेरिकी कम्पनी ने 2003–2004 में वेदर मॉडिफिकेशन से सम्बन्धित तीन निम्न प्रोजेक्ट चलाये थे–

1. कर्नाटक रेनफॉल इंहान्स्मेंट प्रोजेक्ट
2. महाराष्ट्र रेनफॉल इंहान्स्मेंट प्रोजेक्ट
3. आंध्रप्रदेश रेनफॉल इंहान्स्मेंट प्रोजेक्ट

वर्ल्ड मिट्रिओलॉजिकल असोसिएशन की जुलाई 2013 की रिपोर्ट के अनुसार चीन और अमेरिका के बाद भारत तत्कालीन वेदर मॉडिफिकेशन प्रोग्राम में सबसे अधिक निवेश भारत का ही है। वर्ष 2008 में इण्डियन इन्स्टीट्यूट ऑफ ट्रॉपिकल मिट्रिओलॉजी ने नैशनल सेन्टर फॉर एटमॉस्फियरिक रिसर्च(एनकॉर) की रिसर्च एप्लीकेशन लैब(आर0ए0एल0) के सहयोग से केईपैक्स यानि

क्लाउड एरोरल इंटरैक्शन एण्ड प्रेसिपिटेशन इंहान्स्मेंट एक्सपेरिमेंट नामक योजना का प्रारम्भ किया। इस एक्सपेरिमेंट के अंतर्गत मई से सितम्बर 2009 के प्रथम चरण का उद्देश्य पश्चिमी घाट के वर्षा क्षेत्रों व रेन शीडो एरिया में ऐरोजल तथा क्लाउड माइक्रो फिजिकल प्रॉपर्टीज की परिवर्तनशीलता का अध्ययन करना था। द्वितीय चरण का उद्देश्य ऐरोजल तथा थरमोडायनेमिक इंवायरन्मेंट के प्रति बादलों की संवेदनशीलता मापना था। पुणे, भारत में इण्डियन इंस्टीट्यूट ऑफ ट्रॉपिकल मिट्रिओलॉजी, वेदर मॉडिफिकेशन के क्षेत्र में प्रमुख संस्थानों में से एक है।

2. हार्प– हार्प–हाई फ्रीक्वेन्सी ऐक्टिव औरोरल रिसर्च प्रोग्राम हार्प को कथित रूप से वेदर मॉडिफिकेशन की श्रेणी में नहीं गिना जा सकता है क्योंकि यह मूलतः एक रिसर्च प्रोग्राम है जिसका उद्देश्य वातावरण की आयनोस्फियर परत का अध्ययन करना है। परंतु हाल ही में अप्रत्याशित रूप से इस प्रोग्राम के फलस्वरूप होने वाले प्राकृतिक परिवर्तनों के कारण इसे कड़ी आलोचना का सामना करना पड़ा है। इसलिए इसके विषय में ज्ञान अर्जित करना आवश्यक है।**(चित्र–3,4)**

यह रिसर्च प्रोग्राम यू0एस0 एयर फोर्स, यू0एस0 नेवी, यूनिवर्सिटी ऑफ अलास्का तथा डिफेन्स एडवान्स्ड रिसर्च प्रोजेक्ट्स एजेन्सी द्वारा वित्त पोषित है। बी0ए0ई0 टेक्नोलॉजीज द्वारा निर्मित हार्प का उद्देश्य वातावरण के आइनोस्फियर परत का अध्ययन करना तथा रेडियो कम्युनिकेशन व सरविलॉस हेतु आईनोस्फियरिक इंहान्स्मेंट करना है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु अलास्का के गाकोना स्थित एयर फोर्स स्वामित्व भूमि पर हार्प रिसर्च स्टेशन की स्थापना सन् 1993 में की गई। इस शोध के अंतर्गत 3.6 मेगावाट के सिगनल(हाई फ्रीक्वेन्सी बैन्ड–2.8–10 मेगाहर्ट्ज) आइनोस्फियर में एन्टीना द्वारा प्रक्षेपित किये जाने के उपरांत आइनोस्फियर की स्थिति तथा तन्यक्तता(रेसीलिएन्स) का मूल्यांकन व अध्ययन किया जाता है।**(चित्र–5)** इसका निर्माण तीन चरणों में किया गया–

1. डेवेलपमेंटल प्रोटोटाइपिंग(डी.पी.) में 18 एंटीना की श्रंखला लगाई गई थी जिन्हें संचालित करने हेतु 360 किलोवाट की ऊर्जा प्रदान की जाती थी। डी.पी. केवल बेसिक आइनोस्फियरिक टैस्टिंग हेतु ही ऊर्जा उत्पन्न कर सकता था।
2. फील्ड डेवेलपमेंट प्रोटोटाईप(एफ.डी.पी.) जिसमें 48 एन्टीना की श्रंखला लगाई गई। यह 960 किलोवाट पॉवर ट्रांस्मिट कर सकता था। यह अन्य आइनोस्फियरिक हीटिंग डिवाइसेज जैसा ही था। इसका इस्तेमाल कई सफल प्रयोगों में किया गया।
3. फाईनल एफ.आई.आर.(एफ.एफ.आई.आर.) इसमें 180 एन्टीना थे जिनका कुल गेन 31 डेसीबल था। यह 3.6 मेगावाट पॉवर ट्रांस्मिट कर सकते हैं। इस चरण में फेस्ड ऐरे एन्टीना की सहायता से आइनोस्फियर में पॉवर ट्रांस्मिट की जाती है।

मई 2014 में अमेरिकी एयरफोर्स ने यह घोषित कर दिया था कि हार्प प्रोग्राम 2014 में बंद कर दिया जायेगा हालाँकि इसे पूर्ण रूप से विघटित मई 2015 में ही किया गया। दुनिया के अन्य कई हिस्सों में भी ऐसी ही आइनोस्फियरिक हीटिंग फैसिलिटीज मौजूद हैं। जैसे– ऐरेसीबो ऑबजरवेटरी, प्यूरटोरीको, यूरोपियन इनकोहेरेन्ट स्कैटर साइन्टिफिक असोसिएशन, ट्रौम्सो(नार्वे), सूरा आइनोस्फियरिक हीटिंग फैसिलिटि वास्त्स्किर्क(रूस)।**(चित्र–6, 7)**

कुछ वैज्ञानिकों का मानना है कि सप्रयोजक तरीके से वातावरण इस संवेदनशील परत के सीमित क्षेत्र को उत्तेजित करने के प्रलयंकर परिणाम हो सकते हैं। यूनिवर्सिटी ऑफ ओटावा के डॉ0 मिचिल चोसूडवोस्की तथा डॉ0 निक बिगिच के अनुसार हार्प के संचालन से आइनोस्फियरमें होने वाले बदलावों से सुनामी तथा भूकंप उत्पन्न हो सकते हैं। केवल साजिश सिद्धांतकर(कान्सपीरेसी थ्योरिस्ट) ही नहीं यूरोपियन पारलियामेंट ने इस सम्बन्ध में सन् 1999 में रेजेल्यूशन्स ऑन दी एंवायरन्मेंट, सिक्योरिटी एण्ड फॉरेन पॉलिसी के अंतर्गत यह कह कर चिंता व्यक्त की थी कि "यूरोपियन यूनियन हार्प को उसके वातावरण पर होने वाले दूरगामी प्रभावों के कारण वैश्विक चिन्ता का विषय मानते हुए उसके कानूनी, पारिस्थितिक(इकोलॉजिकल) तथा नैतिक निहितार्थों की एक स्वतंत्र संस्था मूल्यांकन की मांग करता है इसके पूर्व कि उस पर अनुसंधान या परीक्षण हों।" न्यूजीलैण्ड के नामी अखबार "द न्यूजीलैण्ड हैरल्ड" के अनुसार मिनिस्ट्री ऑफ फॉरेन अफेयर्स एण्ड ट्रेड द्वारा जारी किये गये 53 वर्ष पुराने "प्रोजेक्ट सील" से सम्बन्धित डीक्लासिफाइड डॉक्यूमेंट्स के अनुसार ऑक्लैण्ड के तटों के पास टाईडल बॉम्ब सुधारने हेतु कई समुद्री(मैरीटाइम) अध्ययन किये जाते थे। यू0एस0 डिफेंस चीफ के अनुसार यदि यह प्रोजेक्ट युद्ध से पूर्व पूर्ण हो जाता तो इसके परिणाम ऐटम बम से भी घातक होते। कई शोधकर्ताओं के अनुसार हैती में भूकंप, इंडोनेशिया में सुनामी ता हरिकेन कटरीना भी इसी की देन है।

हार्प टेक्नोलॉजी के पेटेंट के अनुसार–

"इसके माध्यम से पृथ्वी के वातावरण की सामरिक जगहों पर अभूतपूर्व **शक्ति क्षेप** की जायेगी जो कि किसी भी दूसरे तरीके जैसे न्यूक्लियर डेटोनेशन से भी ज्यादा सटीक व नियंत्रित होगी।"

"इस तकनीक के माध्यम से किसी तृतीय संगठन के संचार को बाधित करना संभव है"

'इसके माध्यम से वातावरण के बड़े हिस्सों को ऊँचाई तक उठाया जा सकता है ताकि मिसाइल अप्रत्याशित तथा अनियोजित ड्रैग फोर्स के कारण नष्ट हो जाए।'

सन् 1966 में प्रेसिडेंट्स साइंस एडवाइजरी बोर्ड के सदस्य रह चुके जियोफिजिसिस्ट गॉरडन जे0 एफ0 मैक्डॉनल्ड के अनुसार– 'सटीक समय पर कृत्रिम रूप से उत्पन्न इलेक्ट्रॉनिक ऑसिलेशन से पृथ्वी के विभिन्न क्षेत्रों में तीव्र ऊर्जा उत्पन्न होगी जिसके कारण बड़ी आबादी के दिमागी परफॉर्मेंस को हानि पहुँच सकती है।'
अंततः दुनिया के प्रत्येक देश का हक है कि वह स्वयं की रक्षा हेतु अध्ययन एवं शोध कर अपने रक्षाबल का विकास करे परन्तु यदि इस विकास से हमारे प्राकृतिक वातावरण का नाश होता है तो इसके प्रभाव से प्रकृति में रहने वाला मनुष्य भी इसके दुष्प्रभावों से अछूता नहीं रह सकता। अतः हमें नैतिकता के दायरों में सीमित रह कर ही वैज्ञानिक शोधों को अंजाम देना चाहिए।

संदर्भ

1. www.heston.edu
2. www.nsf.gov
3. www.ral.ucar.edu
4. www.weathermodification.com
5. www.wmo.net
6. www.climateviewer.com
7. www.haarp.net
8. www.star.stanford.edu/~vlf/publications/2008-03.pdf
9. बेली एवं अन्य(1997) हिस्ट्री एण्ड एप्लीकेशंस ऑफ हार्प टेक्नोलॉजीजः द हाई फ्रीक्वेंसी एक्टिव एरोरल रिसर्च प्रोग्राम, आई. ई.ई.ई.।
10. www.europarl.europa.ca
11. www.globalresearch.ca

चित्र–1

चित्र–2

चित्र–3

चित्र–4

चित्र–5

चित्र–6

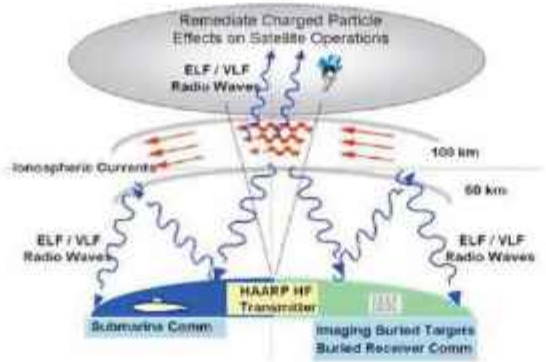

प्रिंट मीडिया का व्यवसायीकरण और जनहित

विजय प्रकाश उपाध्याय
सहायक आचार्य, शिया पी0 जी0 कॉलेज, लखनऊ, उ0प्र0, भारत
vijayprakashupadhyay@gmail.com

प्राप्त तिथि–19.06.2015, स्वीकृत तिथि–10.10.2015

वर्तमान समय सूचना प्रौद्यौगिकी का है। ऐसे में प्रिंट मीडिया की भूमिका सर्वोपरि है। यद्यपि प्रिंट मीडिया का महत्व इसी से स्पष्ट होता है कि आज समाज को जो भी जानकारी प्राप्त होती है वह कहीं न कहीं इसी की देन है। वह चाहे इतिहास से जुड़ी जानकारी हो या वर्तमान की या फिर भविष्य में होने वाले किसी वैज्ञानिक आविष्कार की जानकारी हमें प्रिंट मीडिया से ही प्राप्त होती है। आज व्यक्ति जब सुबह सोकर उठता है वह सबसे पहले अखबार पढ़ता है और समाज में क्या हो रहा है इसकी जानकारी प्राप्त करता है। दूसरे शब्दों में कहा जाये तो मीडिया समाज में हो रही घटनाओ के विषय में सूचित करता है। वास्तव में वर्तमान में प्रिंट मीडिया की भूमिका उस जीवनदायनी ऑक्सीजन की तरह है जिसके रूक जाने पर सांसें रूक जाती है। ठीक इसी तरह यदि समाचार पत्र बंद हो जाये तो समाज की सासें रूक जायेंगी, क्योंकि समाचार पत्र ही वह माध्यम है जो जनता की बातें शासन तक तथा शासन–तंत्र की बात जनता तक पहुँचाता है। इसी अखबार को हम प्रिंट मीडिया के नाम से जानते है। वर्तमान में प्रिंट मीडिया अपने मुख्य दायित्व जनहित से भटकती दिख रही है तथा वह व्यवसायिक रूप में ढ़लती जा रही है। उक्त शोध पत्र में इसी विषय को विवेचित करने का प्रयास किया गया है।

विगत डेढ़–दो दशक में भूमंडलीकरण की तेज चली प्रक्रिया में भारतीय मीडिया के स्वरूप और चरित्र में गुणात्मक बदलाव आया है। 1980 के दौर में या इससे पहले हमारे प्रिंट मीडिया पर देशी स्वामित्व था। हालांकि विदेशी पत्र–पत्रिकाओं, फिल्मों आदि के आयात भी खुले थे लेकिन यह आयात सीमित मात्रा में थे। स्थानीय वाणिज्यिक समूह अथवा समूह के लोग राष्ट्र एवं देश भक्ति की भावना से ओत–प्रोत होकर समाचार पत्र, पत्रिकाओं के प्रकाशन में लगे थे। उस दौर में प्रिंट मीडिया अर्थात अखबारों में स्थानीय हित व राष्ट्रीय भावना का प्रभाव था। 1990–91 के बाद स्थिति में बदलाव आया है। मीडिया विश्लेषक क्रिस्टोफर डिक्सन के अनुसार '20वी शताब्दी के आरम्भ में तेल एवं मोटर उद्योगों पर जिस प्रकार मुट्ठी भर धनकुबेरों का कब्जा हो गया था, उसी प्रकार मनोरंजन एवं सूचना उद्योग पर भी पूंजीपतियों का दबदबा बढ़ रहा है। आज सहज देखा जा सकता है कि बड़े समाचार पत्रों की दिलचस्पी गंभीर साहित्यिक सांस्कृतिक और राजनीतिक पत्रिकाओं के प्रकाशन में लगभग न के बराबर है। इन पत्रों ने अपने पृष्ठ से साहित्य, सांस्कृतिक, पुस्तक समीक्षा आदि को बाहर कर दिया है। समाचार पत्रों में अब फैशन, फिटनेस, सौंदर्य, खाना–पीना, ज्वेलरी, मॉडल आदि की कवरेज सबसे अधिक देखी जा सकती है। समाज से जुड़े सभी जरूरी मामले समाचार पत्रों की प्राथमिकता सूची में नही है। आज अखबार वही बता रहा है जो विज्ञापन कम्पनियां चाहती हैं। यदि मीडिया कभी जनमहत्व व जनसंपर्क के मुद्दों पर कवरेज बढ़ाता है तो उसे विज्ञापनदाता कम्पनियों के कोपभाजन का शिकार होना पड़ता है।

प्रिंट मीडिया का व्यवसायीकरण और जनहित– व्यवसायीकरण और जनहित पर बात करने से पहले हमें यह समझ लेना आवश्यक है कि व्यवसायीकरण क्या है और जनहित क्या है? व्यवसायीकरण से तात्पर्य यह है कि जब किसी चीज का व्यापार हम इस उद्देश्य से करते हैं कि उसमें हमें आर्थिक लाभ प्राप्त हो तथा वह हमारे निजी स्वार्थ कि पूर्ति करता हो तो उसे व्यवसायीकरण कहा जायेगा। जबकि जनहित से तात्पर्य यह है कि ऐसा कार्य जिसमें जनता का हित जुड़ा हो अर्थात ऐसा व्यापार जो निजी स्वार्थों की पूर्ति के लिए न होकर जनता के हित के लिए किया जाये तो वह जनहित कहलायेगा। प्रिंट मीडिया के व्यवसायीकरण से तात्पर्य यह है कि वर्तमान में प्रिंट मीडिया भी ऐसी सूचनाओं को प्रकाशित कर रहा है जिससे उसे आर्थिक लाभ हो। सीधे शब्दों में हम इसे पेड न्यूज कह सकते हैं। इस संदर्भ में "द हिन्दू" के संपादक व वरिष्ठ पत्रकार पी. साईनाथ ने कहा था कि "मीडिया का अब व्यवसायीकरण नहीं हो रहा बल्कि मीडिया स्वयं एक उद्योग हो गया है।" कुछ समय पहले तक मीडिया समाज के चौथे स्तंम्भ और समाज के पहरेदार की भूमिका से जोड़े जाते थे। इसी कारण सामाचार माध्यमों को समाज में प्रतिष्ठा और सम्मान का पात्र समझा जाता रहा है। उम्मीद की जाती रही कि इसका संचालन और सरोकार बाजार की विवशताओं, होड़ तथा उपभोक्ता वर्गों तक पहुँच को लेकर नहीं होगा बल्कि समाज के बेहतर उद्देश्यों के प्रति जागरूक रहने के लिए होगा; लेकिन आज वे समाज के नही बल्कि उद्योगों की आवाज बन गये हैं। आज सामाचार माध्यमों का प्रचलन नयी परिभाषाओं, नये मूल्यों की प्राथमिकताओं से प्रेरित हो रहा है। इसी का परिणाम है कि अब सामाचार माध्यम पत्रकार केन्द्रित नही रह गये हैं। अब बात करते हैं जनहित की, जनहित का अर्थ जनता के हित से है चूँकि मीडिया का सीधा सम्बन्ध जनता के सरोकारों और उसके विषयवस्तु से है इसलिए मीडिया के लिए जनहित का बहुत महत्व है अर्थात मीडिया का कार्य है समाज में हो रही घटनाओं के विषय में सूचित करना। दूसरे शब्दों में कहे तो मीडिया के लिए जनहित से तात्पर्य यह है कि वह सदैव ऐसी सूचनाओं का प्रसारित करे जो सदैव जनता के हित में हो अर्थात मीडिया ऐसी सूचनायें

प्रकाशित करे जो जनता और शासन वर्ग दोनो के हित में हो। आइये देखते है कि इस बदले परिदृश्य का मीडिया प्रचलनों के असमंजस का माध्यमों की विश्वसनीयता पर क्या असर पड़ा। सोचना यह होगा कि सामाचार माध्यमों का उद्देश्य जनसेवा है या फिर निजी स्वार्थ साधन। हमें सामाजिक सरोकारों बनाम बाजार की प्राथमिकताओं, हित धारकों बनाम शेयर धारकों और अल्पावधि बनाम दीर्घावधि उद्देश्यों पर भी विचार करना होगा साथ ही सामाचारों व निजी विचारों के बीच धुंधली पड़ रही विभाजक रेखा से उत्पन्न विवादों और सामाचारों और विज्ञापनों के अंतर को भी याद रखना होगा। आज परिस्थितियाँ ऐसी हैं कि पत्रकारिता की प्रवृत्तियां और मीडिया का कार्य क्षेत्र विज्ञापनों और शोध के जरिये तय होता है। पिछले कुछ वर्षों में 100 प्रतिशत प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की अनुमति दी गई है। अतः ये दोनों काम कारपोरेट के हाथों में पहुंच गए हैं और उनका नियंत्रण विदेशों से होता है। मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि समाचार माध्यमों की विषय के निर्धारक कारक बदल गये हैं और इन पर कोई भी गंभीर चर्चा नहीं करता। कुछ दशक पहले तक अनेक बड़े अखबारों में विज्ञापन से होने वाली आय उनके कुल राजस्व के 70 प्रतिशत के बराबर होती है। यही कारण है कि इस समय भारत में आई मीडिया घरानों की बहुलता का कारण विज्ञापनों की कमाई बताई जा रही है। इसका सीधा सा मतलब यह कि आजकल विज्ञापनों की कमाई से ही मीडिया अपना अस्तित्व बनाए रखता है और उसी के आधार पर उनकी दिशा निर्धारित होती है। आज मीडिया ने समाचार की नयी परिभाषा गढ़ी है: समाचार वही जो व्यापार बढ़ाए। बाजार और पूंजी के तर्क मीडिया पर इतने हावी कभी नही रहे जितने आज हो चले है।

प्रस्तावित लेख में विवरणात्मक सर्वेक्षण पद्धति का चुनाव किया गया है, क्योंकि इस विधि के अन्तर्गत सामाजिक स्थितियों, प्रणालियों, तथा संरचनाओं का अध्ययन किया जाता है। प्रिंट मीडिया का व्यवसायीकरण और जनहित एक सामाजिक स्थिति का अध्ययन है यही कारण है कि उक्त विधि का चयन किया गया है जिससे तथ्य को विस्तारित किया जा सके; साथ ही विषय वस्तु का भी बहुत गहन अध्ययन हो जाये। लेख में द्वितीयक आंकड़ों के संग्रहण के लिए विभिन्न पुस्तकों एवं इन्टरनेट पर उपलब्ध जानकारियों से सामग्री का चयन किया गया है।

उपरोक्त तथ्यों के अध्ययन के बाद हम निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि मीडिया का व्यवसायीकरण हो रहा है और वह जनहित के अपने दायित्व से हटती जा रही है। शोध से प्राप्त निष्कर्ष यह बता रहे हैं कि जनता में अखबार के प्रति विश्वसनीयता घट रही है तथा वह व्यवसायिक हो रही है। लोगों का मानना है कि वर्तमान में प्रिन्ट मीडिया जनहित के अपने मुख्य दायित्व का निर्वहन कर पाने में पूर्ण रूप से असफल है तथा वह अपने आप को पूर्ण रूप से व्यवसायिक बनाने में लगी है। शोध यह बताता है कि आज इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की तुलना में प्रिन्ट मीडिया व्यवसायीकरण की तरफ तेजी से भाग रही है। यदि प्रिन्ट मीडिया का व्यवसायीकरण इसी तरह से होता रहा तो वह दिन दूर नहीं जब समाज का समाचार पत्र पर से विश्वास उठ जायेगा; क्योंकि लोगों का यह मानना है कि व्यवसायीकरण के चक्कर में आज अखबार वही खबरे प्रकाशित कर रहे है जिससे उनका निजी स्वार्थ पूरा होता है जनता का नहीं। लोगों का मानना है कि आज अखबारों में से जनहित से जुड़े मुद्दे लगभग गायब से हो गये हैं और उनकी जगह कार्पोरेट जगत के मुद्दों ने ले लिया है। आज अखबार किसी गरीब के साथ घटी दुर्घटना की खबर को एक छोटे से कॉलम में निकालते हैं, और हॉन्डा कम्पनी की कार लॉन्च होने की खबर एक बड़े से पैराग्राफ में देते हैं, क्योंकि ऐसी खबरों से उनका व्यवसाय बढ़ता है और कम्पनियों से उन्हें अत्यधिक विज्ञापन मिलते हैं। अतः यह बात अपने आप में स्पष्ट हो गयी है कि वर्तमान में प्रिन्ट मीडिया का हो चुका व्यवसायीकरण है, तथा यह जनहित के अपने दायित्व से मुँह मोड़ रही है।

संदर्भ

1. प्रो. जैन, रमेश(2011) प्रिंट मीडिया, जयपुर, यूनिवर्सिटी बुक हाउस प्रा0 लि0।
2. मंडल, दिलीप(2011) कॉरपोरेट मीडिया दलाल स्ट्रीट, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन।
3. मनावत, संजीव(2005) इलेक्ट्रॉनिक मीडिया(रेडियो, टीवी एवं फिल्म माध्यमों का दिग्दर्शन), जयपुरः जनसंचार केंद्र, राजस्थान वि0वि0।
4. पंत, एन0 सी0 एवं द्विवेदी, मनीषा(2007) पत्रकारिता एवं जनसंचार, नई दिल्ली, कनिष्क पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर।
5. प्रो. सरदाना; चन्द्रकांत, एवं प्रो. मेहता, कृ0(2004). जनसंचारः कल, आज और कल, दिल्ली।
6. चोपड़ा, लक्ष्मेंद्र(2002) जनसंचार का समाजशास्त्र, पंचकूला(हरियाणा), आधार प्रकाशन।
7. मीना, राम लखन(2012) जनसंचारिकीः सिद्धांत और अनुप्रयोग, दिल्ली, कल्पना प्रकाशन।
8. गांधी भवन, यूनिवर्सिटी ऑफ इलाहाबाद, इलाहाबाद।
9. हिंदुस्तान समाचार पत्र।
10. दैनिक जागरण।
11. अमर उजाला।
12. टाइम्स ऑफ इण्डिया।
13. द हिन्दू।

पायथागोरियन ट्रिप्लेट्स

प्रीति बाजपेई
प्रोफेसर, गणित विभाग
एवं डीन, स्टूडेंट वेलफेयर, बी0आई0टी0एस0 पिलानी, यू0ए0ई0 परिसर, दुबई
dr.priti.bajpai@gmail.com

प्राप्त तिथि–01.07.2015, स्वीकृत तिथि–20.07.2015

पायथागोरियन ट्रिप्लेट्स उन तीन नम्बरों के समूह को कहते हैं जो कि समीकरण $x^2+y^2=z^2$ को संतुष्ट करते हैं। वह समकोण त्रिभुज जिसकी सभी भुजाएं पूर्णांक हों, को पायथागोरियन त्रिभुज कहते हैं। पायथागोरियन ट्रिप्लेट्स की उपज कब हुई कहना मुश्किल है। कोलम्बिया विश्वविद्यालय के संग्रह में प्लिटन 322 के नाम से जो बेबिलोन्यन टैबलेट्स है उन पर पायथागोरियन ट्रिप्लेट्स को पाया गया है। इस हिसाब से सबसे पहले बेबिलोन्यन्स को इनके बारे में पता होने का श्रेय जाता है। इन टैबलेट्स का समय करीब 1900- 1600, ईसा पूर्व आंका गया है। यह समय पायथागोरस से 1000 साल पहले का है। पायथागोरस (580- 500 ईसा पूर्व) का जन्म सामोसा के एजियन द्वीप पर हुआ पर कहते हैं कि वह मिस्र से पढ़ाई कर बैबिलोन्या तक गये। कुछ इतिहासकारों के अनुसार पायथागोरस ने इनका ज्ञान वहीं से प्राप्त किया। एक किमवदन्ती यह भी है कि पायथागोरस को अचानक इनकी अनुभूति एक दिन सीढ़ी के नीचे मोजियाइक के टाइल्स पर बने तीन गोले और समकोण त्रिभुज को देख कर हुआ। पर इन नम्बरों को पायथागोरस के नाम के साथ कब और कैसे जोड़ा गया यह कह पाना कठिन है। पायथागोरस और उनके अनुयायी चार प्रकार के विज्ञान के अध्ययन में रत थे। गणित, ज्यामिति, भूमण्डल और गायन। वे जब अपने शोध कार्य को इतना गुप्त रखते थे तो, उनका इन नम्बरों के समूह को पायथागोरस का नाम देना कठिन है। कहा जाता है कि इन नम्बरों को पायथागोरियन ट्रिप्लेट्स कहलाने का श्रेय सिजैरो, कुछ ग्रीक गणितज्ञों और दार्शनिकों को जाता है[1]।

पायथागोरस से तीन शताब्दी पहले भारत मे बौधायन के सुलभ सूत्र जिसका समय 800 ईसा पूर्व मापा जाता है, में इन नम्बरों के समूह का वर्णन देखा गया है।

"दीर्घ चतुरश्रस्या क्ष्ण्या रज्जुः पार्श्वमानीर्तियङः मानी च यत्पृथ्भूते कुरू तत्से दुभयं करोति।"

इस श्लोक के अनुसार एक रस्सी को कर्ण पर बांधा जाए तो उसका श्रेत्रफल लम्ब व आधार के श्रेत्रफल के जोड़ के बराबर होता है। इस प्रमेय का हल दोनो बौधायन व अपास्सत्म्भ ने दिया है। जिधर बौधायन का हल ज्यामितिय है उधर अपास्सत्म्भ का हल संख्यात्मक है। एक सूत्र ब्रहमगुप्त(598- 670 ईसा पूर्व) ने असंख्य पायथागोरियन ट्रिप्लेट्स निकालने का दिया है।

फ्रांस के दार्शनिक फ्रांन्कोइस वोलाटैर(16 ए.डी.) ने लिखा है जिसका हिन्दी अनुवाद इस प्रकार से है, मेरा यह दृढ़ निश्चय है कि, हर चीज हमारे पास गंगा के किनारे से आयी है। चाहे वह ज्योतिश हो या पुनर्जन्म। पायथागोरियन ट्रिप्लेट्स दो प्रकार के हैं। अगर तीनों नम्बर का कोइ आम भाजक नहीं है तो उन्हें प्रिमिटिव पायथागोरियन ट्रिप्लेट्स कहते हैं। अगर प्रिमिटिव पायथागोरियन ट्रिप्लेट्स को किसी स्थिर राशि से गुणा किया जाये तो यह समूह भी $x^2+y^2=z^2$ को संतुष्ट करता है। इस प्रकार के पायथागोरियन ट्रिप्लेट्स प्रिमिटिव पायथागोरियन ट्रिप्लेट्स से बनते हैं।

चलिये देखें कि पायथागोरियन ट्रिप्लेट्स पर अलग–अलग समय पर और अलग–अलग देशों में गणितज्ञों ने कौन से सूत्र दिये इन ट्रिप्लेट्स निकालने के।

पायथागोरस ने इन ट्रिप्लेट्स को निकालने का जो सूत्र दिया है वह इस प्रकार है उन्होंने एक समकोण त्रिभुज कि छोटी भुजा x को $x=2n+1$ लिया और बड़ी भुजा y को, $y = 2n^2+2n$, तथा कर्ण z को $z = 2n^2+2n+1$ लिया जहाँ $z=y+1$, यहाँ n धनात्मक राशि है। पर प्लाटों का सूत्र कुछ इस प्रकार था:

$x=2n$, $y= n^2 - 1$, $z = n^2 + 1$,

यह देखा जा सकता है कि प्लाटों के सूत्र के अनुसार $z = y+2$

पायथागोरियन ट्रिप्लेट्स को दो निम्न समूह में विभाजित किया जाता है:

(3, 4, 5), (5, 12, 13), (7, 24, 25).....(1)

(8, 15, 17), (12, 35, 37), (16, 63, 65).....(2)

पायथागोरस के सूत्र से समूह (1) के ट्रिप्लेट्स बनते हैं और प्लाटों के सूत्र से समूह (2) के ट्रिप्लेट्स बनते हैं।

यूक्लिड ने भी अपनी किताब ऐलिमेन्ट्स में ट्रिप्लेट्स निकालने के निम्न सूत्र दिये हैं[2]

$$x = \alpha\beta\Upsilon,\ y = \tfrac{1}{2}\alpha(\beta^2 - \Upsilon^2),\ z = \tfrac{1}{2}\alpha(\beta^2 + \Upsilon^2)$$

और $$x = \sqrt{mn},\ y = \tfrac{1}{2}(m - n),\ z = \tfrac{1}{2}(m + n)$$

मार्कस जूनियस निपस्स ने भी डायोफैन्टस से एक शताब्दी पहले एक भुजा x के सम और विषम दोनों स्थिति में सूत्र दिये हैं जो कि इस प्रकार है:

$$x=n,\ y=\tfrac{1}{2}(n^2 - 1),\ z = \tfrac{1}{2}(n^2 + 1) \quad \text{.....(3)}$$

$$x=2n,\ y=\tfrac{1}{4}n^2 - 1,\ z = \tfrac{1}{4}n^2 + 1 \quad \text{.....(4)}$$

अगर सूत्र (4) में x=2n कि जगह x=4n लें तो सूत्र यह रूप ले लेता है–

$$x=4n,\ y=4n^2 - 1,\ z = 4n^2 + 1 \quad \text{.....(5)}$$

सूत्र (3) से समूह (1) के ट्रिप्लेट्स मिलते हैं और सूत्र (5) से समूह (2) के ट्रिप्लेट्स मिलते हैं पर $n \geq 2$ और y, z विषम होने चाहियें। डायोफैन्टस(2 ए.डी.) का सूत्र इस प्रकार है: $x=2mn,\ y= m^2 - n^2,\ z = m^2 + n^2$, पर इस सूत्र से सिर्फ समूह (2) के ट्रिप्लेट्स की रचना होती है और n का मान 1 मिलता है। अगर $n \geq 4$ और सम हो समूह (2) के ट्रिप्लेट्स मिलते हैं।

अरबी गणितज्ञों ने भी पायथागोरियन ट्रिप्लेट्स पर कुछ काम किया है। एक हस्तलिपि जिसके लेखक का पता नहीं मे कर्ण की आखिरी संख्या के अनुसार बाकी दो भुजाओं को निकाला गया है। प्रतिबन्ध यह है कि m + n का जोड़ विषम हो और दोनो का कोई सामान्य भाजक न हो। भारत में भास्कर और ब्रहमगुप्त ने जो सूत्र दिया वह इस प्रकार है:
$x=m,\ y=\tfrac{1}{2}(\tfrac{m^2}{n} - n),\ z = \tfrac{1}{2}(\tfrac{m^2}{n} + n)$ लिया। औयलर (17 ए.डी.) जैसे महान गणितज्ञ ने सिद्ध किया कि अगर
$x^2 + y^2 = z^2$ तो वहाँ $y:x = m^2 - n^2 : 2mn$ जहाँ $m>n>0$, है।

जापान में भी मातसुनागो(18 ए.डी.) ने डायोफैन्टस का सूत्र तीन प्रकार से सिद्ध किया।

वोलपिसोली(18 ए.डी.) के अनुसार $x^2 + y^2 = z^2$ के $\frac{1}{2}(3^k - 1)$ हल निकलेंगे और z के विभाजन $z = z_1, z_2, \ldots z_k$ पर निभर करता है। यहाँ z_i, z के गुणनखण्डों का 1,2,3,.....k बार गुणक है)[2]। प्यूमा(18 ए.डी.) ने डायोफैन्टस के सूत्र को कौन्ग्रुएन्स के माध्यम से सिद्ध किया और दिखाया कि x,y,z अगर जोड़े में लिये जायें तो दोनों का कोई सामान्य भाजक नहीं होता है।

देखा जाए तो अभी तक के सभी सूत्र सिर्फ एक प्रकार के ट्रिप्लेट्स देते हैं पर क्रौनेकर(19 ए.डी.) के दिये सूत्र से सभी ट्रिप्लेट्स निकाले जा सकते हैं[2]। $x=2pqt, y= t(p^2 - q^2), z = t(p^2 + q^2)$ जहाँ $p>q>0, t>0$ हैं।
एक सामान्य सूत्र फिटिंग(19 ए.डी.) ने भी दिया जहाँ x, $y=a(2x+a)$, $z = x + a$, तीन भुजाएं हुई और a को 1,9,25.....विषम संख्या का वर्ग और $2x+a$ क्रमबद्ध विषम संख्या का वर्ग लिया है[2]।

ये तो रहे पायथागोरियन ट्रिप्लेट्स पर वर्षो के शोध कार्य से निकले विभिन्न सूत्र हर सूत्र नए और सुधरे हुए रूप में। यह कौतूहल का विषय है कि ऐसा जिज्ञासा के अलावा क्या था इन ट्रिप्लेट्स में जो गणितज्ञों ने अपना इतना कीमती समय इनके शोध पर व्यतीत किया। इनका कहाँ और कैसे उपयोग हुआ और होता आ रहा है यह विषय बड़ा दिलचस्प है। संक्षिप्त में पुराने समय में इनका प्रयोग खगोल विज्ञान में ग्रहों के बीच की दूरी निकालने में हुआ। क्योंकि ये समकोण त्रिभुज की भुजाएं बनाते हैं तो भवनों के निर्माण के लिये भी ये उप्युक्त थे और आज भी प्रयोग में लाए जाते हैं। इस कमप्यूटर के युग मे क्रिप्टोग्राफी मे इनका योगदान है[3]। यह एक अलग शोध का विषय है और यहाँ चर्चा करना उचित नहीं।

संदर्भ

1 बरटन, डेविड एम0(2010) एलिमेंट्री नंबर थ्योरी, टाटा मैक्ग्रॉ–हिल, छठा संस्करण।
2 डिकसन, लियोनार्ड यूजीन(2005) हिस्ट्री ऑफ दी थ्योरी ऑफ नंबर्स, खण्ड–दो, डोवर पब्लीकेशन।
3. कक, सुमाष व मनीषा प्रभु(2014) क्रिपटोग्राफिक एप्लीकेशन ऑफ प्रिमिटिव पायथागोरियन डिकसन, क्रिप्टोलॉजिया, खण्ड–38, अंक–3।

विटामिन "जीवन सत्व"

उषारानी सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर, रसायन विज्ञान विभाग
महिला विद्यालय डिग्री कॉलेज, लखनऊ–226018, उ0प्र0, भारत
ursingh04@gmail.com

प्राप्त तिथि–23.07.2015, स्वीकृत तिथि–10.08.2015

विटामिन विशेष कार्बनिक पदार्थ हैं जो जीव के लिये आवश्यक हैं। ये ऊर्जा का स्त्रोत नहीं है बल्कि उपापचय में उत्प्रेरक के रूप में भाग लेते हैं। ये ऊतक एन्जाइमों के बनाने के लिये आवश्यक हैं, जो जीव की कोशिकाओं तथा ऊतकों में पदार्थ के रूपान्तरण पर प्रभाव डालते हैं। विटामिन की रसायनिक संरचना बहुत जटिल होती है। मानव शरीर के द्वारा विटामिन का उत्पादन नहीं किया जाता है। खाद्य पदार्थ के रूप में विटामिन की पूर्ति शरीर में की जाती है। विटामिन की घुलनशीलता के आधार पर इनका वर्गीकरण किया जाता है। विटानिन 'बी' तथा 'सी' जल में विलेय है जबकि दूसरे विटामिन वसा में ही घुलनशील हैं। शरीर में प्रतिदिन विटामिनों की आवश्यक मात्रा मिली ग्रामों में मापी जाती है। विभिन्न प्रकार के ताजे फल, सब्जियों व अनाज में उचित मात्रा में विटामिन होते हैं। भोजन को काफी समय तक रखने से कुछ विटामिन नष्ट हो जाते हैं। उदाहरण के लिये भोजन को उबालने से विटामिन 'सी' का अधिकांश भाग नष्ट हो जाता है। विटामिन की अनुपयुक्त मात्रा लेने से हाइपोविटामिनता हो जाती है। जिसके परिणामस्वरूप शरीर की रोगाणुओं के प्रति लड़ने की क्षमता एवं कार्य करने की इच्छा कम हो जाती है। बच्चों का अपूर्ण विकास होता है। चिकित्सा में विटामिनों के प्रयोग को देखते हुए कृत्रिम रूप से भी इन्हें तैयार किया जाता है।

विटामिन "ए"– विटामिन ए का रासायनिक नाम रेटिनॉल है। प्राणियों पर किये गये अध्ययन से पता चला है कि विटामिन ए की कमी से शरीर के विकास में अवरोध होता है। इसके अन्तर्गत त्वचा का सूखना, किरेटिनीकरण एवं नेत्र का सूखना जिसके फलस्वरूप कार्निया का ल्यूकोमा व दृष्टि लुप्त हो सकती है, इसका प्रथम लक्षण रतौंधी है। ऐसे रोगियों में दृष्टि असामान्य रूप से कम हो जाती है या अंधेरे में एकदम लुप्त हो जाती है। विटामिन ए अपेक्षाकृत स्थायी है। यह गर्म करने से नष्ट नही होता है। 1 – 2 मिलीग्राम मात्रा की आवश्यकता प्रतिदिन होती है दुग्ध, मक्खन तथा मछली यकृत तेल में विटामिन अधिक मात्रा में पाया जाता है। अनेक सब्जियों व फलों जैसे गाजर, पालक, टमाटर इत्यादि में विटामिन ए कैरोटिन के रूप में उपस्थित होता है। जो मानव शरीर में विटामिन ए में परिवर्तित हो जाता है।

विटामिन "बी"– यह जल में विलेय है। इसमें ग्यारह विटामिन होते हैं।

विटामिन बी$_1$–या थायेमीन, कार्बोहाइड्रेट उपापचय में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है इसकी कमी से बेरी बेरी रोग उत्पन्न होता है। हृदयवाहिका विकृतियां एवं पक्षाघात इसके लक्षण हैं। इन स्थितियों में मुख्यतः परिधीय तंत्रिका तंत्र प्रभावित होता है। बेरी–बेरी रोग उन देशों में अधिक होता है जहाँ मुख्य आहार चावल है। विटामिन बी$_1$ मटर, अण्डपीत, अनाज के छिलकों में पाया जाता है। शरीर में इसका संचय नहीं होता है। इसकी प्रतिदिन की आवश्यकता 2 मिग्रा है।

विटामिन "बी$_2$"– इसका रसायनिक नाम राइबोफ्लेविन है। यह कार्बोहाइड्रेट तथा प्रोटीन के उपापचय में भाग लेता है, एवं श्वसन क्रिया, रक्तोत्पादन क्रिया तथा तंत्रिका तंत्र की क्रिया पर प्रभाव डालता है। यह दृश्यनील लोहित के संश्लेषण में भी भाग लेता है। राइबोफ्लेविन की कमी के फलस्वरूप त्वचा में रोगग्रस्त परिवर्तन होते है। बाल गिरने लगते हैं तथा तंत्रिका तंत्र व नेत्र गोलक में परिवर्तन होने लगते हैं। मानव शरीर को "बी$_2$"की आवश्यकता प्रतिदिन 2 मिग्रा होती है।

विटामिन "बी$_3$"– इसका रसायनिक नाम नियासिन है। यह यकृत, दूध, अण्डा, मूंगफली एवं साबुत अनाज में मिलता है। यह त्वचा एवं तंत्रिका तंत्र को स्वस्थ रखने में सहायक है। इसकी कमी से पेलाग्रा, त्वचा रोग तथा बुद्धि क्षीण हो जाती है।

विटामिन "बी$_5$"– इसका रसायनिक नाम पैन्टोथीनिक एसिड है। यह थोड़ी मात्रा में लगभग सभी आहार में, पर अधिक मात्रा में ओवाकैडो, योगर्ट, अण्डा एवं साबुत अनाज में मिलता है। शरीर में, कोएन्जाइम–ए को बनाने में इसकी अहम भूमिका है, जो वसीय अम्ल, कोलेस्ट्रॉल तथा एसीटाइल कोलीन के संश्लेषण में आवश्यक है। इसकी कमी से थकावट, अनिद्रा, मितली व उल्टी होने की संभावना होतह है। इसकी प्रतिदिन की आवश्यकता 5 मिग्रा होती है।

विटामिन "बी$_6$"– इसका रसायनिक नाम पायरिडोक्सीन है। यह प्रोटीन, वसा और हीमोग्लोबिन संश्लेषण में भाग लेता है, यह काफी मात्रा में यकृत, मांस, मछली, खमीर आदि में मिलता है। इस विटामिन की कमी से त्वचा रोग व नसों की बीमारी हो सकती है। इसकी प्रतिदिन की आवश्यकता 9.3 मिग्रा है।

विटामिन "बी$_7$"– इसे बायोटिन भी कहते हैं। यह सिर्फ बैक्टीरिया व यीस्ट से ही संश्लेषित होता है। यह वसीय अम्ल व अमीनो अम्ल बनाता है। यह त्वचा व बालों को स्वस्थ रखता है। यह सोयाबीन, यीस्ट व लीवर में मिलता है। इसकी कमी से थकावट, बालों का झड़ना व अनिद्रा हो जाती है।

विटामिन "बी$_9$"– इसे फोलिक एसिड भी कहते हैं। स्वस्थ रक्त कणिकाओं के उत्पादन के लिए यह आवश्यक है। यह डी0एन0ए0 संश्लेषित करने के लिए भी आवश्यक है। इसकी कमी से नसों की कमजोरी, हाथ–पैर में कमजोरी, गर्भवती महिलाओं में जटिलताएं हो सकती हैं।

विटामिन "बी$_{12}$"– इसका रसायनिक नाम सायनोकोबेल अमीन है। यह रक्ताणुओं के परिपक्व होने के लिये आवश्यक प्रोटीनों के संश्लेषण में भाग लेकर रक्तोपादक क्रिया पर प्रभाव ड़ालता है। यह दूध, अण्डा व दालों में पाया जाता है। इस विटामिन की कमी से परनीशियस एनीमिया हो जाता है।

विटामिन "सी"– इसका रसायनिक नाम ऐस्कार्बिक अम्ल है। इस विटामिन की कमी से स्कर्वी रोग उत्पन्न होता है। यह रोग उन व्यक्तियों में होता है जिनके भोजन में सब्जियां तथा फल नहीं होते हैं। स्कर्वी धीरे धीरे बढ़ता हैं। इस रोग के लक्षण मसूढ़ों से रूधिर निकलना, दांतों का गिरना तथा अंतरापेशिय रक्तस्त्राव है। विटामिन सी अपेक्षाकृत अस्थायी है तथा विभिन्न खाद्य पदार्थो में इसकी मात्रा उनके रखे जाने की अवधि व विधि पर निर्भर करती है। मानव शरीर को विटामिन सी की प्रतिदिन की आवश्यकता 50–60 मिग्रा होती है। इस विटामिन की अधिक मात्रा, अमरूद, नींबू, संतरा, टमाटर, आवंला, बंदगोभी इत्यादि में होती है। मिर्च व नींबू में विटामिन पी (सिट्रिन) होता है। स्कर्वी रोग न केवल सी बल्कि पी विटामिन की कमी के कारण भी होता है।

विटामिन "डी"– इसका रसायनिक नाम केल्सीफीरोल है। यह अस्थिक्षयरोधी है। इस विटामिन की कमी से रिकेट्स होता है। रिकेट्स के लक्षण है, विकास व वृद्धि में विलम्ब, अस्थियों का मृदु व वक्र होना, विलम्बित दन्त विन्यास। विटामिन डी की कमी से कैल्सियम तथा फास्फोरस लवणों के उपापचय में अवरोध पैदा हो जाते है। जिसके परिणामस्वरूप अस्थियों में कैल्सियन का संचय नही होता है। और अस्थियां मृदु हो जाती है। विटामिन डी, मछली यकृत तेल, अण्डपीत तथा दुग्ध, मक्खन, पनीर इत्यादि में निलता है। अर्गोस्टेराल नामक पदार्थ जिसे पराबैंगनी किरण द्वारा विटामिन डी के रूप में रूपांतरित किया जा सकता है। यह सब्जियों व मांस में निलता है। ऐसा ही पदार्थ मानव त्वचा में बहुत अधिक मात्रा में मिलता है। इसी कारण से रिकेटस रोगियों को ना केवल विटामिन डी दिया जाता हैं बल्कि सूर्य के प्रकाश या क्वार्टस पारा वाष्प लैम्प के प्रकाश में बिठाया जाता है। बच्चों में विटामिन डी की प्रतिदिन की आवश्यकता की मात्रा 0.015 – 0.02 मि0ग्रा0 होती है। तथा वयस्क के लिये यह मात्रा 0.025 मि0ग्रा0 होती है। विटामिन डी की अधिक मात्रा विभिन्न अंगो में कैल्सियम लवणों की अधिक मात्रा का संचय कर देता है तथा वसा उपापचय में विकार उत्पन्न कर देता है।

विटामिन "ई"– इसका रसायनिक नाम टोकोफेराल है। यह वसा में घुलनशील है यह सबसे स्थायी विटामिन है यह अम्ल व क्षार से भी नष्ट नहीं होता है और प्रजनन क्रिया पर प्रभाव ड़ालता है। प्राणियों पर किये गये शोध से यह परिणाम निकाला जा चुका है कि विटामिन ई की कमी से बंध्यता हो जाती है। लैंगिक प्रकार्यो में विकार उत्पन्न हो जाता है। विटामिन ई वसा, अमीनोएसिड तथा विटामिन ए के स्थायीकरण में भी मदद करता है। यह विटामिन अण्डपीत, गेंहू, गहरी हरी पत्तेदार सब्जियों में पाया जाता है।

विटामिन "के"– इसका रसायनिक नाम फाइलोक्यूइनान है। यह वसा में घुलनशील हैं यह प्रतिरक्तस्त्रावी है तथा प्रोथ्रौम्बिन के निर्माण के लिये आवश्यक है जो रूधिर आतंच में भाग लेता है। यह पालक सलाद पत्तों, बन्दगोभी, गाजर आदि में मिलता है। इसकी कमी से रूधिर के जमने की प्रक्रिया अधिक समय लेती है। रूधिर आतंच विशेषता को क्षीण करने के फलस्वरूप रक्त स्त्राव होता है।

विटामिन "पी"– इसका रसायनिक नाम सिटरीन यह सिट्रस फलों मे पाया जाता है। यह फल के छिलकों में अधिक मात्रा में पाया जाता है जैसे नींबू संतरा, अंगूर इत्यादि। यह विटामिन ग्लुकोसाइड के रूप में मुख्यतः पौधों में पाया जाता है।

निष्कर्ष– विटामिन एक ऐसे कार्बनिक यौगिक है जिसका शरीर में संश्लेषण नहीं होता है तथा बहुत ही थोड़ी मात्रा में शरीर की रसायनिक क्रिया के लिये जरूरी होते है। अतः इन्हें भोजन में लेना बहुत जरूरी होता है। अन्यथा इनकी कमी से शरीर में

कई तरह की बीमारी हो सकती है। विटामिन का वर्गीकरण उनकी बायोलॉजिकल व रसायनिक क्रिया के आधार पर किया गया है ना कि उनकी संरचना के आधार पर।

सन्दर्भ

1. रोबिन्सन(1951) "द विटामिन बी काम्पलेक्स", चैपमेन और हाल।
2. फीनार, आई0 एल0(1964) "कार्बनिक रसायन", खण्ड–2, पृ0 829–855, लान्गमैन ग्रीन एण्ड कम्पनी।
3. पलेविन्स(1967) "द केमेस्ट्री आफ बायोलिजिकल फंक्शन आफ आइसोएलॉक्जिन", क्वार्ट रिव्यू, खण्ड–21, पृ0 43।
4. रोबिन्सन(1966) "द विटामिन कोफैक्टर आफ एंजाइम सिन्थेसिज", परगमन प्रेस।
5. स्टोटेज, फ्लोरकिन(1963) "कॉम्परिहेन्सिव बायो केमेस्ट्री", एल्जेवियर, खण्ड–2, पार्ट ए, वाटर सोल्यूबिल विटामिन।

संवेदनशील डाटा के संरक्षण में डाटा खनन का महत्व

शालिनी लाम्बा[1], श्वेता सिन्हा[2], विजय कुमार पाण्डे[3]
[1,2,3]असिस्टेंट प्रोफेसर, कम्प्यूटर विभाग
नेशनल पी० जी० कॉलेज, लखनऊ–226001, उ०प्र०, भारत
shalinilamba22@gmail.com, singh_shweta2005@yahoo.com, vijay.kumar0384@gmail.com

प्राप्त तिथि 29.07.2015, स्वीकृत तिथि 20.08.2015

गत वर्षों में संचय करने और उपभोक्ताओं के बारे में व्यक्तिगत डाटा रिकॉर्ड करने की क्षमता में वृद्धि करने के लिए हार्डवेयर प्रौद्योगिकी में प्रगति लायी गयी है। इसने इस चिन्ता को जन्म दिया है कि यह व्यक्तिगत डाटा कुछ प्रयोजनों के लिए दुरूपयोग किया जा सकता है। यह विश्लेषण उद्देश्यों के लिए संवेदनशील डाटा के आदान–प्रदान की अनुमति देता है, क्योंकि इन चिन्ताओं को दूर करने के लिए डाटा खनन के संरक्षण की गोपनीयता तेजी से लोकप्रिय हो गयी है। जिसके परिणामस्वरूप, जो अपना डाटा साझा नही करना चाहते हैं, उनकी संख्या मे वृद्धि होती जा रही है या फिर वह अपना गलत डाटा उपलब्ध करा रहे हैं। डाटा खनन के संरक्षण एवं गोपनीयता का बड़े पैमाने पर अध्ययन किया गया है जिससे इंटरनेट पर संवेदनशील जानकारी का व्यापक प्रचार प्रसार किया जा सके।

डाटा खनन का लक्ष्य डाटा से बड़ी मात्रा में व्यक्तिगत ज्ञान को निकालना है। हालांकि डाटा अक्सर कई अलग–अलग साइटों से एकत्र किया जाता है। सूचना प्रणाली में गोपनीयता सबसे महत्वपूर्ण सम्पत्ति मे से एक है। इस कारण से कई प्रयासों के ज्ञान की खोज के दौरान संवेदनशील सूचना के प्रकटीकरण को रोकने के क्रम में डाटा खनन एल्गोरिदम के साथ गोपनीयता के संरक्षण तकनीकों को शामिल करने के लिए समर्पित किया गया है। गोपनीयता, कानूनी और व्यवसायिक चिंता इस डाटा के केंद्रीकृत उपयोग को प्रतिबंधित करता है। गोपनीयता के संरक्षण डाटा खनन एल्गोरिदम का उद्देश्य एक ही समय में संवेदनशील जानकारी पर रक्षा करते हुए डाटा की बड़ी राशि से प्रासंगिक ज्ञान को निकालने के लिये है। ऐसे एल्गोरिदम की डिजाइन में एक महत्वपूर्ण पक्ष उपयुक्त मूल्यांकन मानदंडों की पहचान और संबंधित मानक का विकास है।

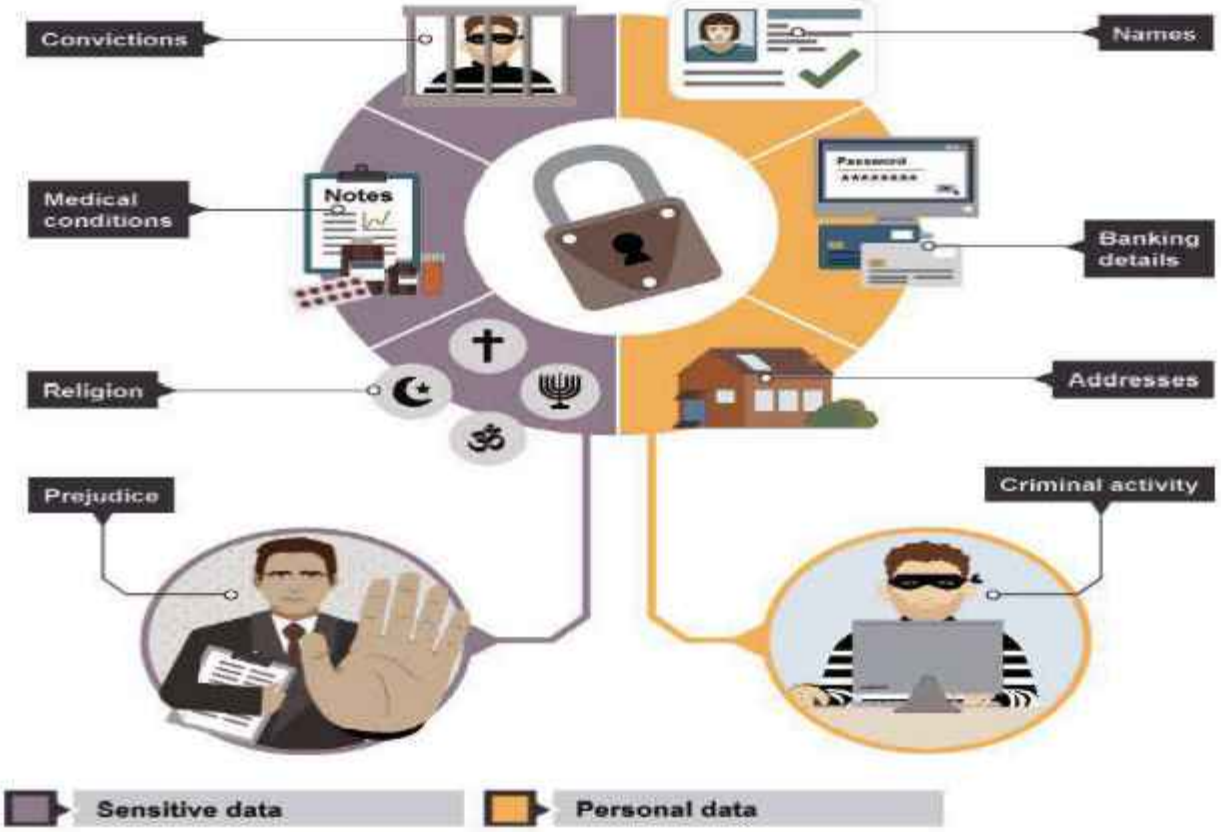

यह उल्लेख किया जा सकता है कि डाटा माइनिंग एक जटिल और कठिन प्रक्रिया है। डाटा हमेशा शाब्दिक प्रारूप में मौजूद नहीं है। विशिष्ट खनन तकनीक सभी प्रकार के डाटा को संभालने के लिये विकसित किया जाना चाहिए। दूसरी बात, डाटा माइनिंग सिस्टम एल्गोरिदम कुशल और मापक ढंग से डाटा को संभालने के लिए सक्षम होना चाहिये। तीसरा, डाटा माइनिंग एक डाटा सेट के भीतर शोर या लापता डाटा को संभालने और डाटा खनन एल्गोरिदम के एक व्यापक ज्ञान के रूप में डाटा का सही प्रतिनिधित्व उत्पादन करने में सक्षम होना चाहिये। डाटा की गुणवत्ता डाटा माइनिंग का एक महत्वपूर्ण पहलू है। डाटा खनन कार्य के लिए विशेष रूप से तैयार किया जा चुका है कि उच्च गुणवत्ता वाले डाटा, उपयोगी डाटा माइनिंग मॉडल और उत्पादन में उपयोगी परिणाम देता है।

इसके विपरीत, कम गुणवत्ता डाटा, डाटा खनन परिणामों की उपयोगिता पर महत्वपूर्ण नकारात्मक प्रभाव डालता है। यदि इसका हल नहीं है, तो डाटा गुणवत्ता की समस्या भी डाटा गोदाम के कार्यान्वयन और उपयोगिता में डाटा खनन के परिणाम में देरी कर सकता है। संगठन दैनिक आधार पर बहुत अधिक डाटा इकट्ठा करता है तो प्रश्न यह नहीं है, कि इसे रखा कैसे जाये, बल्कि प्रश्न यह है कि इससे उपयोगी जानकारी को हासिल कैसे किया जाय।

यह आभास हो रहा है कि आज कल डेटा खनन विशाल रेंज के संगठन के लिए एक व्यापक रूप से स्वीकृत तकनीक है। संगठन उनके हर दिन की गतिविधियों में डाटा खनन पर अधिकाधिक निर्भर है। प्रायः डाटा खनन में मेडिकल और वित्तीय जानकारी के रूप में व्यक्तिगत जानकारी होती है। डाटा खनन की पूरी प्रक्रिया के दौरान अक्सर कलेक्टर उपयोगकर्ता और मापक सहित कई दलों की जानकारियाँ मिल जाती है। इस तरह के संवेदनशील सूचनाओं का खुलासा व्यक्तिगत जानकारियों का उल्लंघन कर सकता है। गोपनीयता तथा संगठन में जनता में विश्वास की कमी के कारण जनता जागरूकता एवं डाटा संग्रहण करने के कार्य में अतिरिक्त जटिलता पेश आ सकती है। सख्त गोपनीयता कानून भविष्य में लाया जायेगा या नहीं, की संभावना नहीं है। दूसरी तरफ इस तरह के कानून में व्यक्ति के बिना व्यक्तिगत विषय में पूरी जानकारी प्राप्त करने में अतिरिक्त कठिनाई हो सकती है, जिसके परिणाम स्वरूप व्यक्ति अपनी निजी जानकारी देने के लिए संकोच कर सकता है।

एक ही समय में संवेदनशील जानकारी परीक्षण, तकनीक की उत्पत्ति एवं गोपनीयता संरक्षण डाटा माइनिंग तकनीक की विशाल बुद्धि कहा जाता है। एक आवश्यक मुद्दा इन गोपनीयता संरक्षण तकनीक के बीच यह है कि एक संवेदनशील सूचना की सुरक्षा के लिए किस प्रकार की व्यवस्था करनी चाहिये।

संदर्भ

1. अग्रवाल, चारू सी0 एवं फिलिप एस0 वाई0 यू0(2008) ए जनरल सर्वे ऑफ प्राइवेसी–प्रिजर्विंग डाटा माइनिंग मॉडल्स एण्ड एल्गॉरिदम, अध्याय–प्राइवेसी–प्रिजर्विंग डाटा माइनिंग, खण्ड–34, मु0पृ0 11–52।
2. तोमर, अर्चना; रिचहरीया, विनीतया एवं पाण्डे, आर0 के0(2011) ए कम्प्रेहैन्सिव सर्वे ऑफ प्राइवेसी प्रिजर्विंग एल्गॉरिदम ऑफ एसोसिएशन रूल माइनिंग इन सेंट्रलाइज्ड डाटाबेस, इण्टरनैशनल ज0 ऑफ कम्प्यूटर एप्लीकेशंस, खण्ड–16, अंक–5, मु0पृ0 23–27।
3. नायक, गायत्री एवं देवी, स्वागतिका(2011) ए सर्वे ऑन प्राइवेसी प्रिजर्विंग डाटा माइनिंगः एप्रोचेज एण्ड टेक्नीक्स, इण्टरनैशनल ज0 ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, खण्ड–3, अंक–3, मु0पृ0 2127–2133।

किशोरावस्था की संवेगात्मक समस्यायें

दीप्ति खरे
असिस्टेंट प्रोफेसर, गृह विज्ञान विभाग
बिजली पासी राजकीय महाविद्यालय, लखनऊ–226012, उ0प्र0, भारत
khare.deepti00@gmail.com

प्राप्त तिथि–29.07.2015, स्वीकृत तिथि–17.10.2015

किशोरावस्था विकास की एक क्रान्तिक अवस्था है जिसमें किशोर न तो बालक होता है और न ही प्रौढ़। शाब्दिक तौर पर अंग्रेजी के 'ऐडोलसेन्ट' की उत्पत्ति लैटिन भाषा की 'ऐडोलस्केयर' से हुई है जिसका अर्थ है परिपक्वता की ओर बढ़ना। यह वह अवस्था है जो बालक को शारीरिक, मानसिक एवं संवेगात्मक दृष्टि से प्रौढ़ बनाती है। यह अवस्था अन्य अवस्थाओं से आनन्दमयी होने के कारण सुनहरी अवस्था के नाम से जानी जाती है। पियाजे इसे समस्याओं की अवस्था तो इरिक्सान इसे संघर्षों की अवस्था कहते हैं। किशोरावस्था चूँकि अस्थिरता एवं अपरिपक्वता की ओर संकेत करती है। किशोर स्वयं के बारे में अनिश्चित होता है। वह लगातार नयी स्थिति से समायोजन करना चाहता है। इस अवस्था में संवेगात्मक अस्थिरता अधिक मात्रा में होती है। हरलॉक(1960) ने लिखा है प्रारम्भिक किशोरावस्था आंधी की व तनाव की अवस्था है। इस अवस्था में किशोर पहले की अपेक्षा अधिक संवेगात्मकता का अनुभव करते हैं।" यह एक भाव प्रधान अवस्था है और अस्थिरता के दो प्रमुख कारण भी हैं– 1. इस अवस्था में तीव्र एवं विषम विकास, 2. इस अवस्था में ज्ञान एवं अनुभव का अभाव।

अब यदि संवेग क्या है इसे समझा जाये तो यह शब्द लैटिन भाषा के इमोवेयर से उत्पन्न हुआ है जिसका अर्थ है भड़क उठना या उदीप्त होना। यंग(1961) लिखते हैं कि संवेग सम्पूर्ण व्यक्ति का तीव्र उपद्रव है जिसकी उत्पत्ति मनोवैज्ञानिक कारणों से होती है। इसमें व्यवहार चेतन अनुभव तथा अन्तरावयव क्रियायें शामिल हैं। संवेग के भाव किसी को भी इतना प्रेरित कर देते हैं कि वह राष्ट्र, धर्म, जाति मानवता के लिये बड़े से बड़ा कार्य कर गुजरते हैं। संवेगों का जीवन में बड़ा महत्व है, यह व्यक्ति को आकस्मिक परिस्थितियों में सुरक्षा भी प्रदान करते हैं क्योंकि संवेगों की उपस्थिति में व्यक्ति की क्रियाशीलता अधिक बढ़ जाने से वह खतरनाक परिस्थितियों से अपनी रक्षा करने में समर्थ हो जाता है। इन परिस्थितियों को दृष्टिगोचर करने से यह स्पष्ट है कि किशोरावस्था चूँकि स्वयं एक अस्थिर अवस्था है तो इस अवस्था में संवेग भी अस्थिर व अस्पष्ट रहते हैं। किशोरों के संवेगों को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक हैं–

1. स्वास्थ्य शारीरिक दुर्बलता या पुराने रोगों में किशोरों की संवेगात्मकता बढ़ जाती है, विशेष तौर पर क्रोध।
2. संवेगात्मकता का प्रभाव बुद्धि से है। अधिक बुद्धि वाले बच्चे अपने संवेगों की अभिव्यक्ति समाज द्वारा मान्य तरीकों से करना सीख जाते हैं।
3. किशोरों में किशोरियों की अपेक्षा भय कम होता है।
4. अधिक देखभाल करने वाले माता–पिता के बच्चे अधिक क्रोधी होते हैं एवं सख्त माता पिता के बच्चे दब्बू।
5. सामाजिक वातावरण भी संवेगों को प्रभावित करता है।
6. बड़े परिवारों में बच्चों का संवेगात्मक विकास जल्दी होता है।
7. जन्मक्रम भी संवेगात्मकता को प्रभावित करते हैं, प्रथम बालक में स्नेह के साथ दब्बूपन होता है।
8. बहिर्मुखी व्यक्तित्व के किशोरों में भय अधिक होता है।

किशोरावस्था में संवेगात्मक समस्यायें– मुख्य तौर पर किशोरावस्था में दो प्रकार की संवेगात्मक समस्यायें आती हैं–

1. संवेगात्मक प्रभुत्व, 2. संवेगात्मक कुसमायोजन।

संवेगात्मक प्रभुत्व– संवेगात्मक प्रभुत्व का अर्थ है कि बालक संवेगों की अनुभूति करता है। उनमें से एक या कुछ संवेग व्यवहार को अधिक मात्रा में प्रभावित करते हैं। हरलॉक(1798) ने संवेगात्मक प्रभुत्व को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि "संवेगात्मक प्रभुत्व का अर्थ है कि व्यक्ति भी संवेग का अनुभव करता है। उनमें से एक या उसके व्यवहार को प्रभावशाली ढंग से प्रमाणित करते हैं। संवेगात्मक प्रभुत्व जन्म से ही नहीं पाया जाता है। बल्कि यह वातावरण के कारकों के प्रभाव से विकसित है।" एक बालक यदि ऐसे वातावरण में पल रहा है। जहाँ पर क्रोध, घृणा और ईर्ष्या का वातावरण रहता है। तो इस बालक में निश्चित रूप से इन संवेगों की प्रधानता होगी, उसमें सुखात्मक संवेग कम से कम होंगे। कभी–कभी यह देखा जाता है। जब बालक के उसके परिवार से सम्बन्ध अच्छे नहीं होते हैं तो उसमें ईर्ष्या के संवेग की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली हो जाते हैं। संवेगात्मक प्रभुत्व बालक के व्यक्तित्व को महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करता है। बालक का स्वभाव और मूड बहुत कुछ संवेगात्मक प्रभुत्व से प्रभावित होता है। जिन बालकों का समायोजन दुर्बल होता है, उनमें

कष्टदायक संवेग अधिक आवृत्ति और मात्रा में उत्पन्न होते हैं। यह उत्पन्न संवेग बालक की सम्पूर्ण व्यवहार अनुक्रियाओं को प्रभावित करता हैं। स्नेह, प्रेम, हर्ष, प्रसन्नता, जिज्ञासा आदि संवेग सुखदायक संवेग है तथा ईर्ष्या, भय, क्रोध, घृणा आदि संवेग दुखदायक संवेग है। अतः स्पष्ट है कि माता–पिता को चाहिए कि बालक में सुखमय संवेगों को बढ़ावा दें।

संवेगात्मक कुसमायोजन तथा संवेगात्मक संतुलन– संवेगात्मक कुसमायोजन का अर्थ है कि जब एक व्यक्ति अपने वातावरण की आवश्यकताओं के अनुसार समायोजन करने में असमर्थ या अयोग्य होता है तो इस प्रकार के समायोजन को संवेगात्मक कुसमायोजन कहते हैं। बालक किसी न किसी मनोवैज्ञानिक वातावरण में रहता है। इस वातावरण की आवश्यकताओं के अनुसार यदि बालक अपने संवेगों की अभिव्यक्ति करता है तब तो यह कहा जायेगा कि उसमें संवेगात्मक संतुलन है। संवेगात्मक असन्तुलन की दो स्थितियाँ हो सकती हैं– 1. उच्च संवेगात्मक, 2. निम्न संवेगात्मक।

संवेगात्मक असन्तुलन की उपर्युक्त दोनों ही स्थितियों में बालक की संवेगात्मक अभिव्यक्ति सामान्य न होकर असामान्य होगी। बढ़ी हुई संवेगात्मकता और घटी हुई संवेगात्मकता दोनों ही संवेगात्मकता कुसमायोजन के दो पक्ष है। यह दोनों ही पक्ष समान रूप से महत्वपूर्ण है। घटी या निम्न संवेगात्मकता का अर्थ है कि संवेगात्मक अनुभवों की तीव्रता और आवृति सामान्य से कम हो। उदाहरण के लिए यदि किसी बालक से किसी परिस्थिति विशेष में यह अपेक्षित हो कि वह परिस्थिति के अनुसार क्रोध व्यक्त करेगा। तो वह क्रोध व्यक्त करने के स्थान पर शान्त रहता है या आवश्यकता से कम क्रोध व्यक्त करता है तो वह उसकी निम्न या सामान्य से कम संवेगात्मकता है। बढ़ी हुई या अति संवेगात्मकता के लिए हारलॉक(1978) ने लिखा है कि "अति संवेगात्मकता" का अर्थ है संवेगात्मक अनुभव की सामान्य से अधिक आवृति और तीव्रता। अति संवेगात्मक में हमेशा स्नायुविक तनाव होता है। इन स्नायुविक तनाव का प्रकाशन अलग–अलग बच्चों में भिन्न–भिन्न ढंग से होता है। कुछ बच्चे इस तनाव के कारण अंगूठा चूस सकते हैं। कुछ बच्चे अधिक नाखून काटने का व्यवहार अपना सकते हैं। सिर खुजलाने, उच्चस्तर में हंसना या फूट–फूट कर रो सकते हैं। जब संवेगात्मक तनाव अधिक मात्रा में होता है। तो भाषा सम्बन्धी विकार जैसे तुतलाना या हकलाना जैसी अभिव्यक्ति भी हो सकती है।

उच्च संवेगात्मकता के प्रभाव– उच्च संवेगात्मकता के कुछ प्रमुख प्रभाव निम्न प्रकार से है–

1. अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि बालकों का शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य का प्रत्यक्ष सम्बन्ध अति संवेगात्मकता से है। अति संवेगात्मकता की स्थिति में शरीर के आन्तरिक अंगों पर स्थाई तथा अस्थाई रूप से कुप्रभाव पड़ता है। साथ ही साथ भी सामान्य रूप से नहीं चल पाती है। रक्त संचालन, पाचन–क्रिया, ग्रन्थीय तथा जनन अंगों आदि दोषपूर्ण हो जाते हैं।
2. अति संवेगात्मकता की स्थिति में बालकों के व्यवहार प्रतिमान संगठित नहीं रह पाते है। इस अवस्था में बालक के खेल पर भी प्रभाव पड़ता है। उनका खेल में मन नहीं लगता है उनका खेल संरचनात्मकता भी नहीं होता है।
3. अति संवेगात्मक की अवस्था में बालकों में भाषा सम्बन्धी विचार भी उत्पन्न हो जाते हैं।
4. एक अध्ययन(सी0एल0एफ0ए0डब्लू0, 1962) में यह देखा गया है कि बालकों के स्कूल का कार्य भी अति संवेगात्मकता की स्थिति में प्रभावित होता है। बालकों को इस अवस्था में पढ़ने और लिखने सम्बन्धी अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। अधिक चिन्ता की अवस्था में त्रुटियाँ अधिक होती हैं।
5. कष्टदायक संवेग जब बालक में अधिक मात्रा में होते हैं तब बालक के व्यवहार को उसके मनोवैज्ञानिक वातावरण के लोग पसन्द नहीं करते हैं।

संवेगों का नियन्त्रण– प्रत्येक सामाजिक समूह बालकों से यह अपेक्षा करता है कि वह संवेगों पर नियंत्रण करना सीखेंगे। सम्भवतः इसी कारण बालकों को संवेगों को उचित दिशा में नियंत्रण करना आवश्यक है। संवेगों को नियंत्रित करने के कुछ लोकप्रिय और प्रमुख प्रकार निम्न प्रकार से हैं–

1. **शमन–** यह एक प्रकार की मानसिक मनोरचना है जिसके द्वारा व्यक्ति अप्रिय, दुखद और कष्टकारी घटनाओं, विचारों इच्छाओं और प्रेरणाओं आदि को चेतना से जानबूझ कर निकाल देता है। यदि सुबह–सुबह दूध वाले से झड़प में बहुत क्रोध आया, या बुरा लगा तो इस बात को दिमाग से यह कहकर निकाल दिया जो हुआ सो हुआ, दूध वाला ही बेवकूफ है इस प्रकार का विचार करके किसी अन्य कार्य में जुट गए।

2. **संवेगात्मक शक्ति को समाज द्वारा स्वीकृत ढंग से व्यक्त करना–** इस ढंग को मार्गान्तीकरण भी कह सकते हैं। इसमें बालक को इस प्रकार प्रशिक्षित किया जाता है। भय संवेग को इस प्रकार मार्गान्तरित किया जा सकता है कि बालक बुरे कार्यों को करने से डरने लग जाए।

3. **अध्यवसाय**– बालकों को संवेगों में नियंत्रित करने का ढंग यह है कि बालकों में संवेगों के उत्पन्न होने वाले और व्यक्त करने का समय ही न दिया जाए। इसके लिए आवश्यक है कि बालकों को पढ़ने लिखने या किसी अन्य लाभदायक काम में व्यक्त रखा जाए।

4. **विस्थापन**– यह वह मनोरचना है जिसमें किसी वस्तु या विचार सम्बन्धित संवेग किसी अन्य वस्तु या विचार में स्थानान्तरित हो जाता है। उदाहरण के लिए एक बन्ध्या स्त्री दूसरे बच्चे से प्रेम करें या कोई अपनी स्त्री से क्रोधित हो। परन्तु अपनी स्त्री पर क्रोध व्यक्त न करके अपने कुत्ते या किसी अन्य पर क्रोध व्यक्त करें।

5. **संवेगात्मक रेचन**– रेचन का अर्थ है कि "शमित संवेगों को मुक्त करना।" संवेगात्मक रेचन के दो प्रकार है –

6. **शारीरिक रेचन**– शारीरिक रेचन का अर्थ है संवेगों के कारण उत्पन्न शारीरिक शक्ति का व्यय होना। बालकों में संवेगों के कारण उत्पन्न शारीरिक शक्ति का व्यय मुख्यतः तीन प्रकार से होता है। जैसे विभिन्न खेलों द्वारा (दौड़ना, कूदना, तैरना आदि)।

7. **मानसिक रेचन**– इसमें बालक संवेगों द्वारा उत्पन्न शक्ति का व्यय उन परिस्थितियों और व्यक्तियों के प्रति अपनी अभिवृत्तियों को बदल कर करता है जिनके कारण संवेग उत्पन्न हुए हैं। मानसिक रेचन के लिए संवेगात्मक सहनशीलता आवश्यक है। मानसिक रेचन बालक उस समय उपयोग में लाता है। जब बालक में मानसिक योग्याताओं का विकास पर्याप्त मात्रा में हो जाता है तो विशेष रूप से कल्पना का विकास हो जाता है।

संदर्भ

1. हरलॉक, ऐलिजाबेथ(1978) बाल विकास, मैक्ग्रॉ हिल एजुकेशन।
2. हरलॉक, ऐलिजाबेथ(1960) एडोलसेन्ट डेवेलपमेंट, मैक्ग्रॉ हिल सिरीज।
3. बर्क, लौरा ई0(2013) बाल विकास, पियरसन।
4. श्रीवास्तव, डी0 एन0(1992) व्यवहारिक मनोविज्ञान, अग्रवाल पब्लिशर्स।

वेब सुरक्षा

शालिनी लाम्बा[1], रिंकु रहेजा[2], सौरभ पति[3]
[1,2,3]असिस्टेंट प्रोफेसर, कम्प्यूटर विज्ञान विभाग
नेशनल पी०जी० कॉलेज, लखनऊ–226001, उ०प्र०, भारत
shalinilamba22@gmail.com, rr_141085@yahoo.co.in,saurabhpati7@gmail.com

प्राप्त तिथि–30.07.2015, स्वीकृत तिथि–17.10.2015

पृथ्वी पर हम मानव सबसे बुद्धिमान प्राणी है, समय–समय पर हम मनुष्यों ने आग, पहिया, प्रिन्टिंग मशीन जैसी बड़ी–बड़ी खोजें की हैं, आज के युग की सबसे बड़ी खोज है– इन्टरनेट। आज हम सभी इस पर पूरी तरह निर्भर हैं, आज यह हमारा सबसे प्यारा और सबसे घनिष्ठ मित्र है। लेकिन वेब का उपयोग जितना हमारे कार्य को सहज बनाता है, उतना ही हमें स्वयं की सुरक्षा का ध्यान भी रखना होता है। आजकल लुटेरे बंदूकें लेकर बैंक नही लूटते, आज बस एक लैपटॉप और इंटरनेट कनेक्शन ही उनका हथियार होता है जिस तरह चोरों के हथियार बदल गये हैं, उसी तरह हमारे बचने के तरीके भी बदल गये है। अब देशों में भी सामान्य युद्ध नहीं होते, अब साइबर युद्ध हुआ करते हैं। एक दूसरे की गुप्त जानकारी उड़ाना अब हर देश का काम हो गया है। साइबर जगत में बढ़ते अपराध को देखते हुए आज वेब सुरक्षा की आवश्यकता बहुत बढ़ गयी है, आज हर कम्पनी में या हर एक संस्था में वेब सुरक्षा का एक अलग विभाग होता है, जो हर तरह से वेब सुरक्षा तथा इससे सम्बन्धित सभी तथ्यों पर ध्यान रखता है।

वेब सुरक्षा क्या है? "इंटरनेट पर अवांछित लोगों की पहुँच से स्वयं को बचाते हुए स्वयं को सुरक्षित करना ही वेब सुरक्षा है।" वेब सुरक्षा कम्प्यूटर विज्ञान का ऐसा क्षेत्र है जिसमें इंटरनेट से जुड़ी हर सुविधाओं एवं सुरक्षा का ध्यान रखा जाता है। वेब सुरक्षा में क्रॉस साइड स्क्रिपटिंग, एस०क्यू०एल० इन्जेक्शन, डाटा ब्रीच, रिमोट अटैक, कोड इन्जेक्शन, बफर ओवर–फ्लो, मेमोरी करप्शन, पायरेसी जैसी समस्याओं को सुलझाया जाता है।

सामान्यतः यूजर कैसे हैक होता है? हमें रोज लोगों के, बैंकों के, सेना के डेटाबेस हैक होने या यूँ कहें कि किसी के भी डेटाबेस हैक होने की खबर मिलती रहती है। इन्हीं बढ़ते वेब हमलों से निपटने के लिए आज के यूजर को बहुत सावधानियाँ बरतनी पड़ती हैं। यूजर्स वेब का एक अति महत्वपूर्ण हिस्सा हैं, सारा काम, सारी डिजाइन, सारी प्रोग्रामिंग यूजर के लिए ही की जाती है। वेबसाइट्स और एप्लीकेशन्स् का मुख्य काम यूजर्स की आवश्यकताओं को पूर्ण करना ही है। इसीलिए हैकर्स का मुख्य टारगेट भी यूजर्स ही होते हैं। एंटीवायरस या इंटरनेट सुरक्षा का यूजर की डिवाइस पर ना होना ऑनलाइन अटैक से प्रभावित होने का सबसे बड़ा माध्यम है। जिन वेबसाइटों पर हैकिंग सम्बन्धी कोई भी प्रमाण या वायरस होता है, उसे इंटरनेट सुरक्षा प्रोग्राम रोक देते हैं तथा इनके अभाव में यूजर वाइरस युक्त फाइलों को अपने मोबाइल या कंप्यूटर में प्रवेश दे देता है। कुछ वाइरस जैसे रैट(रिमोट एक्सेस ट्रोजेन) स्वयं को यूजर के सिस्टम में आपलोड करके यूजर की हर जानकारी को हैकर तक पहुँचाते हैं या यू कहें कि यूजर की डिवाइस पर हैकर का पूरा कंट्रोल हो जाता है, हैकर की–लॉगर जैसी तकनीक का बड़े स्तर पर प्रयोग करता है और हर जानकारी उस तक आसानी से प्राप्त होती रहती है।

पब्लिक वाइ–फाई पर किसी भी वेबसाइट पर लॉग–इन करना घातक होता है। हैकर सामान्यतः किसी भी पब्लिक वाई–फाई(जो कि कम सुरक्षा वाला होता है) उसे हैक करके पहले स्वयं प्रवेश पाते हैं फिर उसमें जितने भी यूजर होते हैं या किसी टारगेटेड यूजर के डाटा पैकेट्स को कैप्चर कर लेता है और बाद में उसे डी–कोड करके यूजर की सारी जानकारी प्राप्त कर लेता है। मान लीजिए आप पब्लिक वाई–फाई में अपने क्रेडिट कार्ड से ऑनलाइन शॉपिंग कर रहे हैं तो अगर उस नेटवर्क में कोई हैकर हो तो हैकर बड़े आराम से आपके अकाउंट की सारी जानकारियां ले सकता है।

एक असुरक्षित नेटवर्क में हैकर यूजर की कोई भी डीटेल रियल टाइम में प्राप्त कर सकता है

किसी भी अवांछित वेबसाइट पर अकाउंट बनाकर अपनी बैंकिंग या सोशल नेटवर्किंग डीटेल्स देना भी यूजर के हैक होने की संभावना को बढ़ा देता है।

फिशिंग– यह हैकरों की पुरानी तथा प्रिय तकनीक है, इसमें हैकर यूजर को लोभ देकर उससे अपनी मनचाही लिंक खुलवाता है और उस लिंक से वो यूजर के डिवाइस पर या तो पूरा कंट्रोल कर सकता है या किसी फॉर्म से उसकी बैंक डीटेल या सोशल वेबसाइट्स की डीटेल्स को प्राप्त कर सकता है।

बगी ब्राउजर– वेब ब्राउजर एक अनेक प्रकार के सॉफ्टवेयर्स का मिश्रण है, जो की अपने आप में बहुत पेचीदा है और समय दर समय और भी पेचीदा होता जा रहा है, ये हैकरों के लिए बहुत अच्छा समाचार है अब वो और भी बग्स आसानी से इंजेक्ट कर सकेंगे। कभी कभी कुछ ब्राउजर ऐसी सुविधायें दे देते है, जिससे हैकिंग की संभावना अधिक बढ़ जाती है, जैसे गूगल क्रोम इनस्पेक्ट एलिमेंट नाम की सुविधा देता है जिससे कि कोई भी वेबसाइट का पूरा कोड देख सकता है, अगर वेब डेवलेपर चाह कर भी अपने कोड को नहीं छुपा सकता है। इससे हैकर को कोड समझ कर वेबसाइट पर हानिकारक लिंक्स डालने में सुविधा होती है। जब १९९० में टीम बनर्स–ली ने एच0टी0एम0एल0 को बनाया तब से कुछ दिनों तक सारी वेबसाइट्स एच0टी0एम0एल0 पर ही बनती रहीं हैं, लेकिन वेबसाइट्स को और आकर्षक बनाने के लिए सी0एस0एस0, जावास्क्रिप्ट, ऐजॉक्स जैसी स्क्रिप्टिंग लैंगवेजेस का प्रयोग होने लगा जिससे हैकर्स को बग्स को इनमें इनसर्ट करने की संभावना बढ़ गयी है। एक्टिव एक्स और प्लग–इन युक्त सॉफ्टवेयर डाउनलोड करने से भी हैकिंग का खतरा बढ़ जाता है, कम्प्यूटर की एक बडी दिक्कत यह है कि हम इसके सॉफ्टवेयर को प्रयोग करते समय स्वयं को सॉफ्टवेयर ऑनर के हाथ में दे देते है, हमें सॉफ्टवेयर के सारे विकल्प पालन करने होते हैं, कभी–कभी कुछ सॉफ्टवेर निर्माता सॉफ्टवेयर में हानिकारक कोड्स डाल देते हैं जिससे कि यूजर की गोपनीयता तथा जानकारी सुरक्षित नहीं रहती है।

हैकर यूजर से क्या चाहता है?

- यूजर के कम्प्यूटर पर पूरा एक्सेस।
- यूजर का आईडी पासवर्ड।
- वे यूजर के कम्प्यूटर की जानकारी को करेप्ट करना चाहते हैं।
- वे यूजर के कम्प्यूटर में स्टोर बैंकिंग डाटा और सॉफ्टवेयर का प्रयोग करना चाहते हैं।

वेब को सुरक्षित कैसे करें? वैसे तो वेब को सुरक्षित करना पूरी तरह से संभव नहीं है, हैकर्स कोई ना कोई रास्ता निकाल ही लेते हैं, जिससे वे हानि पहुँचा सकें, फिर भी कुछ ऐसे रास्ते हैं जिससे कि यूजर सुरक्षित रहेगा। डिवाइस में एक अच्छा एंटीवायरस होना आवश्यक है जो कि गलत लिंक्स को ब्लॉक करके उन्हें खुलने नहीं देता, जिससे की हैकिंग की संभावना और भी कम हो जाती है, यह एक फायरवॉल की तरह कार्य करता है, जिसमे बिना कोई सेटअप किए डाइरेक्ट रन होता है। केवल उन्हीं साफ्टवेयर का प्रयोग करें जिसके बारे में पूरी जानकारी हो, जिससे साफ्टवेयर में छुपे वाइरस या बग से बचा जा सकता है, सामान्यतः हैकर ही कुछ साफ्टवेयर के निर्माता होते है, और जैसे ही हम उन वाइरस युक्त साफ्टवेयर को अपने कम्प्यूटर में लोड कर लेते हैं, हम उनके शिकार हो जाते हैं इनसे बचने के लए हमें सोच समझ के सॉफ्टवेयर डाउनलोड करने चाहिये।

यूजर के द्वारा पब्लिक वाई–फाई का उपयोग करते समय उसे कोई भी ऑनलाइन पेमेंट या लॉगइन नही करना चाहिये, यदि यूजर का डाटा कोई देखेगा भी तो वह नॉर्मल डाटा होगा, जिससे यूजर को कोई हानि नहीं होगी। यदि ब्राउजर हमें किसी वेबपेज का डिजिटल सार्टिफिकेट नहीं दिखा रहा है तो हमें उसमें नही जाना चाहिये। फिशिंग से बचने के लिए हमें बिना जाने कोई भी लिंक नही खोलनी चाहिये। हमेशा एच0टी0टी0पी0एस0 युक्त लिंक ही खोलना चाहिये। अपने सभी अकाउंट्स के लिए गजबूत पासवर्ड लगायें, जिसमे अंक, स्पेशल रिंबल और अक्षर का मिश्रण हो।

हमें वेब जगत की दुनिया में आगे बढ़ते हुए, इस पर अपनी सुरक्षा का ध्यान रखते हुए अपनी सुरक्षा प्रणाली को और भी मजबूत करना होगा, वेब की कोई सीमा नहीं है इसीलिए हैकिंग की भी कोई सीमा नहीं है, तो हैकर्स भी अपना काम करते रहेंगे और हम भी उन्हें विफल करते रहेंगे।

सन्दर्भ

1. स्पाफोड, जेनी एवं गरफिन्केल, सिम्सन(2001) वेब सिक्योरिटी प्राइवेसी एण्ड कॉमर्स, ओ–रैली मीडिया इंक।
2. https://en.wikipedia.org/

वैश्विक तपन की बढ़ती गर्माहट

अरविन्द कुमार तिवारी
असिस्टेंट प्रोफेसर, भौतिक विज्ञान विभाग
बी0एस0एन0वी0 पी0जी0 कॉलेज, लखनऊ–226001, उ0प्र0, भारत
tiwariarvind1@rediffmail.com

प्राप्त तिथि–31.07.2015, स्वीकृत तिथि–04.08.2015

धरती के ताप का बढ़ना पूरी दुनिया के लिए चिंताजनक एवं चिंतनीय विषय है। वैज्ञानिकों एवं समाजशास्त्रियों ने अपने नवीनतम अध्ययनों में पाया है कि ग्रीनहाउस गैसों के ताबड़तोड़ उत्सर्जन पर प्रभावी रोक नहीं लगा पाने के कारण ग्लोबल वार्मिंग की विश्वव्यापी समस्या और गंभीर होने लगी है और इससे नई बीमारियों तथा अन्य पर्यावरणीय संकट के फैलने का खतरा बढ़ गया है। वस्तुतः आज सम्पूर्ण विश्व के सामने अनन्य आर्थिक–राजनीतिक पेंचीदगियों से अधिक बड़ा संकट वैश्विक तपन का पर्यावरणीय संकट बनने जा रहा है। वैश्विक तपन के कारण 21वीं शताब्दी में लू चलने, विनाशकारी मौसम और उष्णकटिबंधीय बीमारियों में बढ़ोत्तरी के कारण अनेक लोग मृत्यु की चपेट में आयेंगे। समुद्री सतह में वृद्धि हो रही है, बाढ़ व सूखे की आशंका बढ़ रही है, खाद्यान्न में गिरावट आ रही है, तथा प्रति 10 वर्ष में लगभग 2.43 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि वसुधा के अस्तित्व को लीलने का कारण बनी हुई है।

वैश्विक तपन का अर्थ और कारण– जहाँ विश्व में एक ओर उच्च तकनीकी औद्योगिक गतिविधियाँ बढ़ रही हैं जो मनुष्य के विकास की सूचक हैं, वहीं दूसरी तरफ ग्लोबल वार्मिंग की गर्माहट भी बढ़ रही है जो भावी मानवता के लिए घातक सिद्ध हो सकती है। विश्व भर के पर्यावरणविद् लम्बे समय से चिंतित हैं कि कार्बन डाई ऑक्साइड तथा फ्लोरो कार्बन समूह की गैसों के निरंतर उत्सर्जन से, ग्रीन हाउस प्रभाव के चलते, दिनों–दिन धरती का तापमान बढ़ता जा रहा है। पृथ्वी के वायुमंडल में अनगिनत गैसों के घनत्व प्रक्रियात्मक रूप से बनते रहते हैं। इन गैसों में कार्बन डाई ऑक्साइड, ओजोन, नाइट्रस ऑक्साइड, मीथेन आदि होते हैं। सूर्य की किरणें, ओजोन मंडल में बिछी ओजोन पटिटका से छनकर पराबैगनी किरणों से मुक्त होकर आती हैं। पृथ्वी पर फैले संसाधनों को इस प्रकार आवश्यक ऊष्मा मिलती है तथा पृथ्वी से अनावश्यक ऊष्मा का पलायन भी इसी प्राकृतिक कार्य का महत्वपूर्ण भाग है। ग्रीन हाउस गैसों के असंतुलित होने के कारण पृथ्वी की गर्मी बाहर नहीं जा पाती है और इस प्रकार विश्वव्यापी तापमान में वृद्धि होती है।

वैश्विक तपन का दुष्प्रभाव– पृथ्वी पर बढ़ते तापमान से अतिवृष्टि, अल्पवृष्टि के अलावा समुद्र की जल राशि बढ़ने लगती है। बर्फ का पिघलता और समुद्र के जल स्तर का ऊपर आना पृथ्वी के जलमग्न हो जाने की संभावना को बढ़ाता है। पिछले सौ वर्षों से पृथ्वी का तापमान लगातार बढ़ता जा रहा है। अगर ऐसा ही चलता रहा तो सन् 2100 तक समुद्र का जल स्तर एक मीटर तक वृद्धि कर सकता है। वैज्ञानिकों का यह भी निष्कर्ष है कि वायुमंडल में तापमान वृद्धि के कारण पृथ्वी की अपनी धुरी पर घूमने की रफ्तार भी कम होती जा रही है।

वैश्विक तपन को नियन्त्रित करने के लिए किये गये प्रयत्न– सन् 1959 में अमेरिका के वैज्ञानिक प्लास ने कार्बन डाई ऑक्साइड व क्लोरो फ्लोरो कार्बन गैसों के पर्यावरण पर पड़ते असर को रेखांकित किया। लेकिन ठोस आंकड़ों का अभाव बताकर विकसित देशों ने स्थिति की गंभीरता स्वीकारना उचित नहीं समझा। यह समस्या सन् 1974 में कार्बन डाई ऑक्साइड व तापमान वृद्धि के सम्बन्धों को दर्शाते हुए कम्प्यूटर मॉडलों व तत्सम्बन्धी अनुसंधानों के माध्यम से सुलझा ली गयी और तब कहीं जाकर विकसित देश कुछ सचेत हुये और उसके पाँच वर्ष बाद 1979 में जेनेवा में प्रथम जलवायु सम्मेलन में समस्या की गम्भीरता समझी गई। इसके बाद वर्ष 1980 में ऑस्ट्रिया में आयोजित संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम व विश्व मौसम विज्ञान संगठन की बैठक में जलवायु परिवर्तन के एक अंतर्राष्ट्रीय समस्या के रूप में स्वीकृति प्रदान की गयी, हालाँकि तब तक बहुत देर हो चुकी थी और धरती की आजोन परत में क्षरण होना शुरु हो चुका था। सन् 1985 में वियना कन्वेंशन, 1987 में मांट्रियल प्रोटोकॉल, 1988 में टोरंटो सम्मेलन, 1997 में क्योटो प्रोटोकाल सरीखे अनेक आयोजन पर्यावरण को बचाये रखने के सिलसिले में हो चुके हैं। क्योटो प्रोटोकाल के तहत ग्रीन हाउस गैसों के विस्तार में सन् 2008 से 2012 के बीच यूरोपीय संघ को 8 प्रतिशत, अमेरिका को 7 प्रतिशत, जापान को 6 प्रतिशत और कनाडा को 3 प्रतिशत कटौती करने का लक्ष्य रखा गया था। इसके उल्लंघन पर दण्ड का प्रावधान भी रखा गया लेकिन वस्तु स्थिति यह है कि अभी तक केवल 83 देशों ने इस समझौते पर हस्ताक्षर किये हैं जिनमें विकसित देशों में से केवल 14 देश हैं।

संभावित उपाय– वस्तुतः ग्लोबल वार्मिंग एक ओर बढ़ती औद्योगिक तकनीक और अधिकाधिक व्यापार बढ़ाने के लिए अधिकाधिक उत्पादन करने एवं विश्व संगठनों के अत्यधिक दोहन का प्रश्न है। वहीं दूसरी ओर न केवल मानवता को बल्कि पूरी वसुधा को समुद्र में डूबने से बचाने और इस तरह समस्त अस्तित्व को बचाये रखने की चुनौती है। विकासशील और

अल्पविकसित देशों का यह दायित्व है कि वे पर्यावरण सम्बन्धी अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में वैश्विक तपन के प्रश्न को न केवल अधिक गंभीरता से उठायें अपितु विकसित देशों पर दबाव भी बनाएं और ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोतों की ओर विश्व को ले जाने का वातावरण बनाएं। हमें प्रत्येक स्थिति में इस वसुधा के अस्तित्व को बचाना है। इसके लिये हमें औद्योगिक तकनीक, उत्पादन प्रक्रिया और व्यापारिक वृत्ति पर इस तरह से पुनर्विचार करना होगा कि आज का मनुष्य अपने तकनीकी वैभव को भी बढ़ा सके और जीवित भी रह सके।

संदर्भ

1. ग्रीन एकाउण्टिंग फॉर इण्डियन स्टेट्स एण्ड यूनियन टेरिटेरीज प्रोजेक्ट् रिपोर्ट, वर्ष 2004।
2. संयुक्त राष्ट्र संघ की इण्टर गवर्नमेंटल पैनेल ऑन क्लाइमेट चेन्ज रिपोर्ट, वर्ष 2012
3. जलवायु परिवर्तन पर वियना सम्मेलन, वर्ष 1985।
4. मान्ट्रियल प्रोटोकाल, 1987 में ओजोन अवक्षय के लिये उत्तरदायी पदार्थों के उत्पादन एवं उपयोग में कटौती किये जाने सम्बन्धी रिपोर्ट।
5. लंदन सम्मेलन, वर्ष 1990, ऑन "क्लोरो फ्लोरो कार्बन"।

उच्च शिक्षा में डाटा माइनिंग

श्वेता सिन्हा एवं शालिनी लाम्बा
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, कम्प्यूटर विज्ञान विभाग
नेशनल पी0 जी0 कॉलेज, लखनऊ–226001, उ0प्र0, भारत
singh_shweta2005@yahoo.com, shalinilamba22@gmail.com

प्राप्त तिथि–30.07.2015, स्वीकृत तिथि–10.08.2015

शिक्षा देश की प्रगति के लिये एक अनिवार्य तत्व है। आज की अर्थव्यवस्था की स्थिति में प्रगति के लिये उच्च शिक्षा का महत्व स्पष्ट हो चुका है। उच्च शिक्षण संस्थानों का मुख्य उद्देश्य अपने छात्रों को गुणवत्ता परक शिक्षा प्रदान करना है। उच्च शिक्षा प्रणाली में गुणवत्ता के उच्चतम स्तर को तभी प्राप्त किया जा सकता है, जब विभिन्न स्तरों पर जैसे– एक विशेष कोर्स में छात्रों के नामांकन की भविष्यवाणी के लिये, पारंपरिक कक्षा शिक्षण मॉडल का अलगाव, ऑनलाईन परीक्षा में प्रयोग होने वाले अनुचित साधन का पता लगाने में, परीक्षा परिणाम में असामान्य मूल्यों का पता लगाने में, छात्रों के संभावित निष्पादन के बारे में आदि, की भविष्यवाणी के लिये ज्ञान प्राप्त हो। उच्च शिक्षा प्रणाली में गहरी और पर्याप्त ज्ञान की कमी के कारण सिस्टम प्रबंधन गुणवत्ता के उद्देश्यों को प्राप्त करने में असमर्थ है। यह ज्ञान शैक्षिकी डाटा सेट के बीच छिपा हुआ है और यह खनन(माइनिंग) तकनीकों के माध्यम से निष्कर्षण है। शैक्षिक वातावरण में खनन को शिक्षा डाटा खनन (ईडीएन) के नाम से जाना जाता है। इसमें छात्र की प्रवृत्तियों और शिक्षा के प्रति व्यवहार का विश्लेषण करने के लिये शिक्षा के बड़े खजाने के डाटा से ज्ञान की खोज करने के लिये नए उपकरण तकनीक और अनुसंधान को विकसित किया जाता है।

शैक्षिक डाटा खनन शिक्षा से संबंधित बड़े डाटाबेस से भविष्य में उपयोग में आने वाली छिपी जानकारी की निकासी की एक तकनीक है। यह एक शक्तिशाली तकनीक है जो विश्वविद्यालयों और संस्थानों को उनके डाटा गोदामों में छिपी महत्वपूर्ण सूचना पर ध्यान केंद्रित करने की क्षमता प्रदान करने में मदद करती है। शिक्षण संस्थानों के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती यह है कि शैक्षिक डाटा में विस्फोटक वृद्धि को शिक्षा में प्रबंधकीय फैसलों की गुणवत्ता और शैक्षिक स्तर की बढ़ोत्तरी में कैसे उपयोग में लाया जा सकता है। यह डाटा व्यक्तिगत या शैक्षिक हो सकता है जो छात्रों के व्यवहार को समझने के लिए, प्रशिक्षकों द्वारा शिक्षण में सुधार करने में, पाठ्यक्रमों में सुधार लाने, छात्रों को एक बेहतर कैरियर चुनने में मदद करने में, ई–लर्निंग सिस्टम का मूल्यांकन और सुधार करने के लिए सहायता करने में प्रयोग किया जा सकता है। इस तकनीक के तहत संस्थान यह सूचना प्राप्त कर सकते हैं कि छात्रों का किस विषय में विशेष रूप से रूझान है, या किस विषय में अधिक शैक्षिक सहायता की आवश्यकता है। कमजोर छात्र को पहचानने में उपयोगी है जिससे उन्हें अधिक सहायता प्रदान की जा सके। यह सूचना इस बात पर प्रकाश डालती है कि कौन से छात्र असफल हो रहे हैं और किस प्रकार वह और अत्यधिक अध्ययन कर सकते हैं। डाटा माइनिंग छात्रों की ड्राप आउट संख्या को ज्ञात करके छात्रों को स्कूल में अध्ययन करने के लिए प्रेरित करने में सहायक है और स्कूल छोड़ने वाले छात्रों की संख्या में कमी लाने में अत्यधिक कारगार सिद्ध होता है।

शिक्षा प्रणाली में डाटा खनन को लागू करने के चक्र

शैक्षिक डाटा खनन का मुख्य कार्य विभिन्न तरीकों और एल्गोरिदम की मदद से शिक्षा के क्षेत्र में संग्रहीत डाटा की बड़ी मात्रा में उपयोगी पैटर्न को निकालना है। यह डाटा व्यापक, सूक्ष्म और सटीक होता है और अतिरिक्त विश्लेषण में उपयोग किया जाता है। निष्कासित डाटा में पारस्परिक सम्बन्ध को ज्ञात कर के उसकी मान्यता को तय किया जाता है, फिर शिक्षा में भविष्य की घटनाओं के लिए भविष्यवाणी करने के निर्णय लेने की प्रक्रिया का समर्थन करने के लिए लागू किया जाता है। डाटा माइनिंग के मुख्य चार चरण हैं–

1. **समस्या की परिभाषा**– डाटा खनन विशेषज्ञ और डोमेन विशेषज्ञ के सामूहिक प्रयासों से परियोजना की आवश्यकता और उसके उद्देश्य को परिभाषित करना ।
2. **डाटा अन्वेषण**– डाटा का संग्रह कर डाटा का विवरण देना। डाटा की गुणवत्ता की समस्या को पहचानना। इसमें पारंपरिक डाटा विश्लेषण उपकरण, जैसे सांख्यिकी का उपयोग किया जाता है।
3. **डाटा तैयारी**– डाटा खनन परिणामों की गुणवत्ता में सुधार के लिए तथा आगे के विश्लेषण और प्रसंस्करण के लिए आंकड़ों में उपयुक्त हेर–फेर करना। इसमें कई अलग–अलग कार्य शामिल हैं ।
4. **डाटा मॉडलिंग**– यह कई प्रक्रियाओं का समूह है, जिसमें डाटा के एकाधिक सेटों को संयुक्त कर विश्लेषण किया जाता है जिससे डाटा में स्थित सम्बन्ध तथा पैटर्न को उजागर किया जा सके।
5. **मूल्यांकन**– प्राप्त किये गये पैटर्न से अपेक्षित ज्ञान प्राप्त हो रहा है या नहीं इस पर निर्भर करता है कि वह मॉडल लागू किया जायेगा अन्यथा मॉडल के मापदंडों को अपेक्षानुसार बदल कर फिर बनाया जाता है।

शैक्षिक डाटा माइनिंग में 'क्लासिफिकेशन', 'कैटेगराइजेशन', 'ऐस्टिमेशन', और 'विज्युलाइजेशन' तकनीकियों का उपयोग कर ज्ञान की खोज करी जाती है। 'क्लासिफिकेशन' संघों और समूह की पहचान कर इस अध्ययन के तहत विषयों को अलग करता है। उच्च शिक्षा संस्थानों में छात्र विशेषताओं के एक व्यापक विश्लेषण के लिए 'क्लासिफिकेशन' का उपयोग कर सकते हैं। 'कैटेगराइजेशन' में इनडक्शन एल्गोरिदम का उपयोग कर अलग अलग कैटेगरी जैसे "ड्रॉप आउट छात्र", "स्थानान्तरण छात्र" आदि बनाये जाते हैं। 'ऐस्टिमशन' से जी0पी0ए0 और वेतन स्तर के रूप में होने वाले निरंतर परिणाम को ध्यान में रखते हुए भविष्य की संभावनाओं को ज्ञात किया जा सकता है। सफलता के रूप में परिणामों की एक किस्म की संभावना की भविष्यवाणी करने के लिए 'एस्टिमेशन' का उपयोग करते हैं। 'विज्युलाइजेशन' गणितीय प्रेरित नियमों और स्कोर को प्रदर्शित करने के लिए इंट्रेप्टिव रेखांकन का उपयोग करता है और पाई या बार चार्ट की तुलना में कहीं अधिक परिष्कृत है।

शिक्षा प्रणाली में डाटा खनन को लागू करने के चक्र– शैक्षिक डाटा खनन का मुख्य कार्य विभिन्न तरीकों और एल्गोरिदम की मदद से शिक्षा के क्षेत्र में संग्रहीत डाटा की बड़ी मात्रा से उपयोगी पैटर्न को निकालना है। यह डाटा व्यापक, सूक्ष्म और सटीक होता है और अतिरिक्त विश्लेषण में उपयोग किया जाता है। निष्कासित डाटा में पारस्परिक सम्बन्ध को ज्ञात कर के उसकी मान्यता को तय किया जाता है, फिर शिक्षा में भविष्य की घटनाओं के लिए भविष्यवाणी करने के निर्णय लेने की प्रक्रिया का समर्थन करने के लिए लागू किया जाता है। डाटा माइनिंग के मुख्य चार चरण हैं –

1. **समस्या की परिभाषा**– डाटा खनन विशेषज्ञ और डोमेन विशेषज्ञ के सामूहिक प्रयासों से परियोजना की आवश्यकता और उसके उद्देश्य को परिभाषित करना ।
2. **डाटा अन्वेषण**– डाटा का संग्रह कर डाटा का विवरण देना। डाटा की गुणवत्ता की समस्या को पहचानना। इसमें पारंपरिक डाटा विश्लेषण उपकरण, जैसे सांख्यिकी का उपयोग किया जाता है।
3. **डाटा तैयारी**– डाटा खनन परिणामों की गुणवत्ता में सुधार के लिए तथा आगे के विश्लेषण और प्रसंस्करण के लिए आंकड़ों में उपयुक्त हेर–फेर करना। इसमें कई अलग–अलग कार्य शामिल हैं।
4. **डाटा मॉडलिंग**– यह कई प्रक्रियाओं का समूह है, जिसमें डाटा के एकाधिक सेटों को संयुक्त कर उसका विश्लेषण किया जाता है जिससे डाटा में स्थित सम्बन्ध तथा पैटर्न को उजागर किया जा सके।
5. **मूल्यांकन**– प्राप्त किये गये पैटर्न से अपेक्षित ज्ञान प्राप्त हो रहा है या नहीं इस पर निर्भर करता है कि वह मॉडल लागू किया जायेगा अन्यथा मॉडल के मापदंडों को अपेक्षानुसार बदल कर फिर बनाया जाता है।

शैक्षिक आकड़ों पर यह डाटा माइनिंग तकनीक उच्च शिक्षण संस्थानों के प्रशासन और बुद्धिजीवियों के लिए शैक्षिक प्रक्रियाओं की गुणवत्ता में सुधार के लिए एक उपयोगी सामरिक उपकरण साबित हो सकता है।

संदर्भ

1. रोमेरो, सी0 एवं वेंचुरा, एस0(2007) शैक्षिक डाटा माइनिंग: 1995–2005 एक सर्वेक्षण, विशेषज्ञ प्रणाली आवेदनों के साथ, खण्ड–33, मु0पृ0 135–146।
2. आयशा, शीला; मुस्तफा, तस्लीम; सत्तार, एहसान रजा एवं खान, एम0 इनायत(2010) उच्च शिक्षा प्रणाली के लिए डाटा माइनिंग मॉडल, यूरोपियन जर्नल वैज्ञानिक अनुसंधान, खण्ड–43, अंक–1, मु0पृ0 24–29।
3. रशन, के0 एच0 एवं पीरिज, अनुष्का(2010) शिक्षा के क्षेत्र में डाटा माइनिंग अनुप्रयोग, एम.एस.आई.टी. कार्नेगी मेलॉन विश्वविद्यालय, रिट्रीव्ड ऑन 28.01.2011

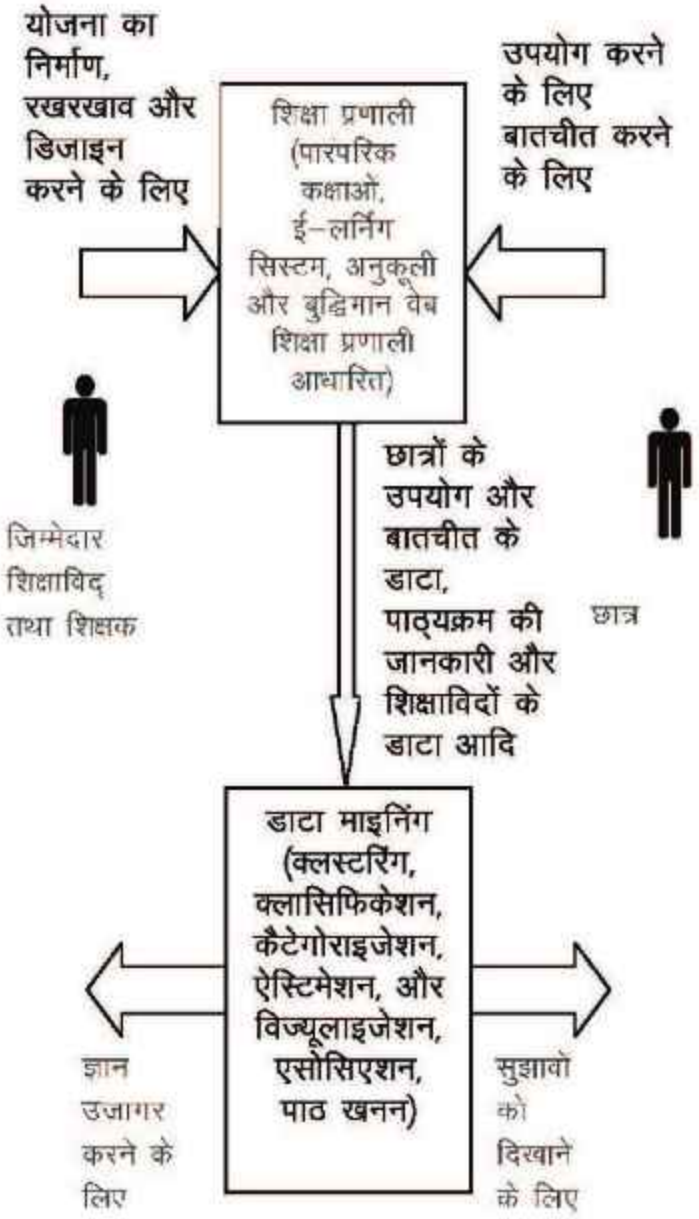
योजना का निर्माण, रखरखाव और डिजाइन करने के लिए
उपयोग करने के लिए बातचीत करने के लिए
शिक्षा प्रणाली (पारंपरिक कक्षाओं, ई–लर्निंग सिस्टम, अनुकूली और बुद्धिमान वेब शिक्षा प्रणाली आधारित)
जिम्मेदार शिक्षाविद् तथा शिक्षक
छात्रों के उपयोग और बातचीत के डाटा, पाठ्यक्रम की जानकारी और शिक्षाविदों के डाटा आदि
छात्र
डाटा माइनिंग (क्लस्टरिंग, क्लासिफिकेशन, कैटेगोराइजेशन, ऐस्टिमेशन, और विज्यूलाइजेशन, एसोसिएशन, पाठ खनन)
ज्ञान उजागर करने के लिए
सुझावों को दिखाने के लिए

आधुनिक युग में गणित का प्रसार

भानु प्रताप सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, गणित विभाग
नेशनल पी0जी0 कॉलेज, लखनऊ
bhanupratapsingh@gmail.com

प्राप्त तिथि–31.07.2015, स्वीकृत तिथि–14.08.2015

गणित शास्त्र का आरम्भ कहाँ हुआ, कब हुआ या फिर क्यों हुआ, इसका विश्व में ठीक से किसी को भी ज्ञान नहीं है। एक अनुमान तर्क संगत जान पड़ता है कि इसका आरम्भ एवं विकास उन्हीं प्राचीन आदिम काल में हुआ होगा जब गिनना, नापना या अनुमान लगाना मनुष्य ने सीखा होगा, जिससे आज हम अपने गणितीय ज्ञान के दुर्ग में प्रवेश करते हैं। गणित शास्त्र की प्रगति के लिए सबसे आवश्यक है मनुष्य की प्रक्रियाएं जिन्हें सामान्य सोच और पूर्ण प्रमाण कहा जा सकता है। ऐसा विद्वानों का मत है कि बेबीलोनिया तथा मिस्र की प्राचीन सभ्यता के पूर्वकाल में ज्यामिति का विकास हुआ जिससे पायथागोरस, युक्लिड आदि ग्रीक निवासियों ने इसका प्रचार किया। उस काल में आर्किमेडीज को विश्व का प्रथम गणितज्ञ कहा जा सकता है, जिसने ज्यामिति के साथ–साथ गणित की और भी कई महत्वपूर्ण धारणाओं की स्थापना की।[1] उनके बाद यूरोप में लगभग 1500 वर्षों तक कोई भी उल्लेखनीय गणितज्ञ नहीं हुआ जिसे यूरोप का अन्ध काल(Dark Age) कहा गया है। इसी बीच भारतवर्ष तथा अरब के गणितज्ञों ने जिनमें आर्यभट्ट(सन् 550), भास्कराचार्य आदि तथा अरब के गणितज्ञ उमर खैय्याम (सन् 1050) आदि ने गणित को और अधिक विस्तृत किया। वर्षों बाद यूरोप के विद्वानों ने अपने अंध काल से उठकर गणित का पुनः निर्माण किया तथा वर्तमान कालीन गणितज्ञों ने इसका रूपान्तरण कर आधुनिक गणित को उच्च स्थान पर प्रतिस्थापित किया।

यांत्रिक व्याख्या से हटकर गणित की ओर बढ़ने की दिशा में विज्ञान ने अपना पहला कदम सन् 1665 के आस–पास उठाया जब महान वैज्ञानिक और गणितज्ञ आईजेक न्यूटन ने अपना सार्वभौम गुरूत्वाकर्षण सिद्धांत खोज निकाला जिससे सौर परिवार ही नहीं वरन् गुरूत्वाकर्षण के नियमों से ग्रहों तथा तारों को भी एक नियम में बांधा। न्यूटन ने अपने अनुसन्धानों के लिए अपनी नई गणितीय प्रणाली विकसित की, जिसे विश्व ने 'अति सूक्ष्म कलन'(Infinitesimal Calculus) का नाम दिया। यह अति सूक्ष्म कलन आज सभी प्रकार की वैज्ञानिक एवं गणित सम्बन्धी सूचनाओं को समझने के लिये बहुत आवश्यक मानी जाती है। न्यूटन द्वारा किये गये अन्वेषणों के परिणाम स्वरूप शक्तियों, दबावों, उत्तेजनाओं, कम्पनों और तंरगों के एक यांत्रिक ब्रह्माण्ड(Mechanical Universe) का उदय हुआ। उस काल में प्रकृति की कोई भी प्रक्रिया ऐसी नहीं दिखाई पड़ती थी जो न्यूटन के गति के सामान्य नियमों के रूप में व्यक्त न की जा सकें। उसे न्यूटन या तो ठोस प्रतिरूप बना कर या उस समय के अद्भुत यांत्रिक तथा गणितीय नियमों में व्याख्या करके प्रस्तुत कर चुका था। लेकिन समय के साथ–साथ न्यूटन द्वारा दिये नियमों में कुछ भूलें स्पष्ट दिखाई देने लगी। इन भूलों का बुनियादी होने के कारण न्यूटन का यंत्रवत ब्रह्माण्ड का सम्पूर्ण भवन डगमगाने लगा।[2]

न्यूटन के बाद के तीन सौ वर्षों तक उसके गुरूत्वाकर्षण(Gravitational) और जड़ता(Inertial) के संतुलन को न तो कभी समझा गया और न ही इसकी व्याख्या की गई। ऐसा प्रतीत होने लगा था कि प्रकृति न्यूटन के नियमों से सहयोग करके चल रही है। अल्बर्ट आइन्स्टीन(1916) ने न्यूटन के कई सिद्धांतों को मानने से इंकार कर दिया। उन्होंने न्यूटन की इस धारणा में संदेह व्यक्त किया कि गुरूत्वाकर्षण और जड़ता का संतुलन केवल एक संयोग मात्र है। आइन्स्टीन ने न्यूटन द्वारा स्थापित निरपेक्ष दिक(Absolute Space) के साथ–साथ निरपेक्ष काल(Absolute Time) की धारणा का भी परित्याग किया। न्यूटन द्वारा स्थापित भौतिक आकाश में युक्लिड की ज्यामिति लागू नहीं होती क्योंकि उसमें वक्रता की सम्भावना है।

आइन्स्टीन ने अपने सापेक्षवाद के सिद्धांत में निरपेक्ष दिक और निरपेक्ष काल को सही नहीं माना। उनके अनुसार काल(Time) अनादि भूत से अनंत भविष्य के बीच की एक स्थिर, अपरिवर्तनीय, अप्रभावित और सर्वव्यापक काल धारा है। जिस प्रकार आँख के अभाव में रंग का कोई अस्तित्व नहीं है उसी प्रकार किसी घटना के अभाव में काल का भी कोई अस्तित्व नहीं है– क्योंकि घटनाएं ही काल की मापदण्ड होती है। बाद के वर्षों में कुछ गणित सम्बंधी कदम उठाने के बाद आइन्स्टीन ने समान राशि m का मूल्यांकन शक्ति E की किसी इकाई में किया और उसे $m = E/c^2$ (जहाँ c प्रकाश का वेग है) समीकरण के रूप में व्यक्त किया। यह एक आश्चर्यजनक खोज थी जिसकी कभी कल्पना तक नहीं की गई थी। आज पूरे विश्व में गणित की सर्वाधिक विजय आइन्स्टीन के सापेक्षवाद(Theory of Relativity) के सिद्धांत की सफलता को माना गया है, जिसने दैनिक जीवन को प्रभावित करने वाली महान गणितीय क्षमताओं का असंदिग्ध प्रमाण विश्व के सामने प्रस्तुत कर दिया है। यह प्रमाणित हो चुका है कि आज विश्व विज्ञान पर निर्भर है और विज्ञान स्वयं गणित पर पूरी तरह निर्भर है।

वर्षों पूर्व शुक्र ग्रह की ओर भेजे गए यान मैरिनर–प्रथम उड़ान की एक जरा सी गणितीय त्रुटि के फल स्वरूप लगभग एक करोड़ डॉलर लागत वाले मैरिनर की पूरी उड़ान नष्ट हो गयी। इससे गणित का महत्व विश्व के सामने प्रमाणित हो गया। एक अंतरिक्षीय उड़ान के लिए गणितज्ञ को कम से कम एक सौ से भी अधिक अंतरिक्षीय पथों तथा कक्षाओं की गणना करके यह निर्धारित करना होता है कि इनमें सर्वोत्कृष्ट पथ क्या होगा? उड़ान में उपस्थित विभिन्न प्रकार के संकटों और आपदाओं पर ध्यान देना पड़ता है, जिनसे निहारिकाओं(Galaxies), उल्काओं(Meteorite) अथवा आकाशीय पिण्डों से टकराव की आशंकाएं तथा घातक ब्रह्माण्डीय विकरण(Universal Radiation) के आगे नष्ट होने से बचा रहे। विगत 200 वर्षों के इतिहास में गणित–शास्त्र में कई नई शाखाओं का जन्म हुआ। इनमें सबसे महत्वपूर्ण है– सम्मिश्र संख्याओं(Complex Numbers) के फलन का गणित, जिसे न्यूटन के बाद के सबसे बड़े गणितज्ञ जर्मनी के कार्ल फ्रेडिरिक गॉस(Carl Friedrich Gauss 1777-1855) ने कठिन परिश्रम के बाद प्रस्तुत किया। इसके अतिरिक्त महान गणितिज्ञों में ऑयलर(Euler –1703-1783), लैगरांज(Lagrange – 1736-1813), लाप्लास(Laplace – 1749-1827), रीमान(Riemann – 1826-1866) तथा इसी काल के अनेक गणितज्ञ जिन्होंने कई प्रकार से वास्तविक चर तथा सम्मिश्र चर संख्याओं के फलनों को तथा विभिन्न प्रकार की अवकल समीकरणों(Differential Equations) का हल निकालने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।[3]

पिछली शताब्दी में गणित की विलक्षण प्रकृति है उसका चिन्तन पक्ष जो कुलक सिद्धान्त(Set Theory), प्रतीकात्मक तर्क(Simbolic Logic) और समूह सिद्धांत(Group Theory) पर आधारित है। कुलक सिद्धांत का विकास जर्मन गणितज्ञ जार्ज कैण्टर द्वारा वैश्लैविकी में गणनान्तक का प्रयोग करने वाली प्रक्रिया के रूप में किया। उसने अनन्त कुलकों की तुलना उनके तत्वों में दो से दो के बीच संपर्क की स्थापना करते हुए की। इस प्रकार ऐसे अनन्त कुलकों को उपयोगी बनाने के लिए आविष्कार कर डाला जिसने गणितीय विश्लेषण(Mathematical Analysis) के विकास को स्थापित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। समूह(Group) एक प्रकार का कुलक है जो एक विशिष्ट प्रक्रिया के संदर्भ में कुछ नियमों का पालन करता है। समूह के अग्रगामी प्रवर्तक एक तरूण फ्रांसीसी गैलॉइस(Galois) थे जिनका छोटी आयु में ही स्वर्गवास हो गया था। समूह सिद्धान्त के अनेक व्यवहारिक उपयोगों में से एक है मानवीय प्रजनन के रस शास्त्र में अणुओं तथा रवों की संस्थित सम्बंधी विश्लेषण में महत्वपूर्ण उपयोग।[4]

इसी प्रकार एक अंग्रेज मेधावी गणितज्ञ जार्ज बूल ने दुर्गम अरस्तुवादी तर्क के स्पष्टीकरण का प्रयास करते हुए एक नए विषय का विकास किया। जार्ज बूल चाहते थे कि तर्क(Logic) की स्थापनाओं का प्रतिनिधित्व सूक्ष्म प्रतीकों द्वारा होना चाहिए ताकि दो प्रस्तावनाओं के बीच सम्बन्ध को बीजगणितीय समीकरण के रूप में व्यक्त किया जा सके। इसी के साथ जार्ज बूल ने गणित की नई शाखा की सृष्टि कर डाली जिसे बुलियन एल्जेबरा नाम दिया गया। इस विषय की आज अनेक व्यवहारिक उपयोगिताएं हैं और इलेक्ट्रॉनिक कम्प्यूटरों के पुर्जों की डिजाइन बनाने के कार्य उसके द्वारा ही सम्भव हो सके। गणित का जो आधुनिक रूप बन चुका है वह पूरी तरह तर्क संगत होते हुये भी यर्थाथवादी तथा व्यवहारिक है। आज महान गणितज्ञ न्यूटन, आइन्स्टीन, गॉस, कैण्टर, जार्ज बूल, गैलॉइस नहीं है लेकिन गणित के क्षेत्र में उनकी महान देन को कभी भी भुलाया नहीं जा सकता।

गणित एक सच्चाई है, हर वस्तु अथवा घटना को मापने की एक सच्ची कसौटी है। इसकी कला एक दार्शनिकता है जो विचारों को संक्षेप में कहने सुनने और लिखने की अद्भुत भाषा है। यह वह ज्ञान, अनुभूति, अनुभव–शक्ति तथा विचार–शक्ति है जो सभी विज्ञानों के महान लक्ष्य को स्पर्श करती है। प्रस्तावनाओं की संतुष्टि वैज्ञानिक सिद्धांतों का एकीकरण केवल विज्ञान की ही नहीं बल्कि मानव–बुद्धि की भी चिर आकांक्षा रही है जिसे आज गणित ही तर्क के आधार पर सुचारु रूप से संगठित करता है।

संदर्भ

1. म्यूर, जॉन(1965) ऑफ मेन एण्ड नम्बर्स, डेल पब्लिशिंग कम्पनी, एन0जी0सी0, पृ0 33।
2. वरनेट.लिन्कोन(1952) द यूनीवर्स एण्ड डॉ0 आइन्सटीन, ए मेन्टर बुक, द अमेरिकन लाइब्रेरी, पृ0 17।
3. सीमन्स, जॉर्ज एफ0(1996) डिफरेनशियल इक्वेशन, एपेन्डिक्स, मेग्राहिल इनकॉरपोरेशन, न्यूयार्क, पृ0 196।
4. हॉलमस, पी0 आर0(1997) न्यू सेट थ्योरी, डी0 वान0 नास्ट्रैन्ट कम्पनी, इनकॉरपोरेशन, न्यूजर्सी, यू0एस0ए0।

सरकारी/निजी सहसम्पर्क द्वारा ग्रामीण विकासः डॉ0 कलाम का पुरा मॉडल एवं उसका चिन्तन

गुंजन पाण्डेय
एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग
बी0एस0एन0वी0 पी0जी0 कॉलेज, लखनऊ–226001, उ0प्र0, भारत
shagunplus1@yahoo.com

प्राप्त तिथि– 31.07.2015, स्वीकृत तिथि– 10.09.2015

ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार ने 11वीं योजना की शेष अवधि के दौरान **"ग्रामीण क्षेत्रों में शहरी सुविधाओं का प्रावधान(पुरा)"** नामक योजना(मॉडल) को केन्द्रीय क्षेत्र की योजना के रूप में पुनः शुरु किया है। ग्रामीण विकास मंत्रालय का **पुरा(प्रोवीजन्स ऑफ अर्बन एमेनिटीज इन रूरल एरियाज, पी.यू.आर.ए.)** योजना को आर्थिक कार्य विभाग की सहायता तथा एशियाई विकास बैंक की तकनीकी सहायता से ग्राम पंचायत(पंचायतों) तथा निजी क्षेत्र के भागीदारों के बीच सार्वजनिक निजी क्षेत्र भागीदारी स्वरूप के अंतर्गत कार्यान्वित करने का विचार है। इस योजना के अंतर्गत ग्रामीण आधारभूत सुविधाओं के विकास तथा आर्थिक कार्यकलापों के बीच सामंजस्य स्थापित करने की परिकल्पना की गई है तथा ग्रामीण क्षेत्रों में सार्वजनिक–निजी क्षेत्र की भागेदारी के माध्यम से आधारभूत सुविधाओं के विकास संबंधी योजनाओं के कार्यान्वयन हेतु विभिन्न प्रकार का ढांचा उपलब्ध कराने और परिसम्पत्तियों के प्रबंधन एवं सेवाओं की सुपुर्दगी में निजी क्षेत्र की दक्षता बढ़ाने की कोशिश की जायेगी।

भारतीय विज्ञान कांग्रेस–2006 में पुरा मॉडल का तत्कालीन राष्ट्रपति प्रो0 ए0पी0जे0 अब्दुल कलाम ने विचार प्रस्तुत किया। 100 ग्रामीण क्षेत्रों में इस योजना को शिक्षा संस्थाओं द्वारा लागू किया जाना उद्देश्य बनाया गया तथा रू0 5 करोड़ प्रत्येक पुरा समूह के लिए आवंटित किये गये।

पुरा योजना की विशेषता

1. ग्रामीण क्षेत्रों नें अधिक रोजगार के अवसर उपलब्ध कराना
2. ग्रामीण क्षेत्रों नें बेहतर सुविधाएँ उपलब्ध कराना
3. सी0आई0आई0 तथा पंचायती राज मंत्रालय के सहयोग से ग्रामीण व्यापारी केन्द्रों का विकास
4. लघु पैमाने के उद्योगों के ध्रुवों का विकास, ग्रामीण उद्योगों को प्रोत्साहन
5. भूमि के प्रयोग को नियन्त्रित करना जिससे वह शहरी समूहों में न परिवर्तित हो जाए
6. भौतिक रूप से गाँवों को भली–भाँति एक दूसरों के साथ जोड़ना जिससे रोजगार के अवसर और सुविधाएँ सभी को उपलब्ध हो सके।

पुरा समूह चुनाव की आवश्यक शर्तें

1. भूमि प्रकार के आधार पर– मैदानी क्षेत्र, समुद्री किनारे का क्षेत्र, पहाड़ी क्षेत्र, वन क्षेत्र, रेगिस्तानी क्षेत्र।

क्षेत्रीय अन्तर के आधार पर लचीलापन पुरा समूहों के चयन में निभाया जाता है।

2. पुरा का संरचनात्मक ढांचा सम्पूर्ण भारत में एक सा लागू किया जाएगा पर क्षेत्रीय असमानताओं का ध्यान रखा जाएगा।

पुरा की विषय वस्तु– ग्रामीण जनसंख्या– 30000–100000, अपवाद– पहाड़ी, वन तथा रेगिस्तानी क्षेत्रों में 10,000–20000 (15–20 पंचायतों, ग्राम अधिकारियों, ग्राम समितियां)

विकास के घटक– गरीबी, स्वच्छ पेय जल, शिशु मृत्यु दर।

भौतिक क्षेत्रीय अन्तरसम्बन्ध– सम्पूर्ण पुरा समूहों में आधारभूत ढांचे का विकास जैसे–

1. सड़क, स्कूल, समुदाय केन्द्र, मकान, अस्पताल, बाजार
2. कोल्ड स्टोरेज, समग्र जल स्त्रोत विकास, व्यापारिक केन्द्रों का निर्माण
3. सूचना और तकनीकी सम्बन्धी आधारभूत ढांचे का विकास तथा बी0पी0ओ0 और काल सेन्टरों से पूर्ण रूप से उनके माध्यम से सम्पर्क

भौतिक आधारभूत ढांचे का निर्माण सरकार द्वारा निम्न उदाहरणों पर किया गया है–

1. मानव संसाधन मंत्रालय द्वारा नवोदय स्कूलों का निर्माण
2. स्वास्थ्य मंत्रालय द्वारा परिष्कृत अस्पतालों टेली–चिकित्सा इकाइयों तथा मोबाइल चिकित्सा हेतु वैनों की व्यवस्था की जा सकती है।
3. सूचना तथा तकनीकी मंत्रालय द्वारा गाँवों में ज्ञान केन्द्रों का निर्माण किया जाएगा जिनका वायरलेस सुविधा द्वारा ब्लॉक स्तर पर बी0पी0ओ0 तथा काल सेन्टरों से सम्पर्क बनाया जाएगा।
4. पंचायती राज मंत्रालय द्वारा ग्रामीण व्यापारिक केन्द्रों को सी0आई0आई0 की सहभागिता द्वारा स्थापित किया जाएगा।
5. पक्का घर
6. साक्षरता, औपचारिक शिक्षा
7. जीवन की प्रत्याशा
8. प्रति व्यक्ति आय

पुरा समूह का चुनाव का आधार परिस्थिति विश्लेषण योजना तथा संसाधनों पर आधारित है।

परिस्थिति का विश्लेषण

1. बेरोजगारी की स्थिति– बेरोजगार स्नातक/आई0टी0आई0/डिप्लोमा धारक/अप्रशिक्षित मजदूर/अल्परोजगार आदि।
2. गाँवों तक पहुँच
3. जनता के लिए आधारभूत ढांचे की उपलब्धता–सड़कों, जल प्रपत्रों की जनसंख्या के संदर्भ में मात्रा तथा गुणवत्ता।

संसाधनों का विश्लेषण

1. भूमि के प्रयोगों का ब्योरा
2. जल प्रपातों, बांधों तथा जल मार्ग का ब्योरा
3. कृषि का स्तर
4. पशुपालन तथा पशुसंसाधन
5. उस क्षेत्र की कुशलता का ब्यौरा
6. बाजार में कुशल श्रमिकों की मांग तथा उनकी पूर्ति की सम्भावना
7. शैक्षिक तथा स्वास्थ्य संस्थाओं की उपलब्धता।
8. कृषि केन्द्रों का निर्माण जिससे कृषि सम्बन्धी उचित ज्ञान, उचित समय पर प्रदान किया जा सके।
9. कृषि उत्पादन के बेहतर तरीकों की सूचना भी कृषि केन्द्रों से प्रदान की जा सकेगी।
10. आवश्यक बाजारों तक किसानों की पहुँच समूह के भीतर जिलों में, राज्य स्तर पर राष्ट्र में तथा निर्यातों द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों में।
11. ई–गवर्नेन्स तक नागरिकों की पहुँच जिससे सरकार की सेवाओं/सुविधाओं का गाँव के नागरिकों को भी लाभ हो सके।
12. तकनीक का हस्तान्तरण, अनुसंधान तथा विकास संस्थाओं द्वारा ग्रामीण उद्यमियों को उपलब्ध कराना जिससे गुणवान उत्पादों के निर्माण विकास, उत्पादन तथा विपणन का कार्य सम्भव हो सके।

ज्ञान के स्रोत– कृषि विश्वविद्यालय, अनुसंधान एवं विकास संगठन, विश्वविद्यालय, उद्योग, कृषि बाजार, किसान कॉल सेन्टर, सरकार–2–नागरिक(जी.2.सी) जुड़ाव, व्यापार–2–नागरिक जुड़ाव, गैर सरकारी संगठन, स्वास्थ्य संस्थाएं, आपदा प्रबन्धन संस्थाएं।

इलेक्ट्रॉनिक सहसम्पर्क

1. नेटवर्क अन्तरसम्पर्क गाँवों के समूहों में स्थापित करना– ब्रॉडबैंड, वी.एस.ए.टी. वायरलेस तकनीक द्वारा पुरा ध्रुवों से गाँवों को जोड़ना।
2. पुरा ध्रुव के निर्माण के पश्चात प्रमुख सेवा संस्थाओं जैसे कृषि सेवा, जिसमें आपदा प्रबन्धन सेवा, विपणन तथा उद्योग सम्मिलित हैं से सम्पर्क में राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विपणन के सम्बन्ध स्थापित हो सकेंगे।
3. पुरा समूहों को सेवाओं हेतु एकल सेवा केन्द्र अथवा गाँवों के ज्ञान केन्द्रों से जुड़ना पड़ेगा।
4. बी.एस.एन.एल./एम.टी.एन.एल. ब्लॉक स्तर पर ब्रॉडबैंड अन्तरसम्पर्क का माध्यम बनेगा। तत्पश्चात् निजी उद्यमियों की भी सूचना और तकनीक तथा दूरसंचार क्षेत्र से सम्बन्धित मांग में भी सहभागिता हो सकेगी।

ज्ञान का सहसम्पर्क

1. मूल्य सम्वृद्धि सेवाओं को किसानों, कारीगरों तथा उद्यमियों को उपलब्ध करना।
2. शिक्षा/प्रशिक्षण, कुशलताओं का विकास, ज्ञान का सशक्तीकरण तथा उद्यमियों का विकास।
3. मानव संसाधन का विकास जिससे प्रशिक्षित तथा ज्ञानी श्रमशक्ति की आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके।
4. टेली–चिकित्सा के माध्यम से स्वास्थ्य सेवाओं को ग्रामीण अंचलों में उपलब्ध कराना। सम्बन्धी पौधों की गुणवत्ता सुनिश्चित की जा सके।
5. आई.टी.आई. संस्थाओं को प्रोत्साहित किया जाना जिससे प्रशिक्षित तथा तकनीकी रूप से नागरिकों को कुशल बनाया जा सके जो राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कर्मचारियों की मांग को पूरा कर सके।
6. ग्रामीण बी0पी0ओ0 इकाइयों तथा काल सेन्टरों द्वारा मूल्य संवृद्धि सेवाओं को उपलब्ध कराना।

पुरा योजना के उदाहरण

1. **ओ.एन.जी.सी. पुरा**– तेल के कुओं तथा गैस के कुओं के निकट, 10 करोड़ का कोष ओ.एन.जी.सी. द्वारा बनाया गया है तथा छः राज्यों के पिछड़े गाँवों में शहरी सुविधाएं उपलब्ध कराने का लक्ष्य रखा गया है। राज्य हैं आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु, गुजरात, राजस्थान, आसाम, तथा त्रिपुरा।
2. **अक्षरधाम पुरा**– 1000 अक्षरधाम पुरा का लक्ष्य है। जिसमें अगले 5 वर्ष देश के ग्रामीण अंचलों में शहरी सुविधाएं उपलब्ध कराई जाएंगी, जिसका नेतृत्व आध्यात्मिक गुरू प्रमुख स्वामी जी महाराज करेंगे।

आर्थिक सहसम्पर्क

1. उद्यमियों द्वारा पुरा समूहों में कृषि, सेवा तथा विनिर्माण क्षेत्रों में ग्रामीण उद्योगों की स्थापना
2. सरकारी/निजी उद्योगों द्वारा कोल्ड स्टोरेज सुविधाओं की स्थापना तथा उत्पादों की मांग के आधार पर बाजार में विक्रय करना
3. उद्यमियों द्वारा पुरा समूहों में लोगों को मूल्य संवृद्धि सेवाओं को व्यापार, विपणन, सेवा क्षेत्र, शिक्षा तथा स्वास्थ्य सेवाओं के क्षेत्र में उपलब्ध कराना
4. भौतिक आधारभूत ढांचे का पुरा समूहों में ग्रामीण रोजगार पर आधारित योजनाओं के सहारे स्थापित करना। इसका आधार पुरा विकास योजना पर निर्भर होगा
5. कृषि खाद्यान्न सम्बन्धित उत्पादों की इकाइयों की स्थापना सरकार/निजी उद्योगों के द्वारा
6. जैव–ईंधन उद्योगः सार्वजनिक निजि सहभागिता द्वारा जैव ईंधन उद्योगों की स्थापना, जत्रोफा बागानों तथा जैव ईंधन (तेल) दोहन इकाइयों को प्रोत्साहन तथा जैव ईंधन पौधों की खेती पर विशेष बल देना आदि।
7. सरकार द्वारा गुणवत्ता प्रबन्धन केन्द्रों की स्थापना करना जिससे कृषि उत्पाद, फल, बाग, निर्मित खाद्यान्न तथा दवा उपलब्ध कराना।
8. सरकारी पुराः केरल तटीय पुरा, छत्तीसगढ़ पुरा
9. संस्थागत पुराः पेरियार पुरा, लोनी पुरा
10. विशेष उद्योग पुरा
11. ग्रामीण पर्यटन के आधार पर पुराः जैसे–राजस्थान, सिक्किम
12. बांस के आधार पर पुराः जैसे–मनीपुर, नागालैण्ड
13. जट्रोफाः जैव–ईंधन के आधार पर पुरा(5 प्रदेश) हैन्डलूम तथा हस्तशिल्प के आधार पर पुरा
14. तटीय पुरा
15. पर्वतीय पुरा
16. मैदानी क्षेत्र हेतु पुरा
17. रेगिस्तान के लिए पुरा(राजस्थान)

निष्कर्ष

पुरा का विचार सराहनीय है क्योंकि इसके द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक रोजगार के अवसर, बेहतर सुविधाएँ उपलब्ध कराना है। सी0आई0आई0 तथा पंचायती राज मंत्रालय के सहयोग से ग्रामीण व्यापारी केन्द्रों का विकास सम्भव हो पाएगा। लघु पैमाने के उद्योगों के ध्रुवों का विकास, ग्रामीण उद्योगों को प्रोत्साहन मिलेगा। भूमि के प्रयोग को नियन्त्रित किया जा सकेगा जिससे वह शहरी समूहों में न परिवर्तित हो जाए। भौतिक रूप से गाँवों को भली–भांति एक दूसरों के साथ जोड़ना जिससे रोजगार के अवसर और सुविधाएँ सभी को उपलब्ध हो सकेंगी।

संदर्भ

1. कलाम, ए0 पी0 जे0 अब्दुल एवं यादव, वाई0 एस0(2014) इण्डिया–2020, ए विजन ऑफ द न्यू मिलेनियम, पेन्गुइन बुक्स लिमिटेड।
2. कलाम, ए0 पी0 जे0 अब्दुल एवं तिवारी, अरुण(1999) विंग्स ऑफ फायर, यूनिवर्सिटी प्रेस, हैदराबाद।
3. राजवंशी, अनिल के0(1995) एनर्जी सैल्फ–सफीशिएंट तालुकाज– ए सौल्यूशन टू नैशनल एनर्जी क्राइसिस, इकोनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली, खण्ड–30, अंक–51।
4. राजवंशी, अनिल के0(2002) तालुकाज कैन प्रोवाइड क्रिटिकल मास फॉर इण्डियाज सस्टेनेबल डेवेलपमेंट, करेंट साइंस, खण्ड–82, अंक–6, मु0पृ0 632–637।
5. "इलैवन्थ फाइव इयर प्लान 2007–2012", रिपोर्ट, अक्टूबर 2012, उपलब्ध– *Planningcommission.nic.in*
6. "प्रोवीजन्स ऑफ अर्बन एमेनिटीज इन रूरल एरियाज(पी0यू0आर0ए0)", अक्टूबर 2012, पीडीएफ उपलब्ध– pura.net.in
7. "प्राइवेट कंपनीज ज्वाइंड हैंड्स विद सेंटर फॉर पुरा", तेलुगूपीपुलडॉटकॉम, 11 अक्टूबर, 2010, अक्टूबर, 2012।
8. "डिस्ट्रिक्ट रूरल डेवेलपमेंट एजेन्सी(डी.आर.डी.ए.)", पी.डी.एफ. उपलब्ध– *Angul.nic.in*, 17 मार्च, 1997, अक्टूबर, 2012।
9. बैनर्जी, देविका(11 अक्टूबर, 2011) प्रोविजन ऑफ अर्बन एमेनिटीज इन रूरल एरियाज माइट बी एक्सटेंडेड टू 2000 न्यू टाउन्स आईडेन्टीफाइड इल 2011 सेंसस, द इकोनॉमिक टाइम्स, अकटूबर 2012।
10. इंटरनेट स्रोत।

प्रकृति के प्रति आदर का भाव रखें

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव
पत्राचार हेतु पता– "अनुकम्पा" वाई 2 सी, 115/6
त्रिवेणीपुरम्, झूँसी, इलाहाबाद–211019, उ0प्र0, भारत
amitabh.premchandra@gmail.com

प्राप्त तिथि– 31.07.2015, स्वीकृत तिथि– 20.08.2015

प्रयाग में संगम तट क्षेत्र में माघ में प्रतिवर्ष लगने वाला संत मेला 'खिचड़ी' से प्रारंभ होकर 'शिवरात्रि' के बाद समापन हो जाता है। माघ मेले में देश–विदेश से लाखों की संख्या में आते हैं। बहुत से लोग 'कल्पवास' भी करते हैं। माघ मेले के दौरान गंगा तट पर यदि आपने कुछ दिन निवास किया होगा अथवा प्रातःकाल स्नान के लिए गए होंगे, तो आपने निश्चित रूप से कुछ लोगों को गंगा तट के निकट वृक्षों के नीचे बैठ कर, धूप–दीप जलाकर पूजा–अर्चना करते हुए देखा होगा। 'वृक्ष–पूजा' एक ऐसा अनुष्ठान है जो भारत के अतिरिक्त किंचित ही किसी और देश में देखने में आता हो। वास्तव में 'वृक्ष–पूजा' प्रकृति के प्रति समादर भाव का प्रतीक है। इस विषय पर यदि हम थोड़ा गहराई से विचार करें तो पर्यावरण की सुरक्षा का यह अनुपम तरीका है। इससे स्पष्ट है कि वर्तमान में पर्यावरण का संकट एक आध्यात्मिक संकट है ।

एक सच्चाई यह है कि हमारी उद्योगीकृत दृष्टि ने हमसे बहुत कुछ छीन लिया है। वृक्ष में, नदी में, पर्वत में जीवंत आत्मा को देख पाने की योग्यता को हमसे छीन लिया है। इसी के साथ यह जानने की योग्यता भी हमसे छीन ली है कि वनों, नदियों और पर्वतों को जीवित रखने के लिए जो जीवन ऊर्जा उनमें विद्यमान है, वही हमारे अंदर भी है। उदाहरण के लिए 'वृक्ष–पूजा' सदैव से हमारे जीवन दर्शन का अंग रही है। ज्येष्ठ मास कृष्ण पक्ष की अमावस्या, जो आमतौर से मई या जून माह में पड़ती है, को वट सावित्री(बरगद वृक्ष– ***Ficus benghalensis)*** की पूजा का अत्यधिक महत्व है। कार्तिक मास शुक्ल पक्ष की नवमी, अक्षय नवमी, जो आमतौर से अक्टूबर–नवम्बर में कभी पड़ती है, के दिन आँवले***(Embelica officinalis)*** के वृक्ष की पूजा और वृक्ष के नीचे बैठकर भोजन किया जाता है ।

पीपल***(Ficus religiosa)*** की पूजा वासुदेव(श्रीकृष्ण) के रूप में की जाती है। "गीता" में श्रीकृष्ण ने कहा है 'वृक्षों में मैं अश्वत्थ(पीपल) का वृक्ष हूँ।)'

"अश्वत्थःसर्ववृक्षाणां" (10/26)।

{पीपल का वृक्ष समस्त वनस्पतियों में राजा और पूजनीय माना गया है, इसी लिए श्रीकृष्ण ने उसे अपना स्वरूप बतलाया है।}

पुराणों में अश्वत्थ का महात्म्य वर्णित है–

"मूल विष्णुः स्थितोनित्यं स्कन्धे केशव एव च।
नारायणस्तु शाखासु पत्रेषु भगवान हरिः ।।
फलेऽच्युतो न सन्देहः सर्व देवैः समन्वितः।।
स एव विष्णुर्दुर्म एवं मूर्तो महात्माभिः सेवितपुण्य मूलः।
यस्याश्रयः पापसहस्रहन्ता मवेन्नृणां कामदुधे गुणाढ्यः।।

{पीपल की जड़ में विष्णु, तने में केशव, शाखाओं में नारायण, पत्तों में भगवान हरि और फल में सब देवताओं से युक्त अच्युत सदा निवास करते हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। यह वृक्ष मूर्तिमान श्री विष्णुस्वरूप है। महात्मा पुरुष इस वृक्ष के पुण्यमय मूल की सेवा करते हैं। इसका गुणों से युक्त और कामनादायक आश्रय मनुष्यों के हजारों पापों का नाश करने वाला है।} {स्कन्द नागर, 247/41,42,44}

आज हम नैसर्गिक संसार को जिस तरह से देखते हैं उसमें परिवर्तन की आवश्यकता है। किन्तु वर्तमान में जो विचार धारा है वह शस्त्रों/हथियारों को कम करने जैसी है। आज कार्बन के उत्पादन को कम करना शस्त्रागारों में कमी करने जैसा है। इसका अर्थ यह हुआ कि यह परिवर्तन केवल बाहरी बदलाव है, आंतरिक नहीं, क्योंकि आंतरिक परिवर्तन के अभाव में, प्रथमतः सैन्यीकरण होता है और पर्यावरण को क्षति होती है।

केवल आयुधशालाओं में कमी करने से शांति की स्थापना नहीं हो सकती है और कार्बन के उत्पादन को कम करने से हमारे धरती नामक उपग्रह के जीवन तंत्रों का स्वास्थ्य और संतुलन पुनः प्राप्त नहीं किया जा सकता है। जब तक यह चेतना में परिवर्तन का मुद्दा न होकर गणित का मुद्दा रहेगा, तब तक संकट के मुख्य कारक से छुटकारा नहीं मिल सकेगा।

न्यूयार्क में संयुक्त राज्यों के धार्मिक नेताओं के एक सम्मेलन में प्रतिभागी इस मुददे पर एकमत नहीं थे कि प्रकृति पर नियंत्रण करना उचित होगा अथवा प्रकृति के प्रति आदर का भाव या श्रद्धा का भाव होना चाहिए। आज हमने मौसम–परिवर्तन की सच्चाई को स्वीकार कर लिया है और इसी के साथ पर्यावरणीय संकट को भी, किन्तु वास्तव में इसके और भी गहरे स्थित कारकों से दूर भागते हैं। हमारे पूर्वजों ने सरिताओं, पर्वतों और वनों की पवित्रता को भली भाँति समझा था।

पिछले 50 वर्षों में हमने वनों के काटे जाने(निर्वनीकरण) और पहाड़ियों के खनन, जलस्रोतों की क्षति और प्रदूषण के कारण अनेक जीव–प्रजातियों के नष्ट हो जाने से बहुत कुछ खो दिया है। यह आश्चर्य ही है कि पृथ्वी के विरोध में हमने जो युद्ध छेड़ दिया है उसके बावजूद धरती उतनी क्रुद्ध नहीं हुई है, जितना उसे होना चाहिए था। हम चाहे एक दूसरे के विरूद्ध हों अथवा नैसर्गिक संसार के विरोध में खड़े हों, हमारी सोच तो एक जैसी ही है। पर्यावरणीय संकट छद्म वेष में 'वरदान' हो सकता है(blessing in disguise)। यह संकट हमारे सम्मुख परिवर्तन के अतिरिक्त कोई विकल्प प्रस्तुत नहीं करता है और विकास को एक नए रूप में प्रस्तुत कर रहा है। पुराने प्रनावित और नियंत्रण के रूप को छोड़ते हुए, जिसे अंतर्निरीक्षण, एकत्व और सम्मिलन के नारी सुलभ सिद्धान्तों पर आधारित कह सकते हैं। नारी सुलभ सिद्धात हमें अतीत की ओर ले जा सकते हैं, जिसे हमारे पूर्वज जानते थे और इस संकट को मोड़ कर रूपांतरण के लिए उत्प्रेरक का कार्य कर सकते हैं। इस रूपांतरण में नारियों की विशेष भूमिका है। हम जानते हैं कि नारियाँ या मातायें हमें इस प्रकृति या नैसर्गिक संसार को समझने और इससे जुड़ने में, तादात्म्य स्थापित करने में हमारा मार्ग–निर्देश कर सकती हैं ।

इतिहास साक्षी है कि जब अमेरिका के निवासियों ने अपने आप को जीवित रखने के लिए भैंसों का शिकार किया तो भैंसों के आशीर्वाद के लिए पहले भैसों की आत्मा या रूह से याचना की। वे जानते थे कि भैसों का शिकार, अपनी जीवनी शक्ति को बनाए रखने के लिए बदले में भैसों की जीवनी शक्ति की आवश्यकता थी और वे उस जीव का सम्मान करते थे, जो उनके(मनुष्यों के) जीवन के लिए अपने जीवन की बलि दे रहा था। आर्थिक प्रगति हमारी पृथ्वी की जीवनशक्ति को नष्ट कर रही है इसलिए हमें अपने आप से यह प्रश्न अवश्य करना चाहिए कि क्या यह हमारे अस्तित्व के लिए खतरा तो नहीं है? और यदि हम ऐसा ही करते रहने का चुनाव करें तो हम उन सभी पर्वतों, नदियों, वृक्षों, जीवों से क्षमा मांगते हुए पहले उनका आशीर्वाद प्राप्त करें, जिनकी हम अपने जीवन को बनाये रखने के लिए बलि चढ़ा रहे हैं। यदि प्रकृति के लिए, इस धरती के लिए, इस पर विचरण करने वाले पशु–पक्षियों के लिए, वनों, सरिताओं, पर्वतों के लिए समादर का भाव नहीं रहेगा, तो हम भी इस धरती पर नहीं रह सकेंगे। अतएव प्रकृति और पर्यावरण के प्रति संतुलन और समादर का भाव रखना ही हमारे लिए श्रेयस्कर होगा।

संदर्भ

1. काणे, पाण्डुरंग वामन(भारत रत्न)(1963–1974) 'धर्मशास्त्र का इतिहास', अनुवादक– श्री अर्जुन चौबे कश्यप, उ0प्र0 हिन्दी संस्थान, लखनऊ, उ0प्र0।
2. सिंह, राम सुशील(1969) 'वनौषधि निदर्शिका', प्रथम संस्करण, उ0प्र0 हिन्दी संस्थान।
3. श्रीमद्भागवत्गीता(गीता)(संवत् 2071), श्लोकार्थ सहित, 209वां पुनर्मुद्रण, गीता प्रेस, गोरखपुर, उ0प्र0।
4. श्रीवास्तव, प्रेमचन्द्र(1998) 'पेड़–पौधों का रोचक संसार', शांति पुस्तक भंडार, कृष्ण नगर, दिल्ली।
5. शुक्ला, चन्द्र प्रकाश(2014) 'सगंधीय पौधे एवं औषधीय पौधे', आविष्कार पब्लिशर्स, जयपुर, राजस्थान।

भूमि उर्वरता की मूल रूप में निरुपण सूक्ष्म जीवों का योगदान

लल्लन प्रसाद
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, वनस्पति विज्ञान विभाग
बी0एस0एन0वी पी0जी0 कॉलेज, चारबाग, लखनऊ–226001, उ0प्र0, भारत
lallanbsnv@gmail.com

प्राप्त तिथि 31.07.2015, स्वीकृत तिथि 25.08.2015

भारत की जनसंख्या की कुल आबादी का अधिकांश भाग ग्रामीण अंचलों में बसता है। जिसके जीवन का मूल आधार कृषि पर निर्भर एवं ग्रामीण किसान व आम जनमानस का भरण–पोषण एवं पालन रोजगार के साधन की आर्थिक निर्भरता पर निहित है। आजादी के बाद प्रथम प्रधानमंत्री स्व0 पं0 जवाहर लाल नेहरू ने कृषि पर विशेष ध्यान दिया तथा विशेषकर भारतीय कृषि वैज्ञानिकों[1-2] ने पूरी लगन के साथ अपना ध्यान भारतीय कृषि की उत्पादन क्षमता बढ़ाने, एवं भुखमरी अकाल के कारण भोजन के अभाव में अकाल मृत्यु से बचाने के लिये निष्ठापूर्वक अथक प्रयास करके कृषि भूमि की उर्वरता को बढ़ाने के लिए अनेकों प्रकार के प्रयोग किये एवं भारत सरकार के नेतृत्व में नये रासायनिक उत्पादक संयत्रों की स्थापना की जिसमें कृत्रिम रसायनिक खाद का निर्माण भी शुरू कर दिया।

हरित क्रांति के बाद भारतीय कृषक रबी एवं खरीफ फसलों के अलावा नकदी फसलों की बोआई का प्रचलन लगातार बढ़ाया, किसानों की प्रति हेक्टेयर उत्पादन क्षमता की होड़ लगा दी जिसके परिणाम स्वरूप कृषि भूमि की पारिस्थितिकी तंत्र का नियमन–संचालन व संतुलन खराब होता चला गया किसान उत्पाद बढ़ाने एवं अत्याधिक आर्थिक लाभ कमाने के मैंदर जाल में पड़ कर भूमि की उर्वरता को बनाये रखने में पिछड़ते चले गये। भारतीय किसानों पर कृषि उत्पादन क्षमता बनाये रखने के लिए कृत्रिम रसायनिक उर्वरकों पर निर्भरता तथा कृषि भूमि पर प्रति हेक्टेयर में कृत्रिम रसायनिक उर्वरकों का मानक क्षमता से अधिक उपयोग करके किसान अधिकाधिक उत्पादन प्राप्त करने की निरंतर चेष्टा बढ़ती गयी। फलस्वरूप कृषि भूमि की उर्वरता सतत् रूप से घटती गई। भारतीय किसान व कृषि वैज्ञानिकों की चिन्ता का प्रमुख कारण भारत की बढ़ती जनसंख्या एवं भोजन उपलब्ध कराने की भारत सरकार की कटिबद्धता के कारण कृषि भूमि पर अधिक से अधिक सघन कृषि करने का दबाव बना हुआ है। आर्थिक क्षतिपूर्ति किसानों द्वारा नहीं कर पाने के कारण कई प्रदेश के किसानो में आत्महत्या की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। जिसे भारतीय कृषि के दूरगामी दुष्परिणान के रूप में देखा जा रहा है।

भूमि की उर्वरता को सबसे पहले सैद्धांतिक रूप से एवं कृषि भूमि में होने वाले अतिसूक्ष्म पारिस्थितिकिय संरचना एवं भौतिक व रसायनिक क्रिया को आपसी समन्वय एवं संचालन को चित्र–1 में प्रदर्शित किया गया है।[3]

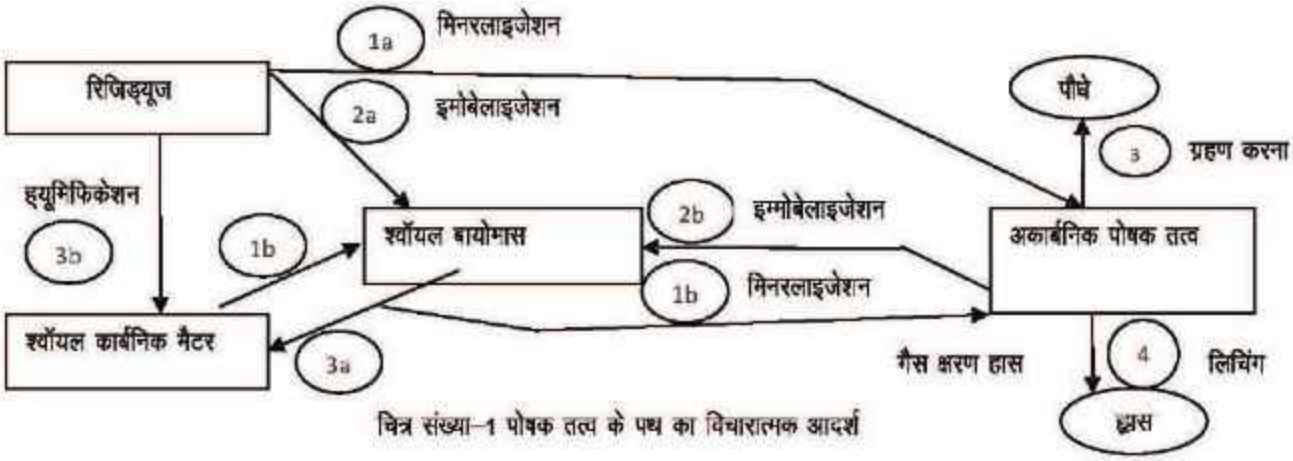

चित्र संख्या–1 पोषक तत्व के पथ का विचारात्मक आदर्श

भूमि उर्वरता मूल रूप निरुपण की तकनीकी विधि– भूमि की उर्वरता मूल रूप निरूपण[4] में सूक्ष्म जीवों की तकनीकी का उपयोग वर्तमान समय में किया जा रहा है। जिससे अति सूक्ष्म जीवों की संख्या व बायोमास में बढ़ोत्तरी की जा सके जिसके परिणाम स्वरूप भूमि की पारिस्थितिकि में निरंतर सुधार हो जाये जैसा की चित्र–1 में प्रदर्शित किया गया है। पोषक तत्व को संचलन नियमन व संतुलन के लिये आपसी कारकों में संतुलन बनाये रहना चाहिए जैविक व अजैविक कारकों में असामन्जस्य होने के कारण ही भूमि की उर्वरता पर भारी दबाव व क्षरण के कारण ही भूमि की उर्वरता की निरंतर क्षति हो रही है। निरंतर उत्पादकता भूमि की उर्वरता बनाये रखने के लिये सूक्ष्म जीवों द्वारा भूमि मूल रूप निरूपण की आवश्यकता होती है। भूमि की पारिस्थितिकिय तंत्र पर अधिक दबाव को कम करके एवं सूक्ष्म जीवों की जैविक प्रक्रिया को बढ़ा कर के भूमि की उर्वरता का संतुलन सतत् निम्न विधियों से बढ़ाया जा सकता है–

1. फसलों के अवशेष का संरक्षण।
2. पोषक तत्वों का पर्याप्त प्रबंधन करके।
3. अति सूक्ष्म जीवों के द्वारा कार्बन व नाइट्रोजन के अनुपात को नियंत्रित करके।
4. पोषक तत्वों की अपघटन की प्रक्रिया को सन्तुलित करके।
5. कृषि भूमि की सतत् रूप से प्रबंधन करके।
6. हरित खाद का अधिक प्रयोग करके।
7. प्राकृतिक वन उन्मूलन को रोक कर के।
8. झूम कृषि, स्लेश बर्न कृषि पर रोक लगा करके।
9. प्राकृतिक आग को लगने से रोक कर के।
10. भूमि अपर्दन या प्राकृतिक प्रभाव को कम करके।
11. वैज्ञानिक तकनीकी द्वारा कम उर्वरता वाले फसलों की खोज करके।
12. चारागाहों का प्रबंधन करके तथा बायोपेस्टिसाइड का उपयोग करके।

पोषक तत्वों के बजट पूल में कार्बनिक व अकार्बनिक तत्व कैल्शियम, मैग्नीशियम, पोटैशियम, सोडियम, मैन्गानीज, आयरन, जिंक, कॉपर फॉस्फोरस, सल्फर एवं ह्यूमस को छरित होने से रोक कर के इसे संरक्षित एवं सुरक्षित रखने के लिये उपरोक्त वैज्ञानिक विधि से भूमि की उर्वरता के मूल रूपण में सूक्ष्म जीवों का योगदान करके एवं उर्वरता को बनाये रखने की प्रक्रिया को नियमित कर कृषि भूमि की भौतिक रसायनिक गुणों को सूक्ष्म जीवों द्वारा प्रयोग में लाकर भूमि की बनावट, भूमि की वायु और कार्बनिक व अकार्बनिक अवयव में सुधार से उत्पादकता बढ़ जाती है और भूमि सतत् रूप से उर्वरा बनी रहती है।

नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करने वाले सूक्ष्म जीव निम्न वर्गो में विभक्त है– सहजीवी सूक्ष्म जीव राइजोबियम, कवक, लाइकेन नीले, हरित शैवाल(बीजीए), जलीय फर्न एवं अनावृति बीजिय पौधे। सामान्यतः द्वि–दलीय या दलहनी फसलों की जड़ो में गाठ बनाकर वायुमण्डलीय नाइट्रोजन को अमोनिया तथा नाइट्रेट में नाइट्रेजिनेज एन्जाइम की सहायता से स्थिरीकरण करके भूमि की नत्रजन को बढ़ा देने वाले जो निम्न है–

राइजोबियम की प्रजातियाँ	प्रयुक्त फसल
राइजोबियम लेग्यूमिनोसोरियम	मटर, चटरीमटरी, मसूर, लोबिया, सेम
राइजोबियम ट्रिपोली	बरसीम
राइजोबियम फैजियोलाई	सेम
राइजोबियम ल्यूपिनी	ल्यूपिन
राइजोबियम मेलिलोटाई	रिजका, फ्रेनूग्रीक
लोबिया समूह	लोबिया, ग्वार, मूँग, चना, अरहर, मूँगफली, मोथ, सेम, ढैंचा, सनई, शीशम, नील

उपरोक्त प्रजाति की सूक्ष्म जीवीं निम्न फसलों में प्रति हेक्टेयर वायुमण्डीय नाइट्रोजन को अमोनिया या नाइट्रेट के रूप में स्थिरीकरण करने का दर भिन्न–भिन्न हैं। मूंगफली(27 से 206) कि0ग्रा0/हे0, चना (23 से 97) कि0ग्रा0/हे0, मूँग में (50 से 66) कि0ग्रा0/हे0, लोबिया में (9 से 125) कि0ग्रा0/हे0, अरहर में (4 से 200) कि0ग्रा0/हे0, सोयाबीन (49 से 450) कि0ग्रा0/हे0, ऐसी फसलों की अपरोटेशन फसलचर के तहत बोआई करने से भूमि की पारिस्थतिकिय तंत्र एवं उर्वरता दोनों में सामन्जस्य की स्थिति बनी रहती है।

एजोबैक्टर एवं एजोस्पाइरीलम– धान के अतिरिक्त सभी खाद्यान्न वर्ग नें मुख्यतः बाजरा, ज्वार, तिलहन, नगदी फसलें, चारे, रेशेदार व अन्य फसलों जिसमें किसान बहुत कम उर्वरक का उपयोग करते हैं। उपरोक्त सूक्ष्म जीवों का फसलों के साथ उपयोग करने से पौधों के जड़ों की सतह पर स्वतंत्र रूप से रहते हुए वायुमण्डलीय नाइट्रोजन को अमोनिया में परिवर्तित कर पौधों को उपलब्ध कराते हैं तथा सभी सूक्ष्म जीवाणु पौधों की जड़ों एवं भूमि की सतह में विभिन्न प्रकार की कार्बनिक(शर्करा, एमिनो एसिड) एवं अकार्बनिक एवं अन्य पोषक तत्व समाहित कर भूमि ह्यूमस की मात्रा बढ़ा देते हैं जिसके कारण भूमि की मृदा में (25 से 35) कि0ग्रा0/हे0 नाइट्रोजन तथा अन्य पोषक तत्व स्थापित हो जाता है ऐसी फसलों की उत्पादन में सूक्ष्म जीवों की सहायता से (10 से 15) प्रतिशत की वृद्धि हो जाती है।

नीले हरित शैवाल– नीले हरित शैवाल उच्च नाईट्रोजन बंध वाले सूक्ष्म शैवालों की श्रेणी में अधिकांश जलीय नम भूमि व अल्प–क्षारिय प्रकृतिवास में पाये जाते हैं। कुछ में विशिष्ट प्रकार की कोशिका हेट्रेरोसिस्ट होती है। इसनें नाइट्रोजिनेज एन्जाइन की सहायता से वायुमण्डलीय नाइट्रोजन को अमोनियम या नाइट्रेट के रूप नें अपने प्रकृतिवास में स्थीरीकरण करते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ स्पेसीज जिसमें हेट्रेरोसिस्ट कोशिका नहीं पाई जाती हैं वे भी नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करते है, ऐसी कई वैज्ञानिकों की रिपोर्ट है। सहजीवी के रूप नें स्थिरीकरण करने वाले निम्न नीले हरित शैवाल– *नास्टॉक, एम्टीफार्मी, एनाबिना वैरियेंटएलिस, टाइलोपोथ्रिक्स टेनियुस, सिलेण्ड्रोस्पर्म म्यूजस, ओलोसाइसा फर्टिलिसमा, कैलोथ्रिक्स पैरिएटिना एवं रिवोलेरिया, हैप्लोसिफान, साइटोनिया, माइक्रोसिस्टीस, आसोलेटैरिया* व अन्य बहुत से स्पेसीज है जो नाइट्रोजन का योगीकरण व स्थिरीकरण करते हैं। नीले हरित शैवाल लगभग 20 से 40 कि0ग्रा0/हे0 नाईट्रोजन का स्थिरीकरण करते हैं तथा पौधों में अन्य कार्बनिक पदार्थों तथा पौध विकास वर्धक रसायनों जैसे पादप हार्मोन की मात्रा नें वृद्धि करते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य सूक्ष्म जीवी जैसे लाइकन में *नॉवेरिया*

स्पेसीज, *पेल्टीजीरा गोनेरिया टिंगटोरिया हारबेसियस* पौधे तथा *साइकस* की जड़ों में सहजीवी के रूप में *साबिना* व *नास्टॉक* स्पेसीज के नीले हरित शैवाल नाइट्रोजन का योगीकरण करते हैं। *एन्थोसिरास* जो एक ब्रायोफाइट पौधा है, के साथ *एन्थोसिरास एनाबिना* तथा जलीय फर्न *एजोला* के साथ सहजीवी के रूप में नीले हरे शैवाल कुछ डायटम के साथ अंतः सहजीवी के रूप में *रोहोफोलोबिया गीबा* आदि भी वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का योगीकरण करते हैं। फॉस्फेटिक उर्वरक भी नाइट्रोजन के पश्चात पौधों के वृद्धि एवं विकास के लिये आवश्यक प्रमुख पोषक तत्व है। कृषि भूमि में फॉस्फोरस की घुलनशीलता को बनाये रखने के लिये *सुडोमोनास स्ट्रेटा* जीवाणु एवं *माइकोराइजा* का उपयोग करके फारफोरस की घुलनशीलता की दर को बढ़ा देता है। भूमि की फॉस्फोरस चक्र की प्रक्रिया तेज हो जाती है जिससे पौधों को फॉस्फोरस की अवशोषण उपलब्धता बढ़ जाती है, परिणाम स्वरूप भूमि की उर्वरता एवं उत्पादन क्षमता बढ़ जाती है।

सूक्ष्म जीवों की उपयोग करने की विधि एवं लाभ– मृदा उपचार विधि, बीज उपचार विधि, पौध उपचार विधि एवं भूमि उपयोग प्रबन्धन विधि। सूक्ष्म जीवों के द्वारा भूमि उर्वरता मूल रूपेण से लाभ लागत मूल्य बहुत सस्ते होने से आर्थिक रूप से गरीब किसानों के लिये उपयोगिता. सूक्ष्म जीवों द्वारा उर्वरता के साथ एन्टी–बायोटिक या बायो–पेस्टिसाइड के रूप में उत्सर्जित करने से पेस्ट कंट्रोल नियन्त्रण व भूमि की उर्वरता में कोई हानि नहीं होती है एवं किसी भी प्रकार से भूमि प्रदूषित नहीं होती है। भूमि की भौतिक और रसायनिक संरचना पर किसी प्रकार का कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ता। किसानों की कृषि उत्पाद क्षमता लगभग 10 से 30 प्रतिशत तक बढ़ जाती है। जिससे ऋण ग्रसित किसान आर्थिक बोझ को कम करके आर्थिक सम्पन्नता की ओर अग्रसर हो सकता है।

संदर्भ

1. शर्मा, संदीप; कृष्ण, श्री; दीक्षित, विरेन्द्र एवं सिंह, बजरंग(2011) जैविक खेती का कृषि में महत्व, विज्ञान–वाणी, अंक 17, पृ0 33।
2. सिंह, हेमा एवं अन्य(1994) रिजिड्यूज टीलेज फॉर सस्टेनेबल ड्राई लैण्ड फॉर्मिंग, ट्रॉपिकल इकोलॉजी, खण्ड–35, अंक–1, मु0पृ0 1–23।
3. मेयर्स, आर0 जे0 के0 एवं अन्य(1994) द सिन्क्रोनाइजेशन ऑफ न्यूट्रिएन्ट मिनरलाईजेशन एण्ड प्लांट न्यूट्रिएन्ट डिमाण्ड, द बायोलॉजिकल मैनेजमेन्ट आफ ट्रोपिकल श्यायल फर्टिलिटी, मु0पृ0 81–114।
4. ओमोटायो, ओ0 ई0 एवं अन्य(2009) श्यायल फर्टिलिटी रिस्टोरेशन टेक्निक इन सब सहारा–अफ्रीका यूजिंग ऑर्गेनिक रिसोर्सेज, अफ्रीकन जर्नल ऑफ एग्रीकल्चरल रिसर्च, खण्ड 4, अंक–3, मु0पृ0 144–150।

मधुमेह प्रबन्धन में आयुर्वेद एवं परंपरागत ओषधियों की भूमिका

सन्तोष कुमार सिंह
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, रसायन विज्ञान विभाग
श्री जय नारायण महाविद्यालय, लखनऊ–226001, उ0प्र0, भारत
santoshsinghjnpg@gmail.com

प्राप्त तिथि– 31.07.2015, स्वीकृत तिथि– 25.09.2015

मधुमेह वर्तमान युग की विकट समस्या है, जिससे भारत व विश्व आतंकित है। इसी भय से सामान्य जन को मुक्त करने हेतु तथा इस रोग की गम्भीरता के संभावित खतरों को समझने तथा प्रभावशाली प्रबंधन एवं उपचार हेतु 11 नवम्बर को विश्व मधुमेह दिवस के रूप में मनाया जाता है। मधुमेह पर नियंत्रण तो किया जा सकता है, किन्तु इसे पूर्णतया समाप्त नहीं किया जा सकता। मधुमेह को अगर नियंत्रित न किया जाये, तो इसका असर गुर्दा, आँख, हृदय तथा रक्तचाप पर पड़ता है। मधुमेह की बीमारी में शरीर के रुधिर में शर्करा या ग्लूकोज की मात्रा बढ़ जाती है।[1] ऐसा तब होता है, जब शरीर में हारमोन इन्सुलिन की कमी हो जाती है या वो इन्सुलिन हमारे शरीर के साथ सही ताल मेल नहीं बिठा पाता।

आइये जानें, क्या है मधुमेह

यह रोग किसी विषाणु या कीटाणु के कारण नहीं होता है। मनुष्य ऊर्जा के लिए भोजन करता है। यह भोजन स्टार्च में बदलता है फिर स्टार्च ग्लूकोज में बदलता है जिन्हें सभी कोशिकाओं में पहुँचाया जाता है जिससे शरीर को ऊर्जा मिलती है। ग्लूकोज को अन्य कोशिकाओं तक पहुँचाने का काम इन्सुलिन का होता है और मधुमेह रोगी के शरीर में इन्सुलिन बनना बन्द अथवा कम हो जाता है जिससे शरीर में ग्लूकोज अथवा शर्करा की मात्रा अधिक हो जाती है।[2]

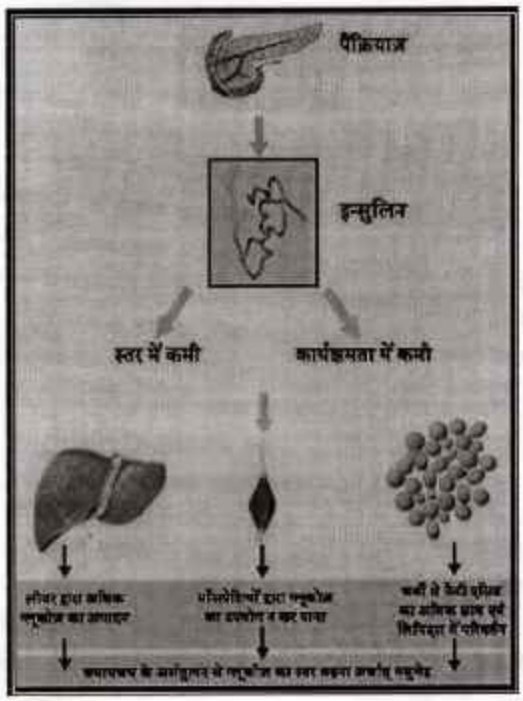

मधुमेह के प्रकार

टाइप 1 मधुमेह– मधुमेह के रोगी के शरीर में इन्सुलिन की मात्रा कम बनती है, जिसे नियंत्रित किया जा सकता है। इसमें रोगी को बाहर से इन्सुलिन दिया जाता है। जिससे उनका जीवन सामान्य चलता रहता है। टाइप 1 मधुमेह में अग्नाशय की बीटा कोशिकाएँ इन्सुलिन नहीं बना पाती हैं, जिसका उपचार असम्भव है। यह मधुमेह बच्चों और 19 साल तक के युवाओं को बहुत जल्दी प्रभावित करती है।

टाइप 2 मधुमेह– टाइप 2 मधुमेह के रोगी के शरीर में इन्सुलिन की मात्रा कम होती है पर शरीर इन्सुलिन का पूर्णतः उपयोग नहीं कर पाता। इसमें शरीर इन्सुलिन बनाता तो है, लेकिन कम मात्रा में और कई बार वो इन्सुलिन अच्छे से काम नहीं करता है। टाइप 2 मधुमेह को योग, परहेज तथा उचित खान–पान के ज़रिये नियंत्रित किया जा सकता है। यह वयस्कों को होती है।

मधुमेह के रोगी के शरीर में शर्करा की मात्रा को संतुलित रखना आवश्यक होता है, क्योंकि कम तथा अधिक दोनों ही स्थिति में रोगी के लिए यह प्राण घातक हो सकता है।[3]

मधुमेह होने के कारण– उच्च रक्तचाप, आनुवंशिक, इन्सुलिन की कमी, उच्च कोलेस्ट्रोल, सही खान–पान न होना, तनाव, शारीरिक कार्य की कमी, धूम्रपान, नशे की दवायें।

मधुमेह के लक्षण– अत्यधिक भूख लगना, अधिक नींद आना, प्यास अधिक लगना, कई बार पेशाब जाना, किसी घाव को भरने में बहुत अधिक समय लगना, शरीर के कुछ भागों का सुन्न होना अथवा झिनझिनी महसूस होना, आँख से कम दिखाई देना, जल्दी थकान होना, अचानक से वजन का कम होना, संक्रमण होना।

मधुमेह में ध्यान रखने योग्य तथ्य–

1. उचित समय अंतराल में मधुमेह की जांच करें,
2. खाने की रोज़मर्रा की आदतों में बदलाव लायें जैसे शक्कर ना लें, टुकड़ों में बार–बार परन्तु कम भोजन लें। दिन भर की एक उचित समय–सारिणी बनायें तथा उसका पालन करें,
3. पर्याप्त 6–7 घंटे की नींद लें,
4. संतुलित आहार के साथ ही वसा न लें,
5. अपने वज़न का ध्यान रखें,
6. सुबह की सैर एवं योग को दिनचर्या में शामिल करें,
7. खान–पान सम्बन्धी जानकारी के लिए डॉक्टर की सलाह लें,
8. किसी भी नीम हकीम की बातों में आकर इलाज न करवायें,
9. दवाओं को नियमित लें।

मधुमेह को अगर समय रहते नियंत्रित न किया जाए तो आँखों, गुर्दों आदि पर बहुत बुरा असर डालती है। किसी भी तरह की छोटी या बड़ी बीमारी के समय मधुमेह का अवलोकन जरूर करें। बिना मधुमेह की जांच के कोई शल्य चिकित्सा न करवायें तथा आपको मधुमेह है, यह बात सबसे पहले डॉक्टर को बतायें। मधुमेह रोगी को अगर किसी भी कारण से हृदयघात आता है तो जरूरी नहीं उसे हृदय में दर्द का अहसास हो, उसे जबड़ों अथवा बाएं हाथ में भी दर्द हो सकता है या कभी–कभी कोई दर्द महसूस नहीं होता। इसलिए जब भी घबराहट हो और बिना वजह पसीना आये तब तुरन्त डॉक्टर को दिखाएं।[4]

मधुमेह एक ऐसी बीमारी है जिसका सही तरह से ध्यान रखा जाए तो वह रोगी को ज्यादा नुकसान नहीं पहुँचाती, परन्तु वक्त रहते इसका उपाय अवश्य करें। कहते हैं अगर मधुमेह की बीमारी एक बार हो जाये तो वो इन्सान की मृत्यु के साथ ही जाती है। मधुमेह से पीड़ित व्यक्ति अपने आप को कई बार बहुत बीमार महसूस करने लगता है, उस पर खाने पीने की बहुत रोक टोक होती है जिससे वह अपने आपको सबसे अलग मानने लगता है। ऐसा माना जाता है कि मधुमेह से पीड़ित व्यक्ति को ही मीठा खाने का बहुत शौक होता है। उसे हमेशा मीठा खाने का मन करता है लेकिन उसे अपनी इस चाह को खत्म करना होता है। मधुमेह बीमारी वाले व्यक्ति को अपना शर्करा नियंत्रण में रखने के लिए हरी पत्तेदार सब्जियां, फल, जूस लेने की सलाह दी जाती है। उसे दिन में बार–बार थोड़ा–थोड़ा आहार लेना चाहिए। मधुमेह में शक्कर, आलू, चावल और कार्बोहाइड्रेट युक्त आहार नहीं खाना चाहिए। अगर शरीर में रक्त शर्करा बढ़ जाता है तो घबराहट होने लगती है और कई बार चक्कर भी आ जाते हैं।

मधुमेह की बीमारी से पीड़ित व्यक्ति ही बता सकता है कि इस बीमारी से उसे कितनी परेशानी है, वो जल्द से जल्द इस बीमारी को जड़ से दूर कर देना चाहता है। तो चलिए आज हम इस बीमारी पर भी प्राकृतिक तरीके से विजय प्राप्त करते हैं। नवीन शोधों द्वारा सिद्ध हुआ है कि आयुर्वेद एवं परंपरागत ओषधि की मधुमेह नियंत्रण में महत्वपूर्ण भूमिका है। ये सरल भी हैं तथा लम्बी अवधि तक उपयोग में लाये जाने पर इन ओषधियों का कोई दुष्प्रभाव भी नहीं पाया जाता है।[5]

मधुमेह नियंत्रण में आयुर्वेद एवं परंपरागत ओषधियाँ

करेला	करेला में ग्लूकोज़ की मात्रा न के बराबर होती है जिससे ये मधुमेह को नियंत्रित करने के लिए बहुत अच्छा माना जाता है। इसे खाने से शरीर में इन्सुलिन की मात्रा बढ़ती है और वे अच्छे से काम करते हैं। करेला दोनों तरह की मधुमेह बीमारी को नियंत्रित करने में सहायक होता है। करेला का जूस निकालकर उसमें थोड़ा पानी मिला लें, अब इसे रोज सुबह खाली पेट पियें। आप करेला की सब्जी या चिप्स को अपने रोज के खाने के साथ खाएं।[6]
आम	आम के पत्ते भी मधुमेह नियंत्रण में मदद करते हैं। आम के 10–15 ताजे पत्तों को 1 गिलास पानी में डालकर रात भर रख दें। अगले दिन इसे छानकर खाली पेट पी लें। इसे रोज लेने से रुधिर में इन्सुलिन की मात्रा सही बनी रहती है। इसके अलावा आप आम के पत्तों को छांव में सुखाकर पीस लें। अब इस पाउडर को दिन में 2 बार पानी के साथ खाएं।
तुलसी	तुलसी में शरीर की रुधिर शर्करा को संतुलित करने की क्षमता होती है। तुलसी के रस को निकाल लें। अब सुबह खाली पेट 2 चम्मच तुलसी के रस को पियें।[7]
दालचीनी	दालचीनी टाइप 2 मधुमेह होने पर उसे नियंत्रित करने में बहुत सहायक होता है। 1 चम्मच दालचीनी पाउडर को 1 कप गुनगुने पानी में मिलाएं और रोज सुबह पिएँ। इसके अलावा आप दालचीनी पाउडर

	को सलाद, सूप व चाय में डालकर भी ले सकते हैं। आपको बहुत जल्द आराम मिलेगा।
मेथी	मेथी शरीर में ब्लड शुगर नियंत्रित करता है। 1 कप पानी में 2 चम्मच मेथी को रात भर भिगोयें। अगले दिन सुबह खाली पेट पानी के साथ मेथी भी खायें। कुछ महीने तक लगातार यह प्रक्रिया करें।[8]
आंवला	आंवला में विटामिन सी होता है जो मधुमेह नियंत्रित करने में सहायक होता है। 2–3 आवंला को पीस कर पेस्ट बना लें। इसे एक कपड़े में लपेटकर निचोड़ें जिससे इसका जूस निकल आये। अब रोज सुबह खाली पेट 2 चम्मच जूस को 1 कप पानी में मिलाएं और पियें।
जामुन	मधुनेह नियंत्रित करने के लिए जामुन रामबाण की तरह काम करता है। इसमें मौजूद पोषक तत्व रक्त शर्करा को बहुत हद तक नियंत्रित करते हैं। जामुन की पत्ती, फल, बीज सभी मधुमेह नियंत्रण में सहायक हैं। जामुन मौसमी फल है, इसलिए जब भी यह आये, इसे ज्यादा से ज्यादा अपने आहार में सम्मिलित करें। जामुन हमारे भारतीय बाजार में आसानी से मिल जाती है। आप चाहें तो इसकी गुठली को सुखाकर पीस लें और पाउडर बना लें। अब पाउडर को 1–1 चम्मच सुबह शाम पानी के साथ खाएं। आपको इससे परिणाम जरूर मिलेगा। आपकी मधुमेह बहुत हद तक नियंत्रण में रहेगी।[9]
नीम की पत्ती	नीम की पत्ती मधुमेह नियंत्रित करती है क्योंकि इसमें मधुमेहरोधी गुण होता है। आप सुबह खाली पेट 8–10 ताज़ी पत्तियों को चबाएं। इसके अलावा आप पत्तियों का जूस निकालकर सुबह पियें। 2–3 महीने लगातार करते रहने से मधुमेह नियंत्रित होता है। इसे रोज पीने से कोलेस्ट्रोल की समस्या भी दूर होती है।[10]
एलोवेरा	एलोवेरा बढ़ती हुई रुधिर शर्करा को नियंत्रित करने में सहायक है। 2–3 तेज पत्ता, 1 चम्मच हल्दी और 1 चम्मच एलोवेरा जेल को पीस लें। अब इसे दिन और रात में खाने से पहले खाएं। कुछ महीनों में लाभ अवश्य मिलेगा।
अमरूद	अमरूद में विटामिन सी और ज्यादा फाइबर होता है जिसे खाने से रुधिर शर्करा नियंत्रण में रहती है। दिन में 1 अमरूद का सेवन इसे नियंत्रित करने में सहायक है। अमरूद को ज्यादा से ज्यादा खाने की कोशिश न करें, ये आपके शरीर के लिए नुकसानदायी भी हो सकता है।[11]
भिन्डी	भिन्डी खाने से ग्लूकोज नियंत्रण में रहता है। भिन्डी के दोनों साइड काटकर कांटे से इसमें बहुत से छेद कर लें। अब इसे 1 गिलास पानी में डालकर रात भर के लिए रख दें। अगले दिन सुबह खाली पेट इस पानी को पियें। कुछ हफ्तों तक रोज यह करें। इसके अलावा भिन्डी को अपने भोजन में सम्मिलित करें।
दूब घास	दूब घास भी मधुमेह नियंत्रण में काफी मदद करता है। दूब घास को अच्छी तरह से पहले धुल लें, फिर छोटे–छोटे टुकड़ों में काट लें और उसे पानी[12] या एथिल एल्कोहाल[13] में उबाल लें। फिर छानकर उसको ठंडा करके खाली पेट सेवन करें। आपकी मधुमेह बहुत हद तक नियंत्रित रहेगी।
ग्रीन टी	रोज सुबह खाली पेट 1 कप ग्रीन टी पियें। यह आपके पूरे स्वास्थ्य के लिए लाभदायक है।
केला	केले के तने का जूस का सेवन करने से मधुमेह नियंत्रित रहती है।[14]

कुछ अन्य महत्वपूर्ण बातें

1. आप समय पर अपना ब्लड शुगर चेक करते रहें। हो सके तो एक मशीन घर पर रखें और रोज सुबह जाँचें।
2. अच्छी दिनचर्या और उचित खानपान अपनायें।
3. फाइबर से भरपूर आहार ज्यादा से ज्यादा खाएं।
4. सुबह–सुबह 5–10 मिनट सूर्य की रोशनी में टहलें।
5. ज्यादा से ज्यादा पानी पियें।
6. तनाव न लें।
7. योग, व्यायाम, चहलकदमी को आदत में शामिल करें।

इन सभी बातों का ध्यान रखें। अगर बीमारी हो जाए तो डरें नहीं, विज्ञान ने आज बहुत उन्नति की है। बस थोड़ा सावधानी के साथ जियें। बीमारी से डर कर हार मान लेना घातक है।[15]

संदर्भ

1. सितासवाद, एस0 एल0(2000) जनरल ऑफ इथनोफार्माकोलॉजी, खण्ड–73, अंक–1, 2, मु0पृ0 71–79।
2. कम्बोज, वी0 पी0(2000) करेन्ट मेडिसिन, खण्ड–78, मु0पृ0 35–39।
3. फरेन्जो, डी0 एवं बोनाडोना, आर0 सी0(1992) डायबिटीज केयर, खण्ड–15, मु0पृ0 318–340।

4. बेन्ट, एस0 एण्ड को0 आर0(2004) अमेरिकन जनरल ऑफ मेडिसिन, खण्ड–116, मु0पृ0 478–485।
5. दुबे, एन0 के0; कुमार आर0 एवं त्रिपाठी(2004) करेन्ट मेडिसिन, खण्ड–86, मु0पृ0 37–41।
6. सिंह, एन0 एवं त्यागी, एस0 डी0(1989) इण्डियन जर्नल ऑफ फिजियोलॉजी एण्ड फार्माकोलॉजी, खण्ड–33, अंक–2, मु0पृ0 97–100।
7. सरकार, ए0 एवं लेवनिया, एस0 सी0(1994) इण्डियन जर्नल ऑफ फिजियोलॉजी एण्ड फार्माकोलॉजी, खण्ड–38, अंक–4, मु0पृ0 311–312।
8. शर्मा, आर0 डी0 एवं रघुराम, टी0 सी0(1990) यूरोपियन जर्नल ऑफ क्लीनिकल न्यूट्रीशन, खण्ड–44, अंक–4, मु0पृ0 301–306।
9. बंसल, आर0; अहमद, एन0 एवं किदवई, जे0 आर0(1981) इण्डियन जर्नल ऑफ बायो कैमिस्ट्री एण्ड फिजिक्स, खण्ड–18, अंक–5, मु0पृ0 377–382।
10. चट्टोपाध्याय, आर0 आर0(1966) जर्नल ऑफ फार्माकोलॉजी, खण्ड–27, अंक–3, मु0पृ0 431–434।
11. सिंह, सन्तोष कुमार(2007) जनरल ऑफ इथनोफार्माकोलॉजी, खण्ड–114, मु0पृ0 174–179।
12. सिंह, सन्तोष कुमार (2007) इण्डियन जनरल ऑफ क्लीनिकल बायो कैमिस्ट्री, खण्ड–22, अंक–2, मु0पृ0 48–52।
13. सिंह, सन्तोष कुमार(2007) जनरल ऑफ इकेम, मु0पृ0 1–6।
14. सिंह, सन्तोष कुमार (2007) इण्डियन जनरल ऑफ मेडिसिनल रिसर्च, खण्ड–126, मु0पृ0 224–227।
15. "डायबिटीज फैक्ट शीट एन0" 312 डब्लू0एच0ओ0, अक्टूबर 2013, रिटीज 25 मार्च, 2014।

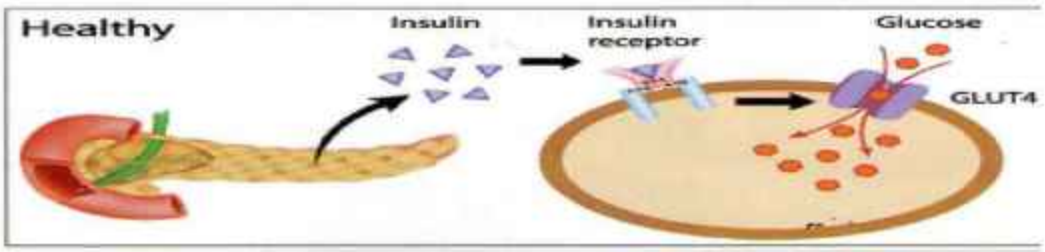

स्वस्थ व्यक्ति पैनक्रियाज ग्रन्थि : इन्सुलिन तथा रक्त शर्करा की स्थिति

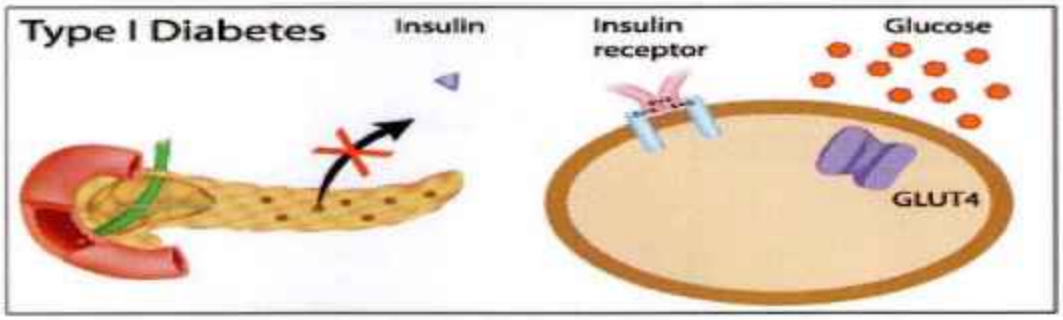

टाइप–1 मधुमेह : पैनक्रियाज ग्रन्थि, इन्सुलिन तथा रक्त शर्करा की स्थिति

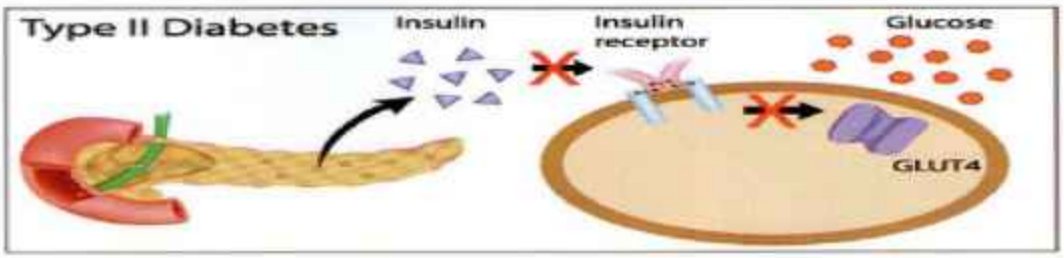

टाइप–2 मधुमेह : पैनक्रियाज ग्रन्थि, इन्सुलिन तथा रक्त शर्करा की स्थिति

भारतीय संस्कृति का बदलता स्वरूप और पर्यावरण प्रदूषण

ब्रजेश सिंह[1], वर्षा रानी[2] एवं संतोष कुमार सिंह[3]
[1]असिस्टेंट प्रोफेसर, रसायन विज्ञान, राजकीय महाविद्यालय, भदोही–221401, उ0प्र0, भारत
[2]असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, राजकीय महाविद्यालय, भदोही–221401, उ0प्र0, भारत
[3]असिस्टेंट प्रोफेसर, रसायन विज्ञान, जयनारायण पी0जी0 कॉलेज, लखनऊ–226001, उ0प्र0, भारत
santoshsinghjnpg@gmail.com

प्राप्त तिथि–31.07.2015, स्वीकृत तिथि–10.10.2015

पृथ्वी पर व्याप्त पर्यावरण प्रकृति का सर्वश्रेष्ठ वरदान है। मनुष्य इसी पर्यावरण की सर्वोत्कृष्ट कृति है। प्रकृति और मनुष्य परस्पर पूरक हैं। मनुष्य जैसे प्राकृतिक परिवेश में रहता है, उसका व्यवहार, रहन–सहन, वेशभूषा, खानपान, भाषा इत्यादि उसी के अनुसार विकसित होती है। यथा– गर्म प्रदेश में रहने वाले मनुष्य सूती वस्त्र पहनते हैं, ये वस्त्र कपास से बनते हैं और कपास की खेती योग्य भूमि गर्म प्रान्तों में पाई जाती है। इसी प्रकार ठण्डे प्रदेशों के लोग ऊनी वस्त्र पहनते हैं। यह ऊन ठण्डे जलवायु के जानवरों(याक, भेड़) के बालों से बनती है। तात्पर्य यह है कि किसी भी देश की संस्कृति उसके पर्यावरण पर निर्भर करती है। यदि पंजाब प्रान्त में लोग गेहूँ अधिक खाते हैं तो उसका स्पष्ट कारण है कि वहाँ की भूमि गेहूँ की खेती के लिए सर्वथा उपयुक्त है। इसी प्रकार बंगाल में चावल की उपज अधिक होने के कारण बंगाली लोग चावल अधिक खाते हैं। यदि भाषा का व्याकरणिक अध्ययन किया जाय तो भाषा भूगोल के अनुसार अलग–अलग जलवायु के लोगों की भाषा भी भिन्न–भिन्न होती है।

हमारी भारतीय संस्कृति इन तथ्यों से भली भांति अवगत है। इसीलिए हमारी संस्कृति में प्राकृतिक शक्तियों को देवी देवताओं का स्थान प्राप्त था और इनकी पूजा की जाती थी। मिट्टी को मातृ देवी, वायु को देवता और जल को पवित्र देवी, अग्नि को देवता कहा जाता था। भारतीय लोक संस्कृति तो पूर्णतः प्रकृति परक है। यहाँ का ग्राम्य जीवन प्रकृति से अत्यधिक प्रेम करता है। भारत गाँवों का देश है और भारतीय संस्कृति कृषक संस्कृति कहलाती है। यहाँ के किसान अपनी धरती से अत्यधिक लगाव रखते हैं। यहाँ की उपजाऊ भूमि में मौसम के अनुसार फसलें, फलों के वृक्ष, पुष्प आदि उगाए जाते हैं। अर्थात खेती पूर्णतः प्रकृति पर निर्भर है। यहाँ ऋतु गीत गाये जाते हैं। रोग ग्रस्त होने पर पेड़, पौधों, वनस्पतियों से भांति–भांति की औषधियां प्रयोग में लायी जाती हैं। जैसे– खांसी आने पर तुलसी दल का काढ़ा, चोट लगने पर हल्दी का लेप, चेचक होने पर नीम की पत्ती का रखना, दुग्ध पान कराने वाली माताओं को पीपर, सतावर खिलाना आदि।

"कपिला के दूध पिलायो, बाबुल नहलायों, झारी पिताम्बर ओढायो, लाल के सोआयो।
लाल क लुटुर लुटुर बरवा बहुत नीक लागे, बहुत छवि लागे ए हो !
माइ नी गूंथे जसोमति मने मन बिहंसें.....।"

बदलते वैज्ञानिक युग में शनैः–शनैः हमारी संस्कृति का स्वरूप बदलता जा रहा है। गाँव नगरों में बदल रहे हैं, नये–नये कल कारखाने, उद्योग, मिलें, फैक्ट्रियां स्थापित किए जा रहे हैं। वैज्ञानिक तकनीकों से बेमौसम कृत्रिम फसलें, फल आदि उगाए और पकाए जाने लगे हैं। पाश्चात्य आधुनिक संस्कृति प्राचीन भारतीय संस्कृति के मूल रूप को बदल रही है। भारत विकास कर रहा है। यहाँ विभिन्न प्रकार के वैज्ञानिक उपकरण ऊँची–ऊँची इमारतें, बड़े–बड़े उद्योग ग्रामीण संस्कृति में प्रयुक्त छोटे–छोटे उपकरणों(खुरपी, कुदाल, हल), सनई से बने झोपड़ियों और हस्त शिल्प के छोटे–छोटे उद्योगों को विस्थापित कर रहे हैं। लोक गीतों के स्थान पर पाश्चात्य पॉप गायन, लोक नृत्य के स्थान पर डिस्को का प्रचलन बढ़ गया है। अब शायद ही कोई बैलगाड़ी, घोड़ागाड़ी या साइकिल से चलता हो, इनका स्थान पेट्रोल और डीजल से चलने वाली तेज रफ्तार गाड़ियों ने ले लिया है। इस प्रकार भारत विकासशील है, किन्तु यह विकास जिसने हमारी संस्कृति को प्रभावित किया है, हमारे पर्यावरण को भी प्रभावित कर रहा है। ग्यातव्य है कि भारतीय संस्कृति और पर्यावरण परस्पर आश्रित हैं। यहाँ का किसान ऋतुओं के अनुसार फसलें बोता, उगाता और काटता है। स्त्रियां बोवाई, कटाई के गीत गाती हैं।

"बादल बरसे बिजुरी चमके, जियरा ललचे मोर सखिया।
सइंया घर ना अइले पानी बरसे लागल मोर सखिया।।"[1]

यहाँ ऋतु संबंधी गीत– कजली(सावन मास में), फगुआ(फागुन मास में), चैता(चैत्र मास में), और पावस ऋतु में बारहमासा गाए जाते हैं। वाद्य यंत्रों में बांसुरी जो बांस से निर्मित होती है, वीणा जो वृक्ष के तने से निर्मित होती है, आदि प्रमुख वाद्य यंत्र हैं। वस्तुतः भारतीय लोक संस्कृति में प्रकृति वैसे ही समाहित है, जैसे– शरीर में आत्मा। हरे–भरे खेतों में लोग काम करते हैं, आम के पेड़ों के नीचे बैठकर ये रखवाली करते हैं। महुआ के पेड़ से कोइना एकत्र कर अंधेरे में घर में प्रकाश का प्रबंध करते

हैं। घर के आंगन में बोई गई 'जमिरिया की गछिया' उन्हें आनन्द देती है। चन्दन का पेड़ सुगन्ध बिखेरता है। रावना और महुआ के फूल शीतला माता की पूजा के लिए खिले हुए दिखाई पड़ते हैं। तुलसी का पेड़ तो ग्रामीण स्त्रियों का चिर साथी है। हमारी संस्कृति में विवाहिता स्त्री को चंदन और लवंग के वृक्षों की लकड़ी से बने पलंग, लोहे और स्टील के बने पलंग से अधिक सुहावने लगते हैं। वे गाती हैं–

" नोरे पिछुवरवा लवंगिया की बगिया, लवंगा फूले आधी राति रे।
तेहि तर उतरे दुलही दुलरवा, तरहिं लवंगिया के फूल रे।।"[2]

प्रकृति में रची बसी यह लोक संस्कृति धीरे–धीरे विलुप्त हो रही है। हम प्रकृति से कोसों दूर ईंट पत्थरों की दुनिया में प्रवेश कर गये हैं। आधुनिक समाज प्रकृति से प्रेम नहीं, उसका दोहन करना जानती है। कम्प्यूटर युग कहे जाने वाले आज के समय में हमारी संस्कृति प्राकृतिक से कृत्रिम हो गयी है। विकास की दौड़ में हम पर्यावरण को शुद्ध रचाने वाली भारतीय संस्कृति के क्रियाकलापों(हवन, यज्ञादि) से हटकर प्रकृति को दूषित करने वाली संस्कृति(प्लास्टिक को जलाना, नदियों में अपशिष्ट बहाना, पेट्रोल, डीजल चालित वाहनों का प्रयोग) को अपना रहे हैं। प्रदूशण का अर्थ है– पर्यावरणीय असंतुलन, और इस असंतुलन का कारण है हमारी बदलती संस्कृति। आधुनिक विकासशील भारत की उपभोक्तावादी संस्कृति में पर्यावरण प्रदूषण के निम्नलिखित कारण प्रमुख रूप से उल्लिखित हैं–

1. वनों को काटकर उनके स्थान पर फैक्ट्रियाँ, मिलें, औद्योगिक प्रतिष्ठानों का निर्माण तथा वृक्षों का समुचित मात्रा में पुनः रोपण न करने से वृक्षों की कमी हो रही है। इससे वायु मण्डल में वृक्षों से प्राप्त ऑक्सीजन की कमी, भूमि की उर्वरता में कमी, बाढ़ का खतरा और वर्षा की कमी जैसी स्थितियां उत्पन्न हो रही हैं।
2. तेज रफ्तार वाहनों से विकास की गति बढ़ी है, हम अगम्य सुदूर स्थानों तक बड़ी आसानी से कम समय में पहुँचने लगे हैं। देशों की दूरियां कम हुई हैं। किन्तु दूसरी तरफ वाहनों में प्रयुक्त पेट्रोल, डीजल से निकलने वाला धुआँ पर्यावरण को प्रदूषित कर रहा है। इस धुएँ से लेड और कार्बन मोनोऑक्साइड जैसी हानिकारक गैसें हमारी त्वचा, नेत्र, फेफड़ों को विकारग्रस्त कर रही हैं। आकाश में उड़ने वाले हेलीकॉप्टर और हवाई जहाज एक ओर हमें अतिशीघ्र अधिक दूरी तक पहुँचा देते हैं और समय की बचत, कार्य गति बढ़ती है तो दूसरी ओर इनके ईंधन से निकलता धुँआ आकाशीय वायुमण्डल को प्रदूषित कर देता है।
3. वातावरण को नियंत्रित करने वाले यंत्र रेफ्रीजरेटर, ए.सी. आदि में क्लोरो फ्लोरो कार्बन नामक कृत्रिम गैस प्रयुक्त होती है। कारखानों(शीतगृह) में उपयोग के बाद इसका एक चौथाई भाग अपशिष्ट के रूप में वायुमण्डल में घुल जाता है, और ओजोन गैस के क्षरण का कारण बनता है। ओजोन की परत सूर्य की हानिकारक किरणों को पृथ्वी तक आने से रोकती है। इनके क्षरण से ये किरणें पृथ्वी के जीव जन्तुओं, पेड़–पौधों आदि को नुकसान पहुंचा सकती हैं। इसी कारण से पृथ्वी का तापमान भी बढ़ने लगा है।
4. आधुनिकतावादी संस्कृति में औद्योगिक कारखानों से निकलने वाले अपशिष्ट, भारी धात्विक पदार्थ(पारा, सीसा, जस्ता, तांबा आदि) का रसायनिक कचरा नदियों में बहाया जाता है। अपनी शारीरिक स्वच्छता के लिए उपयोग में लाए गये साबुन, डिटर्जेंट, घर की नालियों की साफ सफाई में प्रयुक्त कीटनाशक, खेतों में प्रयुक्त उर्वरक, मलमूत्र, कचरा, मृत शरीर आदि का निष्कासन नदियों में किया जाता है, जिससे उसका जल प्रदूषित हो जाता है। जिस नदी को पवित्र कहकर हम तीज त्यौहारों पर उसकी आरती पूजा करते हैं, उसी में साबुन, डिटर्जेंट, पॉलीथीन, फूल, बोतल, आदि बहाकर क्या हम पाप के भागी नहीं बन रहे है?
5. वैज्ञानिक विकास ने प्लास्टिक की थैलियां, बोतल जैसे कभी नष्ट न होने वाले संसाधन तो उपलब्ध करा दिए, किन्तु इनके कचरे के दुष्परिणामों पर विचार नहीं किया। मिट्टी में इकट्ठा होकर ये नष्ट न होने वाले कचरे मृदा के सूक्ष्म जीवों(भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ाने वाले बैक्टीरिया) का विनाश कर रहे हैं। इन्हीं कारणों से भूमि का ताप और दाब बढ़ने लगा है। यह ज्वालामुखी विस्फोट तक का कारण बन सकता है।
6. नगर और कारखानों के प्रदूषित जल, अपशिष्ट, कूड़ा आदि खाली भूमि में बहा दिया जाता है इसमें निहित रसायन, धातु, ताप, विषैली गैसें आदि मृदा में प्रवेश कर जाती है और कृषि योग्य उर्वरा भूमि भी बंजर हो जाती है।
7. पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से तीव्र ध्वनि से बजने वाले वाद्य यंत्रों, चीखते स्वर में लाउडस्पीकर, माइक, इलेक्ट्रॉनिक वूफर साउण्ड वाले बड़े–बड़े स्पीकर आदि संयंत्रों में गाये जाने वाले गीतों, वाहनों के हार्न आदि से ध्वनि प्रदूषण बढ़ता जा रहा है। ध्वनि प्रदूषण से बहरापन, दिल का दौरा, दिमागी बिमारियां जैसे माइग्रेन, अनिद्रा, कार्यक्षमता में ह्रास आदि का खतरा बढ़ रहा है।[3]

इस प्रकार भारतीय लोक संस्कृति आधुनिक उपभोक्तावादी संस्कृति में परिवर्तित होकर पर्यावरण प्रदूषण का कारण बन गयी है। कामायनी जैसा महाकाव्य लिखकर कवि जयशंकर प्रसाद ने मानव संस्कृति को पर्यावरणीय असंतुलन के प्रलयंकारी दुष्परिणामों के प्रति बार–बार सचेत किया है–"यदि हम इसी प्रकार प्रकृति का दोहन करते रहे तो एक दिन देव संस्कृति की भांति यह मानव संस्कृति भी प्रकृति के कोप का भाजन बन जाएगी.....

'आह! सर्ग के अग्रदूत! तुम असफल हुए विलीन हुए
भक्षक या रक्षक जो समझो, केवल अपने मीन हुए
//////////////////////
देव दम्भ के महामेघ में सब कुछ ही बन गया हविष्य
अरे अमरता के चमकीले पुतलों तेरे वे जयनाद
कांप रहे हैं आज प्रतिध्वनि बनकर मानों दीन विषाद
प्रकृति रही दुर्जेय पराजित हम सब थे भूले मद में
भोले थे हा! थतरते केवल सब विलासिता के नद में
वे सब डूबे, डूबा उनका विभव, बन गया पारावार
उमड़ रहा था देव सुखों पर दुःख जलाधि का नाद अपार।
//////////////////////
शक्ति रही हा! शक्ति प्रकृति थी पदतल में विनम्र विश्रांत
कँपती धरती उन चरणों से होकर प्रतिदिन ही आक्रन्त
स्वयं देव थे हमसब तो फिर क्यों न विश्रृंखल होती सृष्टि
अरे अचानक हुई इसी से कड़ी आपदाओं की वृष्टि
//////////////////////
भरी वासना सरिता का वह कैसा था मदमत्त प्रवाह
प्रलय जलधि संगम जिसका देख हृदय था उठा कराह।।'[4]

अतः हमें उस अपसंस्कृति से बचना होगा जो प्रकृति का दोहन करना जानती है और उस भारतीय संस्कृति को विलुप्त होने से बचाना होगा जिसमें प्रकृति प्रेम कूट–कूट कर भरा है। यह तभी संभव है जब हम अपने पर्यावरण को स्वच्छ और संतुलित रखें। जितना हम विकास के लिए प्रकृति से लेते हैं, उतना ही हमें देना भी होगा। यदि हम वनों को काटकर औद्योगिक प्रतिष्ठान बना रहे हैं, तो उसी अनुपात में वृक्षारोपण भी करना होगा। वाहनों से निकलने वाले धुओं को प्रदूषण मुक्त बनाना होगा। मृदा प्रदूषण को रोकने के लिए प्लास्टिक बैग, थैलों और बोतलों का प्रयोग बंद करना होगा। कृत्रिम वर्षा, परमाणु बम, आदि विस्फोटक हथियारों का निर्माण और प्रयोग रोकना होगा। वैज्ञानिक प्रयोगों में प्रकृति के साथ होने वाले खिलवाड़ को बंद करना होगा।

संदर्भ

1. कृष्णदेव, उपाध्याय(2002) भोजपुरी ग्रामगीत, भाग–1, पृ0 334।
2. त्रिपाठी, रामनरेश(1999), ग्रामगीत, पृ0 69।
3. सिंह, परमेश्वर(2001) प्रकृति, मानव एवं पर्यावरण, पृ0 80।
4. प्रसाद, जयशंकर(1993) कामायनी, चिंता सर्ग, पृ0 17।

विज्ञान समाचार–नवीन जानकारी

दीपक कोहली
पत्राचार हेतु पता– 5/104, विपुल खण्ड, गोमती नगर, लखनऊ–226010, भारत
deepakkohli64@yahoo.in

प्राप्त तिथि– 22.04.2015, स्वीकृत तिथि– 20.05.2015

भूगर्भीय खनिज को मिला "ब्रिजमैनाइट" नाम– लगभग 135 वर्ष पूर्व पृथ्वी पर गिरी एक चट्टान से हमारे वैज्ञानिकों को धरती के भीतर मौजूद सबसे आम पदार्थ खनिज(मिनरल) को नाम देने में मदद मिली है। इस पदार्थ को अब "ब्रिजमैनाइट" नाम दिया गया है। रोचक तथ्य यह है कि हमारी पृथ्वी का 38 प्रतिशत हिस्सा मैग्नीशियम आयरन सिलिकेट के अत्यन्त घने रूप में पाये जाने वाला यह मिनरल ही है। इसका नाम स्वर्गीय पर्सी ब्रिजमैन के नाम पर रखा गया है, जिन्हें सन् 1946 में भौतिकी का नोबेल मिला था। ब्रिजमैनाइट बहुत आम मैटीरियल है, फिर भी यह वैज्ञानिकों की पहुँच से दूर था। इसकी वजह यह है कि यह हमारी धरती की सतह से 660 से 2,900 किलोमीटर की गहराई में अत्यन्त ऊँचे दबाव में पाया जाता है। इसे धरती की ऊपरी सतह तक लाना संभव नहीं था। हमारे वैज्ञानिक कई दशकों से पृथ्वी के भीतर मौजूद इस खनिज के बारे में जानते थे। असल में यह मिनरल पृथ्वी की आंतरिक सतह में पैदा होने वाले भूकंप वाइब्रेशन(कंपन) में बदलाव कर देता है। इसका कोई प्राकृतिक सैम्पल नहीं था और विशेषज्ञ बिना किसी नाम के इसका अध्ययन कर रहे थे। लेकिन अमेरिका की "नेवादा यूनिवर्सिटी" के वैज्ञानिक "ओलिवर शॉउनर" की शोध टीम ने एक उल्का पिंड के भीतर ब्रिजमैनाइट को खोज लिया। अंतरिक्ष से आई यह चट्टान ऑस्ट्रेलिया के क्वींसलैण्ड में सन् 1879 में गिरी थी। इस खोज से अब वैज्ञानिकों को यह समझाने में मदद मिलेगी कि पृथ्वी की सतह के भीतर द्रव्यमान और ऊष्मा का बहाव किस तरह से होता है।

अब कृत्रिम स्मार्ट त्वचा से चमकेगी त्वचा– दक्षिण कोरिया के शोधकर्ता ने एक ऐसी कृत्रिम "स्मार्ट स्किन" का विकास करने में सफलता हासिल की है, जो मानव त्वचा जैसी ही सॉफ्ट और एलास्टिक है। इस स्किन के अंदर तमाम सेंसर लगाये गए हैं जिनमें यह तापमान और आर्द्रता एवं स्पर्श की संवेदना का भी अनुभव कर सकती है। शोधकर्ताओं ने सॉफ्ट सिलिकॉन रबर के भीतर माइक्रोस्कोपिक सेंसर और कुछ हीटर डालकर इस तरह की त्वचा विकसित करने में सफलता हासिल की है। "सियोल नेशनल यूनिवर्सिटी" के "स्कूल ऑफ केमिकल और बायोलॉजिकल इंजीनियरिंग" में प्रोफेसर दाए हेयोंग किम के नेतृत्व में काम करने वाली शोध टीम को यह कामयाबी मिली है। प्रोफेसर किम का कहना है कि इस शोध के बाद आगे ऐसी आर्टिफिशियल स्किन को विकसित करने में मदद मिलेगी, जो असली त्वचा जैसा व्यवहार कर सके। इस त्वचा के अंदर जो सेंसर लगाए गए हैं वे दबाव, तापमान और आर्द्रता को आंक सकते हैं और यह भी जान सकते हैं कि त्वचा को कितना खींचा जा रहा है। दूसरी ओर इसके अंदर जो हीटर होते हैं वे मानव शरीर जैसी गर्मी बनाये रखते हैं। शोधकर्ता के अनुसार यह आर्टिफिशियल स्किन ऐसी एक्टिविटीज में भी सही–सही कार्य करती पाई गई, जिनमें त्वचा 30 प्रतिशत तक खिंच जाती है, जैसे– कलाई को मोड़ना, हाथ मिलाना आदि। शोधकर्ताओं ने एक ऐसा प्रयोग भी किया, जिससे यह पता चला कि इस कृत्रिम त्वचा से चूहे के मस्तिष्क में दबाव का संवेदी संकेत गया है। शोधकर्ताओं ने कुछ माइक्रोइलेक्ट्रोड को चूहे के पेरिफेरल नर्व और आर्टिफिशियल स्किन के सेंसर से जोड़ दिया। स्किन पर दबाव डालने के बाद चूहे के इलेक्ट्रोइंसफेलोग्राम(ई.ई.जी.) से यह पता चला कि इलेक्ट्रोड के माध्यम से जो दबाव डाले गये थे, उसका इलेक्ट्रॉनिक सिग्नल मस्तिष्क तक पहुँच गया। यह शोधकार्य अंतर्राष्ट्रीय जर्नल "नेचर कम्युनिकेशंस" में प्रकाशित किया गया है।

अलार्म बगैर समय से जगायेगी घड़ी– यदि आप जल्दी जग नहीं पाते तो यह घड़ी आपके लिए विशेष रूप से काम की हो सकती है। वैज्ञानिकों ने ऐसी एक अलार्म घड़ी विकसित की है जो खुद पता लगा लेती है कि व्यक्ति का शरीर नींद पूरी कर जगने के लिए तैयार है। इस अलार्म घड़ी को "स्मार्ट आउरा बायो–क्लॉक" नाम दिया गया है। यह उच्च तकनीक युक्त विशेष सेंसर से सम्बद्ध है। यह सेंसर एक पैड की शक्ल में है जो उपयोग करने वाले के बिस्तर की चादर के नीचे लगाया जाता है। यह सेंसर वास्तव में मनुष्य के सांस लेने और दिल की धड़कन जैसी शारीरिक गतिविधियों को मापने में सक्षम है। शारीरिक गतिविधियों के आंकड़ों के आधार पर यह मनुष्य के सोने के ढंग की निगरानी करता है। यह सेंसर रंग बदलने में सक्षम एक लैंप से जुड़ा है, जिसमें स्पीकर लगा है। यह स्पीकर एक आईफोन एप्लीकेशन से जुड़ा है।

यह सोये हुए व्यक्ति को जगाता है। साथ ही यह किसी व्यक्ति की नींद सम्बन्धी आदतों की व्याख्या करने में भी मददगार हो सकता है। रंग बदलने वाला लैंप अलग–अलग समय में लाल, पीली, सफेद और नीली रोशनी प्रदर्शित कर सकता है। शारीरिक गतिविधि और रोशनी का तालमेल इस अलार्म घड़ी को समझा देता है कि कौन सा समय व्यक्ति के जगने का समय है और वह बजने लगती है। इसकी अनुमानित कीमत 180 पाउंड(लगभग 18 हजार रुपये) है। इस घड़ी का निर्माण फ्रेंच कम्पनी विदिंग्स ने किया है। इसको पहले पहल लॉस वेगास में कम्प्यूटर इलेक्ट्रॉनिक शो में प्रदर्शित किया गया था। यह भविष्य का गैजेट सही समय पर जगाने के अलावा कमरे का तापमान माप सकता है और इसमें लगे सेंसर कमरे में

शोरगुल के स्तर की जानकारी दे सकते हैं। सुबह होने के समय इससे जुड़ा लैंप अपनी रोशनी बदलने लगता है और व्यक्ति को जगाने की तैयारी करने लगता है।

सूखा पड़ने से हुआ माया सभ्यता का अंत– एक नवीन शोध में कहा गया है कि करीब एक सदी लंबे सूखे के कारण संभवतः प्राचीन माया सभ्यता का अंत हुआ होगा। शोधकर्ताओं ने बेलिज के मशहूर भू–जल गुफा, जिसे "ब्लू होल" के नाम से जाना जाता है और उसके आसपास की लगूनों से लिए गए खनिजों का विश्लेषण किया और पाया कि 800 से 900 ई0 के मध्य में एक भयंकर सूखा पड़ा था। यह वही समय था जब माया सभ्यता का अंत हुआ था। हालांकि, यह ऐसा शोध नहीं है जिसमें पहली बार माया सभ्यता के अंत का कारण सूखे को बताया गया हो लेकिन नए नतीजे इस विचार को पुख्ता करते हैं कि सभ्यता के खात्मे में सूखे की भूमिका अवश्य थी। जर्नल "लाइव साइंस" की रिपोर्ट के अनुसार 300 ई0 से लेकर 700 ई0 तक गाया सभ्यता युकैटन प्रायद्वीप पर फली–फूली। 700 ई0 के बाद की सदियों में सभ्यता की निर्माण गतिविधियां धीमी पड़ गई, युद्ध की वजह से संस्कृति में गिरावट आई और अराजकता फैल गई।

आठ हजार साल पहले भी बनाया जाता था जैतून का तेल– ऑलिव ऑयल या जैतून का तेल आज के जमाने में ही इतना लोकप्रिय नहीं है बल्कि इजरायल में आठ हजार साल पहले भी लोग इसका प्रयोग करते थे। शोध पत्रिका "प्लांट साइंस" में प्रकाशित एक नये शोध से यह खुलासा हुआ है कि 8000 ईसा पूर्व भी जैतून का तेल इस्तेमाल किया जाता था। उत्तरी इजरायल के गैलिली इलाके में "एनजिप्पोरी" में खुदाई के दौरान एक मिट्टी का बर्तन पाया गया था। इजरायल के प्राचीन धरोहर प्राधिकरण का दल जानना चाहता था कि इस मिट्टी के बर्तन में क्या रखा हुआ था। यह जानने के लिए विशेषज्ञों के दल ने मिट्टी के पात्र में रखे गये सामान के अवशेष की जाँच शुरु कर दी। जाँच में पाया गया कि इस पात्र में सबसे प्राचीन जैतून का तेल रखा गया था। यह पात्र ताम्र पाषाण युग का था। जाँच की दोबारा पुष्टि करने के लिए शोधकर्ताओं ने एक नए मिट्टी के पात्र में एक साल पुराने जैतून के तेल को रखा और पाया कि दोनों नमूनों के बीच बहुत समानताएं हैं। इस नए शोध से खुलासा हुआ है कि जैतून के पौधे को इजरायल के लोग बहुत पहले ही अपने प्रयोग के लिए उगाने लगे थे।

वैज्ञानिकों ने बनाई एक नई एंटीबायोटिक– एक बड़ी सफलता के तहत वैज्ञानिकों ने लगभग 30 साल में पहली बार एक नई एंटीबायोटिक खोजने में कामयाबी हासिल की है। कमाल की बात यह है कि वैज्ञानिकों ने गंदगी के ढेर में एक बेहद महीन चिप डालकर "टैक्सोबैक्टिन" नामक इस एंटीबायोटिक को खोजा है। बोस्टन और बॉन, जर्मनी के शोधकर्ताओं ने बताया कि यह एक प्राकृतिक एंटीबायोटिक है जो टी.बी., सेप्टीसीमिया, न्यूमोनिया जैसी संक्रामक बीमारियों का इलाज आसानी से कर सकती है। चूहों पर इस दवा का सफलतापूर्वक परीक्षण किया जा चुका है। इस दौरान इसका कोई साइड इफेक्ट भी नहीं दिखा। इंसानों पर इसका जल्दी ही प्रयोग किया जाने वाला है। उपचार के लिए एंटीबायोटिक वैसे तो पूरी दुनिया में दशकों से प्रयोग की जा रही है, लेकिन बेवजह इस्तेमाल से रोगों से लड़ने की इसकी क्षमता को वर्तमान में कम कर दिया है। इसीलिए नई एंटीबायोटिक की खोज को अहम कामयाबी के तौर पर देखा जा रहा है। इस दवा के जल्दी ही बाजार में उपलब्ध होने की उम्मीद है। यह एंटीबायोटिक बैक्टीरिया पर सीधे दो गुना हमला बोलती है। इसकी यही खूबी इसे पुराने एंटीबायोटिक से अलग और असरदार बनाती है।

अमेरिका में सैन फ्रांसिस्को स्थित "एंटी माइक्रोबियल रेजिस्टेंस विद इंफेक्शन्स डिसीज सोसायटी" के निदेशक "हेनरी चेंबर्स" ने कहा कि अभी तक दुनिया में ऐसी कोई दवा नहीं बनी है, जिसके लिए समय के साथ बैक्टीरिया अपनी प्रतिरोधकता को विकसित न कर लेते हों। यानि एक ही दवा जब बार–बार दी जाती हो तो अक्सर ये बैक्टिीरिया उस दवा से लड़ने में सक्षम हो जाते हैं, लेकिन नई खोज के तहत टेक्सोबैक्टिन नामक इस एंटीबायोटिक दवा से ये बैक्टीरिया लड़ नहीं पायेंगे। इसलिए डॉक्टरों के लिए यह वरदान साबित होगी।

तकनीक का कमाल, लकवाग्रस्त हाथ में हलचल– आए दिन तकनीक के ऐसे कारनामें सामने आते हैं, जिन्हें देखकर हर कोई वाह–वाह कर उठता है। अमेरिका के "ओहियो स्टेट यूनिवर्सिटी वेक्सनर मेडिकल सेंटर" और "बैटले मेमोरियल इंस्टीट्यूट" के संयुक्त प्रयासों से शोधकर्ताओं ने चार सालों से लकवाग्रस्त व्यक्ति के हाथों में हलचल पैदा कर दी, वह भी उसके मस्तिष्क के पूर्ण नियंत्रण के साथ। 23 वर्षीय "इयान बर्कहार्ट" का शरीर चार साल पहले लकवाग्रस्त हो गया था। इसके बाद से ही वह अपने हाथों का उपयोग करने में अक्षम हो गया था। शोधकर्ताओं ने एक बेहद छोटे चिप "न्यूरोब्रिज" को इयान के मस्तिष्क में लगाकर इस कारनामे को अंजाम दिया। यह न्यूरोब्रिज प्रभावित क्षेत्र को पार करते हुए मस्तिष्क के संकेतों को सीधे इयान की मांसपेशियों तक पहुँचा देता है। न्यूरोब्रिज को तैयार करने में वैज्ञानिकों को दस साल का वक्त लगा। इयान के हाथ को इस इलाज के लिए तैयार करने में भी लम्बा वक्त लगा और फिर तीन घंटे के ऑपरेशन के पश्चात् चिप को उसके दिमाग में लगा दिया गया। इयान ने कहा, "यह एक स्वप्निल सा अनुभव है। मैं यह स्वीकार कर चुका था कि अब मैं कभी अपने हाथ का इस्तेमाल नहीं कर सकूंगा"।

अब पेड़ पर पैदा हो सकती है बिजली– अब वो दिन दूर नहीं जब बिजली पेड़ पर पैदा की जायेगी। इस परिकल्पना को साकार करने के लिए फ्रांसीसी इंजीनियरों ने एक कृत्रिम पेड़ विकसित किया है। यह पेड़ हवा के उपयोग से बिजली पैदा कर सकता है। इस कृत्रिम पेड़ "विंड ट्री" को एक फ्रांसीसी टीम ने तैयार किया है। पेरिस कंपनी के संस्थापक "जेरोम मिचौड लेरिविरे" ने बताया, इस पेड़ को बनाने का ख्याल उन्हें तब आया जब उन्होंने हवा न चलने के बावजूद पत्तियों को हिलते देखा। इस कंपनी की अगले वर्ष बाजार में विंड ट्री बेचने की योजना है। उन्होंने बताया कि इससे ऊर्जा को वाट में परिवर्तित किया जायेगा। इस पेड़ की "पत्तियों" में इस तरह के छोटे–छोटे ब्लेड लगाये गये हैं जो हवाओं को अंदर की तरफ मोड़ते हैं। यानि यह विंड ट्री हवा के बहाव से बिजली पैदा करती है। उन्होंने कहा कि इंजीनियरों की टीम को तीन साल के शोध के बाद सफलता मिली है। इंजीनियरों ने तीन साल के शोध के बाद 26 फीट ऊँचा प्रोटोटाइप पेड़ विकसित किया है। इसे उत्तर–पश्चिम फ्रांस के ब्रिटनी शहर के प्लूमरबोदोयू कम्यून में लगाया गया है। इंजीनियरों को उम्मीद है कि इस शोध के चलते वास्तव में लोग अपने घरों और शहरी केन्द्रों में इसका उपयोग कर सकते हैं।

सेकेंड के दस खरबवें हिस्से में उबलेगा पानी– सर्दियों में सुबह–सुबह नहाने के लिए पानी गर्म करने की समस्या होती है। कैसा हो यदि पानी पलक झपकते ही उबल जाये। अब ऐसा होना मुमकिन हो सकेगा क्योंकि विज्ञानियों की टीम ने ऐसी तकनीक विकसित की है, जिसके प्रयोग से पानी को सेकेंड के दस खरबवें हिस्से में ही उबाला जा सकेगा। विज्ञानियों की टीम में एक भारतीय मूल का विज्ञानी भी शामिल है। यह एक सैद्धांतिक अवधारणा है और अभी तक इसका प्रदर्शन नहीं किया गया है। इस अवधारणा के मुताबिक कुछ मात्रा में पानी को 600 डिग्री सेल्सियस तापमान तक पहुँचने में आधा पीको सेकेंड(सेकेंड का दस खरबवां भाग) लगे। इसे अब तक का सबसे तेज पानी गर्म करने का तरीका माना जा रहा है। पानी गर्म करने का यह तरीका विकिरण पर आधारित है। सेंटर फॉर फ्री इलेक्ट्रॉन लेजर साइंस(सी.एफ.ई.एल.) के "डॉ0 आरिओल वेंड्रेल" के मुताबिक पानी को 600 डिग्री सेल्सियस तक गर्म करने में आधा पीको सेकेंड समय लगेगा। सबसे अच्छी बात यह है कि इस दौरान पानी के अणुओं को कोई नुकसान नहीं होगा। (सी.एफ.ई.एल.) का गठन संयुक्त रूप से डेनमार्क इलेक्ट्रॉन सिंक्रोटॉन, हैंबर्ग विश्वविद्यालय और जर्मन मैक्सप्लैंक सोसायटी वेंड्रेल ने किया है।

आर्टिफिशियल रेटिना ने बढ़ाई नेत्रहीनों की उम्मीद– जापान के शोधकर्ताओं ने एक ऐसा आर्टिफिशियल रेटिना विकसित करने में सफलता पाई है, जिससे नेत्रहीन लोगों की आँखों की रोशनी लौटाने की उम्मीद बढ़ गई है। इस "आर्टिफिशियल विजन सिस्टम" से उन लोगों को देखने में काफी मदद मिलेगी, जिनकी किसी बीमारी या अन्य वजह से आँखों की रोशनी कमजोर हो गई है। आजकल की डिजिटल दुनिया में आँखों की बीमारियों का जोखिम काफी बढ़ गया है। जापान में तो इन सबकी वजह से करीब 3 लाख लोग अपनी आँखों की रोशनी गंवा चुके हैं। इन सबको देखते हुए जापान के शोधकर्ता लगातार इस बात की कोशिश में लगे हैं कि ऐसे लोगों की देखने की क्षमता को कैसे वापस लाया जाए। शोधकर्ताओं ने ओसाका यूनिवर्सिटी हॉस्पिटल में नेत्रहीनों की आँखों में आर्टिफिशियल रेटिना लगाया गया। ये रेटिना इलेक्ट्रोड से बनाये गये हैं, जिनकी मदद से रोगी की आँखों की रोशनी वापस आ गई। "ओसाका यूनिवर्सिटी" ने इसके लिए जिस तकनीक को इजाद किया है, उसके तहत नेत्रहीन व्यक्ति को एक चश्मा पहनाया जाता है जिसमें छोटा सा चार्ज कपल्ड डिवाइस सी.सी.डी. से हासिल इमेज डाटा शॉट को गले के पास लगे इमेज प्रोसेसिंग डिवाइस को भेजता है। इस इमेज डाटा को कनवर्ट कर इस तरह से हासिल सिग्नल को रेटिना के आउटर पार्ट स्लेरा में लगाए 6 वर्ग मिलीमीटर के इलेक्ट्रोड चिप के द्वारा रेटिना सेल्स को भेजा जाता है। इस प्रकार नेत्रहीन को देखने में मदद मिलती है।

छः करोड़ साल पहले थी हिमालय जैसी श्रंखला– वैज्ञानिकों ने इतिहास में दबी 2500 किलोमीटर रेंज में फैली विशाल पर्वत श्रंखला का पता लगाया है, जो वर्तमान हिमालय रेंज की तरह ही कभी धरती पर मौजूद थी। वैज्ञानिकों के अनुसार उस श्रंखला का अस्तित्व 6 करोड़ साल पूर्व था, जब धरती पर जीवन की शुरुआत हो रही थी। ये पर्वत श्रंखला पश्चिमी अफ्रीका और उत्तर पूर्व ब्राजील तक फैली हुई थी, जो उस समय सुपर कांटिनेंट गोंडवाना का हिस्सा थे। इसके सबूत उत्तर–पूर्व ब्राजील में पाए गए हैं। ये रिसर्च "द ऑस्ट्रेलियन नेशनल यूनिवर्सिटी", ऑस्ट्रेलिया "जिओलॉजिकल सर्वे ऑफ ब्राजील", ब्राजील के शोधकर्ताओं ने मिलकर की है। "द ऑस्ट्रेलियन नेशनल यूनिवर्सिटी" के प्रोफेसर "डैनियल रूबेट्टो" ने कहा कि इसकी विशालता ही इसके खत्म होने का कारण बनी। इससे निकले पदार्थ बड़ी मात्रा में समुद्र में समा गए, जिससे जीवन को उभरने के लिए उपयुक्त न्यूट्रिएंट्स मिले। रूबेट्टो के अनुसार वैज्ञानिक बहुत पहले से ये अनुमान लगाते रहे हैं कि समुद्र में जीवन विकसित करने के पीछे बहुत बड़ा श्रेय पर्वत श्रंखलाओं को जाता है, जो समुद्र को आवश्यक भोजन मुहैया कराते हैं। ये बात अब साबित हो गई है कि पर्वतों के कारण महासागरों की केमिस्ट्री बदल जाती है। ये खोज धरती पर शुरुआती चरण में हिमालय के स्तर की पर्वत श्रंखला होने का पुख्ता सबूत है। सह शोधकर्ता प्रोफेसर "जॉर्ज हर्मन" ने बताया कि भले ही पहाड़ समाप्त हो गये हों लेकिन इनकी जड़ों में मौजूद पत्थर सच्चाई बयां करते हैं। ये माउंटेन रेंज दो महाद्वीपों के टकराने से बनी थी। इस टकराव के कारण चट्टानें 100 किलोमीटर अंदर धंस गई थीं। महाद्वीपों के टकराने से उच्च ताप और दबाव बना, जिससे नए मिनरल्स तैयार हुए। शोधकर्ताओं के अनुसार पर्वतों के क्षरण से इसकी जड़े फिर से अपनी जगह पर आ गई, जो उत्तरी पूर्व ब्राजील में मिलीं। शोधकर्ताओं ने यह शोध हाइटेक उपकरणों से किया जिसके

परिणाम से वैज्ञानिकों ने यह निष्कर्ष निकाला कि 6 करोड़ साल पहले उत्तर–पूर्व ब्राजील से पश्चिमी अफ्रीका तक हिमालय जैसी विशाल पर्वत श्रंखला धरती पर विद्यमान थी।

मांसाहारी पौधे भी अपना रहे हैं शाकाहार– आजकल कई लोग मांसाहार को छोड़कर शाकाहार अपना रहे हैं। लेकिन अगर आप सोचते हैं कि शाकाहार की सोच सिर्फ मनुष्यों में है तो आप बिल्कुल गलत हैं। एक ताजा अध्ययन से पता चला है कि कुछ कीटभक्षी पौधे भी शाकाहार को अपना रहे हैं। यूट्रीकुलेरिया प्रजाति के ब्लैडरवर्ट्स कीटभक्षी पौधों की प्रजाति है, जो छोटे–छोटे कीटों का आहार करते हैं। हालांकि नए शोध से पता चला है कि अब ये पौधे संतुलित पोषण के लिए शैवाल और परागों का सेवन करने लगे हैं। ये पौधे चूसक अंगों के द्वारा बिजली की तेजी से अपने शिकार को पकड़ लेते हैं और उन्हें निकल भागने से रोकने के लिए दरवाजे बंद कर देते हैं। एक बार फंस जाने के बाद कीट दम घुट जाने से मर जाते हैं, जिसके बाद पौधे उन्हें एंजाइम के रूप में विघटित कर पचा जाते हैं। शाकाहार अपनाने से पहले इन पौधों के आधार ग्रहण करने की यही प्रक्रिया रहती थी। ऑस्ट्रिया के "वियना विश्वविद्यालय" के शोधकर्ता "कोबर पेरूटका" और "थोलफ्रेम एडलेसनिग" के अनुसार यूट्रिकुलेरिया प्रजाति के कीटभक्षी पादप शैवाल और पराग जैसे आहार की ओर झुक रहे हैं। शोध पत्रिका, "ऐनाल्स ऑफ बॉटनी" के नवीनतम् अंक में प्रकाशित इस शोध के अनुसार, ऐसे इलाकों में जहाँ शैवाल प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं और कीटों की कमी होती है वहाँ शाकाहारी पौधे कीटभक्षी पौधों की अपेक्षा आकार में बड़े पाये गये।

हड्डियां बचाएंगी यान को राख होने से– सूरज के नजदीक जाने वाले किसी भी यान को राख होने से बचाना ही सबसे बड़ी चुनौती है। वैज्ञानिक "क्रिस ड्रेपर" ने जानवरों की हड्डियों का प्रयोग करके इस चुनौती का जवाब ढूंढा है। उन्होंने टाइटेनियम की फाइल पर जानवरों की हड्डियों से बना एक लेप लगाया है जो सौर यान को जलने से बचायेगा। यह पत्ती 0.20 मिलीमीटर मोटी है और इसकी सतह पर हड्डियों की काले रंग की परत चढ़ी है। यह यान सन् 2017 में अंतरिक्ष में भेजा जायेगा जो सूरज की कक्षा में उसके चारों ओर घूमेगा, यह किसी भी तारे के सबसे नजदीक जाने वाला यान होगा। यह अंतरिक्ष यान सौर प्रणाली में छोड़े जाने वाले उच्च ऊर्जा वाले कणों का विस्तृत अध्ययन करेगा। यह न केवल हमें सूरज के बारे में बेहतर सूचना उपलब्ध करायेगा बल्कि हम भी जान पायेंगे कि पृथ्वी पर इसका कैसा असर होता है। जब इस यान को अंतरिक्ष में छोड़ा जायेगा तो उसका जो हिस्सा सूरज के सामने होगा उसे 550 डिग्री सेल्सियस से अधिक तापमान का सामना करना पड़ेगा जबकि यान का जो हिस्सा सूरज के सामने नहीं होगा उसे 200 डिग्री सेल्सियस तक ताप झेलना होगा। ऐसी भयानक गर्मी में यान के अंदर के सभी इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों और यंत्रों को सही सलामत रखने की चुनौती होगी। ड्रेपर कहते हैं कि, "सारी चिंता यही थी कि हीटशील्ड बनाने के लिए हम ऐसा कौन सा पदार्थ इस्तेमाल करें जिससे हमारे उपकरण जलें नहीं।" हीटशील्ड इतना हल्का तो होना ही चाहिए कि वह रॉकेट को जमीन से ऊपर जाने में मदद करे और सूरज की गर्मी को वह अंतरिक्ष में पाँच वर्षों तक झेल सके। हीटशील्ड की बाहरी सतह पर खुले दरवाजे वाले छिद्र भी होने चाहिए ताकि यान में लगे उपकरण सूरज को देख सकें जिनका अध्ययन उनको करना है। हीटशील्ड 40 सेंटीमीटर मोटे सैंडविच की तरह है जिसके बीच में 8 से 18 परते हैं। इसकी बाहरी परत टाइटेनियम से बनी है। इस धातु का चुनाव इसकी मजबूती और लचीलेपन के लिए किया गया है। सबसे बड़ी बात ये है कि यह डेढ़ हजार डिग्री तक की गर्मी झेल सकता है।

700 समुदी प्रजातियों को प्लास्टिक के कचरे से खतरा– एक नये वैश्विक अध्ययन में पाया गया है कि प्लास्टिक और कांच जैसे मानव–निर्मित कचरे के कारण समुद्री जीवों की लगभग 700 प्रजातियों पर खतरा मंडरा रहा है। ब्रिटेन की "प्लाई माउथ यूनिवर्सिटी" के शोधकर्ताओं ने दुनिया भर से जुटाई गई रिपोर्ट में इस बात के साक्ष्य पाये गये हैं कि 44 हजार जीव–जन्तु कचरे को ग्रहण कर रहे हैं। अंतर्राष्ट्रीय प्रकृति संरक्षण संघ(आई0यू0सी0एन0) की रेड डाटा बुक की लाल सूची में 92 प्रतिशत मामलों के लिये प्लास्टिक को वजह बताया गया है एवं सभी प्रजातियों में से लगभग 17 प्रतिशत को खतरे में या खतरे के कगार पर बताया गया है। इनमें सील मछली, लागरहेड टर्टल और सूटी शियर वॉटर(एक पक्षी) भी शामिल हैं। "मरीन पॉल्यूशन" बुलेटिन में प्रकाशित शोध पत्र में इसके लेखकों "सारा गाल" और "प्रोफेसर रिचर्ड थाम्पसन" ने उन विविध स्रोतों से जुटाये गये विभिन्न तथ्य यथा– निगले जाने, पारिस्थितिक तन्त्रों को नुकसान जैसे साक्ष्य प्रस्तुत किये गये हैं। शोधकर्ता सारा ने कहा, "समुद्री जीवन पर कचरे का प्रभाव चिंता का विषय है और इसके प्रभाव अत्यन्त व्यापक हो सकते हैं। इसके परिणाम कचरा निगले जाने और कचरे में जीवों के उलझ जाने के रूप में सामने आ सकता है, जो कि समुद्री पारिस्थितिक तंत्र के लिये अत्यधिक नुकसानदायक है।"

जापान में ड्रोन विमानों से ज्वालामुखी पर नजर रखी जायेगी– जापान में ज्वालामुखी फूटने सम्बन्धी जानकारियां लेने के लिए चालक रहित ड्रोन विमानों का प्रयोग किया जायेगा। ऐसे ड्रोन विमानों की संरचना जापान के सरकारी भूमि, बुनियादी ढांचा, परिवहन व पर्यटन मंत्रालय के समर्थन से एनरूट कंपनी द्वारा तैयार किया गया है। ये विमान ऐसे विशेष उपकरणों से लैस हैं जिनकी सहायता से ज्वालामुखी से निकलने वाली गैसों और राख के नमूने एकत्र किये जा सकते हैं। इस प्रकार मिली सामग्री का अध्ययन करने के आधार पर विशेषज्ञों द्वारा ज्वालामुखियों के फूटने की अधिक सटीक ढंग से भविष्यवाणी की जा सकेगी। इसके अलावा, ड्रोन विमानों पर ऐसे कैमरे लगाए जायेंगे जिनकी सहायता से जमीन की सतह का

त्रि–आयामी नक्शा बनाना संभव होगा। प्राकृतिक आपदाओं के दौरान लापता हुए लोगों को खोजने के लिए भी ड्रोन विमानों का प्रयोग किया जा सकता है।

शोधकर्ताओं ने बनाया आसमानी खेत यानी स्काईफार्म का डिजाइन– दुनिया भर के बड़े शहरों में कम होते पेड़ बड़ी समस्या बनते जा रहे हैं, लेकिन कोरिया के शोधकर्ताओं ने इसका हल खोज निकाला है। उन्होंने ऐसी इमारतों का डिजाइन तैयार किया है, जो शहर को हरा–भरा बना देंगी। इन्हें स्काईफॉर्म यानी आसमानी खेतों का नाम दिया गया है। शोधकर्ताओं का दावा है कि यह इमारत पर्यावरण की चुनौतियों का हल होगी। हाल में इस डिजाइन को पुरस्कृत भी किया गया है और उम्मीद है कि ऐसी इमारतों का निर्माण जल्द आरम्भ हो जायेगा। इस इमारत का डिजाइन भी पेड़ जैसा होगा। इसमें जड़, तना, टहनी और पत्ते जैसे भाग होंगे। जड़ का हिस्सा इमारत में पानी पहुँचाने और उसके पुनः शोधन का काम करेगा। तने की जगह इंडोर गार्डन, टहनी की जगह सामान ले जाने के लिए पुल जैसी संरचना और पत्तों की जगह खेतों वाले डेक होंगे। वहीं 44 हजार वर्ग फुट का सोलर पैनल खेतों को रोशन करेगा। यहाँ जलकृषि, बॉयोनिक गार्डन, हरियाली देखने आने वालों के लिए व्यूयिंग डेस्क, कैफेटेरिया, किसानों के लिए बाजार, पानी शुद्धिकरण सुविधा और अक्षय ऊर्जा उत्पादन सुविधा होगी। रिपोर्ट के अनुसार यह एक बाग होगा, जिसकी बची जगह का प्रयोग शहरों की दूसरी बड़ी समस्या यानी पार्किंग के लिए किया जायेगा।

नासा की एक और सफलता, मिला ब्लैक होल परिवार का बड़ा सदस्य– नासा ने चंद्र एक्स–रे ऑब्जर्वेटरी की मदद से ब्लैकहोल की पृष्ठभूमि का पता लगाने के लिए एक लौकिक वस्तु की खोज की है। यह वस्तु अंतरिक्ष में ब्लैकहोल के अस्तित्व, निर्माण और उसके आसपास की चीजों पर उसके प्रभाव को लेकर कई सवालों के जवाब ढूंढने में मदद कर सकता है। एन.जी.सी.2276–3सी कही जा रही वस्तु सर्पिल आकाशगंगा के पास मिली है, जो पृथ्वी से 10 करोड़ प्रकाश वर्ष दूर है। एन.जी.सी.2276–3सी को अंतरिक्ष विज्ञानी "इंटरमीडिएट–मास ब्लैकहोल"(आई.एम.बी.एच.) कह रहे हैं। ब्रिटेन की "यूनिवर्सिटी ऑफ डरहम" के वैज्ञानिक टिम रॉबर्ट ने कहा कि अंतरिक्ष विज्ञानी बड़ी कौतुकता से इन मध्यम आकार के ब्लैकहोल का अध्ययन कर रहे हैं। उनके अस्तित्व के संकेत मिले हैं, लेकिन आई.एम.बी.एच. ब्लैकहोल परिवार के एक ऐसे सदस्य के रूप में प्रकट हुआ है, जो गुमनामी में ही रहना चाहता है। अध्ययन का नेतृत्व कर रहे "हार्वर्ड स्मिथसोनियन सेंटर फॉर एस्ट्रोफिजिक्स" के मारमेजकुआ ने कहा कि जीवाश्म विज्ञान की तरह ही हमें आकाशगंगा में कई बार अपनी खोजों की गहराई में जाना पड़ता है, जो यहाँ से करोड़ों प्रकाश वर्ष दूर है। कई वर्षों से अंतरिक्ष वैज्ञानिकों ने छोटे ब्लैकहोल के अस्तित्व के निर्णायक प्रमाण ढूंढे हैं, जो सूर्य के द्रव्यमान से पाँच से 30 गुना ज्यादा द्रव्यमान वाले हैं। आई.एम.बी.एच. के महत्वपूर्ण होने का कारण यह है कि ये उस उत्पत्ति का आरम्भ हो सकते हैं, जिससे ब्रह्माण्ड में विशालकाय ब्लैकहोल का निर्माण हुआ है।

न्यूट्रिनो कणों की खोज और अध्ययन के लिए बनायी जा रही भूमिगत वेधशाला– न्यूट्रिनो कणों की खोज और अध्ययन के लिए तमिलनाडु में केरल सीमा के पास भूमिगत वेधशाला बनायी जा रही है। यह वेधशाला चट्टान से 1200 मीटर गहराई पर होगी तथा इसमें कई गुफाएं होंगी। तमिलनाडु के थेनी जिले की बोडी पहाड़ियों में कई संस्थाओं के सहयोग से इस वेधशाला की स्थापना की जा रही है। इस परियोजना में परमाणु ऊर्जा विभाग और विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी विभाग मिलकर सहयोग दे रहे हैं जबकि परमाणु ऊर्जा विभाग केन्द्रीय एजेन्सी के तौर पर काम करेगा। परियोजना का उद्देश्य न्यूट्रिनो पर मूलभूत अनुसंधान करना है। देश के 21 अनुसंधान संस्थान, विद्यालय और आई0आई0टी0 इस परियोजना में सम्मिलित हैं। माना जा रहा है कि न्यूट्रिनो कण से अंतरिक्ष से संबंधित कई जानकारियां प्राप्त की जा सकती हैं। इसी कारण से वैज्ञानिकों की इसके अध्ययन में विशेष रूचि है। फोटॉन के बाद न्यूट्रिनों प्रचुर मात्रा में ब्रह्माण्ड में विद्यमान है, प्रत्येक एक घन सेंटीमीटर में लगभग 300 न्यूट्रिनों होते हैं। ये कण सूर्य जैसे तारों में रेडियोधर्मी क्षय और वायुमण्डल से कॉस्मिक विकिरणों की आपसी क्रिया से उत्पन्न होते हैं। साथ ही इन्हें नाभिकीय संयत्रों में भी निर्मित किया जा सकता है।

वैज्ञानिकों का मानना है कि 15 अरब वर्ष पहले ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के बाद जो न्यूट्रिनो पैदा हुए थे वे आज भी सक्रिय हैं। सूर्य के केन्द्र में परमाणु संलयन की वजह से जो न्यूट्रिनो उत्पन्न हुए थे वे पृथ्वी के ऊपर घूमते रहते हैं। मानव शरीर में मौजूद रेडियोधर्मी पदार्थ पोटेशियम–40 लगातार न्यूट्रिनो का उत्सर्जन करता है, प्रति सेकेण्ड लगभग 100 खरब न्यूट्रिनो सूर्य और अन्य आकाशीय पिंडों से उत्सर्जित होकर हमारे शरीर से टकराते हैं लेकिन इससे हमें कोई नुकसान नहीं पहुंचता। सन् 1930 में जाने–माने भौतिकविद् पाउली को प्रयोगों से पता चला कि जब कोई अस्थिर आणविक नाभिक एक इलेक्ट्रॉन को छोड़ता है तो उसकी नयी ऊर्जा और गति उम्मीद के मुताबिक नहीं होती थी। इस संगीकरण को संतुलित करने और ऊर्जा के संरक्षण के सिद्धांत को कायम रखने के लिए पाउली ने एक सैद्धांतिक कण की अवधारणा प्रस्तुत की। सन् 1933 में भौतिक विज्ञानी "फर्मी" ने इस कण को न्यूट्रिनो नाम दिया। इस कण का आवेश न तो धनात्मक था और न ही ऋणात्मक। यानी इसके अस्तित्व को साबित करना कठिन था। पूरी दुनिया में बहुत से वैज्ञानिक पिछली पूरी सदी के दौरान न्यूट्रिनो को खोजते रहे। भारत में इस पर अनेक शोध हुए हैं। कॉस्मिक किरणों से बनने वाली न्यूट्रिनो का सबसे पहले पता भारत में ही चला था। सन् 1965 में कोलार सोने की खदानों में करीब 2.3 किलोमीटर की गहराई पर वायुमंडलीय न्यूट्रिनो खोजा गया

था। सन् 1990 के दशक में कोलार सोने की खदानों के बंद हो जाने से भारत के न्यूट्रिनो कार्यक्रम का रास्ता रुक गया। अब एक बार फिर इस क्षेत्र में अध्ययन के लिए काम करने की पहल शुरू हुई है। इसी के तहत तमिलनाडु में केरल सीमा के पास लगभग 1200 मीटर ऊँचे चट्टानी पहाड़ों के नीचे वेधशाला बनायी जायेगी जिसमें 132 मीटर गुणा 26 मीटर गुणा 20 मीटर आकार की एक बड़ी गुफा और कई अन्य छोटी–छोटी गुफाएं होंगी। इस परियोजना को केन्द्र और राज्य सरकार की विभिन्न एजेंसियों से हरी झंडी मिल चुकी है। वेधशाला में प्रयोग के दौरान कोई रेडियोधर्मी या विषैला पदार्थ नहीं निकलेगा।

दफ्तर में पौधे होने से काम में लगता है मन– नये शोध में पता चला है कि जिन दफ्तरों में पौधों की हरियाली होती है, वहाँ काम करने में मन ज्यादा लगता है। अपनी तरह के इस पहले शोध में विज्ञानियों ने पाया कि बिना पौधों वाले दफ्तर की तुलना में हरियाली होने पर काम में 15 प्रतिशत तक उत्पादकता लाई जा सकती है। अगर दफ्तर में पौधे हैं तो स्टाफ को लगता है वातावरण कम प्रदूषित होगा और काम में मन लगेगा। विज्ञानियों ने इसके लिए इंग्लैंड और नीदरलैंड के दो दफ्तरों में शोध किया। प्रमुख शोधकर्ता मॉरलन का कहना है कि दफ्तर में पौधे लगाने का निवेश बेहतर है और इसके नतीजे भी जल्द मिलने लगते हैं। इस शोध के परिणामों का उपयोग दफ्तरों के कार्य की गुणवत्ता बढ़ाने में किया जा सकता है।

संदर्भ

1. जैकसन, जे0 जे0 एवं सैम्यूल, टी0 एस0(2014) द इम्पैक्ट ऑफ क्लाइमेट चेंज ऑन सी लैवेल्स, जर्नल ऑफ इन्वायरमेंटल साइंसेज, खण्ड–70, अंक–4, मु0पृ0 233–2771।
2. इण्डिगो, ए0 सी0 तथा मॉव, बी0 ई0(2015) लेटेस्ट इन्वायरमेंटल अवेयरनेस नयूज साइंस, खण्ड–685, मु0पृ0 1220–1224।
3. www.sciencenews.com

ड्रोन– तकनीकी में एक नया आयाम

अमित कुमार श्रीवास्तव[1], रिंकू रहेजा[2] एवं विजय कुमार पाण्डे[3]
[1,2,3]असिस्टेन्ट प्रोफेसर, कम्प्यूटर विज्ञान विभाग
नेशनल पी0 जी0 कॉलेज, लखनऊ–226001, उ0प्र0, भारत
amit_sri_in@yahoo.com, rr_141085@yahoo.co.in, vijay.kumar0384@gmail.com

प्राप्त तिथि– 27.07.2015, स्वीकृत तिथि– 05.08.2015

एक वक्त था जब ड्रोन का उपयोग केवल सैन्य उद्देश्य से होता था, लेकिन अब यह तकनीक जीवन के अन्य हिस्सों में बेहद उपयोगी सिद्ध होती जा रही है। ताजा खबर अमेरिका से है, जहाँ मीडिया को रिपोर्टिंग के लिए ड्रोन का इस्तेमाल करने का अधिकार मिल गया है। यहीं भारत में आम जनता को ड्रोन के बारे में हाल ही में आयी फिल्म '3–इडियट्स' के एक दृश्य जिसमें आमिर खान ने गाने में ड्रोन का उपयोग किया था। तब ज्यादातर भारतीयों के लिए ड्रोन तकनीक नई थी, लेकिन आज इसके प्रति लोगों में जानकारी और बढ़ती जा रही है। अमेरिका की कुछ कम्पनियों ने बीते साल के शुरू में ही सामानों की आपूर्ति के लिए ड्रोन का प्रयोग शुरू कर दिया था। ड्रोन का प्रयोग भारत में भी अलग–अलग प्रदेशों में देखने को मिल रहा है, हाल ही में पश्चिमी उत्तर प्रदेश में भी उत्तर प्रदेश पुलिस ने ड्रोन की मदद से एक मुजरिम को पकड़ा, मुम्बई में भी ड्रोन को पिज्जा डिलीवरी के लिए प्रयोग में लिया गया था। जो कि एक सफल प्रयास साबित हुआ, दिल्ली में भी दंगा भड़का तो पुलिस ने ड्रोन की मदद से मकानों की छतों पर नजर रखी थी। विदेशों में तो ड्रोन का उपयोग इतना ज्यादा है कि ब्रिटेन के किसान अपने पशुओं पर नजर रखने के लिए इसका उपयोग करते है। वर्तमान अमेरिकी राष्ट्रपति बराक ओबामा सरकार ने अमेरिका में दस बड़े मीडिया को खबरों के उद्देश्य से ड्रोन का प्रयोग करने की अनुमति दे दी। दुनिया में यह अपने तरह का पहला मौका होगा, जब ड्रोन का प्रयोग अधिकाधिक तौर पर किया जायेगा।

वह दिन दूर नहीं जब घर बैठे छोटे से लेकर बड़ा सामान भी ड्रोन की मदद से एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचाया जा सकेगा। कुछ पश्चिमी देशों मे इसकी शुरूआत भी हो चुकी है वहीं अमेजन डाट काम कम्पनी ने सबसे पहले 'ऑक्टोकॉप्टर' पैकेज डिलीवरी प्रोजेक्ट शुरू किया था। गूगल ने भी कहा है कि वह ऑनलाइन खरीदे गये उत्पादों की आपूर्ति के लिए ड्रोन के उपयोग का परीक्षण कर रहा है। ऑस्ट्रेलिया के क्वींसलैंड में किसानों को दैनिक जीवन में प्रयोग की वस्तुएं उन तक पहुँचाई जा चुकी है। भारत के गाँवों में ड्रोन का उपयोग काफी मददगार साबित हो सकता है, क्योंकि भारत में यह बहुत स्थानों पर देखा गया है कि किसानों ने जंगली जानवरों के डर से बहुत सी फसलों की खेती करना ही बन्द कर दिया क्योंकि जंगली जानवर उनकी फसलों को खराब कर देते थे लेकिन ड्रोन के उपयोग से उन किसानों को काफी मदद मिलेगी।

अमेजन सी.ई.ओ. जेफ बेजोस के मुताबिक, उनकी कंपनी ऐसे ड्रोन को टेस्ट कर रही हैं जो ऑनलाइन खरीदारी के आधे घंटे में ही पैकेजेस डिलीवर कर देंगे। बकेट्स की मदद से ड्रोन्स को इस तरह डिजाइन किया गया है कि वह पांच पाउंड्स का वजन उठा सके जो कि लगभग अमेजन डिलीवरी का 86 प्रतिशत है। चार से पाँच साल में ड्रोन्स को ऊँचाइयों पर ले जाने का अनुमान लगाते हुए इस प्राइम एअर प्रोजेक्ट को लेकर बेजोस ने कहा 'यह काम करेगा और यह होगा भी। इसमें सभी को बहुत गजा आने वाला है। सरहद पर ड्रोन से नजर रखना कम खर्चीला है। अमेरिका ने इराक में ड्रोन उतारा था। युद्ध के मैदान पर मौजूद अमेरिका के सैन्य सलाहकारों के लिए ड्रोन ने सुरक्षा कवच के तौर पर काम किया। ये ड्रोन हैलफायर मिसाइलों से लैस थे। इससे नई बहस भी छिड़ी है कि लड़ाई के मैदान में ड्रोन और सैनिकों में कौन सस्ता पड़ता है?

यूनिवर्सिटी ऑफ तस्मानिया के अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों के एसोसिएट लेक्चरर वाएने मेक्लीन ने ड्रोन और सैनिक उपयोग में होने वाले खर्च का तुलनात्मक विश्लेषण पेश किया है। उनके मुताबिक सैनिकों के मुकाबले ड्रोन का उपयोग कम खर्चीला है।

भारत ड्रोन संबंधी अपनी जरूरतें अमेरिका से पूरी करने की कोशिश में है। हालांकि भारत अन्य देशों से भी यह तकनीक ले सकता है। अमेरिका भी इस बात को भली–भाँति जानता है। तभी वहाँ के प्रभावशाली सीनेटर मार्क वार्नर ने ओबामा प्रशासन को चेतावनी दी है कि अगर ड्रोन खरीदने के भारत के आग्रह पर कोई कार्यवाही नहीं की जाती है तो भारत ये मानवरहित विमान कहीं और से खरीद सकता है।

ड्रोन से खेती होगी, और तूफान के आने से पहले तूफान का पता चलेगा– ड्रोन से हम आने वाले तूफान का पता भी लगा सकते हैं। यही एक कारण है कि नासा, **द नेशनल ओशिएनिक और एटमोस्फेरिक एडमिनिस्ट्रेशन(एन.ओ.ए.ए.)** और **नार्थरोप ग्रूमेन** ने तीन साल तक साथ काम किया तथा तूफान के उठने पर नजर रखने के लिए लॉन्ग रेंज अनमैन्ड एरिअल व्हीकल्स के उपयोग के लिए 30 मिलियन डॉलर का प्रयोग किया।

ग्लोबल हॉक ड्रोन्स 30 घंटे तक हवा में रह सकता है और अपने 116 फुट के पंखों के फैलाव के साथ 11000 मील उड़ सकता है। यह तूफानी क्षेत्रों में ठहर सकता है। जहाँ मानव सहित प्लेन पहुँच सकता है। 3डी मैपिंग–छोटे, कम वजन वाले ड्रोन साधारण मॉडल एअरप्लेन जैसे दिख सकते हैं। लेकिन वे हजारों डिजिटल इमेज के साथ लैंडस्केप्स का अवलोकन कर सकते हैं। इससे 3डी मैप तैयार किये जा सकते हैं। मिलिट्री और अन्य सरकारी सैटेलाइट वैसे ही मैप बनाती हैं। लेकिन तेजी से लोकप्रिय होती यूएवी टेक्नोलॉजी कई गुना सुविधाजनक होती है।

वन्य जीवन की सुरक्षा– अमेरिका में जीव जंतुओं की सुरक्षा के लिए ड्रोन का उपयोग शुरू हो चुका है। द डिपार्टमेंट ऑफ द इंटीरियर, द ब्यूरो ऑफ लैंड मैनेजमेंट और द यूनाइटेड स्टेट्स जियोलॉजिकल सर्विस यूएवी का उपयोग कर रहे हैं और वन्य जीवन की आबादी या मैप रोड तथा वैटलैंड्स को मॉनीटर कर रहे हैं।

संदर्भ

1. https://en.wikipedia.org/
2. एयर एण्ड स्पेस मैगजीन।
3. "ए न्यू सर्वे टू सिक्योरिटी", डाटा क्वेस्ट मैगजीन।

रेडियो वार्ता–आकाशवाणी, लखनऊ

शीर्षक– "हिन्दी में विज्ञान पत्रकारिता"

वार्ताकार– **डॉ0 दीपक कुमार श्रीवास्तव**
एसोसिएट प्रोफेसर, गणित विभाग
बी0एस0एन0वी0 पी0जी0 कॉलेज, लखनऊ
dksflow@hotmail.com

रिकॉर्डिंग तिथि– 03–08–2015, प्रसारण तिथि– 11–08–2015, समय– सायं 5:00 से 5:30

हिन्दी में विज्ञान पत्रकारिता की देश में वर्तमान स्थिति

भारत एक विशाल देश है जहाँ हिन्दी बोलने एवं समझने वाले लोग देश के लगभग प्रत्येक भाग में मौजूद हैं। इसी कारण से देश–विदेश में नित–प्रतिदिन हो रहे नवीन वैज्ञानिक आविष्कारों की जानकारी तथा प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हो रही प्रगति को देश के जनमानस तक पहुँचाने में हिन्दी अत्यन्त ही मददगार सिद्ध हो सकती है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि अधिकतर नवीन वैज्ञानिक शोध को अमेरिका तथा यूरोपियन देशों की तरफ से अंग्रेजी भाषा में प्रकाशित किया जाता रहा है जिसका सरलतम हिन्दी अनुवाद उपलब्ध न होने के कारण भारत में लोगों को उस शोध व भविष्य में उससे प्राप्त होने वाले लाभ का पता आसानी से नहीं चल पाता है। इसी कारण से भारत में, खासकर हिन्दी भाषी राज्यों में, हिन्दी भाषा में विज्ञान पत्रकारिता या वैज्ञानिक लेखन का अपना महत्वपूर्ण स्थान है परन्तु हिन्दी में वैज्ञानिक शब्दों की कठिनता तथा उनके अर्थ को समझने में आने वाली व्यवहारिक कठिनाइयों के चलते विज्ञान पत्रकारिता उतनी लोकप्रिय नहीं हो पायी जितना उसको होना चाहिए था। हमारे बीच में एक प्रकार का भ्रम फैला हुआ है कि विज्ञान पत्रकारिता केवल सामान्य विज्ञान लेखन मात्र है। जबकि हिन्दी में विज्ञान पत्रकारिता के अंतर्गत शोध पत्र, तकनीकी व समीक्षा आलेख, लोकप्रिय विज्ञान आलेख, शोध सारांश, संगोष्ठी आख्या, नवीन वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकी सूचनाएं, पुस्तक समीक्षा, प्रसिद्ध वैज्ञानिकों के साक्षात्कार आदि सम्मिलित हैं। पिछले कुछ वर्षों से हिन्दी दैनिक समाचार पत्रों, पत्रिकाओं, प्रसार भारती के कार्यक्रमों व डिजिटल मीडिया द्वारा विज्ञान की प्रगति से सम्बन्धित सूचनाएं एवं विशेषांक इत्यादि प्रकाशित व प्रसारित किये जा रहे हैं जिनका एक संक्षिप्त लेखा–जोखा प्रस्तुत है।

विज्ञान लेखन में अभिरूचि रखने वाले छात्र/छात्राओं, शिक्षकों एवं वैज्ञानिकों के लिए उपलब्ध स्रोत

देश–विदेश में हिन्दी में विज्ञान के प्रचार एवं प्रसार का लक्ष्य लेकर शिक्षाविदों एवं वैज्ञानिकों द्वारा 10 मार्च 1913 को गठित **विज्ञान परिषद, प्रयाग**(http://www.vigyanparishadprayag.org), द्वारा **"विज्ञान"** नामक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया गया जिसके अनवरत प्रकाशन को 100 वर्ष पूर्ण हो चुके हैं।

वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद(सी.एस.आई.आर.), नई दिल्ली के राष्ट्रीय विज्ञान संचार तथा सूचना स्रोत संस्थान(निस्केयर)(http://www.niscair.res.in/) द्वारा हिन्दी में विज्ञान लेखन एवं पत्रकारिता को स्थान देने वाली देश भर में सर्वाधिक प्रसिद्ध पत्रिका **"विज्ञान प्रगति"** का प्रकाशन वर्ष 1952 से अनवरत किया जा रहा है।

मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा सन् 1961 में गठित **वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग**(http://www.cstt.nic.in/) द्वारा त्रैमासिक पत्रिका **"विज्ञान गरिमा सिंधु"** का हिन्दी में अनवरत प्रकाशन किया जा रहा है।

नैशनल रिसर्च डेवेलपमेंट कॉरपोरेशन(एन.आर.डी.सी.) (http://www.nrdcindia.com) द्वारा हिन्दी में प्रकाशित होने वाली विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की लोकप्रिय मासिक पत्रिका **"आविष्कार"** है जिसका प्रकाशन वर्ष 1971 से अनवरत जारी है।

"विज्ञान प्रसार(वी.पी.)"(http://www.vigyanprasar.gov.in) विज्ञान की सूचनाओं पर आधारित हिन्दी व अंग्रेजी में अपना एक मासिक न्यूज लेटर **"ड्रीम 2047"** प्रकाशित करता है। विज्ञान प्रसार विज्ञान की नवीन गतिविधियों से सम्बन्धित दृश्य धारावाहिकों को दूरदर्शन के राष्ट्रीय चैनल पर प्रसारित करवाता है जो कि बहुत ही ज्ञानवर्धक होते हैं। उदाहरणार्थ– **"गणित की सीढ़ियां"** नामक 13 कड़ियों वाला नया दृश्य धारावाहिक 30 मई, 2015 से प्रत्येक शनिवार को दूरदर्शन के राष्ट्रीय चैनल पर प्रातः 9:30 से 10:00 बजे तक प्रसारित हो रहा है।

इसी क्रम में मैं आकाशवाणी के माध्यम से सभी सुधी श्रोतागणों को बताना चाहता हूँ कि हिन्दी के माध्यम से देश–विदेश में विज्ञान के प्रचार–प्रसार का लक्ष्य लेकर उ0प्र0 राज्य की राजधानी लखनऊ के प्रतिष्ठित **बी0एस0एन0वी0 पी0जी0 कॉलेज(के0के0वी0)**, में **बी.एस.एन.वी. विज्ञान परिषद** का गठन वर्ष 2013 में किया गया। विज्ञान परिषद की एक प्रमुख शैक्षणिक गतिविधि के तहत **"अनुसंधान(विज्ञान शोध पत्रिका)"** का वार्षिक प्रकाशन राष्ट्रीय स्तर पर आरम्भ किया गया। पूरे देश में यह पत्रिका अपने तरह की हिन्दी में विज्ञान लेखन को प्रकाशित करने वाली अद्वितीय पत्रिका है। जिसमें विज्ञान लेखन से सम्बन्धित सामान्य से लेकर शोध स्तर तक के लेखों हेतु स्थान उपलब्ध है। इस पत्रिका को चार भागों में विभक्त किया गया है– भाग–1–शोध पत्रों हेतु, भाग–2–तकनीकी/समीक्षा लेखों हेतु, भाग–3– प्रचलित वैज्ञानिक लेखों हेतु, भाग–4–विविध(प्रचलित विज्ञान आलेख, शोध सारांश, संगोष्ठी आख्या, नवीन वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकी जानकारी, पुस्तक समीक्षा, प्रसिद्ध वैज्ञानिकों के साक्षात्कार, साइन्टून्स आदि सम्मिलित हैं।)। अन्य सम्बन्धित जानकारियां महाविद्यालय की वेबसाइट www.bsnvpgcollege.in/vp से प्राप्त की जा सकती हैं।

सुझाव एवं निष्कर्ष

भारत में हिन्दी में अपना वैज्ञानिक शोध प्रकाशित करने के जिज्ञासु शोध छात्र/छात्राओं, युवा शिक्षकों एवं वैज्ञानिकों को शैक्षणिक संस्थाओं एवं सरकार द्वारा ज्यादा से ज्यादा शोध पत्रिकाएं उपलब्ध करायी जानी चाहिए जिससे शोध स्तर पर हिन्दी लेखन को बढावा मिल सके। इस विधा से जुड़े लेखक के लिए हिन्दी व विज्ञान दोनों का ज्ञान होना अति आवश्यक है। वर्तमान में कुल मिलाकर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि विभिन्न विज्ञान परिषदों, व्यक्तिगत प्रयासों व कुछ हद तक केन्द्र सरकार व कहीं–कहीं राज्य सरकारों के प्रयास से देश में विज्ञान पत्रकारिता/लेखन का हिन्दी में सुधार हुआ है परन्तु अभी भी स्नातक व स्नातकोत्तर स्तरों के पाठ्यक्रमों के अंग्रेजी माध्यम से पढाये जाने तथा हिन्दी में विज्ञान की पुस्तकों के उपलब्ध न होने के कारण उच्च शिक्षा के क्षेत्र से हिन्दी का स्थान एवं योगदान लगभग नगण्य हो गया है और शोध स्तर पर इसकी कमी साफ झलकती है। इस कमी को ध्यान में रखते हुए मध्य प्रदेश सरकार द्वारा वर्ष 2011 में अटल बिहारी वाजपेई हिन्दी विश्वविद्यालय की स्थापना भोपाल में की गई है। इस विश्वविद्यालय के अधिनियम के अनुसार आधारभूत विज्ञान, तकनीकी व चिकित्सा के स्नातक, स्नातकोत्तर एवं शोध स्तर के सभी पाठ्यक्रम हिन्दी में बनाये एवं पढ़ाये जायेंगे। देश के किसी राज्य द्वारा इस प्रकार का लिया जाने वाला यह एक साहसिक कदम है तथा अन्य राज्यों द्वारा भी इसी प्रकार के निर्णयों के द्वारा ही भविष्य में हम हिन्दी को उसका सही स्थान दिला पायेंगे। यू0पी0 टैक्निकल यूनीवर्सिटी, लखनऊ, के कुलपति जी द्वारा तकनीकी पाठ्यक्रम की पुस्तकों के हिन्दी अनुवाद भी उपलब्ध कराये जाने की बात कही गई है जो कि एक बड़ी बात है। दुनिया भर में कई विकसित देशों जैसे रूस, स्पेन, कोरिया आदि में उनकी अपनी भाषाओं में ही प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तक की पढाई होती है तथा पाठ्यक्रम सम्बन्धी पुस्तकें भी उन्हीं भाषाओं में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। यहाँ पर कहने का तात्पर्य सिर्फ इतना है कि जो छात्र/छात्रायें हिन्दी माध्यम से अपनी उच्च शिक्षा को पूरा करना चाहते हैं, उनको इसका लाभ उपलब्ध कराया जाय। शब्दावली आयोग को भी अंग्रेजी के नये तकनीकी शब्दों के हिन्दी में उनके समकक्ष कठिन शब्दों के स्थान पर हिन्दी में जैसे का तैसा ग्रहण कर लेना ही वक्त की समझदारी होगा। जिस प्रकार अतर्राष्ट्रीय स्तर पर अंग्रेजी के लोकप्रिय तकनीकी शब्द जैसे– पेट्रोल, रेडियो, डिग्री सेल्सियस आदि को उनके अर्थ को समझते हुए हिन्दी लेखन में प्रयोग किया जाता है उसी प्रकार से अंग्रेजी के अन्य नये तकनीकी शब्दों को भी प्रयोग किये जाने की आवश्यकता भविष्य में होगी। विज्ञान पत्रकारिता जब तक सामान्य से शोध स्तर पर नहीं पहुँचेगी तब तक वह सम्पूर्णता से दूर ही रहेगी और भारतीय समाज को विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में होने वाली प्रगति का पूरा लाभ प्राप्त नहीं हो पायेगा।

प्राप्त तिथि– 12.08.2015, स्वीकृत तिथि– 20.08.2015

नोबेल पुरस्कार विजेता विद्वान–वर्ष 2015

दिव्यांश श्रीवास्तव
छात्र, ला मार्टीनियर कॉलेज, लखनऊ–226001, उ0प्र0, भारत
divyansh_21@hotmail.com

1. चिकित्सा के क्षेत्र में

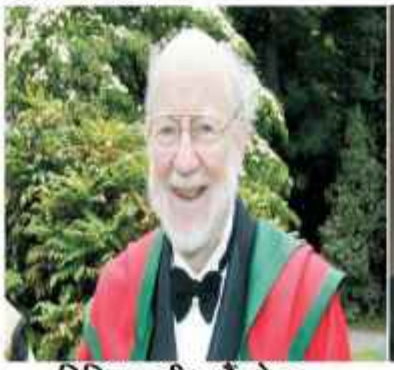

विलियम सी0 कैंपबेल
(जन्म–1930, आयरलैण्ड)

सतोशी ओमुरा
(जन्म–1935, जापान)

यूयू तु
(जन्म–1930, चीन)

वर्ष 2015 में चिकित्सा के क्षेत्र में उत्कृष्ट शोध कार्य के लिए नोबेल पुरस्कार रॉयल स्वीडिश एकेडमी ऑफ साइंस द्वारा आयरलैण्ड के जैवरसायन वैज्ञानिक **विलियम सी0 कैंपबेल**, जापान के जैवरसायन विज्ञानी **सतोशी ओमुरा** तथा चीन की चिकित्सा विज्ञानी एवं रसायनज्ञ **यूयू तु**, को मलेरिया और फाईलेरिया जैसी परजीवी(पैरासाइटिक) बीमारियों की असरदार नई दवाएं खोजने के लिए संयुक्त रूप से चुना गया है। विलियम सी0 कैंपबेल और सतोशी ओमुरा को उनके उल्लेखनीय कार्य **'फॉर देयर डिस्कवरीज कन्सर्निंग ए नॉवेल थेरेपी अगेंस्ट इंफेक्शंस कॉज्ड बाई राउंडवॉर्म पैरासाइट'** तथा यूयू तु को उनके उल्लेखनीय कार्य **'फॉर देयर डिस्कवरीज कन्सर्निंग ए नॉवेल थेरेपी अगेंस्ट इंफेक्शंस कॉज्ड बाई राउंडवॉर्म पैरासाइट'** के आधार पर नोबेल पुरस्कार हेतु चुना गया। विलियम सी0 कैंपबेल और सतोशी ओमुरा ने राउंड वॉर्म पैरासाइट से होने वाले संक्रमण के इलाज की नई दवा एवरमेक्टिन की खोज की। इससे रिवर ब्लाइंडनेस और लिम्फैटिक फिलॉरियासिस(फाईलेरिया) के मरीजों की संख्या में बहुत कमी आई है। इसके अतिरिक्त यह अन्य परजीवी संक्रमणों से ग्रसित मरीज के इलाज में भी कारगर है। यूयू तु ने मलेरिया की नई दवा आर्टेमाइसिनिन एवं डाईहाइड्रोआर्टेमाइसिन की खोज की। क्लोरोक्विन और कुनैन के नाकाम होने के बाद यह दवा मच्छर के काटने से होने वाली बीमारी से लड़ने में अत्यन्त मददगार सिद्ध हुई है। उनके द्वारा पारंपरिक चीनी हर्बल औषधि से यह दवा तैयार की गई है जिसके कारण दुनिया भर में मलेरिया से होने वाली मृत्यु दर में महत्वपूर्ण गिरावट दर्ज की गई है। यूयू तु को नोबेल पुरस्कार की सम्पूर्ण राशि(80 लाख स्वीडिश क्रोनर या 9.60 लाख डॉलर या लगभग 6.26 करोड़ रुपये) की आधी राशि तथा शेष आधी राशि विलियम सी0 कैंपबेल और सतोशी ओमुरा में बराबर–बराबर बांटी जायेगी। वर्तमान में विलियम सी0 कैंपबेल ड्रियु विश्वविद्यालय में रिसर्च फैलो एमेरिटस, सतोशी ओमुरा कितासातो विश्वविद्यालय में प्रोफेसर एमेरिटस तथा वेस्लेयान विश्वविद्यालय में रसायन के मैक्स टिस्लर प्रोफेसर, यूयू तु चाइना एकेडेमी ऑफ ट्रेडिशनल चाइनीज मेडिसीन में प्रोफेसर हैं।

2. भौतिक विज्ञान के क्षेत्र मे

तकाकी काजिता
(जन्म–1959, जापान)

आर्थर बी0 मैकडोनाल्ड
(जन्म–1943, कनाडा)

वर्ष 2015 में भौतिक विज्ञान में उत्कृष्ट शोध कार्य के लिए नोबेल पुरस्कार रॉयल स्वीडिश एकेडमी ऑफ साइंस द्वारा टोकियो विश्वविद्यालय, काशीवा, जापान, के भौतिक शास्त्री एवं इंस्टीट्यूट फॉर कॉस्मिक रे रिसार्च के निदेशक, प्रोफेसर तकाकी काजिता तथा क्वींस विश्वविद्यालय, किंग्स्टन, कनाडा, में एमेरिटस प्रोफेसर आर्थर बी० मैकडोनाल्ड को संयुक्त रूप से प्रदान किया जायेगा। इन भौतिक शास्त्रियों को वर्ष 2015 में उनके द्वारा **'फॉर द डिस्कवरी ऑफ न्यूट्रिनो ऑसिलेशंस, व्हिच शोज दैट न्यूट्रिऑन्स हैव मास'** पर किये गये उल्लेखनीय कार्य के लिए नोबेल पुरस्कार हेतु चुना गया। इनकी खोज से यह बात सिद्ध हो सकी है कि सूक्ष्म कणों में भी द्रव्यमान होता है जिससे ब्रह्माण्ड को देखने के हमारे नजरिये में भी परिवर्तन आ जायेगा। नोबेल पुरस्कार राशि को इन दोनों वैज्ञानिकों के बीच बराबर–बराबर बांटा जायेगा।

3. रसायन विज्ञान के क्षेत्र में

टॉमस रॉबर्ट लिंडाल

पॉल एल० मॉडरिक

अजीज सैंकर

वर्ष 2015 में रसायन विज्ञान में उत्कृष्ट शोध कार्य के लिए नोबेल पुरस्कार रॉयल स्वीडिश एकेडमी ऑफ साइंस द्वारा कैंसर अनुसंधान में विशेषज्ञ स्वीडिश वैज्ञानिक **टॉमस रॉबर्ट लिंडाल**, ड्यूक विश्वविद्यालय स्कूल ऑफ मेडिसिन, डरहम, एन.सी., यू०एस०ए०, में जैवरसायन वैज्ञानिक एवं जेम्स बी. ड्यूक प्रोफेसर **पॉल मॉडरिक**, तथा तुर्की में जन्मे व यूनिवर्सिटी ऑफ नॉर्थ कैरोलिना, चैपल हिल, एन.सी., यू०एस०ए०, के जैवरसायन शास्त्री, **अजीज सैंकर** को संयुक्त रूप से उनके उल्लेखनीय कार्य **'फॉर मिकैनिस्टिक स्टडीज ऑफ डी.एन.ए. रिपेयर'**(डी.एन.ए. की मरम्मत के यत्नवत अध्ययन के लिए) को आधार बनाकर प्रदान किया जायेगा। इन वैज्ञानिकों के अध्ययन से इस बात का पता चला कि कैंसर जैसी परिस्थितियों में स्थिति किस प्रकार खराब हो सकती है? किस तरह जीवित कोशिकाएं कार्य करती हैं? कोशिकाएं किस प्रकार क्षतिग्रस्त डी.एन.ए. की मरम्मत करती हैं? बहुत सी आनुवंशिक बीमारियों का कारण क्या है? कैंसर कोशिकाओं के विकास और उम्र बढ़ने की प्रक्रिया क्या है? टॉमस रॉबर्ट लिंडाल ने उस इंजाइम की खोज की, जो कोशिकाओं की खराबी को ठीक करता है। पॉल मॉडरिक ने डी.एन.ए. को ठीक करने की उस जटिल प्रक्रिया का पता लगाया, जिसे बेसेल मरम्मत कहा जाता है। अजीज सैंकर ने उस प्रक्रिया का पता लगाया, जिससे कोशिकाएं पराबैंगनी किरणों से होने वाले नुकसान को ठीक करती हैं। नोबेल पुरस्कार राशि को इन तीनों वैज्ञानिकों के बीच बराबर–बराबर बांटा जायेगा।

4. साहित्य के क्षेत्र में

स्वेत्लाना अलेक्सांद्रोव्ना एलेक्सिएविच(जन्म–1948, इवानो–फ्रन्कीव्स्क, यूक्रेन)

वर्ष 2015 में साहित्य के लिए नोबेल पुरस्कार रॉयल स्वीडिश एकेडमी ऑफ साइंस द्वारा यूक्रेन में जन्मीं 67 वर्षीय बेलारूस की महिला लेखिका एवं पत्रकार **स्वेत्लाना अलेक्सांद्रोव्ना एलेक्सिएविच** को उनके उल्लेखनीय कार्य **"a monument to suffering and courage in our time"** के आधार पर प्रदान किया जायेगा। वह साहित्य का नोबेल पुरस्कार जीतने

वाली दुनिया की 14वीं महिला हैं। स्वीडिश एकेडेमी द्वारा स्वेतलाना के लेखन को अपने समय की पीड़ा और साहस की निशानी बताया है। उनकी कृतियों को "वॉयसेज ऑफ यूटोपिया" का नाम दिया गया है। इसमें पूर्व सोवियत संघ में लोगों के जीवन के अलावा 1986 के चेर्नोबिल परमाणु हादसे, अफगानिस्तान में रूस की लड़ाई और दूसरे विश्व युद्ध का वर्णन किया गया है। स्वेतलाना शुरुआती दौर में पत्रकार रहीं हैं। वह अब भी उसी तरह ग्राउंड वर्क और शोध करने में विश्वास करती हैं। जैसे– "वॉयसेज ऑफ चेर्नोबिल" लिखने के लिए पहले वे चेर्नोबिल जाकर कुछ महीने रहीं और वहाँ उन पत्रकारों के संपर्क में रहीं जिन्होंने इस त्रासदी को कवर किया था। फिर वे इस दुर्घटना में पीड़ित हुए लोगों, डॉक्टरों, अग्निशमन कर्मचारियों वगैरह 500 लोगों से मिलीं। इसलिए स्वेतलाना को इस किताब को पूरा करने में पूरा दस वर्ष का समय लगा।

5. शांति के क्षेत्र में

वर्ष 2015 में शांति के नोबेल पुरस्कार हेतु नॉर्वीजियन नोबेल एकेडेमी, ओस्लो, नॉर्वे, द्वारा ट्यूनीशिया की संस्था नेशनल डायलॉग क्वार्टेट को चुना गया। संस्था को यह पुरस्कार ट्यूनीशिया में लोकतंत्र को बढ़ावा देने के लिए उसके सराहनीय प्रयासों के चलते दिया गया। नोबेल पुरस्कार समिति के प्रमुख कैसी कुलमैन फाइव के अनुसार "इस संस्था ने ट्यूनीशिया में एक ऐसे समय वैकल्पिक और शांतिपूर्ण राजनीतिक प्रक्रिया शुरू की जब वर्ष 2011 की अरब क्रांति के बाद देश गृह युद्ध की कगार पर था।" पुरस्कार समिति ने माना है कि इस वर्ष का पुरस्कार दुनिया भर में लोकतांत्रिक शक्तियों को प्रोत्साहित करने का काम करेगा।

6. अर्थशास्त्र के क्षेत्र में

एंगस डीटॉन(जन्म–1945, एडिनबरा, यू0के0)

वर्ष 2015 में, अल्फ्रेड नोबेल की स्मृति में अर्थशास्त्र विज्ञान के लिए प्रदान किया जाने वाला सवेरिजेस रिक्सबैंक पुरस्कार 70 वर्षीय ब्रिटिश मूल के अमरीकी अर्थशास्त्री **प्रोफेसर एंगस डीटॉन**, अर्थशास्त्र विभाग, प्रिंसटन विश्वविद्यालय, प्रिंसटन, एन.जे., यू0एस0ए0, को उनके उत्कृष्ट कार्य **"कॉर हिज एनालिसिस ऑफ कन्जम्पशन, पॉवर्टी, एण्ड वेलफेयर"**(खपत, गरीबी और कल्याण के विश्लेषण पर) को चुना गया। नोबेल समिति के मुताबिक डीटॉन ने जो काम किया है, वह मुख्य रूप से तीन सवालों के आस–पास घूमता है। कैसे उपभोक्ता विभिन्न सामानों के बीच अपने खर्च को बांटता है? समाज की कितनी आय खर्च की जाती है? कितनी बचाई जाती है? भलाई व गरीबी को नापने और विश्लेषण का सर्वश्रेष्ठ उपाय क्या है? विकासशील देशों में जीवन स्तर और गरीबी मापने के लिए उन्होंने घरेलू खपत के आंकड़ों का भी प्रयोग किया है।

संदर्भ

1. हिन्दी दैनिक समाचार पत्र, अक्टूबर 2015, लखनऊ।
2. www.nobelprize.org

बप्पा श्री नारायण वोकेशनल स्नातकोत्तर महाविद्यालय(के0के0वी0)

(लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ)

स्टेशन रोड, चारबाग, लखनऊ–226001, उ0प्र0, भारत

(नैक प्रत्यायित "बी" संस्था)

बी0 एस0 एन0 वी0 विज्ञान परिषद

www.bsnvpgcollege.in/vp

परिषद के कार्य

1. विज्ञान की विभिन्न धाराओं में समय–समय पर **संगोष्ठी का आयोजन** कराना,
2. छात्र/छात्राओं हेतु ग्रीष्मकालीन/शीतकालीन **कार्यशालाओं** का आयोजन,
3. वर्ष में एक बार **"अनुसंधान(विज्ञान शोध पत्रिका)"** का प्रकाशन,
4. मेधावी छात्रों को विज्ञान शोध के क्षेत्र में प्रोत्साहन,
5. समाज व छात्र/छात्राओं को विज्ञान विषय हिन्दी में पढ़ना प्रेरित करना,
6. वैज्ञानिक शोध को हिन्दी में प्रोत्साहित करना,
7. समाज में विज्ञान हेतु जागरुकता पैदा करना आदि।

लक्ष्य तथा दायरा

अनुसंधान(विज्ञान शोध पत्रिका), बी0 एस0 एन0 वी0 विज्ञान परिषद, लखनऊ, द्वारा क्रियेटिव कॉमन्स(सी.सी.) एट्रीब्यूशन 4.0 इंटरनैशनल लाइसेंस के अंतर्गत हिन्दी में प्रकाशित ओपेन एक्सेस, पियर रिव्यूड, वार्षिक, अंतर्राष्ट्रीय विज्ञान शोध पत्रिका है। जिसका मुख्य उद्देश्य वैज्ञानिक सोच को हिन्दी में व्यक्त करने तथा वैज्ञानिक शोध को हिन्दी में प्रस्तुत करने की रूचि रखने वाले शोधार्थियों, शिक्षकों एवं वैज्ञानिकों को एक ऐसा मंच प्रदान करने का है जहाँ से उनके कार्य को राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सराहा जा सके। वर्तमान में एक वर्ष में केवल एक अंक के प्रकाशन का लक्ष्य है जिसे भविष्य में आवश्यकता अनुसार एक वर्ष में दो अंक के प्रकाशन तक बढ़ाया जा सकता है। पत्रिका में विज्ञान की सभी धाराओं(**भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, गणित, वनस्पति विज्ञान, प्राणि विज्ञान, भूगर्भ विज्ञान, सांख्यिकी, कम्प्यूटर विज्ञान, अभियांत्रिकी एवं प्रौद्योगिकी, पर्यावरण विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान** आदि) में प्राप्त पत्रों को उपयुक्त समीक्षा उपरांत स्वीकृत होने पर प्रकाशित किया जायेगा। प्रकाशन हेतु प्रस्तुत भाग–1 व भाग–2 के सभी प्रकार के पत्रों/लेखों में सार या ऐब्स्ट्रेक्ट हिन्दी व अंग्रेजी दोनों भाषाओं में दिया जाना आवश्यक है।

इस पत्रिका के चार खण्ड होंगे–

भाग–1–**शोध पत्र/आलेख(सार या ऐब्स्ट्रेक्ट अंग्रेजी में भी होना चाहिए)**

भाग–2–**समीक्षा**–तकनीकी लेख, सम्मानित शोध ग्रंथ सारांश, शोध परियोजना, शोध प्रकाशन, शोध विद्या आदि।(**सार या ऐब्स्ट्रेक्ट अंग्रेजी में भी होना चाहिए**)

भाग–3–महत्वपूर्ण विषयों पर आधारित वैज्ञानिक लेख(**लेख के अंत में प्रयुक्त सामग्री का संदर्भ भी दें**)

भाग–4–पुस्तक समीक्षा, संगोष्ठी/कार्यशालाओं संबंधित आख्या, व्यावहारिक विज्ञान से जुड़ी खबरें, वरिष्ठ वैज्ञानिकों के शोध अनुभवों पर आधारित साक्षात्कार/जीवनी/उपलब्धियां, राष्ट्रीय प्रयोगशाला/शोध संस्थान, नवीन वैज्ञानिक विषयों पर शोध विमर्श, साइंटून्स, शैक्षिक विज्ञापन आदि।

इस पत्रिका की प्रिंट–प्रति एवं ई–प्रति दोनों प्रकाशित होंगी।

प्रकाशन हेतु शोध पत्र की प्रस्तुतियां

विज्ञान शोध पत्रिका में प्रकाशन हेतु इच्छुक छात्र/छात्राओं, शोध छात्र/छात्रों, शिक्षकों, वैज्ञानिकों व अन्य शिक्षाविदों से प्रस्तुतियां इस आशय के साथ आमंत्रित हैं कि वह किसी अन्य पत्रिका में प्रकाशन हेतु न तो स्वीकृत हैं और न ही प्रकाशन हेतु समीक्षारत हैं। पत्रिका में प्रकाशित शोध पत्रों/समीक्षा लेखों/वैज्ञानिक लेखों का कॉपीराइट बी0एस0एन0वी0 विज्ञान परिषद का होगा। एक लेखक पत्रिका के प्रत्येक भाग में प्रकाशन हेतु प्रस्तुतियाँ प्रेषित कर सकता है। भाग–3 में प्रकाशन हेतु प्रस्तुत सभी वैज्ञानिक लेखों के अंत में संदर्भ दिया जाना आवश्यक है। पत्रिका के किसी भी भाग में प्रकाशन हेतु पत्र(एम0 एस0 वर्ड फाइल) ई–मेल के माध्यम से प्रधान संपादक–डॉ0 सुधीश चन्द्र, एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, प्राणि विज्ञान विभाग, बी0 एस0 एन0 वी0 पी0 जी0 कॉलेज, लखनऊ, को उनके ई–मेल पते sudhish1953@gmail.com ; dksflow@hotmail.com पर प्रेषित किये जायेंगे। समीक्षा उपरांत स्वीकृत होने पर पत्रिका के प्रारूप के अनुसार पत्र की एम0 एस0 वर्ड में .डॉक फाइल इसी ई–मेल पते पर प्रकाशन हेतु पुनः मांगी जायेगी। जिसे पुनः पत्रिका के प्रारूप के आधार पर जाँच करने के उपरांत अंतिम बार लेखक को अवलोकनार्थ भेजा जायेगा तथा इसे कम से कन समय(दो से तीन दिन के अंदर) में पुनः अंतिम प्रकाशन हेतु प्रस्तुत करना होगा। प्रकाशन हेतु प्रस्तुत भाग–1 व भाग–2 के सभी प्रकार के पत्रों/लेखों में सार या ऐब्स्ट्रेक्ट हिन्दी व अंग्रेजी दोनों भाषाओं में दिया जाना आवश्यक है।

नियम एवं शर्तें

1. आजीवन सदस्यता शुल्क–रू0 1000/–(संस्थाओं/पुस्तकालयों की आजीवन सदस्यता हेतु शुल्क रू0 3000/–), विद्यार्थियों/शोध छात्र–छात्राओं हेतु आजीवन सदस्यता शुल्क रू0 500/– एवं वार्षिक सदस्यता शुल्क रू0 100/–। सभी लेखकों के लिए विज्ञान परिषद की सदस्यता प्राप्त करना अनिवार्य है।
2. वार्षिक व सत्रवार सदस्यता शुल्क–रू0 300/–
3. 10 मुद्रित पृष्ठों वाले शोध पत्रों/लेखों की छपाई हेतु कोई प्रोसेसिंग शुल्क नहीं लगेगा, तत्पश्चात् प्रति पृष्ठ रू0 50/– देय होंगे।
4. सभी पत्र/लेख हिन्दी के क्रुति देव 010 फांट एवं 12 पॉइंट साइज में तैयार किये जायें।
5. भाग–1 व भाग–2 के सभी पत्रों/लेखों में क्रम निम्नवत होना चाहिए–
   हिन्दी में शीर्षक,
   हिन्दी में लेखक का नाम, विभाग एवं संस्था का पता(सेवानिवृत्त होने की स्थिति में घर का स्थायी पता) ई–मेल पते सहित,
   हिन्दी में सारांश,
   अंग्रेजी में शीर्षक,
   अंग्रेजी में लेखक का नाम, विभाग एवं संस्था का पता(सेवानिवृत्त होने की स्थिति में घर का स्थायी पता) ई–मेल पते सहित,
   अंग्रेजी में सारांश(एब्स्ट्रेक्ट)
   प्रस्तावना/भूमिका
   सामग्री एवं विधि
   परिणाम/चर्चा
   निष्कर्ष
   आभार(यदि देना चाहें तो)
   संदर्भ(संदर्भों को लेख में ही क्रमीकरण करते हुए उचित स्थान पर पंक्ति के ऊपर 1,2,3,..... इत्यादि अंकित करके लिखें जैसे जैन व शर्मा[1] या संदर्भित लेखक को वर्ष के साथ उल्लिखित करें जैसे (जैन व शर्मा, 1988))
6. शोध पत्र व पुस्तकों के संदर्भ इस प्रकार तैयार किये जायें–
   सक्सेना, पी0 डी0 तथा शर्मा, ए0 के0(1991) मेडिसिनल प्लांट आफ वाटर, ज0 आफ बायो0, खण्ड 21, अंक 3, मु0पृ0 121–132।
   श्रीवास्तव, डी0 के0(2013) ज्यामिति, पियरसन एजुकेशन, प्रथम संस्करण, नई दिल्ली, पृ0 121।
7. लेखकों को अपने शोध पत्रों, समीक्षा लेखों, तकनीकी लेखों एवं वैज्ञानिक लेखों की मौलिकता एवं कॉपीराइट स्थानांतरण प्रमाण पत्र बी0एस0एन0वी0 विज्ञान परिषद को निर्धारित प्रारूप(**नियमावली के अंत में संलग्न**) पर देना आवश्यक होगा।

8. सभी छपे हुए शोध पत्रों के 25 रि–प्रिंटस लेने अनिवार्य होंगे, जिनका शुल्क रू0 500/– होगा।
9. पत्रिका पूर्ण रूप से ओपेन एक्सेस पियर रिव्यूड सिस्टम पर आधारित होगी जिससे कि कोई भी पाठक छपे हुए पत्रों को पढ़ सकता है तथा शुल्क मुक्त रूप से शैक्षिक उपयोग हेतु डाउनलोड कर सकता है।
10. स्वीकृत पत्रों की उपलब्धता के आधार पर विज्ञान की सभी धाराओं के पाठकों की रूचि को ध्यान में रखते हुए अनिवार्य रूप से सभी धाराओं का कम से कम एक पत्र अवश्य छापा जायेगा। यदि किसी एक धारा में एक वर्ष में कई पत्र छपने हेतु स्वीकृत किये जाते हैं तक उन्हें वरीयता के आधार पर पत्रिका के दूसरे अंक में छपने हेतु सुरक्षित रखा जायेगा।
11. पत्रिका का क्रय मूल्य–रू0 300/–
12. सभी प्रकार के भुगतान "**बी0 एस0 एन0 वी0 विज्ञान परिषद**" या "B.S.N.V. Vigyan Parishad" के नाम पर, चेक/डीडी के माध्यम से होंगे, जो कि **लखनऊ** में देय होगा। किसी भी प्रकार की अन्य जानकारी प्राप्त करने हेतु पत्राचार– **डॉ0 दीपक कुमार श्रीवास्तव (सचिव, बी0 एस0 एन0 वी0 विज्ञान परिषद) एसोसिएट प्रोफेसर, गणित विभाग, बी0 एस0 एन0 वी0 पी0 जी0 कॉलेज, स्टेशन रोड, चारबाग, लखनऊ–226001, उ0प्र0, भारत**, पर या ई–मेल: dksflow@hotmail.com पर किया जा सकता है।

बप्पा श्री नारायण वोकेशनल स्नातकोत्तर महाविद्यालय

स्टेशन रोड, चारबाग, लखनऊ–226001, भारत

बी0 एस0 एन0 वी0 विज्ञान परिषद

सदस्यता प्रारूप

पासपोर्ट फोटो

1. नाम(प्रो0 / डॉ0 / श्री / श्रीमती) :
2. पत्राचार वाला पता :
3. फोन / फैक्स / मो0 / ई–मेल / वेब पता :
4. वर्तमान पद :
5. संस्था / सम्बद्धता :
6. जन्म तिथि / आयु :
7. शैक्षिक योग्यता :
8. विषय विशेषज्ञता :
9. पुरस्कार / मान्यताएं :
10. अन्य :
11. भुगतान विवरण :
(नकद / चेक / डी. डी. नं0, दिनांक, रू0 में सदस्यता शुल्क, बैंक सूचना)

नोट:–

- सभी प्रकार के शुल्क **'बी0 एस0 एन0 वी0 विज्ञान परिषद'** के नाम से **लखनऊ** पर देय होंगे।
- आजीवन सदस्यता शुल्क रू0 1000 / – एवं वार्षिक सदस्यता शुल्क रू0 300 / –, विद्यार्थियों / शोध छात्र–छात्राओं हेतु आजीवन सदस्यता शुल्क रू0 500 / – एवं वार्षिक सदस्यता शुल्क रू0 100 / –
- भारत के बाहर के सभी देशों हेतु आजीवन सदस्यता शुल्क **$** 100 एवं वार्षिक सदस्यता शुल्क **$** 40, विद्यार्थियों / शोध छात्र–छात्राओं हेतु आजीवन सदस्यता शुल्क **$** 30 / – एवं वार्षिक सदस्यता शुल्क **$** 10
- विद्यार्थी / शोध छात्र–छात्राएं सदस्यता प्रारूप के साथ अपनी वर्तमान संस्था द्वारा प्राप्त पहचान पत्र की प्रति अवश्य संलग्न करें।
- सदस्यता प्रारूप व्यक्तिगत रूप में या डाक के माध्यम से **डॉ0 दीपक कुमार श्रीवास्तव**, एसोसिएट प्रोफेसर, गणित विभाग(सचिव, बी0 एस0 एन0 वी0 विज्ञान परिषद), बी0 एस0 एन0 वी0 पी0 जी0 कॉलेज(के0 के0 पी0), स्टेशन रोड, चारबाग, लखनऊ(उ0 प्र0)–226001, के नाम से प्रेषित किये जायें।

दिनांक:

हस्ताक्षर

बप्पा श्री नारायण वोकेशनल स्नातकोत्तर महाविद्यालय

स्टेशन रोड, चारबाग, लखनऊ–226001, भारत

बी0 एस0 एन0 वी0 विज्ञान परिषद

संस्था सदस्यता / पुस्तकालय सदस्यता प्रारूप(आजीवन)

1. संस्था का नाम :

2. पत्राचार वाला पता :

3. फोन / ई–मेल / वेब पता :

4. शैक्षणिक संरथा / शोध संस्थानः

5. सम्बद्धता(वि0वि0 अथवा अन्य) :

6. अन्य :

7. भुगतान विवरण :
   (चेक / डी0डी0 नं0, दिनांक, रू0 में सदस्यता शुल्क, बैंक सूचना)

नोट:–

- सभी प्रकार के शुल्क "**बी0 एस0 एन0 वी0 विज्ञान परिषद**" के नाम से **लखनऊ** पर देय होंगे।
- संस्थाओं हेतु आजीवन सदस्यता शुल्क– **रू0 3000 / –(तीन हजार मात्र)**।
- भारत के बाहर के सभी देशों हेतु संस्थाओं का आजीवन सदस्यता शुल्क– $100
- सभी आजीवन सदस्य संस्थाओं को "**विज्ञान शोध पत्रिका**" की एक प्रति शुल्क मुक्त रूप से उनके डाक वाले पते पर रजिस्टर्ड पार्सल से भेजी जायेगी।
- सदस्यता प्रारूप व्यक्तिगत रूप में या डाक के माध्यम से **डॉ0 दीपक कुमार श्रीवास्तव**, एसोसिएट प्रोफेसर, गणित विभाग(सचिव, बी0 एस0 एन0 वी0 विज्ञान परिषद), बी0 एस0 एन0 वी0 पी0 जी0 कॉलेज(के0 के0 वी0), स्टेशन रोड, चारबाग, लखनऊ(उ0 प्र0)–226001, के नाम से प्रेषित किये जायें।

दिनाकः

संस्था के सक्षम अधिकारी के हस्ताक्षर
नाम व मोहर सहित

लेखक सहमति पत्र

सेवा में,

दिनांकः

सचिव
बी0एस0एन0वी0 विज्ञान परिषद
बी0एस0एन0वी0 पी0जी0 कॉलेज(के0के0वी0)
लखनऊ–226001

महोदय,

प्रमाणित किया जाता है कि मेरा शोध पत्र/समीक्षा लेख/वैज्ञानिक लेख(अ0वि0शो0प0–खण्ड– ,)
जिसका कि शीर्षक .....
.....
है, एक मौलिक लेख है जो अन्य किसी पत्रिका/जर्नल में न तो छपा है, न ही स्वीकृत है। मैं अपने उक्त लेख के समस्त कॉपीराइट बी0एस0एन0वी0 विज्ञान परिषद को हस्तगत करने के लिए अपनी सहमति देता हूँ।

सधन्यवाद

प्रार्थी/प्रार्थिनी

(डॉ0/श्री/श्रीमती/प्रो0)

पता–

ई–मेल–

मो0–

With best compliments:

Alok Prakashan

Lucknow / Allahabad

Premiere Publisher of Intermediate and Graduate Level Books in Science, Art & Commerce

Address:
ALOK PRAKASHAN
Gwyne Road, Aminabad, Lucknow
Phone : 0522-2628711, Mob.: 9415006028

With best compliments:

Vivek Malviya
Prop.

Prakashan Kendra

Lucknow

Leading Publisher of Graduate Level Text Books of Science, Arts & Commerece

Address:
PRAKASHAN KENDRA
Daliganj Railway Crossing, Sitapur Road, Lucknow - 226020
Phone : 0522- 2323035, 2367314, Mob. : 9415021225

आर.एन.आई., भारत सरकार / 1272856 / यू.पी.एच.आई.एन.–46478; दिनांकः 09.06.2015

नोबेल पुरस्कार विद्वान – वर्ष 2015

चिकित्सा

विलियम सी0 कैंपबेल
(जन्म–1930, आयरलैण्ड)

सतोशी ओमुरा
(जन्म–1935, जापान)

यूयू तु
(जन्म–1930, चीन)

भौतिक विज्ञान

तकाकी काजिता
(जन्म–1959, जापान)

आर्थर बी0 मैकडोनाल्ड
(जन्म–1943, कनाडा)

रसायन विज्ञान

टॉमस रॉबर्ट लिंडाल
(जन्म–1938, स्वीडन)

पॉल एल0 मॉडरिक
(जन्म–1946, यू0 कैलिफोर्निया)

अजीज सैंकर
(जन्म–1946, टर्की, यू0के0)

अर्थशास्त्र

एंगस डीटॉन
(जन्म–1945, एडिनबरा, यू0के0)

साहित्य

स्वेत्लाना अलेक्सांद्रोव्ना एलेक्सिएविच
(जन्म–1948, इवानो–फ्रन्कीव्स, यूक्रेन)